लोहिया और संसद

इस खण्ड में डा० राममनोहर लोहिया के जीवन, कार्यों और विचारधारा का परिचय दिया गया है। वे साढ़े तीन दशकों तक भारतीय राजनीति पर छाये रहे। स्वभाव व आस्था से वे एक कट्टर समाजवादी थे। भारत की सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक परिस्थितियों की बुनियादी वास्तविकताओं को ध्यान में रखते हुए उन्होंने भारत में सामाजिक आन्दोलन को एक नई दिशा और आयाम प्रदान किया।

एक स्वतंत्रता सेनानी दार्शनिक राजनीतिक नेता और संसदविद के रूप में उन्होंने जनता के हृदय में अपने लिये एक विशिष्ट स्थान बना लिया था। हर दिल अजीज और मिलनसार डा० लोहिया अपनी हाजिर जवाबी, बुद्धिचातुर्य, समर्पण भाव और क्रान्तिकारी विचारों से सबके प्यारे बन गये। इस खण्ड में उनके बहुमुखी व्यक्तित्व पर प्रकाश डाला गया है। इसमें महान विभूतियों, वरिष्ठ संसदविदों और प्रतिष्ठित व्यक्तियों के लेखों के साथ-साथ भारतीय राजतंत्र के विभिन्न पहलुओं के बारे में डा० लोहिया के अपने विचार भी शामिल किये गये हैं।

आधुनिक भारत के राजनीतिक और सामाजिक जीवन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले व्यक्ति के जीवन और विचारों को जानने की इच्छा रखने वाले आम व्यक्तियों, विद्वानों और नेताओं को यह खण्ड समान रूप से रुचिकर लगेगा।

लोहिया और संसद

लोहिया और संसद

लोक सभा सचिवालय
नई दिल्ली
1991

प्रथम संस्करणः 1991

© लोक सभा सचिवालय, 1991

मूल्य : 150 रुपये

लोक सभा सचिवालय की पूर्वानुमति के बिना इस पुस्तक का कोई भी अंश समीक्षा के अलावा अन्य किसी भी रूप में पुनरुद्धृत न किया जाये।

लोक सभा के प्रक्रिया तथा कार्य-संचालन नियम (सातवां संस्करण) के नियम 382 के अधीन प्रकाशित तथा प्रबंधक, भारत सरकार मुद्रणालय, मिन्टो रोड, नई दिल्ली-110002 द्वारा मुद्रित।

प्राक्कथन

"यदि आप किसी समृद्ध व्यक्ति को तो "आप" कहें और समाज के निर्धन और कमजोर वर्ग का होने के कारण रिक्शेवाले को "तुम" कहें, तो कहां रह जाती है समानता, मानव-गरिमा और सामाजिक न्याय की बातें" ये कटाक्षपूर्ण शब्द डा० राममनोहर लोहिया ने अपनी विशिष्ट तीखी और कटु शैली में हमसे तब कहे थे जब मैं उनसे पहली बार 1948 में उड़ीसा में कुछ छात्रों के साथ मिला था। यह तब की बात है जब गांधी जी की मृत्यु के पश्चात समाजवादी गुट कांग्रेस से अलग हो गया था और लोहिया समाजवादी पार्टी का गठन करने के लिए उड़ीसा आये थे। उनकी यह टिप्पणी अप्रिय होते हुए भी इतनी सच्ची थी कि वह हमारे युवा मन पर अमिट छाप छोड़ गई और हमारे "गांधी के बाद कौन" प्रश्न का उत्तर दे गई। तब हमने महसूस किया था कि बापू के समान स्पष्ट और सादे ढंग से जीवन के कड़वे सच को आत्मसात करने वाले दूसरे व्यक्ति स्वयं लोहिया जी ही हैं जो गांधीजी की ही तरह कथनी और करनी में भेद नहीं करते।

आम लोगों की, जो किसी भी लोकतंत्र के सच्चे स्वामी होते हैं, भयावह और अमानवीय परिस्थितियों के बारे में लोहिया का जो आकलन था वह किसी सिद्धान्त अथवा सुनी सुनाई बातों पर आधारित नहीं था, बल्कि यह निर्धन से निर्धन और कमजोर से कमजोर व्यक्ति से उनके सीधे सम्पर्क का परिणाम था। लोकसभा में 1963 में नेहरु सरकार के विरुद्ध रखे गए पहले अविश्वास प्रस्ताव पर हुई चर्चा के दौरान लोहिया ने गरीबी रेखा से नीचे रह रही 60 प्रतिशत जनसंख्या की प्रति व्यक्ति आय "पन्द्रह आने बनाम तीन आने" की ऐतिहासिक चर्चा करके सरकार द्वारा उस बारे में प्रस्तुत किए गए आकड़ों को स्पष्ट रुप से चुनौती दी थी। ऐसा उन्होंने एक नौजवान से हुई उनकी बेबाक बातचीत के आधार पर किया था। लोहिया को वह नौजवान एक बार किसी गांव में तालाब से मछलियां पकड़ते हुए मिल गया था। उसकी दैनिक आमदनी के बारे में पूछने पर उसने लोहिया को बताया था कि वह प्रतिदिन तीन-साढ़े तीन आने कमा लेता है। इस छोटी सी जानकारी ने लोहिया को आत्मचिंतन करने के लिये प्रेरित किया और इसी आधार पर बाद में उन्होंने प्रति व्यक्ति आय के सरकारी आंकड़ों को चुनौती दी।

लोहिया का यह दृढ़ विश्वास था कि विकासशील हो अथवा विकसित, समाज की मूलभूत आवश्यकताओं को गांधीवाद सिद्धान्तों के आधार पर ही पूरा किया जा सकता है। इसलिए स्वाधीनता के बाद भी उन्होंने दलितों और पीड़ितों के विरुद्ध होने वाले हर अन्याय से प्रभावी ढंग से जूझने के लिए गांधीवादी शस्त्र सत्याग्रह का प्रयोग किया।

गांधी जी की तरह उन्होंने भी ग्रामीण पिछड़ेपन को दूर करने को सर्वोच्च प्राथमिकता प्रदान की। तथापि, वे गांधीजी और उनके चरखे के अन्ध भक्त नहीं थे। वे ऐसी नई प्रौद्योगिकी के समर्थक थे जो एक विकासोन्मुख समाज के सर्वांगीण विकास में सहायक सिद्ध हो सके।

लोहिया एक उच्च कोटि के मौलिक चिंतक तथा कुशाग्र बुद्धि वाले व्यक्ति थे। स्वभाव से संवेदनशील तथा जिज्ञासु होने के कारण उन्होंने राजनीति दर्शन क्षेत्र की नई प्रवृत्तियों को गहराई से समझा तथा उन्हें अपने लेखों आदि एवं भाषणों में पूरी तरह प्रतिबिम्बित किया। एक दार्शनिक एवं एक व्यवहार कुशल राजनीतिज्ञ होने के नाते उन्होंने कोई ऐसा रास्ता निकालने का प्रयास किया जिससे व्यक्ति और राज्य के बीच टकराव पैदा न हो। वे ऐसे पहले समाजवादी विचारक थे जिनके विचार पश्चिम विचारधारा अथवा सोवियत संघ की राजनीतिक प्रक्रियाओं की सीमा में नहीं बँधे थे। उनका मत था कि प्रत्येक राष्ट्र की विचारधारा उसकी अपनी संस्कृति, परम्पराओं तथा इतिहास पर आधारित होनी चाहिए। लोहिया के राजनीतिक, आर्थिक एवं सामाजिक दर्शन का विश्लेषण करते समय उनके समकालीन शोधकर्ताओं में प्रायः यह प्रवृत्ति पाई जाती है कि वे उन्हें कैंट, हेगल और काम्टे की परम्परा में सिद्धान्त स्थापित करने वाले लेखक के रूप में स्वीकार नहीं करते। लेकिन किसी भी व्यक्ति को यह बात नहीं भूलनी चाहिए कि किसी विचारधारा को समन्वित विकास के रूप में देखने का उनका जो नजरिया था उसे आज पूरे विश्व में विकसित एवं विकासशील अर्थव्यवस्थाओं में पाई जाने वाली कमियों को दूर करने के एकमात्र उपाय के रूप में स्वीकार किया जा रहा है। उनके दर्शन का सार उनकी सप्त क्रांतियों में देखने को मिलता है। ये हैं: (1) पुरूष और स्त्री के बीच समानता के लिए क्रांति, (2) रंगभेद पर आधारित राजनीतिक, आर्थिक और आध्यात्मिक असमानता के विरुद्ध क्रांति, (3) पिछड़े एवं उच्चे वर्गों अथवा जातियों के बीच परम्परा से चली आ रही असमानता के विरुद्ध क्रांति तथा पिछड़े लोगों को विशेष अवसर प्रदान करने के लिए क्रांति, (4) विदेशी दासता के विरूद्ध तथा स्वतंत्रता एवं विश्व के लोकतंत्रात्मक शासन के लिए क्रांति, (5) आर्थिक समानता, तथा योजनाबद्ध उत्पादन के लिए और गैर सरकारी पूंजी के अस्तित्व एवं उसके मोह के विरुद्ध क्रांति, (6) निजी जीवन में अनुचित हस्तक्षेप के विरूद्ध तथा लोकतांत्रिक तरीकों के लिए क्रांति और (7) हथियारों के विरुद्ध और सत्याग्रह अपनाने के लिए क्रांति।

इन संघर्षों अथवा क्रांतियों में लोहिया के दर्शन तथा व्यावहारिक कार्य योजना की स्पष्ट झलक मिलती है। स्वातंत्रयोत्तर काल में विकसित हुई व्यवस्था में धनी और निर्धन के बीच की खाई को और अधिक चौड़ा कर दिया गया, इसलिए उन्हें एक अन्य संघर्ष का आह्वन करना पड़ा। सत्तर से आरम्भ हुए दशक के अंत में जय प्रकाश नारायण ने

सम्पूर्ण क्रांति का जो आह्वान किया था, वह लोहिया का "सप्त क्रांति" का आह्वान ही था।

लोहिया ने समाजवाद की व्याख्या एक नयी सभ्यता के रूप में की, जिसे मार्क्स के शब्दों में "समाजवादी मानववाद" कहा जाता था। उन्होंने सामाजिक न्याय और समानता सुनिश्चित करने के लिए समाजवाद का समर्थन किया। भारत में जाति व्यवस्था का उल्लेख करते हुए उन्होंने कहा, " जो लोग यह सोचते हैं कि आधुनिक अर्थव्यवस्था के जरिये गरीबी मिट जाने पर जातियां स्वयं ही समाप्त हो जायेंगी, वे बड़ी भूल करते हैं।" पंचमढी में अपने अध्यक्षीय भाषण के दौरान लोहिया ने तीसरे विश्व के आर्थिक और राजनीतिक पुनर्निर्माण के लिए पूंजीवाद तथा साम्यवाद की अप्रसांगिकता का स्पष्ट शब्दों में उल्लेख किया था। इसलिए, लोहिया ने समाजवादियों को एक ऐसे दल के रुप में संगठित होने के लिए प्रेरित किया जो सात वर्षों में सत्ता अपने हाथ में ले सके और साथ ही यह सलाह भी दी कि वे धैर्य रखे तथा एक शताब्दी तक संघर्ष जारी रखने की प्रतिज्ञा करें। मुझे पूर्ण विश्वास है कि उनके विचार सपूर्ण विश्व में समाजवादी आन्दोलन के लिए नई विचारधारा के रूप में आधार प्रदान करते जा रहे हैं।

डा० लोहिया एक विख्यात स्वतंत्रता सेनानी, क्रांतिकारी दार्शनिक जाने माने लेखक, निःस्वार्थ सामाजिक कार्यकर्ता, प्रतिभावान समाजवादी नेता, एक बहुमुखी प्रतिभा के धनी व्यक्ति होने के साथ-साथ अपने समय के अद्वितीय सांसद भी थे।

जब पहली बार 1963 में वह लोक सभा में आये, तब उन्होंने गरीब तथा कमजोर वर्ग के लोगों की समस्यायों को उठाने की कोशिश की। वह इस बात को प्रतिपादित करने के लिए सदैव इच्छुक रहा करते थे और कभी कभी तो इसके लिए अधीर हो जाते थे कि देश के लोगों का सर्वोच्च मंच होने के नाते लोक सभा, की लोगों की आकांक्षाओं तथा अभिलाषाओं को मुखरित करने का माध्यम ही नहीं होना चाहिए बल्कि उसे इन्हें सामाजिक-आर्थिक न्याय दिलाने के लिए प्रभावी संस्था भी होनी चाहिए। जब कभी उन्होंने यह महसूस किया कि इस सर्वोच्च संस्था में संविधान, कानून, नियमों अथवा आंकड़ों को गरीब तथा कमजोर वर्ग के लोगों की सहायता करने के बजाए उनके प्रति अन्याय की यथा स्थिति बनाए रखने के लिए उद्धृत अथवा गलत उद्धत किया जाता है, तब उनके अन्दर का विद्रोही इसका जमकर विरोध करता था। वास्तव में यह हमारा दुर्भाग्य है कि संसद में लोहिया का कार्यकाल बहुत छोटा रहा। उनका संसदीय जीवन देर से शुरू हुआ और जब वह देश का कायाकल्प करने के लिए संसद को एक प्रभावी माध्यम के रूप में ढालने की कोशिश कर रहे थे तभी मृत्यु के क्रूर हाथों ने उन्हें हमसे छीन लिया।

आज जब हम सामाजिक न्याय के बारे में सुनते हैं तो लोहिया की प्रासंगिकता, जिन्होंने वर्षों पहले इसके बारे में कहा था, और अधिक सिद्ध हो जाती है। वह अपने

समय से काफी आगे की बातें सोचते थे। संभवतः इसी कारण अपनी मृत्यु से कुछ समय पहले उन्होंने कहा था, "लोग मेरी बातें सुनेंगे, शायद, मेरे मरने के बाद परन्तु वे सुनेंगे अवश्य"।

मुझे प्रसन्नता है कि लोक सभा सचिवालय ने यह पुस्तक प्रकाशित की है। यद्यपि यह मुख्यतः लोहिया जी के संसदीय जीवन के योगदान तक ही सीमित है, फिर भी यह पाठकों के लिए विचार प्रेरक सिद्ध होगी। यह पुस्तक उनके महत्वपूर्ण योगदान के लिए उनके प्रति हार्दिक आभार प्रकट करने का एक लघु प्रयास मात्र है।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि यह पुस्तक सांसदों, सामान्य पाठकों, राजनीतिक शास्त्र के विद्यार्थियों तथा जन जीवन से सम्बद्ध सभी लोगों के लिए लाभप्रद और रुचिकर सिद्ध होगी।

नई दिल्ली; **रवि राय**
1 मई, 1991

आमुख

भारतीय संसदीय ग्रुप ने 1990 के प्रारम्भ में सुविख्यात सांसदों की वर्षगांठ मनाने और इसकी शुरुआत डा० राममनोहर लोहिया की वर्षगांठ से करने का जो निर्णय लिया था, वह हमारे संसदीय इतिहास की एक महत्वपूर्ण घटना है। लोहिया जी की वर्षगांठ के समारोह के अंग के रूप में उन पर जो मोनोग्राफ निकाला गया था इसके बारे में यह व्यापक रूप से महसूस किया गया कि वह इस बहुमुखी गतिशील व्यक्तित्व का सम्पूर्ण परिचय नहीं दे पाया। इसके परिणामस्वरूप यह निर्णय लिया गया कि इसका विस्तार करके एक पुस्तक का रूप दे दिया जाये। अब यह पुस्तक निकाली जा रही है।

इस पुस्तक में चार भाग हैं। भाग एक में इस महान नेता और सिद्धान्तवादी का जीवनवृत दिया गया है। भाग दो में लेखों को उनके समकालीन और निकट सहयोगियों ने लिखा है जो अत्यन्त विश्लेषणात्मक है और उन्होंने जैसा डा० लोहिया को पाया था वैसा ही चित्रित किया है।

लोहिया एक प्रखर और ओजस्वी वक्ता थे जो अपने भाषणों में अपना हृदय उड़ेल देते थे। तथापि, वे जो तथ्य और आंकड़े प्रस्तुत करते थे उनमें गणित जैसी परिशुद्धता होने के कारण वे अकाट्य होते थे। पुस्तक के भाग तीन में संसद में दिये गये उनके चुनिन्दा भाषणों से लिये गये अंशों और कुछ उद्धरणों से यह पता चलता है कि वे अपनी बात पर कितने दृढ़ रहते थे।

यद्यपि उनके मित्र और साथी सांसद उनकी स्पष्टवादिता से कुछ कुछ भयभीत से रहते थे, फिर भी वे इनका बहुत सम्मान करते थे। उनके दुखद निधन पर संसद के दोनों सदनों में उनके प्रति दी गयी भावभीनी श्रद्धांजलियाँ इस पुस्तक के अन्तिम भाग में सम्मिलित की गयी हैं। उनके देहावसान के पश्चात उनके प्रति हमारे सम्मान में जो वृद्धि हुई है उसका स्पष्ट प्रमाण है विभिन्न क्षेत्रों के प्रतिष्ठित व्यक्तियों द्वारा उन्हें दी गयी श्रद्धांजलियाँ जो इस पुस्तक में सम्मिलित की गयी हैं। ये श्रद्धांजलियाँ भारतीय संसदीय ग्रुप के तत्वावधान में उनकी वर्षगांठ मनाने के लिये आयोजित की गयी बैठक में अभिव्यक्त की गयी थी। इस पुस्तक में दिये गये विभिन्न लेखों में व्यक्त किये गये विचार लेखकों के निजी विचार हैं जिनके लिये लोक सभा सचिवालय का कोई उत्तरदायित्व नहीं है।

हम, लोक सभा के माननीय अध्यक्ष श्री रवि राय के प्रति आभार प्रकट करते हैं जिनके सतत् मार्गदर्शन, सहायता और प्रोत्साहन से इस पुस्तक का प्रकाशन सम्भव हो

सका है। उनके द्वारा लिखी गयी प्रेरणाप्रद "प्रस्तावना" से स्पष्ट है कि वह लोहिया और उनके विचारों से कितने अधिक निकट हैं और उनकी विचारधारा को कितनी अच्छी तरह समझते हैं। हम उन प्रतिष्ठित लेखकों के भी आभारी हैं जिनके लेखों से यह प्रकाशन और अधिक समृद्ध हुआ है।

यह पुस्तक लोहिया जी की स्मृति में निकाली गयी है और हमारे संसदीय और राष्ट्रीय जीवन में उनके द्वारा किये गये अमूल्य योगदान के प्रति हमारी विनम्र श्रद्धांजलि है। हम आशा करते हैं कि हमारे युवा सांसदों और राजनीतिक विज्ञान के छात्रों के लिये यह पुस्तक उपयोगी सिद्ध होगी तथा "लोहिया संबंधी अध्ययन" में भी रुचि उत्पन्न करेगी।

लेखक परिचय

लेख

प्रोफेसर मधु दण्डवते
भूतपूर्व केन्द्रीय मंत्री

श्री जार्ज फर्नांडीस
भूतपूर्व केन्द्रीय मंत्री

श्री पी० उपेन्द्र
भूतपूर्व केन्द्रीय मंत्री और संसद सदस्य

श्री लालू प्रसाद
मुख्यमंत्री, बिहार

श्री मुलायम सिंह यादव
मुख्यमंत्री, उत्तर प्रदेश

श्री मधुकर दिघे
राज्यपाल, मेघालय

श्री सुरेन्द्रनाथ द्विवेदी
राज्यपाल, अरुणाचल प्रदेश

श्री धनिक लाल मंडल
राज्यपाल, हरियाणा

श्री चिन्तामणि पाणिग्रही
राज्यपाल, मणिपुर

श्री बी० सत्यनारायण रेड्डी
राज्यपाल, उत्तर प्रदेश

श्री यज्ञ दत्त शर्मा
राज्यपाल, उड़ीसा

श्री उपेन्द्र नाथ वर्मा
भूतपूर्व केन्द्रीय राज्य मंत्री

श्री मुरलीधर सी० भण्डारे
संसद सदस्य

प्रोफेसर समर गुहा
भूतपूर्व संसद सदस्य

श्री मधु लिमये
भूतपूर्व संसद सदस्य

श्री जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी
प्रख्यात पत्रकार

श्रद्धांजलि

श्री रवि राय
अध्यक्ष, लोक सभा और भूतपूर्व केन्द्रीय मंत्री
श्री हुक्मदेव नारायण यादव
केन्द्रीय वस्त्र तथा खाद्य प्रसंस्करण उद्योग मंत्री
डा० (श्रीमती) नजमा हेपतुल्ला
उप सभापति, राज्य सभा
श्री जार्ज फर्नांडीस
भूतपूर्व केन्द्रीय मंत्री
श्री राम विलास पासवान
भूतपूर्व केन्द्रीय मंत्री
श्री वसन्त साठे
भूतपूर्व केन्द्रीय मंत्री
श्री पी० शिव शंकर
भूतपूर्व केन्द्रीय मंत्री और संसद सदस्य
डा० जी० विजय मोहन रेड्डी
संसद सदस्य
डा० नगेन सैकिया
संसद सदस्य
श्री जी० स्वामीनाथन
संसद सदस्य
श्री सोमनाथ चटर्जी
भूतपूर्व संसद सदस्य
प्रोफेसर एन० जी० रंगा
भूतपूर्व संसद सदस्य
श्री इब्राहिम सुलेमान सेट
भूतपूर्व संसद सदस्य
डा० राम सजीवन
भूतपूर्व संसद सदस्य
श्री यादवेन्द्र दत्त
भूतपूर्व संसद सदस्य

विषय सूची

प्राक्कथन
(एक)

आमुख
(पांच)

लेखक परिचय
(सात)

भाग एक
जीवन वृत्त

1
डा० राममनोहर लोहिया
जीवन झांकी
(3)

भाग दो
लेख

2
लोहिया की एक नये आयाम की तलाश
प्रो० मधु दण्डवते
(14)

3
डा० राममनोहर लोहिया: रुढ़ि भंजक
जार्ज फर्नांडीज
(19)

4
लोहिया आज के संदर्भ में
पी० उपेन्द्र
(26)

5

सूक्ष्म विवेचकः डा॰ राममनोहर लोहिया

लालू प्रसाद

(29)

6

क्रान्तिकारी दूरदर्शीः डा॰ राममनोहर लोहिया

मुलायम सिंह यादव

(33)

7

डा॰ लोहिया—एक अमर व्यक्तित्व

मधुकर दिघे

(37)

8

डा॰ राममनोहर लोहिया—एक महान समाजवादी

सुरेन्द्र नाथ द्विवेदी

(43)

9

लोहिया दर्शन में करुणा का महत्व

धनिक लाल मंडल

(46)

10

डा॰ राममनोहर लोहिया की स्मृति में

चिन्तामणि पाणिग्रही

(49)

11

डा॰ राममनोहर लोहिया और समाजवाद

बी॰ सत्यनारायण रेड्डी

(52)

12
सही समाज सुधारक—डा० लोहिया
यज्ञदत्त शर्मा
(60)

13
उसूलों से समझौता नहीं करने वाला व्यक्ति
उपेन्द्र नाथ वर्मा
(63)

14
डा० राममनोहर लोहिया
मुरलीधर सी० भंडारे
(69)

15
उग्र समाजवादी
प्रो० समर गुहा
(74)

16
राममनोहर लोहिया: एक बहुमुखी प्रतिभा
मधु लिमये
(81)

17
लोहिया, नेहरू के अनुयायी के रूप में
मधु लिमये
(94)

18
डा० राममनोहर लोहिया—एक क्रांतिकारी
जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी
(109)

भाग तीन
जीवन दर्शन

(लोक सभा में डा॰ राममनोहर लोहिया द्वारा दिये गये कुछ चुनींदा भाषणों से उद्‌धृत अंश)

19

मंत्रिपरिषद में अविश्वास प्रस्ताव (1963)

(123)

20

मंत्रिपरिषद् में अविश्वास का प्रस्ताव (1965)

(141)

21

अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों का उत्थान

(152)

22

राष्ट्रीय आय का विवरण

(155)

23

व्यक्तिगत मासिक व्यय की सीमा निर्धारित करने हेतु समिति की नियुक्ति करने के बारे में प्रस्ताव

(162)

24

भ्रष्टाचार

(173)

25

छात्र आन्दोलन

(182)

26

रिक्शा चालन

(187)

27

भारतीय इतिहास की आलोचना

(192)

28

बजट—सामान्य बहस

(198)

29

अनुपूरक अनुदान मांगें (रेलवे)

(212)

30

सूचना व प्रसारण मंत्रालय के लिए अनुदान मांगें

(215)

31

रक्षा मंत्रालय के लिये अनुदान मांगें

(220)

32

विधि मंत्रालय के लिये अनुदान मांगें

(229)

33

विदेश मंत्रालय के लिये अनुदान मांगें

(235)

34

अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति संबंधी प्रस्ताव

(243)

35

पाकिस्तानी सेनाओं द्वारा कच्छ सीमा पर आक्रमण संबंधी प्रस्ताव

(255)

36

सुरक्षा परिषद के भारत व पाकिस्तान में युद्ध विराम संबंधी संकल्प एवं भारत द्वारा राष्ट्र मंडल त्याग संबंधित संकल्प पर चर्चा

(262)

37

चीन व पाकिस्तान द्वारा भारतीय भूमि पर अवैध कब्जा तथा शिक्षा मंत्री के भारत के क्षेत्रफल संबंधी वक्तव्य पर चर्चा

(271)

38

अनुच्छेद 124 और 217 में संशोधन संबंधी संविधान (संशोधन) विधेयक

(278)

39

संविधान संशोधन विधेयक (अनुच्छेद 370 का लोप)

(281)

40

अनुच्छेद 352 में संशोधन किये जाने संबंधी संविधान (संशोधन) विधेयक

(285)

41

अनुच्छेद 368 में संशोधन किये जाने संबंधी संविधान (संशोधन) विधेयक

(290)

42

कंपनी (संशोधन) विधेयक

(297)

43

निवारक नजरबंदी (जारी रखना) विधेयक

(305)

44
प्रेस परिषद विधेयक
(311)

45
पेटेन्ट्स विधेयक
(317)

46
केरल में राष्ट्रपति शासन की उद्घोषणा संबंधी संकल्प
(323)

47
देश में खाद्य स्थिति संबंधी प्रस्ताव
(334)

48
सरकारी उपक्रम समिति संबंधी प्रस्ताव
(344)

49
पंजाब राज्य का पुनर्गठन
(351)

50
तृतीय पंचवर्षीय योजना के मध्यावधि मूल्यांकन संबंधी प्रतिवेदन
(355)

51
लोहिया ने कहा -----
(365)

भाग चार
श्रद्धांजलियां
52
डा० लोहिया के देहान्त पर लोक सभा व राज्य सभा में किये गये निधन संबंधी उल्लेख
(379)

लोक सभा
नीलम संजीव रेड्डी
(379)

इन्दिरा गांधी
(380)

प्रो० एन० जी० रंगा
(381)

अटल बिहारी वाजपेयी
(382)

के० मनोहरन
(383)

योगेन्द्र शर्मा
(384)

मधु लिमये
(385)

ए० के० गोपालन
(389)

सुरेन्द्र नाथ द्विवेदी
(389)

फ्रैंक एन्थनी
(390)

एन० सी० चटर्जी
(391)

प्रकाशवीर शास्त्री
(392)

राम सेवक यादव
(393)

राज्य सभा

वी० वी० गिरि
(395)

जयसुखलाल हाथी
(395)

दह्याभाई बी० पटेल
(396)

के० दामोदरन
(397)

मुलका गोविन्द रेड्डी
(397)

सुन्दर सिंह भण्डारी
(397)

गौरे मुराहरि
(398)

ए० पी० चटर्जी
(400)

गंगा शरण सिंह
(401)

बी० डी० खोबरागड़े
(404)

ए० डी० मनी
(405)

चित्त बसु
(405)
नरेन्द्र सिंह बराड़
(406)
राजनारायण
(407)

डा० राममनोहर लोहिया के जन्म दिवस 23 मार्च, 1990 को भारतीय संसदीय दल के तत्वावधान में आयोजित समारोह में दिये गये भाषण

53
लोहिया—मेरे पथप्रदर्शक और गुरु
रवि राय
(419)

54
लोहिया—एक संत
हुक्मदेव नारायण यादव
(422)

55
लोहिया जी को श्रद्धांजलि
डा०(श्रीमती) नजमा हेपतुल्ला
(424)

56
कथनी करनी में भेद न करने वाले लोहिया
जार्ज फर्नांडीज
(426)

57
मैंने डा० लोहिया से सीखा है
राम विलास पासवान
(431)

58
प्रेरणा स्रोत—लोहिया
वसंत साठे
(434)

59
लोहिया एक सामाजिक और आर्थिक सुधारक
पी० शिवशंकर
(436)

60
लोहियाः एक गतिशील व्यक्तित्व
डा० जी० विजयमोहन रेड्डी
(438)

61
लोहियाः एक मौलिक चिंतक
(439)

62
लोहियाः भेदभाव के कट्टर विरोधी
जी० स्वामीनाथन
(442)

63
लोहिया—एक सच्चे देश भक्त
सोमनाथ चटर्जी
(444)

64
लोहियाः क्रान्तिकारियों में सिरमौर
प्रो० एन० जी० रंगा
(446)

65
लोहिया हिन्दुस्तान के महान सपूत
इब्राहिम सुलेमान सेट
(449)

66
लोहियाः एक महान समाजवादी चिंतक
डा० राम सजीवन
(450)

67
लोहियाः एक महापुरुष
यादवेन्द्र दत्त
(451)

अनुक्रमणिका

(453)

भाग एक

जीवन वृत्त

1

डा० राममनोहर लोहियाः जीवन-झांकी

सुविख्यात समाजवादी डा० राममनोहर लोहिया का जन्म 23 मार्च, 1910 को उत्तर प्रदेश के फैजाबाद जिले में अकबरपुर में हुआ था। उनके पिता हीरा लाल लोहिया एक व्यापारी थे। मूलतः उनके पूर्वज उत्तर प्रदेश में मिर्जापुर के निवासी थे। "लोहिया" उपनाम उनके परिवार द्वारा पीढ़ियों से लोहे का व्यापार करने के कारण पड़ा। राममनोहर जब ढाई वर्ष के ही थे, तभी उनकी माताजी का देहान्त हो गया था। अतः उनका लालन-पालन उनकी दादी तथा चाची द्वारा किया गया।

बचपन में लोहिया को अपने परिवार में ऐसा वातावरण मिला, जो जातीय तथा साम्प्रदायिक भावनाओं से अछूता था। उनको देशभक्ति की प्रबल भावना उनके पिता, हीरालाल, की देन थी, जो एक सक्रिय कांग्रेसी थे तथा गांधी जी के पक्के अनुयायी थे। बचपन से ही लोहिया को जरूरतमंदों के प्रति पूरी सहानुभूति थी और इसीलिए वह हमेशा गरीबों तथा दलितों की सहायता करने के लिए तत्पर रहते थे।

शिक्षा

उनकी प्रारंभिक शिक्षा अकबरपुर में टंडन पाठशाला और विश्वेश्वर नाथ हाई स्कूल में हुई। वह अपनी कक्षा में बराबर प्रथम आते रहे और अपने शिक्षकों के प्रिय छात्र बने रहे। पिता के अकबरपुर से बम्बई चले जाने पर उन्होंने अपनी शिक्षा बम्बई के मारवाड़ी स्कूल में जारी रखी और 1925 में मैट्रिक की परीक्षा प्रथम श्रेणी में पास की। उनकी इन्टरमीडिएट शिक्षा बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में हुई। वर्ष 1926 में जब वह केवल 16 वर्ष के ही थे, उन्होंने अपने पिता के साथ गौहाटी में हुए भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अधिवेशन में भाग लिया था। वर्ष 1927 में उन्होंने इन्टर की परीक्षा पास की और वह आगे पढ़ाई के लिए कलकत्ता चले गये। यहां उनके जीवन में घटी एक घटना उल्लेखनीय है। उस समय कलकत्ता में दो सरकारी कालेज थे जिनका काफी नाम था। इनके अलावा वहां विद्यासागर कालेज नामक एक गैर-सरकारी कालेज भी था। उस कालेज के शिक्षक राष्ट्रीय विचारधारा के थे। जब कालेज में दाखिले का प्रश्न उनके समक्ष आया तो लोहियाजी ने एक सच्चे राष्ट्रवादी होने के नाते, उच्च शिक्षा के लिए उक्त दोनों

सरकारी कालेजों में से किसी में दाखिला न लेकर विद्यासागर कालेज में दाखिला लेना पसन्द किया। वर्ष 1929 में उन्होंने बी०ए० की परीक्षा पास की बाद में, वे उच्च शिक्षा के लिए जर्मनी गये। उन्होनें बर्लिन विश्वविद्यालय के पीएचडी की डिग्री प्राप्त की तथा उनके शोध प्रबंध का विषय दि टैक्सेशन आफ साल्ट इन इंडिया था। बर्लिन में ही उन्होंने मार्क्स तथा हीगेल की कृतियों का अध्ययन किया। समाजवाद के प्रति निश्चित झुकाव के साथ उन्होंने 1933 में बर्लिन छोड़ा। लोहियाजी गांधीजी के आदर्शों, मूल्यों तथा तरीकों से भी बहुत प्रभावित थे।

डा० लोहिया की बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में अध्ययन की अवधि उनके जीवन का सबसे महत्वपूर्ण दौर था। लोहिया अपने युवाकाल से ही एक अच्छे वक्ता थे। विश्वविद्यालय में एक मेधावी छात्र के रूप में उन्होंने भाषण देने की अपनी एक अलग शैली विकसित की, जो बहुत ही तर्कसंगत होती थी और श्रोताओं को बरबस अपनी ओर आकर्षित कर लेती थी। उन दिनों यह विश्वविद्यालय, जो उस समय "काशी विश्वविद्यालय" के नाम से जाना जाता था, ऐसे मेधावी युवकों को तैयार करने के लिए सुविख्यात था जो देश का नाम उज्ज्वल कर सकते थे और उसके लिए अपना सर्वस्व न्यौछावर कर सकते थे। लोहिया उनमें से एक थे।

एक स्वतंत्रता सेनानी के रूप में

डा० लोहिया जब बहुत छोटे थे, तभी स्वतंत्रता आन्दोलन में कूद पड़े। घर में मिले माहौल के कारण राजनीति में उनकी रुचि और बढ़ गई। 1934 में कांग्रेस पार्टी में एक ऐतिहासिक घटना घटी, जब भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अन्दर ही कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी का गठन हुआ। इसकी स्थापना में डा० लोहिया ने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी, जिन्हें इस पार्टी का एक आधार-स्तम्भ माना गया। इस पार्टी ने समाजवाद को अपना लक्ष्य घोषित करते हुए कहा कि केवल मार्क्सवाद ही साम्राज्यवाद विरोधी शक्तियों का मार्गदर्शन कर सकता है और उन्हें अपनी मंजिल तक पहुंचा सकता है। पार्टी ने इस बात पर भी बल दिया कि कांग्रेस के संगठनात्मक ढांचे का लोकतंत्रीकरण किया जाये।

1936 में युवा लोहिया को कांग्रेस पार्टी के विदेश विभाग का सचिव बनाया गया तथा इस पद पर उन्होंने उल्लेखनीय योग्यता के साथ अगस्त, 1938 तक कार्य किया। कांग्रेस पार्टी के विदेशी मामलों के सचिव के रूप में लोहिया ने भारत की विदेश नीति का आधार तैयार करने में मुख्य भूमिका निभायी। उन्होंने उस समय विश्व के दूसरे भागों

में चल रहे स्वतंत्रता आन्दोलनों के साथ निकट सम्पर्क बनाये रखा तथा एशिया, अफ्रीका और लेटिन अमेरिका में प्रगतिशील संगठनों के साथ घनिष्ठ सम्पर्क स्थापित किये। सचिव के रूप में उन्होंने "दि फारेन पालिसीज़ आफ दि इंडियन नेशनल कांग्रेस एण्ड दि ब्रिटिश लेबर पार्टी" (भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस और ब्रिटिश लेबर पार्टी की विदेश नितियाँ) नामक एक पुस्तिका लिखी, जिसे पंडित नेहरू ने 'उत्कृष्ट कृति' बताया।

लोहिया विदेशों में रहने वाले भारतीयों की समस्याओं से अवगत थे तथा उन्होंने भारत की जनता को उनकी दयनीय दशा के बारे में बताया। उन्होंने विश्व का ध्यान भारत में तथा अन्य देशों में किये जा रहे नागरिक स्वतंत्रताओं के दमन की ओर भी दिलाया। 24 मई, 1939 को उन्हें पहली बार, सरकार विरोधी भाषण देने के कारण, गिरफ्तार किया गया और जेल भेज दिया गया लेकिन अगले ही दिन जमानत पर रिहा कर दिया गया। उनका विचार था कि देश को आजादी अपने आप नहीं मिल जायेगी। उन्होंने लेख लिखकर तथा पैम्फलेट निकाल कर लोगों में जागरूकता पैदा की।

वे इस मत के समर्थक थे कि भारत को द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान अंग्रेजों को कोई सहयोग नहीं देना चाहिए तथा उन्होंने पूर्ण असहयोग की वकालत की। उन्होंने कहा कि तत्कालीन सरकार को जन-धन का सहयोग नहीं दिया जाना चाहिए। जब अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ने 1939 में युद्ध में ब्रिटेन की सहायता करने का संकल्प पारित किया तो लोहियाजी ने उसका विरोध किया तथा "डाउन विद आर्मामैंट्स" शीर्षक से एक लेख लिखा। 1940 में उन्हें युद्ध विरोधी भाषण देने के कारण गिरफ्तार किया गया। महात्मा गांधी ने इसे पसन्द नहीं किया और इस पर कटु प्रतिक्रिया व्यक्त की। इसकी भर्त्सना करते हुए गांधीजी ने कहा कि राममनोहर लोहिया तथा जयप्रकाश नारायण जैसे देशभक्तों को जेल में बंद करना सहन नहीं किया जायेगा और वे सार्वजनिक स्वातंत्र्य में इस बढ़ते हुए हस्तक्षेप के मूक दर्शक नहीं बने रहेंगे। 1940 में गांधीजी द्वारा आरम्भ किये गये व्यक्तिगत सविनय अवज्ञा आन्दोलन का उद्देश्य जनता के लोकतांत्रिक स्वातंत्र्य के अधिकार पर जोर देना था।

डा० लोहिया ने 1942 में "भारत छोडो आन्दोलन" में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। उन्होंने भूमिगत रहकर इस आंदोलन का संचालन किया तथा लगभग दो वर्ष तक पकड़े नहीं जा सके। उन्होंने भूमिगत रेडियो स्टेशन भी स्थापित किया। उन्होंने अपने समय का सदुपयोग लघु पुस्तिकायें, और "हाउ टू एस्टेब्लिश एन इन्डिपेंडेंट गवर्नमैंट?", "आई एम फ्री", "प्रिपेयर फार दि रिवोल्यूशन", और "ब्रेव फाइटर्स मार्च फारवर्ड" जैसे प्रेरणादायक लेख लिखकर किया। भूमिगत रहते हुए उन्होंने एक अन्य विद्वतापूर्ण लेख "इकानामिक्स आफ्टर मार्क्स" भी लिखा। लेकिन 20 मई, 1944 को उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया

और 11 अप्रैल, 1946 तक उन्हें जेल में रखा गया। बाद में उन्होंने गोवा और नेपाल के लोगों की स्वतंत्रता के लिये भी कार्य किया। डा० लोहिया को भारत, गोवा और नेपाल के स्वतंत्रता आन्दोलनों में तथा स्वतंत्र भारत और अमेरिका में अवज्ञा आन्दोलन में भाग लेने के कारण 25 बार गिरफ्तार किया गया।

समाजवादी के रूप में

1947 में कानपुर में हुए एक सम्मेलन में कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के नाम से कांग्रेस शब्द हटाकर दल का नाम सोशलिस्ट पार्टी रख दिया गया यद्यपि वह कांग्रेस का ही अंग बनी रही। 1948 में, डा० लोहिया द्वारा स्थापित सोशलिस्ट पार्टी ने स्वयं को कांग्रेस से अलग कर लिया। 1952 में प्रजा सोशलिस्ट पार्टी का गठन हुआ और 1953 में डा० लोहिया इसके महासचिव चुने गये। प्रजा सोशलिस्ट पार्टी में विभाजन के पश्चात, दिसम्बर, 1955 में समाजवादियों ने हैदराबाद में एक बैठक की तथा डा० लोहिया के सभापतित्व में 1956 में एक नई सोशलिस्ट पार्टी आफ इंडिया का गठन किया गया।

डा० लोहिया एक महान समाजवादी थे तथा वह जनतांत्रिक समाजवाद की विचारधारा में विश्वास करते थे और सदैव जनता के निर्वाचित प्रतिनिधियों को संसदीय साधनों द्वारा सत्ता दिये जाने के पक्षधर थे, लेकिन वह सभी प्रकार के सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक अन्याय के विरुद्ध अहिंसक सीधी कार्यवाही के समर्थक थे। उनका सृजनात्मक मस्तिष्क नये विचारों की खान था तथा वह सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक तथा वैचारिक समस्याओं के प्रति अव्यवहारिक रवैये के एकदम विरुद्ध थे। वह सभी प्रकार के अन्याय के विरुद्ध लड़ने वाले अनथक यौद्धा थे तथा उन्होंने समाज के दलित वर्गों को सामाजिक समानता तथा तरजीही अवसर प्रदान करने की पुरजोर वकालत की ताकि वे सदियों से चले आ रहे कष्टों से छुटकारा पा सकें।

डा० लोहिया बुराई का विरोध करने पर बहुत बल देते थे और वह रचनात्मक कार्य के महत्व को भी समझते थे। उनका विचार था कि राजनीति को सत्ता से अलग नहीं किया जा सकता। वह इस विचार के समर्थक थे कि राज सत्ता का नियंत्रण तथा मार्गदर्शन जन शक्ति द्वारा किया जाना चाहिए। देश में सामाजिक क्रांति लाने के लिए उन्होंने जेल, कुदाल तथा वोट के सम्मिलित सूत्र का प्रतिपादन किया। उन्होंने देश के पुनर्निर्माण हेतु युवाओं द्वारा बिना पारिश्रमिक लिये एक घंटे का स्वैच्छिक श्रमदान किये जाने का आह्वान किया।

भारतीय शासन व्यवस्था में उनका मुख्य योगदान गांधीवादी विचारों को समाजवादी विचारधारा में समाविष्ट करना था। विकेन्द्रीकृत अर्थव्यवस्था में दृढ़ विश्वास रखने वाले लोहिया ने कुटीर उद्योगों की स्थापना तथा छोटी मशीनें लगाने की आवश्यकता पर बल

दिया जिनमें कम से कम पूंजी निवेश हो तथा अधिक से अधिक जनशक्ति का उपयोग हो सके।

लोहिया इस तथ्य से भलीभांति परिचित थे कि देश के लोग गांवों में रहते हैं। इसलिए वह गरीब किसानों, भूमिहीनों तथा खेतिहर मजदूरों की आकांक्षाओं के प्रतीक बन गये। वर्ष 1947 से ही उन्होंने 'किसान मार्च' का आयोजन तथा उनके लिए संघर्ष करना आरम्भ कर दिया था। वह उन महान नेताओं में से थे, जिन्होंने न केवल हमारे सामाजिक संबंधों की आमूल पुनर्व्यवस्था करने की आवश्यकता की वकालत की बल्कि क्रांतिकारी परिवर्तन के लिए वैचारिक आधार भी प्रदान किया। वह सदैव साम्राज्यवाद तथा उपनिवेशवाद के विरुद्ध क्रांति के हामी रहे। अमरीकी अश्वेतों द्वारा चलाये गये समान अधिकार आन्दोलन के प्रति उनकी गहरी सहानुभूति थी। उन्होनें उसमें प्रतीकात्मक रूप में भाग लिया। अमरीका में उन्हें एक जलपान गृह में प्रवेश नहीं करने दिया गया और जब उन्होंने उसमें प्रवेश पर जोर दिया तो उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। यह एक अलग बात है कि उन्हें लगभग तुरन्त रिहा कर दिया गया और अमरीकी सरकार ने उनसे अनुग्रहपूर्ण क्षमायाचना की।

सामाजिक समता के अथक हिमायती के रूप में उन्होंने जन्म के आधार पर जाति प्रथा तथा परम्परागत व्यवस्था की निन्दा की तथा उनकी मान्यता थी कि यह राष्ट्र के पतन तथा इस पर बार-बार बाहरी आक्रमण व विदेशी शासन का शिकार होने का अकेला सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारण था। उन्होंने 'डेस्ट्राय कास्ट' (जाति प्रथा नाश) आन्दोलन भी चलाया था। उन्होंने कहा था कि परम्परागत विषम समाज में सभी को बराबर अवसर प्रदान करने मात्र से समता स्थापित नहीं की जा सकती। उन्होंने यह भी कहा कि पिछड़े वर्गों महिलाओं, हरिजनों, आदिवासियों तथा पिछड़ें अल्पसंख्यकों को उन्नत वर्गों के स्तर तक लाने के लिए **विशेष** अवसर देने होंगे।

डा० लोहिया का दृष्टिकोण विश्वव्यापी था। वह राष्ट्रीयता या नस्ल के बंधन से मुक्त मन की नागरिकता तथा वैचारिक नागरिकता के सिद्धान्त में विश्वास करते थे। डा० लोहिया ने देश-विदेश का काफी भ्रमण किया था और उनका स्वप्न था कि एक ऐसी अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था हो जिसमें व्यक्ति विश्व में कहीं भी बिना पासपोर्ट या वीसा के यात्रा कर सके। वह ऐसी विश्व संसद तथा विश्व सरकार के पक्ष में थे जिसमें प्रभुसत्ता सम्पन्न राष्ट्र अपनी प्रभुसत्ता का एक भाग स्वेच्छा से हस्तांतरित करे। वह 1949 में विश्व सरकार के लिए हुए सम्मेलन में भारत के प्रतिनिधि भी निर्वाचित हुए।

क्रांति के बारे में लोहिया के अपने विचार थे। निम्नलिखित स्थितियों में उन्होंने क्रांति को उचित ठहराया: (1) नर और नारी में पूर्ण समानता स्थापित करने के लिए क्रांति;

(2) चमड़ी के रंग पर आधारित आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक असमानताओं के विरुद्ध क्रांति; (3) जन्म के आधार पर जाति प्रथा के विरुद्ध और पिछड़ों को विशेष अवसर देने के लिए क्रांति; (4) विदेशी दासता से मुक्ति, स्वतंत्रता और जनतांत्रिक सरकार की स्थापना के लिए क्रांति; (5) पूंजी संचय में व्याप्त असमानता को दूर करने, आर्थिक समानता लाने एवं नियोजित ढंग से उत्पादन में वृद्धि के लिए क्रांति; (6) निजी जीवन में अनावश्यक हस्तक्षेप को रोकने और लोकतांत्रिक शासन प्रणाली स्थापित करने के लिये क्रांति; और (7) परम्परागत तथा परमाणु अस्त्र-शस्त्रों के विरुद्ध तथा सत्याग्रह को अचूक हथियार के रूप में स्वीकृति दिलवाने के लिए क्रांति।

जननायक के रूप में

लोहियाजी की महानता उनकी सादगी और उनके दिल में अपने देशवासियों के लिए व्याप्त असीम प्यार से झलकती थी। वह उनके सुख-दुख में बराबर के साझीदार थे। उनमें श्रद्धा, प्रेम, विनम्रता, क्रोध और सहनशीलता जैसी मानवीय भावनाओं का आदर्श संगम था। वह एक जुझारू क्रांतिकारी और गतिशील राजनैतिक तथा आर्थिक विचारों के प्रतिपादक थे। वह जननायक थे और सदैव उन्हीं की भाषा में बोलते थे। उनके तूफानी भाषणों की गूंज से न केवल लोक सभा गूंजायमान होती थी, जहां वह तत्कालीन सरकार की नीतियों की धज्जियां उड़ाते थे, बल्कि तीस वर्षों से भी अधिक समय तक राष्ट्रीय जीवन के व्यापक क्षेत्र को भी प्रभावित करते रहे।

सच्चे राष्ट्रवादी होने के नाते वह देश के नवयुवकों तथा नवयुवतियों द्वारा पाश्चात्य जीवन-शैली की नकल करने के विरुद्ध थे। वह भारतीय सभ्यता के पक्के समर्थक थे। वह चाहते थे कि अन्य भारतीय भाषाओं के साथ-साथ हिन्दी राष्ट्रीय भाषा के रूप में फले-फूले और अंग्रेजी यहां से चली जाए। अंग्रेजी के प्रति मोह को उन्होंने 'पापमय जीवन' की संज्ञा दी थी।

गांधीजी की तरह लोहिया ने दमनकारी तथा क्रूर कानूनों के प्रति अपनी अवज्ञा की भावना का परिचय दिया था। उनके लिए इस प्रकार के कानूनों की विद्यमानता ही असहनीय था। डा० लोहिया निजी रूप से भारत के विभाजन के विरुद्ध थे। वह हिन्दू-मुस्लिम एकता के कट्टर समर्थक थे और भारत के स्वतंत्र होने पर तथा देश का विभाजन होने के बाद उन्होंने देश के विभिन्न भागों में एकता और साम्प्रदायिक सद्भाव बनाए रखने के लिए निडरता से अनथक प्रयास किया।

लेखक के रूप में

लोहिया लेखनी के धनी थे। उनके विचार मौलिक थे और वह सदैव जनमानस में जागरूकता पैदा करते थे। स्वतंत्रता आन्दोलन के दौरान उन्होंने लोगों को अपने लेखों के माध्यम से स्वतंत्रता का मार्ग दिखाया और उनके विचार जनमानस पर एक अमिट छाप छोड़ गए। उनकी कृतियों में से कुछ ये हैं। इंडिया आन चाइना; स्ट्रगल फॉर सिविल लिबर्टीज; इंडियन्स आउटसाइड इंडिया; कांग्रेस एंड वार; रिबेल्स मस्ट एडवान्स; मिस्ट्री आफ सर स्टेफोर्ड क्रिप्स; थर्ड कैम्प इन वर्ल्ड अफेयर्स; हिमालयन पालिसी फॉर इंडिया; आस्पेक्टस आफ सोशलिस्ट पालिसी; फ्रैगमेंट्स आफ ए वर्ल्ड माइंड, ह्वील आफ हिस्ट्री; विल टु पावर एंड अदर राइटिंग्स; गिल्टी मेन आफ इंडियाज पार्टीशन; मार्क्स, गांधी एंड सोशलिज्म; इंडिया, चाइना एंड नार्दर्न फ्रंटियर्स; दि कास्ट सिस्टम; लैंग्वेज; नोट्स एंड कामेंट्स; इंटरवल ड्यूरिंग पालिटिक्स; फारेन पालिसी; वाल्मीकि और वशिष्ट; क्रांति के लिए संगठन; हिन्दू और मुसलमान; निराशा के कर्त्तव्य; क्रांतिकरण; सरकारी मति और कुजात गांधीवादी; राम, कृष्ण और शिव; समाजवादी आन्दोलन का इतिहास; धर्म पर एक दृष्टि; सप्त क्रांतियां। वे 'मैनकाइंड' और 'जन' के सम्पादक-मंडल के चेयरमैन भी थे।

नए सिद्धान्तों के प्रतिपादक

मौलिक चिन्तक के रूप में उन्होंने निम्नलिखित सिद्धान्त प्रतिपादित किए: पूंजीवाद तथा साम्राज्यवाद की द्वैत उत्पति; छोटी मशीनों वाली ईकाइयां; समान अप्रासंगिकता; तीसरा कैंप; तातकालिता; वर्ग तथा जाति के बीच भटकाव; कार्यकुशलता, सम्पूर्ण या अधिकतम; मानवता का भौतिक तथा सांस्कृतिक सन्निकरण; निरन्तर सिविल नाफरमानी; सन्निकरण के साथ सह-अस्तित्व; सामान्य तथा आर्थिक उद्देश्यों और आत्मा एवं पदार्थ के स्वायत्त सम्बन्ध; आन्तरिक विद्रोह और बाहरी आक्रमण के बीच विपर्यास सम्बन्ध; समान अवसर के स्थान पर पिछड़े वर्गों के लिए तरजीही तथा सात क्रांतियां।

सांसद के रूप में

डा० लोहिया 1963 में तीसरी लोक सभा के लिए उत्तर प्रदेश के फर्रुखाबाद संसदीय क्षेत्र से उप चुनाव में निर्वाचित हुए। उन्होंने 13 अगस्त, 1963 को सदस्यता की शपथ ग्रहण की। पहले ही दिन जब लोहियाजी लोक सभा में आए तो ऐसा लगा कि सदन में नवजीवन का संचार हुआ हो। जब उन्होंने सभा-भवन में प्रवेश किया, तो सदन में सभी सदस्यों ने खड़े होकर उनका स्वागत किया। वस्तुतः उनके प्रवेश से सभा का ही सम्मान हुआ। पहली बार लोक सभा सदस्य बनने पर उनका दिल्ली के रामलीला मैदान में नागरिक अभिनन्दन किया गया था। मार्च, 1967 में वह उत्तर प्रदेश के कन्नौज संसदीय

क्षेत्र से चौथी लोक सभा के लिए फिर चुने गये।*

लोहिया एक समर्पित सांसद थे और उन्होंने सदन की कार्यवाही में बहुत रुचि ली। वह संसदीय वाद-विवाद तथा चर्चाओं के लिए पूरी तरह तैयार होकर आते थे। लोक सभा में उनके भाषणों ने भारतीय राजनीति को नया मोड़ दिया और सोच-विचार के लिए ठोस सामग्री प्रदान की। चाहे गुट-निरपेक्ष नीति हो या देश में भ्रष्टाचार का मामला, लोहियाजी तत्कालीन सरकार को हमेशा आड़े हाथों लेते थे। सदन में अपने भाषणों के माध्यम से वह सरकारी नीतियों की त्रुटियों को उजागर करते थे। चाहे प्रधान मंत्री हो या अन्य कोई मंत्री, वे किसी को बख्शते नहीं थे। जब भी वह कोई अनियमितता या अन्याय होता देखते, तो तुरन्त उस मुद्दे को उठाने के लिए तत्पर रहते थे।

'तीन आने बनाम पन्द्रह आने' नामक वाद-विवाद में उनके तर्क देश को जनता को चौंका देने वाले थे। लोहिया ने दृढ़तापूर्वक कहा कि तत्कालीन सरकार का यह कथन कि देश में प्रति व्यक्ति आय पन्द्रह आने है, गुमराह करने वाला तथा मिथ्या है। उन्होंने तथ्य तथा आंकड़े प्रस्तुत करके साबित किया कि उस समय प्रति 16 से 18 करोड़ के बीच लोगों की आय साढ़े तीन आने या चार आने प्रतिदिन थी। उनसे प्रेरणा पाकर 13 मार्च, 1964 को दिल्ली में उनके नेतृत्व में 'जनवाणी दिवस' मनाया गया।

यह वास्तव में बड़े दुखः की बात है कि लोहिया का जीवनकाल बहुत कम रहा। मौलिक विचारक, अद्वितीय नेता, विख्यात सांसद और विद्रोही डा० लोहिया 12 अक्तूबर, 1967 को नई दिल्ली में 57 वर्ष की अल्पायु में चल बसे। उनके निधन की खबर जंगल की आग की तरह पूरे देश में फैल गई और पूरा देश शोक में डूब गया।

संसद के दोनों सदनों में लोहिया को भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित की गई। उनके निधन को देश तथा संसद के लिए एक महान क्षति बताया गया। उन्हें सच्चे अर्थों में एक बहादुर योद्धा, महान विचारक और ओजस्वी व्यक्ति की संज्ञा दी गई।

उनकी मृत्यु को असामयिक बताते हुए तत्कालीन लोक सभा अध्यक्ष डा० एन० संजीव रेड्डी ने कहा था कि उनकी मौत से भारतीय राजनीति तथा सदन से एक उत्कृष्ट नेता उठ गया है। तत्कालीन प्रधान मंत्री स्वर्गीय श्रीमती इन्दिरा गांधी ने लोहिया को एक अग्रणी सांसद बताते हुए कहा कि उनके असामयिक निधन से देश ने एक ओजस्वी और

---

*चौथी लोक सभा के लिए उनका चुनाव उनकी मृत्यु के उपरान्त, इलाहाबाद उच्च न्यायालय के दिनांक 14-5-1969 के निर्णय के द्वारा जो कि मान्य मतों की सामान्य पुनः जांच एवं पुनर्गणना के उसके 31.1.1969 के आदेश पर आधारित था, रद्द घोषित कर दिया गया। क्योंकि 12.10.1967 को लोहिया का देहावसान हो चुका था अतः इस मामले में उनकी ओर से केवल नाममात्र का विरोध किया गया।

प्रतिभाशाली व्यक्ति खो दिया है। उनके शब्दों में लोहिया का सारा जीवन दलितों और शोषित लोगों के हितों के लिए, जो उन्हें प्रिय थे, एक संघर्ष था।

यद्यपि वह राज्य सभा के कभी सदस्य नहीं रहे, फिर भी उस सदन ने भी उन्हें मार्मिक श्रद्धांजलि अर्पित की। राज्य सभा के तत्कालीन सभापति स्वर्गीय श्री वी० वी० गिरि ने उन्हें देश में समाजवादी आन्दोलन का संस्थापक बताया और कहा कि लोक सभा के सदस्य की हैसियत से लोहिया ने 'एक जोशीला वक्ता और उत्कृष्ट संसदविद् होने के नाते चिरस्थायी कीर्ति अर्जित की'। उन्होंने आगे कहा 'यद्यपि डा० लोहिया सरकार की नीतियों की प्रायः पुरजोर आलोचना करते थे परन्तु उनकी नीयत और ईमानदारी पर कभी शंका नहीं हुई, उनके मन में हमेशा लोगों की भलाई ही रहा करती थी'।*

डा० लोहिया अविवाहित थे। उन्होंने अपने पीछे न कोई परिवार और न ही कोई सम्पत्ति छोड़ी। वह केवल अपने महान आदर्श अपने पीछे छोड़ गए जो केवल भारत के लोगों के हित के लिए ही नहीं अपितु सम्पूर्ण मानव जाति के हित के लिए हैं।

सन्दर्भ स्रोत

1. अरुमुगइन, एम०: सोशलिस्ट थौट इन इंडिया, दि कंट्रीब्यूशन ऑफ राममनोहर लोहिया, नई दिल्ली, स्टर्लिंग पब्लिशर्स, 1978.

2. कौशिक, करुणाः रशियन रेवोल्यूशन एण्ड इंडियन नेशनलिज्म, दिल्ली चाणक्य पब्लिकेशन, 1984.

3. परमेश्वरन, पी० (सं०): गांधी, लोहिया एण्ड दीनदयाल, नई दिल्ली, दीनदयाल रिसर्च इंस्टीट्यूट, 1978.

4. सेन, एस० पी० (सं०): डिक्शनरी आफ नेशनल बायोग्राफी, खण्ड 2, कलकत्ता, इंस्टीट्यूट आफ हिस्टोरिकल स्टडीज, 1973.

5. शरद, ओंकारः लोहियाः ए बायोग्राफी, लखनऊ, प्रकाशन केन्द्र, 1972.

6. विष्णु भगवानः इंडियन पोलिटिकल थिंकर्स, दिल्ली, आत्माराम एण्ड सन्ज, 1976.

7. 'हूज़ हूः फोर्थ लोक सभा', 1967.

8. लोक सभा बुलेटिन-पार्ट- II, 16 मई, 1969.

9. दि हिन्दू, 25 मार्च, 1933.

*डा० लोहिया की मृत्यु पर लोक सभा और राज्य सभा में उनको जो श्रद्धांजलियां दी गयीं उनके लिये कृपया इस पुस्तक का भाग चार देखें।

भाग दो

लेख

2

लोहिया की एक नये आयाम की तलाश*

—प्रो० मधु दंडवते

"उन्होंने अपनी शहादत से बेड़ियों और जेलों को गौरवान्वित कर दिया।"

यह भावपूर्ण श्रद्धांजलि नीग्रो नेता, श्रीमती मेरी बेथुन द्वारा महात्मा गांधी को अर्पित की गई थी। डा० राममनोहर लोहिया के संबंध में भी यही श्रद्धांजलि कितनी उपयुक्त रहेगी। डा० लोहिया ने, किसी भी अन्य नेता की तुलना में गांधीजी के अस्त्र "सत्याग्रह" का स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भी दलितों एवं उपेक्षितों के साथ होने वाले प्रत्येक अन्याय के विरुद्ध सर्वाधिक कारगर ढंग से उपयोग किया। यदि रूसी क्रांति के एक नेता लिओन ट्राटस्की ने "स्थायी क्रांति" के सिद्धांत को सामने रखा, तो डा० लोहिया ने अन्याय के विरुद्ध एक शांतिपूर्ण विद्रोह के रूप में "स्थायी सविनय अवज्ञा" के सिद्धांत का पाठ पढ़ाया तथा उसका अनुसरण किया। जरूरत से ज्यादा सावधानी बरतने वाले व्यावहारिकता-वादियों की निगह में दोनों "कल्पनालोक में विचरण करने वाले" अथवा अनुदार आलोचकों के शब्दों में "सनकी" थे। तथापि, क्या "स्वदेशी" "सत्याग्रह" और "असहयोग" के प्रति समर्पित हमारे राष्ट्रपिता को "सनकी" और "झक्की" नहीं कहा गया था? इतिहास में इस प्रकार के अनेक उदाहरण मिलते हैं कि जिन क्रांतिकारियों को उनके समकालीन लोगों ने "सनकी" कहकर उपेक्षित किया, भावी पीढ़ियों ने उन्हें महान ज्योतिपुंज कहकर सम्मानित किया।

संघर्ष और संगठन में अविलंबता

कार्यवाही की गति के प्रश्न पर परंपरागत वाद-विवाद यह रहा है कि पहले कार्यवाही और फिर संगठन निर्माण हो अथवा संगठन कार्यवाही-कार्यक्रम का एक परिणाम हो। पचमढ़ी में मई, 1952 में आयोजित सोशलिस्ट पार्टी के राष्ट्रीय सम्मेलन में अपने अध्यक्षीय भाषण में डा० लोहिया ने इस वाद-विवाद में एक नया आयाम जोड़ा तथा "संघर्ष और संगठन में अविलंबता" के सिद्धांत का प्रतिपादन किया। जो लोग संगठन

*डा० लोहिया की मृत्यु पर लोक सभा और राज्य सभा में उनको जो श्रद्धांजलियां दी गयीं उनके लिये कृपया इस पुस्तक का भाग चार देखें।

की समस्याओं पर मशीनी ढंग से विचार करते हैं तथा अनिश्चित समय तक संगठन के कार्य के सर्वोच्च स्तर पर संघर्ष के परिपक्व होने की प्रतीक्षा करते हैं वे राष्ट्र के संघर्ष की मुख्य धारा में शामिल होने के अवसर को पूरी तरह खो देते हैं। सर्वोत्तम उदाहरण राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का है जो स्वतंत्रता की लड़ाई आरंभ करने के लिए अनुशासनबद्ध संगठन को आदर्श रूप देने हेतु वर्षों तक "उपयुक्त समय" की तलाश का राग अलापता रहा। इस प्रक्रिया में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ राष्ट्र के स्वतंत्रता संघर्ष की धारा से पूरी तरह अलग-अलग पड़ा रहा। दूसरे छोर पर थे वे दुस्साहसी सक्रिय कार्यकर्ता जो यह मानते थे कि उग्रवादी संघर्षों में संगठन की भूमिका एक सहायक की होती है तथा आशा करते थे कि जन संघर्षों को तीव्र करने से उग्रवादी दृष्टिकोण वाला एक आवश्यक संगठन अपने आप उभर कर सामने आयेगा। डा० लोहिया ने इन दोनों अतिवादी दृष्टिकोणों की निरर्थकता का पर्दाफाश किया और अपने "अविलंबता" के सिद्धांत में कहा कि संगठन और कार्यवाही, दोनों को अनिवार्यतः समानान्तर धाराओं के रूप में प्रवाहित होना चाहिए। संगठन की तैयारियों को कार्यवाही कार्यक्रम के संदर्श के साथ जोड़ा जाना चाहिए तथा सर्वाधिक उग्र एवं गतिशील कार्यवाही के बीच भी, संगठन के दावों की बलि नहीं दी जानी चाहिए। पूरे विश्व में क्रांतिकारी आन्दोलनों का सावधानीपूर्वक अध्ययन करने से यह बात साफ हो जाती है कि डा० राममनोहर लोहिया ने बहुत अच्छी तरह से जो संदर्श प्रतिपादित किया वह बिल्कुल सही साबित हुआ है।

उग्रवादी सृजनशीलता

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद के आरंभिक वर्षों के दौरान जब सोशलिस्ट पार्टी में, संगठन और कार्य की दृष्टि से प्रशासनीय क्षमता विद्यमान थी, डा० लोहिया एक अत्यधिक सृजनशील व्यक्ति के रूप में सामने आये। उन्होंने "सृजनशील उग्रवादिता" "उग्रवादी सृजनशीलता" की जोरदार वकालत की। अपनी अनुपम शैली में उन्होंने "फावड़ा, जेल और वोट" को कार्य और सृजन की इस नई परिकल्पना के प्रतिकों के रूप में परिभाषित किया।

यह लोहिया जी की परिकल्पना थी कि यदि अपार जन समूह भारत के राष्ट्रपति को अपना मांग पत्र प्रस्तुत करने हेतु राष्ट्रपति भवन को जाता है तो उसे मार्ग में सेंकड़ों हजारों गांवों को पार करके और कुएं खोदने, बांध बनाने और तलाबों की सफाई करने जैसे व्यापक रचनात्मक कार्य करने चाहिए और व्यापक रचनात्मक कार्य से ग्रामवासी सीधे जुड़े हों।

यह वस्तुतः एक ऐसी अभिनव योजना थी जिसके अंतर्गत जनता को संघर्ष की भावना को निर्माण की भावना से जोड़कर चलने के लिए कहा गया था। क्या वर्तमान समाजवादी आन्दोलन सृजनात्मक उग्रवादिता की इस भावना को पुनः अंगीकार करने का साहस प्रदर्शित करेगा? यही स्वर्गीय डा० लोहिया को सर्वाधिक सार्थक श्रद्धांजलि होगी।

अस्मिता की खोज

1934 में कांग्रेस सोशीलस्ट पार्टी की स्थापना के बाद से ही, भारत में समाजवादी आन्दोलन सैद्धान्तिक अस्मिता की खोज में संलग्न था। आरंभिक चरणों में, पार्टी पर मार्क्सवाद के अस्पट व्यापक सिद्धान्तों का ही मुख्य प्रभाव पड़ा। सामाजिक आर्थिक क्षेत्र में यूरोप तथा अन्यत्र हुए परिवर्तनों ने मार्क्सवाद की कई मूल परिकल्पनाओं को चुनौती दी। इतिहास ने ऐस अनेक प्रश्न चिन्ह लगाए जो मार्क्सवाद द्वारा अनुत्तरित रह गये। दुर्भाग्य से समाजवादी भी मार्क्सवादी सिद्धान्तों के मूलभूत नियमों की परख करने के लिये अपनी विश्लेषणात्मक बुद्धि का उपयोग नहीं कर पाए। द्वितीय विश्व युद्ध तक स्थिति अनिश्चित बनी रही। द्वितीय विश्व युद्ध का काल समाजवादी आंदोलन का सैद्धान्तिक विचारधारा का मंथन-काल था। युद्धोपरांत कुछ वर्षों तक भी यही स्थिति बनी रही। इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि समाजवादी आंदोलन में पुनर्विचार की इस प्रक्रिया को आरंभ करने में राममनोहर लोहिया के अभिनव विचारों का बहुमूल्य योगदान रहा।

मार्क्सवाद की पुनरीक्षा

द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान लिखे गये अपने सुपरिचित लेख "इकनामिक्स आफ्टर मार्क्स" में डा० लोहिया ने मार्क्सवादी विचारधारा के मूलभूत सिद्धान्तों का सूक्ष्म विवेचन किया। उनका दृष्टिकोण पूर्णतः व्यावहारिक था। उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि किसी एक व्यक्ति के विचार ही किसी आन्दोलन की विचारधारा के द्योतक नहीं हो सकते हैं। इससे मार्क्स और गांधी के प्रति उनका रवैया स्पष्ट हो जाता है। महात्मा गांधी का कथन था, मैं चाहता हूं कि सभी संस्कृतियों की बयार मेरे मकान के चारों ओर बहे परन्तु वह मुझे धराशायी न करे। महात्मा गांधी के ये शब्द समाजवादी आन्दोलन की सैद्धान्तिक समस्याओं के प्रति डा० लोहिया के दृष्टिकोण की आधारशिला थे। वे समाजवादी आन्दोलन में मार्क्सवाद के उन तत्वों का समावेश करने के लिये राजी थे जो समय की कसौटी पर खरे उतरे थे। परन्तु उन्होंने मार्क्सवाद की उन परिकल्पनाओं का अंधानुकरण नहीं किया जो नई परिस्थिति के अनुरूप नहीं थे। अतः डा० लोहिया ने मार्क्स की इतिहास की व्याख्या करने वाली वैज्ञानिक पद्धति को तो मोटेतौर पर स्वीकार कर लिया पर साथ ही इस व्याख्या की सीमाओं को भी स्वीकार किया। डा० लोहिया ने इस बात पर जोर दिया है कि इतिहास के विकास में आर्थिक कारकों का योगदान तो होता है किन्तु इसमें

मानव इच्छा शक्ति का भी अपना महत्व है। वह बड़े विलक्षण तरीके से स्वयं कहा करते थे कि घटनाओं के तर्क और इच्छाशक्ति के तर्क मानव इतिहास के मार्ग को विनियमित करते हैं।

डा० लोहिया ने मार्क्सवाद के इस दावे का गंभीरता से विरोध किया कि किसी समाज में आर्थिक और औद्योगिक विकास के सबसे उच्च स्तर पर क्रांति आएगी। यह तथ्य कि रूस जैसे आर्थिक रूप से पिछड़े देश में क्रांति आयी और इंग्लैंड और अमरीका जैसे औद्योगिक रूप से विकसित समाज इससे अछूते रह गए, मार्क्स की भविष्यवाणी से अधिक डा० लोहिया के विश्लेषण की पुष्टि करता है।

नई प्रौद्योगिकी

डा० लोहिया ने अपने लेख इकानामिक्स आफ्टर मार्क्स में जो सूत्र छोड़ा था, बाद में वर्ष 1952 में उन्होंने पचमढ़ी में दिए गए अपने अध्यक्षीय भाषण में इसका पुनः उल्लेख किया। उन्होंने साम्यवाद और पूंजीवाद दोनों के अन्तर्गत उत्पादन की तकनीक के बीच सादृश्य दिखाया और दावा किया कि वे अल्प विकसित विश्व के उस दो तिहाई भाग से मेल नहीं खाते जहां सघन जनसंख्या है, पूंजी की कमी है और बड़े पैमाने पर बेरोजगारी है। डा० लोहिया ने एक सुस्पष्ट तथ्य सामने रखा कि साम्यवाद ने अपने पारम्परिक उत्पादन तकनीकों को पूंजीवाद से लिया है; यह केवल उत्पादन शक्तियों के बीच सम्बन्ध को बदलने की मांग करता है। डा० लोहिया ने जोर देकर कहा है कि भारत में विद्यमान परिस्थितियों को देखते हुए परिवर्तन की उक्त प्रक्रिया वहां पूर्णतः अनुपयुक्त है। इसलिए उन्होंने एक लघु एकक प्रौद्योगिकी और तदनुरूप विकेन्द्रीकृत अर्थव्यवस्था का समर्थन किया था जो ग्रामीण आत्मनिर्भरता पर आधारित गांधीवादी अर्थव्यवस्था से भिन्न है। डा० लोहिया ने इस बात पर जोर दिया कि एक नए लघु एकक मशीन के संबंध में अनुसंधान किया जाए जो विद्युत अथवा डीजल से चलने वाली हो और वह भारत के अत्यन्त दूरस्थ गांवों में पहुंचाई जा सके ताकि इससे ग्रामीण लोगों को रोजगार प्रदान करने और उत्पादन में वृद्धि करने के दोहरे लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सके। डा० लोहिया ने दावा किया कि इस प्रकार की लघु एकक प्रौद्योगिकी से पूंजी की कमी के कारण पैदा होने वाली कठिनाइयों को दूर किया जा सकेगा और इस तकनीकी के श्रम-बहुल होने के कारण ग्रामीण क्षेत्र की अप्रकट बेरोजगारी को काफी हद तक दूर किया जा सकेगा।

बेहतर अवसर

पूर्णतः आर्थिक नियतिवाद पर आधारित पारम्परिक समाजवादी विचारधारा से परम्पराबद्ध भारतीय समाज की समस्याओं का समाधान नहीं हो सकता। जिसकी पहचान न केवल प्रबल वर्ग भेद थी बल्कि जाति पर आधारित स्तर विन्यास भी था। इस जातिभेद के परिणामस्वरूप उत्पन्न हुए सामाजिक शोषण ने भारतीय समाज को सदियों तक

त्रस्त रखा और वर्ग संघर्ष का कड़ा सिद्धान्त हमारे समाज द्वारा पैदा किए गए जटिल प्रश्नों का उत्तर उपलब्ध नहीं कर सका। समाजवादी आन्दोलन के प्रति डा० लोहिया का महानतम योगदान उनकी सम्पूर्ण क्रान्ति की संकल्पना है जो आर्थिक और सामाजिक क्षेत्रों को अपने में समेट लेगा। उन्होंने अपने इस दृष्टिकोण का जोरदार ढंग से सामने रखा कि भारतीय समाज वर्ग और जाति के बीच झूल रहा है और जब तक इसे जातियों और समुदायों के चुंगल से मुक्त नहीं किया जाएगा तब तक भारत में क्रांति कार्य कभी पूरा नहीं होगा।

ऊंची जाति के रूढ़िवादी व्यक्तियों के सख्त विरोध के मध्य, डा० लोहिया ने पिछड़ी हुई जातियों और समुदायों के लिए 'बेहतर सुविधाओं' हेतु जोरदार समर्थन किया। चूंकि समाज के ये कमजोर वर्ग सदियों से पिछड़े हुए थे इसलिए समान अवसर उपलब्ध किए जाने मात्र से ही अधःपतन की दुःखद स्थिति से इनका उद्धार सम्भव नहीं होगा। कमजोर वर्गों को बेहतर सुविधाएं दिए जाने की संकल्पना को आज भारत में समाजवादी विचारधारा के अविकल हिस्से के रूप में व्यापक रूप से स्वीकारा गया है।

मार्क्सवादी विचारधारा के वैज्ञानिक स्वरूप को कोरे सिद्धांतवादियों और हठधर्मियों द्वारा नष्ट किया गया जबकि गांधी जी के आदर्शों को गांधीवादियों द्वारा जिन्होंने गांधी जी के जीवन दर्शन को मात्र औपचारिकता बना दिया है, दफना दिया गया है। भारत में समाजवादियों को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि डा० लोहिया के अमूल्य योगदान, जिसने समाजवादी विचारधारा और गतिविधि में एक नया आयाम जोड़ा है, का भी यही परिणाम न होकर रह जाए।

3

डा० राममनोहर लोहिया: रूढ़िभंजक

—जार्ज फर्नांडिस

डा० राममनोहर लोहिया निःसंदेह एक मौलिक विचारक थे और संभवतः वे ऐसे अकेले व्यक्ति थे जिनका भारत में पिछले सौ सालों के दौरान जन्म हुआ। अधिकांश उन विचारकों, जिनके विचारों को कार्यरूप देना तो दूर अन्य लोग उनसे अनभिज्ञ ही रहे, से भिन्न डा० लोहिया का कार्यशील व्यक्तित्व था और उन्होंने अपनी परिपाटियों को तोड़ने के साहस के लिए भारी कीमत चुकाई क्योंकि उन्हें ब्रिटेन, भारत, पुर्तगाल, नेपाल और संयुक्त राज्य अमरीका की सरकारों द्वारा अनेकों बार गिरफ्तार किया गया और जेल भेजा गया। वे एक राजनीतिक द्रष्टा थे जिनकी घटनाओं के बारे में दूरदृष्टि होने के कारण वे हमेशा अपने समय से कम से कम बीस वर्ष आगे की स्थिति में रहते थे। संभवतः उनके अंदर बैठे इसी पैगम्बर ने एक बार उनसे कहलवाया था "लोग मेरी बात सुनेंगे। शायद मेरे मरने के बाद। परन्तु लोग मेरी बात सुनेंगे अवश्य।"

और लोग डा० लोहिया की बात सुन रहे हैं—भारत में भी और विदेशों में भी—उनकी मृत्यु के लगभग बीस वर्ष बाद।

कभी-कभी डा० लोहिया ने उन महान संघर्षों, संग्रामों के सार प्रस्तुत किए जिनमें बीसवीं शताब्दी के मध्य में मानवजाति उलझी हुई थी और डा० लोहिया तथा उनकी सहायता से बनी समाजवादी पार्टी एक हिस्सा थे। सात क्रांतियों जैसाकि वे उन्हें पुकारते थे इस प्रकार थीं: (1) पुरुष और महिला के बीच समानता के लिए; (2) रूप रंग पर आधारित राजनीतिक, आर्थिक और आध्यात्मिक असमानता के विरुद्ध; (3) लम्बे समय से चली आ रही परम्पराओं पर आधारित पिछड़े और उच्च वर्गों अथवा जातियों के बीच असमानता के विरुद्ध तथा पिछड़े लोगों को विशेष अवसर देने के लिए; (4) विदेशी दासता के विरुद्ध और आजादी तथा विश्व लोकतांत्रिक शासन के लिए; (5) आर्थिक समानता और सुनियोजित उत्पादन के लिए तथा पूंजी के विरुद्ध व निजी पूंजी रखने के विरुद्ध; (6) निजी जीवन पर अनुचित रूप से अतिक्रमण के विरुद्ध तथा लोकतांत्रिक तरीकों के लिए; (7) हथियारों के विरुद्ध और सत्याग्रह के लिए।

इन संघर्षों अथवा क्रांतियों के चारों ओर ही लोहिया ने अपने विचारों और कार्यक्रमों का ताना-बाना बुना, लगातार अग्रणी उन आन्दोलनों का नेतृत्व किया जिनसे उन्हें उस

पुरानी व्यवस्था के समर्थकों का, जिन्हें ये संघर्ष बदलना चाहते थे, कोपभाजन बनना पड़ा। भारत के प्रचार माध्यमों ने और उस मामले में सारे विश्व के प्रचार माध्यमों ने भी, जब वे शासन तंत्र के चाबुक की डोरी नहीं रहे, तो सामान्यतया उसकी सेविका के रूप में लोहिया की विकृत छलकपट और प्रतिकूल भावना से निन्दा की और उन्हें उस तरह से नीचा दिखाया जैसाकि देश में अन्य किसी भी गणमान्य व्यक्ति के साथ नहीं किया गया जबकि वे उनके विचारों और कार्यों के वास्तविक अर्थ को न समझकर उनकी छाया से खेलते रहे।

उदाहरण के लिए प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने जब अपने पिता मोतीलाल नेहरू को लोगों में एक राजकुमार बताया तो लोहिया ने तुरन्त इसके उस अमंगलकारी भाव को ताड़ लिया जो शासक और जनता के बीच में दूरी करने के लिए पैदा किया गया था। यह बताते हुए कि मोतीलाल नेहरू के पिता (जवाहरलाल नेहरू के दादा) दिल्ली में अंग्रेज सरकार की सेवा में कोतवाल थे तो लोहिया यहां तक कह गये कि भारत के युवकों को कितनी भारी प्रेरणा और प्रोत्साहन मिल सकता था, यदि उन्हें उस महा नाटक के बारे में जानकारी दी गई होती जोकि एक कोतवाल के पौत्र और एक वकील की सन्तान के किस तरह से प्रधानमंत्री के उच्च पद पर आने की करतूत के बारे में था।

स्वयं प्रधानमंत्री के अनुसार लोहिया द्वारा उनके परिवार पर कीचड़ उछालने के लिए लोहिया की कटु आलोचना की गई जबकि वास्तव में लोहिया चाहते थे कि उन लोगों को आशा बंधाई जाए जो अभी दासता से मुक्त हुए हैं और उन्हें यह महसूस होने दिया जाए कि आजादी के साथ-साथ पुरानी सामन्तवादी व्यवस्था के स्थान पर एक नई समतावादी व्यवस्था आई है। परन्तु लोहिया ने ठीक ही कहा था। नेहरू अपने को तथाकथित राजकुमार का पुत्र बताकर लोकतांत्रिक सिद्धान्त का मूल तत्व ही समाप्त करना चाह रहे थे। राजवंश बन रहा था।

और फिर जब अन्तर्राष्ट्रीय प्रचार माध्यमों पर "नेहरू के बाद, कौन?" पर बहस छिड़ी और लेखकों और पत्रकारों ने एक-दूसरे के साथ प्रधानमंत्री के उम्मीदवारों की तलाश में भारतीय तस्वीर दिखाने की होड़ लगाई तो लोहिया ने यह घोषणा करके इस वाद-विवाद को समाप्त करने का प्रयास किया कि नेहरू ने इस बात की काफी सावधानी बरती है कि उनके बाद प्रधानमंत्री उनकी पुत्री बनेगी। उन्होंने आगे हल्के रूप में कहा कि इससे सुबह के समाचार पत्र के पाठकों को रोज-रोज के थके-मांदे चेहरे के बदले जिससे वे उकता चुके हैं, एक चमकता हुआ मुस्कान भरा चेहरा उनकी ओर घूरता हुआ देखने को मिलेगा और उसके बाद उन्होंने गम्भीरतापूर्वक आशंका और चिन्ता व्यक्त की कि पुरुष-प्रधान समाज में एक महिला प्रधानमंत्री को भद्दे आक्षेपों का सामना करना पड़ेगा। प्रचार माध्यमों ने 1958 में जिस तिरस्कार और उपहास के साथ इस भविष्यवाणी को उजागर किया लोहिया पर उसका कोई असर नहीं पड़ा। अन्ततः उनके आलोचकों को ही पछताना पड़ा था।

राजनीतिक इतिहास के कुछ विद्वानों द्वारा वैदिक साहित्य और ईसा मसीह के उपदेशों में समाजवाद की उत्पत्ति का पता लगाने के सभी प्रयासों के बावजूद समाजवाद एक ऐसी विचारधारा है जिसकी हाल ही में उत्पत्ति हुई है और यह शब्द भी पहली बार 1830 के आसपास अस्तित्व में आया। जब यूरोप में कई विचारकों और लेखकों ने प्रायः ईसाई सिद्धान्त से जुड़ी विचारधारा के विभिन्न निष्कर्षों का प्रतिपादन किया तो उस समय कालमार्क्स ने इन निष्कर्षों को वैज्ञानिक समाजवाद के अपने सिद्धान्त में जोड़ने का कार्य शुरू किया। 1964 में स्थापित "फर्स्ट इन्टरनेशनल" के द्वारा मार्क्स ने अपने विचारों, जो उन्हीं के अनुसार "अव्यावहारिक समाजवादियों" के विचारों से भिन्न थे, का प्रसार किया। किन्तु सभी समाजवादियों ने, चाहे वे वैज्ञानिक अथवा अव्यावहारिक समाजवादी हों, उन कामगारों के अन्तर्राष्ट्रीय भाईचारे में दृढ़ विश्वास व्यक्त किया जिनकी संगठित शक्ति अन्ततः अपने बंधनों की जंजीर को तोड़ देगी। "फर्स्ट इंटरनेशनल" को 1876 में भंग कर दिया गया था और 1889 में " सेकेण्ड इन्टरनेशनल" की स्थापना की गई। उस समय तक समाजवादी यूरोप में एक सर्वाधिक महत्वपूर्ण राजनीतिक ताकत के रूप में उभर रहे थे और इस बारे में पहले से कहीं अधिक सहमत थे कि आने वाला समय विश्व के कामगारों का है।

प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान समाजवादी विश्वबन्धुत्व के सारे सपने (अथवा क्या वे केवल कल्पना मात्र थे), चैकनाचूर हो गये थे, जब कामगारों ने अपने हथियार उन दमनकारियों और शोषकों को समाप्त करने के लिए न उठा कर अपनी मातृभूमि अथवा पितृभूमि के रक्षा के लिए उठा लिए, जिस पर एक दिन पहले तक उन्हीं दमनकारियों का शासन था जिनके विरुद्ध वे लड़ रहे थे। नये विश्व का सपना चकनाचूर तो हो गया था परन्तु यह आशा बंध गई थी कि समाजवादी व्यवस्था संसदीय अथवा अन्य किसी रूप में सत्तारूढ़ होकर श्रमजीवी लोगों का जीवन स्तर बेहतर बना लेगी। रूसी क्रांति और द्वितीय विश्व युद्ध के मध्य का दौर यूरोप जगत में छाये हिटलर और दूसरे फासिस्ट नेताओं द्वारा चलाये गये सैद्धान्तिक उथल-पुथल का दौर था जिसके फलस्वरूप अधिक से अधिक संख्या में कामगार आरंभ में राष्ट्र की परिधि में सिमट गये और फिर उन सेनाओं में शामिल होकर रहे गये जिन्होंने यूरोप का अधिकांश भाग तहस-नहस कर डाला। उस समय लोहिया बर्लिन यूनीवर्सिटी में पढ़ रहे थे और इन क्रांतिकारी परिवर्तनों जिन्होंने समाजवादी और श्रमजीवी वर्ग के अन्तर्राष्ट्रीय वाद को मखौल बना दिया था, के प्रत्यक्षदृष्टा थे और तभी से वे सत्य की खोज में जुट गये फलतः वे न केवल सभी प्रकार की रूढ़ियों चाहे वह मार्क्सवाद हो अथवा कोई और वाद के प्रखर विरोधी हो गये और ऐसे व्यक्ति के रूप में ढल गये जो वैयक्तिक और राजनैतिक स्तरों पर सिद्धांत और व्यवहार में भेद न करने के लिये कटिबद्ध था।

लोहिया का पूंजीवाद और साम्यवाद को अस्वीकार करने के पीछे यह तर्क था कि ये दोनों "आर्थिक उद्देश्यों के समुदाय की" बात तो करते हैं परन्तु दोनों बहुसंख्यक समुदाय की समस्याओं का समाधान करने में असफल थे। वे उन लोगों से सहमत नहीं थे जो यह मानते थे कि साम्यवाद ने आर्थिक लोकतंत्र के लिए अनुकूल परिस्थितियां तैयार की हैं जबकि पूंजीवाद ने राजनैतिक लोकतंत्र को पल्लवित किया है। लोहिया का कहना था कि साम्यवाद को पूंजीवाद से उत्पादन की प्रौद्योगिकी (विरासत में) मिली है, यह उत्पादन संबंधी पूंजीवादी संबंधों पर प्रहार करने के लिए है। और उन्होंने यह भी कहा कि साम्यवाद ने पूंजीवाद प्रौद्योगिकी को कायम रखने और उसका विकास करने का दावा किया है जबकि पूंजीवाद स्वयं ऐसा करने में सक्षम नहीं है।

लोहिया की दृष्टि में समाजवाद "पूंजीवाद अथवा साम्यवाद" की तुलना में एक ऐसा नया सिद्धान्त था जिसे अपनी ऐसी पृथक सैद्धान्तिक और व्यावहारिक व्यवस्था का निरूपण करना था जिससे मानवता को उस संकट से उबारने के लिए एक नया रास्ता तैयार किया जा सके जिसमें उसे पूंजीवाद ने धकेल दिया था। लोहिया यह बात अच्छी तरह समझते थे कि यूरोपीय समाजवाद का "कल्याणकारी राज्य" के रूप में विकास विश्व के लगभग उस दो तिहाई भाग के लिए जिसकी अर्थव्यवस्था को विश्व पूंजीवाद तरह-नहस कर चुका है बिल्कुल अप्रासंगिक है। यदि यूरोप के समाजवादियों ने जहां संवैधानिक तरीकों से दीर्घकाल के पश्चात शनैः शनैः आनुपातिक न्याय हासिल किया था वहां लोहिया चाहते थे कि समाजवाद को आवश्यकता पड़ने पर "सख्त संवैधानिक दायरे से हटने के लिए तत्पर और उत्पादन पर बल देने वाला होना चाहिए"।

इस प्रकार लोहिया ने उत्पादन के क्षेत्र में लघु एकक प्रौद्योगिकी का सिद्धान्त प्रस्तुत किया। यह तर्क देते हुए कि "गैर-यूरोपीय" देशों की अत्यधिक जनसंख्या और विश्व के गैर-वर्ण लोगों की तुलना में उनके दुर्भाग्यपूर्ण नगण्य उत्पादक साधनों को देखते हुए उनके लिये पूंजीवाद द्वारा विकसित उत्पादन ढांचे का अनुकरण करना उपयुक्त नहीं होगा, लोहिया ने विश्व में "गैर-यूरोपीय" लोगों के लिए "कोई नया युक्ति संगत साधन तैयार करने और स्वामित्व का संगत साधन" खोजने का आग्रह किया। वे चाहते थे कि विज्ञान को जितनी लोगों की सेवा करनी चाहिए उतना ही उस पर्यावरण का ध्यान भी रखना चाहिए। महात्मा गांधी के विकेन्द्रीकृत प्रौद्योगिकी की धारणा को पुष्ट करते हुए लोहिया ने मांग की कि मशीनों का आविष्कार और उत्पादन किया जाए ताकि वे कस्बों और गांवों में उपलब्ध हों। उनकी नजर में विज्ञान और आयोजना में सीधा संबंध "स्वामित्व और राजनैतिक नियंत्रण में सीधे संबंध" के अनुरूप होना चाहिए था।

लोहिया का विश्वास था कि "बड़े जमींदारों को छोड़कर भारत का विशाल खेतिहर समुदाय ही समाजवाद का संस्थापक है" और उन्होंने परम्परागत समाजवादियों द्वारा

किसानों के प्रति अपनाए गए रूखे व्यवहार की भर्त्सना की उन्होंने लिखा कि "यूरोपीय समाजवाद और साम्यवाद को कारखानों के मजूदरों के विशाल समुदाय से ही मुख्य रूप से ताकत मिली है और वे किसानों को इसलिए नापसन्द करते हैं कि वे एक ओर तो सम्पति के मालिक हैं और दूसरी ओर अपने खाद्यान्नों की ऊंची कीमत वसूल करते हैं"।

"यदि कारखाना मजदूर को एक-मात्र क्रांतिदूत मानने का पश्चिमी सिद्धान्त अनुचित था तो किसान को नयी व्यवस्था का एकमात्र अग्रदूत घोषित करना भी अनुचित ही था। लोहिया के अनुसार इसमें संदेह नहीं कि विश्व के अन्य भागों की तरह ही भारत के किसान को भी महान भूमिका निभानी है, उससे बढ़ कर किसी की भूमिका नहीं है परन्तु दूसरों की भी समान भूमिका है। क्रांति में समानता की अवधारणा के द्वारा किसानों और कामगारों और दस्तकारों तथा शहरी निर्धनों के मध्य सहयोग होना चाहिये।"

तथापि नयी राजनैतिक और आर्थिक व्यवस्था के लिए संघर्ष शांतिपूर्ण होना चाहिये हालांकि लोहिया ने जनता द्वारा तीव्र संघर्ष की स्थिति में किसी स्तर पर अनायास भड़कने वाली हिंसा से इंकार नहीं किया। गांधी ने जहां सत्याग्रह का सहारा लिया लोहिया ने हर प्रकार के अन्याय के विरुद्ध और नयी व्यवस्था का सूत्रपात करने के लिये वैयक्तिक तथा व्यापक सविनय अवज्ञा आन्दोलन का आह्वान किया।

लोहिया का विश्वास था कि शताब्दियों से दलित भारतीयों की अन्तर्शक्ति जब तक पुनः जाग्रत नहीं की जाती देश में कोई प्रगतिशील आंदोलन नहीं किया जा सकता है। उन्होंने लिखा कि "मैं मानता हूं कि व्यक्तित्व के ह्रास के लिए जाति और महिला इन दोनों का पृथक्करण मुख्य रूप से उत्तरदायी है। जोखिम उठाने और आनंद प्राप्त करने की समस्त क्षमताओं को नष्ट करने की पूरी क्षमता इनके पृथक्करण में है।" उन्होंने बताया कि गरीबी और ये दोनों पृथक्करण एक दूसरे पर अवलम्बित हैं और "गरीबी के विरुद्ध सारी लड़ाई प्रवंचना मात्र है यदि यह इन दो पृथक्करणों से सजग और अनवरत रूप से जुड़ी हुई नहीं है"। वे भारत की सामाजिक स्थिति की सूक्ष्मगवेषणा के द्वारा ही मानवता के सामाजिक रूप से पिछड़े वर्गों को विशेष अवसर प्रदान करने अथवा उन्हें प्राथमिकता देने के सिद्धान्त प्रतिपादित कर सके। 1955 में उनके द्वारा स्थापित समाजवादी दल में सभी कार्यालयों और समितियों में 60 प्रतिशत स्थान पर अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों, पिछड़ी जातियों, महिलाओं और पिछड़ी जातियों में से धार्मिक अल्पसंख्यकों को नियुक्त करने का प्रावधान किया गया। उन्होंने यह नियम संसद और स्थानीय संस्थाओं में निर्वाचन द्वारा भरे जाने वाले सभी स्थानों के लिये लागू किया।

लोहिया को विशेष अवसर देने के दृष्टिकोण के कारण ऊंची जातियों के उन लोगों के विरोध का सामना करना पड़ा जो उस समय भारतीय शासन में बैठे उच्च पदों पर

आसीन थे और आज भी हैं। लोहिया, भारत के विशेष सन्दर्भ में, जहां पांच हजार वर्षों से अस्सी प्रतिशत से अधिक जनता निम्न स्तर का जीवन जीने के लिये मजबूर रही समानता की आदर्श परिकल्पना को सार्थक बनाने की प्रक्रिया में आने वाली अड़चनों से परिचित थे। उन्होंने मार्क्सवादी रूढ़िवादियों जो विशेष अवसर प्रदान करने की उनकी परिकल्पना का विरोध करते थे और उन पर जातिवादी राजनीति में लिप्त होने का आरोप लगाते थे, के तर्कों का उत्तर देते हुए कहा था कि यह वर्ग और कुछ नहीं निर्बल जाति है।

लोहिया का विश्वास था कि भारत में महिलाओं के सामने दो अड़चनें हैं उनमें एक तो है समाज में पुरुषों का वर्चस्व होना और दूसरी है जो अपेक्षाकृत अधिक महत्वपूर्ण है, घृणित जाति प्रथा का होना। इसीलिए, यह बहुत ही आवश्यक है कि यदि महिलाओं को भारत में पुरुषों के समान बराबरी हासिल करनी है तो उन्हें विशेष अवसर दिए जाएं। "देश में सभी राजनीतिक दल चाहे वह कांग्रेस हो, साम्यवादी हो अथवा समाजवादी दल हो इस बात पर राष्ट्रीय स्तर पर किसी खास मकसद से या रीति-रिवाज के कारण सहमत हैं कि शूद्र और महिलाओं को, जो हमारी सम्पूर्ण जनसंख्या का तीन चौथाई से अधिक हैं, अपने अधीन रखा जाये और मताधिकार से वंचित रखा जाये।" उन्होंने यह बात 1953 में लिखी थी।

उन्होंने शहरी महिला पक्षधरों की प्रशंसा की और उनका समर्थन किया। साथ ही यह महसूस किया कि विवाह और सम्पत्ति के अधिकारों जैसे मामलों के अलावा भी महिलाओं की अनेक समस्याएं हैं। लोहिया के अनुसार "अधिकतर भारतीय महिलाओं के सामने पेय जल तथा शौचालयों की कमी की समस्या है। भारतीय महिला को प्रत्येक सुबह और शाम दूरदराज के कुंओं अथवा तालाबों से प्रायः गन्दा और कीचड़ वाला पानी ढोकर अपने घर लाना पड़ता है। उसे शौच खुले खेतों में जाना पड़ता है इसलिए वह शर्म की वजह से सूर्य निकलने से पहले अथवा सूर्य छुपने के बाद शौच जाती है। रसोईघर में जहां स्टोव का बहुत ही भयानक धुंआ होता है, वह एक दास का जीवन जीती है।" महिलाओं के उद्धार के लिए ये मामले लोहिया जी के लिए प्रचार और संघर्ष के विषय बन गए। साथ ही वह अपर्याप्त खाना और बेरोजगारी तथा अन्य अन्यायों के विरुद्ध संघर्ष में महिलाओं को शामिल करना चाहते थे। संघर्षों में महिलाओं को शामिल किए बिना आमूल परिवर्तनों की किसी भी बात से वह प्रभावित नहीं होते थे। उन्होंने एक बार लिखा थाः "एक दिन काफी-हाऊस में बातचीत करने वाले ग्रुप में मैं भी था। किसी ने कहा कि काफी पीते समय हो रही ऐसी बातचीत से फ्रांस की क्रांति ने जन्म लिया था। मैं क्रोध से भड़क उठा और पूछा क्या हमारे बीच कोई भी शूद्र है, क्या हमारे बीच कोई भी महिला है। हम वैसे ही सुस्त, अशक्त और उत्साहहीन हैं जैसे कि पशुओं का झुंड गुजारे के लिए बासी चारा चर रहे हों।

लोहिया का विश्वास था कि यदि वास्तविक लोकतंत्र लाने के लिए आवश्यक शर्त यह है कि उसके लिए लोगों की भाषाओं का प्रयोग किया जाए। अंग्रेजी के आधिपत्य को समाप्त करना होगा और बच्चों को उनकी मातृभाषाओं से पढ़ाना होगा। वह अंग्रेजी पढ़े-लिखे बहुत ही कम लोगों के हाथ में सत्ता के विरुद्ध थे जिन्होंने सेवाओं तथा उद्योग पर कब्जा जमा रखा था, और जो आम लोगों की भाषा को उपयोग में न लाकर भारत की आत्मा को ही नष्ट कर रहे थे। भारत में एक न्यायपूर्ण समाज की स्थापना के लिए घोर संघर्ष को देखते हुए उन्होंने धन की शक्ति, अंग्रेजी भाषा और उच्च जातियों के परस्पर मेल को भारतीय जीवन के लिए अहितकर होने की चेतावनी दी थी।

"सप्त क्रांति" लाने के लिए एक प्रभावी एवं सशक्त माध्यम बना पाने में समाजवादी आन्दोलन की असफलता ने लोहिया को निराश कर दिया। उनके बहुत ही निकट के साथी जयप्रकाश नारायण ने, जो समाजवाद को सत्ता में लाने के कार्य को बहुत ही भारी मानते थे, स्वयं को दल-गत राजनीति से अलग कर लिया था। किन्तु लोहिया ने ऐसा नहीं किया और उन्होंने एक सैनिक की भांति कार्य किया और समाजवादियों को ऐसी पार्टी बनाने के लिए प्रेरित किया जो सात वर्षों में सत्ता हथिया सके। लेकिन साथ ही उन्हें धैर्य रखने और इस संघर्ष को सौ वर्षों तक जारी रखने के लिए कटिबद्ध रहने के लिए भी उपदेश दिया।

1962 के चीनी आक्रमण के बाद लोहिया ने राजनीतिक सत्ता प्राप्त करने के लिए अकेले संघर्ष करने की अपनी रणनीति में परिवर्तन किया। उन्होंने कांग्रेस शासन को उखाड़ फेंकने के लिए सभी विपक्षी दलों को अपने भेदभाव भुलाकर एकजुट होने के लिए राजी किया। गैर-कांग्रेसवाद की नई रणनीति से जनवरी 1967 में हुए संसद तथा राज्य विधानसभाओं के चुनाव में काफी सफलता मिली और लोहिया को देश के सभी राजनीतिक नेताओं में सबसे बड़ा नेता माना जाने लगा। उसी वर्ष अक्तूबर में चिकित्सीय तथा सरकार की उपेक्षा की वजह से उनकी मृत्यु हो गई जैसाकि मधु लिमये ने कहा था। इससे न केवल सामाजिक आन्दोलन को बल्कि सम्पूर्ण देश को आघात लगा।

इस बात में सन्देह करने का कोई कारण नहीं है कि यदि लोहिया अधिक समय तक जीवित रहे होते तो भारतीय इतिहास कुछ भिन्न ही होता। यह तो कोई नहीं जानता है कि वह जीवित रहकर अपने स्वप्नों को वास्तविकता में बदल पाते अथवा अपने से पूर्व महात्मा गांधी की भांति और अपने से बाद में जयप्रकाश नारायण की भांति एक दुखी और मोह-भंग व्यक्ति के रूप में मरे होते। परन्तु लोहिया के विचार सदा रहेंगे और असंख्य संकटों का सामना करने वाली मानवता के लिए ये विचार और अधिक प्रासंगिक होते जायेंगे जैसे-जैसे वह लोहिया की "सप्त क्रांति" का अनुसरण करती जायेगी।

4

लोहिया आज के संदर्भ में

— पी० उपेन्द्र

"---- मेरा इस के अलावा अपना कुछ नहीं है कि भारत की गरीब और आम जनता यह समझती है कि मैं उनका ही हूं।"

ये शब्द डा० राममनोहर लोहिया के हैं जो भारत के शीर्षस्थ स्वतंत्रता सेनानियों में से एक थे और साहस, वीरता, धर्मनिष्ठा, प्रेम, विनम्रता और सहिष्णुता के गुणों से ओत-प्रोत थे। डा० लोहिया ने जनता के लिए सतत संघर्ष किया।

डा० लोहिया कहा करते थे कि "भारत को एकजुट करने की दो शक्तियां हैं — पहली महात्मा गांधी और दूसरी चलचित्र।" यदि उनके साथ इस विषय पर वाद-विवाद करने वाले साथी होते थे तो वह "काफी हाउस" या जलपान गृहों में लगातार कई घंटों तक इसी विषय पर बोलते रहते थे। वास्तव में, उनके श्रोताओं में समाज के सभी क्षेत्रों के व्यक्ति होते थे जैसे श्रमिक, बुद्धिजीवी, पत्रकार, राजनीतिज्ञ, विद्यार्थी, कवि और लेखक आदि। उनकी जेब भले ही खाली होती थी लेकिन वे अपने समय की परवाह किए बिना उनका भाषण सुनते रहते थे। सबसे बड़ी बात यह है कि वह पूर्ण रूप से क्रांतिकारी थे। ओंकार शरद लिखते हैं:-

> "लोहिया ने जो भी कहा अथवा किया, वह अन्याय के विरुद्ध तीखी और तीव्र प्रतिक्रिया होती था। उनमें दृढ़ इच्छा-शक्ति, संयम, साहस और धैर्य था। अपने इन्हीं विरल गुणों के कारण ही लोहिया जी अपने ऊपर बार-बार आये कष्टों और अपमानों को सह लिया करते थे। समय बीतने के साथ वह अपमान रूपी मानवीय प्रहारों से अप्रभावित रहना सीख गये थे। उनके कदम कभी नहीं डगमगाए। उन्होंने हंसते-हंसते हर स्थिति का मुकाबला किया और सतत बढ़ते रहे।"

राममनोहर लोहिया का जन्म 23 मार्च, 1910 को उत्तर प्रदेश के फैजाबाद जिले में अकबरपुर नामक स्थान पर हुआ था। उन्होंने विवाह नहीं किया और बर्लिन विश्वविद्यालय से पी०एच०डी० की उपाधि प्राप्त करने के बाद उन्हें एक बिरला प्रतिष्ठान में नौकरी मिल

गई लेकिन जल्द ही उन्होंने वह नौकरी छोड़ दी और वर्ष 1934 में कांग्रेस समाजवादी दल गठित होने के बाद राजनीति को अपना व्यवसाय के रूप में चुन लिया। वह कार्यकारी समिति के सदस्य चुने गए थे और नए साप्ताहिक "दि कांग्रेस सोशलिस्ट" के पहले संपादक नियुक्त हुए। इस चुनाव के बाद वह कलकत्ता से अहमदाबाद आ गए।

डा० लोहिया ने 26 जुलाई, 1954 को एक मुकदमे की पैरवी के दौरान महात्मा गांधी के गुण उदधृत करते हुए अपने वक्तव्य में कहा था:

> "दाईं ओर बैठे तीसरे व्यक्ति महात्मा गांधी हैं। मेरे विचार से न केवल भारत बल्कि पूरे विश्व में 500 वर्षों से भी अधिक समय में वह सबसे अधिक न्यायप्रिय व्यक्ति हैं। हो सकता है उनके विचारों में रचनात्मकता न हों परन्तु उन्होंने कभी भी अस्पष्ट भाषा का प्रयोग नहीं किया। उदाहरण के लिए उन्होंने कहा कि "कर न देना" प्रत्येक व्यक्ति का सर्वप्रथम, सहज और जन्मसिद्ध अधिकार है। एक बार मेरी गांधी जी के साथ बातचीत हुई .....उस समय मैं और मेरे जैसे अन्य व्यक्ति उनकी नीतियों से सहमत नहीं थे, फिर भी हम चाहते थे कि सविनय अवज्ञा आन्दोलन के लिए उनका आह्वान शताब्दियों तक पूरे विश्व में फैले। तब गांधी जी ने हमें बताया था कि वह यह नहीं जानते कि यह लड़ाई कैसे जारी रखी जा सकेगी, लेकिन उन्होंने हमें आगे बढ़ते रहने के लिए कहा...."

डा० लोहिया का जीने का अपना ढंग था। यदि वह एक बार किसी मुद्दे के बारे में अपने विचार बना लेते थे तब किसी अन्य व्यक्ति द्वारा दिए गए तर्कों के सामने वह आसानी से झुकते नहीं थे। उनकी कांग्रेस नेताओं के साथ भी जोरदार बहस होती थी। सच्चे समाजवादी के रूप में उन्होंने पूरे देश में इस आन्दोलन को फैलाने का प्रयास किया।

मार्क्सवाद और समाजवाद में अन्तर के बारे में डा० लोहिया ने कहा "यह स्वीकार करना होगा कि मार्क्सवाद और साम्यवाद अपने अधूरे कार्य को ही पूरा समझ लेतें हैं। वे केवल पूंजीवादी उत्पादन-संबंधों को समाप्त करने के बारे में ही सोचते हैं जबकि सच्चे समाजवादी को पूंजीवादी उत्पादन संबंधों और उत्पादन की पूंजीवादी ताकत दोनों को समाप्त करने के बारे में सोचना पड़ेगा या कम से कम उसे एकदम नया रूप देना होगा....सामाजिक लाभों के अलावा, अनुमानित उत्पादन के तात्कालिक उत्पादन के

आंकड़े से तुलना करने के लिए अभी तक कोई और तरीका नहीं है। इसके अतिरिक्त, लघु-मशीन की वकालत करने वाले, जहां अनिवार्य हो, वहां बड़े पैमाने पर उत्पादन की बात को पूरी तरह से अस्वीकार नहीं करते हैं।

डा० लोहिया और उनके अन्य अनुयायियों ने 1948 में कांग्रेस छोड़ दी थी। वह समाज के गरीबों, दलितों और कमजोर वर्गों के सामाजिक एवं आर्थिक उत्थान के लिए अनवरत लड़ाई लड़ते रहे। उन्होंने हैदराबाद में समाजवादी दल का उद्घाटन किया और इसके चेयरमैन बने तथा 1956 में "मैनकाईंड" के सम्पादक बने।

वह स्वतंत्रता संग्राम के दौरान कई बार जेल गये लेकिन क्या वह स्वतंत्रता मिलने के बाद भी गरीबों को स्वतंत्रता दिला सके? यह एक ऐसा बड़ा प्रश्न चिन्ह उनके सामने था जिस पर चिंता करते-करते 12 अक्तूबर, 1967 को उनकी असमय ही जीवन लीला समाप्त हो गई। उनके स्वप्न अधूरे ही रह गये। वह आज हमारे बीच नहीं हैं लेकिन उनके आदर्श नये भारत में, आधुनिक भारत में आज फलीभूत होते जा रहे हैं। डा० लोहिया अपने जीवन काल में जितने प्रासंगिक थे, उससे कहीं अधिक आज के भारत में हैं। शायद वह अपने समय से बहुत आगे की सोचते थे। वह अपने समय के बहुचर्चित व्यक्ति और राष्ट्र के लिए प्रेरणा के स्रोत बन गये थे।

यद्यपि वह गांधी जी के अनुयायी थे लेकिन उनका उनसे कई मुद्दों पर मतभेद था। वह इतने निर्भीक थे कि गांधी जी से कई विवादास्पद मसलों पर खुलकर बातें करते थे। कभी-कभी डा० लोहिया के सुझावों पर चिंतन करते हुए गांधी जी की रातों की नींद उड़ जाया करती थी।

भारतीय इतिहास में डा० राम मनोहर लोहिया का नाम एक महान विचारक, निर्धनों एवं दलितों के प्रतिनिधि, आदर्शवादी और दूरदर्शी के रूप में अंकित किया जा सकता है जिन्होंने सम्पूर्ण विश्व के बुद्धिजीवी नागरिकों के संसार का स्वप्न देखा था।

5

सूक्ष्म विवेचक: डा० राममनोहर लोहिया

— लालू प्रसाद

डा० राममनोहर लोहिया का व्यक्तित्व विविधताओं से भरा था। वे राजनीतिक, आर्थिक एवं सामाजिक समस्याओं के सूक्ष्म विवेचक थे। उन्होंने अपने अनूठे व्यक्तित्व और विचार शक्ति से वर्तमान पीढ़ी को व्यापक रूप से प्रभावित किया था। उनका जीवन देश के लिये समर्पित था। देश और समाज की समस्याओं पर उन्होंने मौलिक चिंतन किये और उन समस्याओं के निराकरण की दिशा भी बताई।

विचारों की मौलिकता, कर्म की साहसिकता, अभिव्यक्ति की निर्भीकता, जीवन की परिपूर्णता एवं संघर्ष को निरन्तरता की दृष्टि से डा० लोहिया समाजवादी आन्दोलन में अद्वितीय थे। उनका ज्ञान अगाध था। समस्याओं की गहराई में आकर समाधान निकालने की उनकी क्षमता एवं शक्ति अद्‌भुत थी। वे आम आदमी के आदमी थे। वे सबसे ज्यादा उन्हीं के बारे में सोचते थे और आम आदमी के उद्धार के लिये लड़ते थे। पन्द्रह आने बनाम तीन आने वाली बहस मशहूर है। समाजवादी आन्दोलन की राजनीति, अर्थनीति, समाजनीति, शासन नीति, राष्ट्रीय नीति एवं अन्तर्राष्ट्रीय नीति आदि पर उनके विचारों की गहरी छाप है। वे देश के तत्कालीन शासकों के प्रखर एवं प्रचण्ड आलोचक के रूप में देश-विदेश में विख्यात थे। वे पं० जवाहर लाल नेहरू की नीतियों के कट्टर विरोधी थे। वे कथनी और करनी में मेल के हामी थे। वे अन्याय के विरुद्ध निरन्तर संघर्ष के पक्षधर थे। वे सिर्फ कहते ही नहीं थे, बल्कि कथनी पर अमल भी करते थे। इसलिये उनके समर्थकों, सहायकों एवं शिष्यों की संख्या उत्तरोत्तर बढ़ती गई और वे आम जनता के बेजोड़ रहनुमा बन गये।

लोहिया जी अनेक मौलिक विचारों के जनक थे। जाति तोड़ो, दाम बांधो, हिमालय बचाओ, खर्च पर सीमा बांधो, भूमि सेना, लोक भाषा, लोक भूषा, लोक भवन, लोक भोजन आदि उनके कुछ विचार और नारे बहुत मशहूर हैं। इनमें से प्रत्येक विचार का राष्ट्र निर्माण में अपना महत्व है।

लोहिया ने सर्वप्रथम हमारे समाज का सर्वेक्षण किया और यह पाया कि इसे जातिवाद रूपी महामारी खाये जा रही है। उन्होंने इस का बड़ा ही सूक्ष्म एवं विद्वतापूर्ण विश्लेषण किया। सर्वप्रथम उन्होंने मार्क्स के उस सिद्धान्त को गलत कर दिया जिसमें मार्क्स कहते हैं कि वर्ग-संघर्ष के परिणामस्वरूप समाज दोष मुक्त होगा किन्तु लोहिया ने कहा, नहीं, जब तक वर्ग-संघर्ष के साथ-साथ भारत में जाति प्रथा पर भी दोहरा प्रहार नहीं होता, हमारे यहां बराबरी नहीं आ सकती, पूंजीवादी अर्थव्यवस्था समाप्त नहीं हो सकती। संसार के अन्य चिन्तक जहां वर्ग-संघर्ष को समाप्त करने के लिये यह कहते हैं कि सभी लोगों को समान अवसर देकर हम लक्ष्य प्राप्त कर सकते हैं, वहीं डा० लोहिया भारतीय राजनीति को एक नवीन एवं मौलिक विचार देते हैं और कहते हैं कि सैकड़े साठ स्थान संसार में उन लोगों को मिलने चाहिये जो अब तक किसी के द्वारा प्रताड़ित होते आये हैं। कम से कम भारतीय परिस्थिति में कुछ जातियों को हमेशा सताया गया है और कहा गया है कि वे अछूत हैं, पिछड़े हैं और उन्हें लांछित और अपमानित किया गया है। ऐसे वर्ग में लोहिया स्त्रियों और अल्पसंख्यकों में पिछड़ों को भी मानते हैं और कहते हैं कि इन लोगों को सभी सार्वजनिक नौकरियों और पदों पर सैकड़े साठ प्रतिशत स्थान दिया जाये। लोहिया इसे तब तक कायम रखना चाहते थे जब तक तथाकथित द्विज जाति एवं पिछड़ी जाति के लोग एक स्तर पर न आ जायें। जिस दिन वे दोनों एक धरातल पर आ जायेंगे उसी दिन से विशेष अवसर की बात समाप्त हो जायेगी। विशेष अवसर तब तक जब तक स्थिति विशेष हो, जिस दिन से विशेष स्थिति समाप्त हो, सभी बातें समाप्त हो जायेंगी और सामान्य ढंग से काम होने लगेगा फिर सभी लोगों को एक मानदण्ड पर व्यवहार मिलेगा और वे अपनी योग्यता के अनुरूप कार्य करने लगेंगे।

आज गांधी का "त्याग-युग" समाप्त हो गया है और कुछ लोगों ने दूसरा प्रकरण "भोग-युग" का प्रारम्भ कर दिया जिसमें देश के गरीबों, दलितों, निर्धनों के संचित धन को बहाया गया, विकास योजनायें रोज बनाई गई, किन्तु आज भी करोड़ों लोगों को एक शाम का भोजन भी बमुश्किल तमाम मिल पाता है, वे फुटपाथ पर सोते हैं, पीने के जल की व्यवस्था गांवों में नहीं हो पाई। इसके लिये लोहिया ने ललकारा, सिंह गर्जना की और कहा कि ये लोग आजादी के बाद भी आज उसी स्थिति में हैं और किसी के धैर्य की एक सीमा होती है। अब धैर्य विस्फोटक स्थिति पार कर चुका है।

लोहिया जी एक ऐसी समाजवादी सरकार की कल्पना करते थे जो किसी भी देश की प्रणाली के अनुरूप हो सकती थी और किसी के विपरीत हो सकती थी। तात्पर्य यह कि सभी देशों की अच्छी बातों का समन्वय वे अपने राज्य के अन्दर करना चाहते थे। गांधीवादी होते हुये भी लोहिया अपने को गांधीवादी नहीं मानते थे, और मार्क्सवादी होते हुये भी मार्क्सवादी नहीं मानते थे, बल्कि कहते थे कि न मैं मार्क्स समर्थक हूं न गांधी समर्थक और न मैं गांधी या मार्क्स विरोधी ही हूं। इस तरह वे भारत की राजनीति में

स्पष्ट एवं मौलिक चिन्तन के पक्षधर बने।

गांधीवादी होने का उनका अपना जो भी दावा हो, लेकिन गांधी की अधिक से अधिक बातों और विचारधाराओं का अपने कार्यक्रम एवं आरचण में समन्वय लोहिया जी के व्यक्तित्व का अभिन्न अंग बन गया था। शायद ही अपने देश के अन्दर शुद्ध राजनीति में रहते हुये किसी भी राजनेता ने गांधी के विचारों को उतना मूर्त रूप दिया हो जितना अकेले लोहिया ने दिया। फिर वे ऐसा क्यों कहते हैं? यह एक प्रश्न हो सकता है। इसके जवाब में यह कहा जा सकता है कि वे चूंकि जानते थे कि यह देश नाम बेचकर अपना काम निकालना जानता है, इसलिये वे ऐसा कहते हों क्योंकि अपने को गांधीवाद का पोषक कहने वाली सरकार गांधी के विचारों की दिन-दहाड़े हत्यायें किया करती थी और जैसा लोहिया ने बारम्बार कहा कि अपने यहां गांधी तो अब संग्रहालय में रखे जाने वाले प्रतीक बन गये हैं। सरकार केवल गांधी जयन्ती के दिन एवं उनके शहीद दिवस के दिन सभायें करके अपने दायित्वों से बच जाना चाहती है, लेकिन सरकारी खर्चों और पैसों को पानी की तरह बहाये जाने का दृश्य हम अपनी आंखों से प्रतिदिन देखा करते हैं। यह सब उस देश में होता था जहां कि औसत व्यक्ति को एक दिन की आय 20 पैसे थी। यह कितनी हास्यास्पद स्थिति है कि ऐसे देश के तथाकथित नेता अपने को गांधीवादी बतलाते हैं और प्रतिदिन गांधी के विचारों को दफन करते हैं।

शायद यही वजह थी जिससे वे अपने को गांधीवादी कहना नहीं चाहते थे ताकि इस देश के लोग उन पर भी अंध गांधी भक्त होने का अभियोग ना लगायें। उन्होंने गांधी को कहां स्वीकार किया, यह उनके आचरण से स्वतः स्पष्ट है। लोहिया ने कहा कि राष्ट्रभाषा हिन्दी हो, गांवों का चहुमुखी विकास हो, हर गांव में पीने के पानी का प्रबन्ध हो, देश के विकास का फल गांवों को अधिक मिलना चाहिए जिससे अविकसित गांव शीघ्र विकास कर अपने शहरों के बराबर आ सकें। अपने देश में तो शहर और गांव तक में भेद-भाव होने लगा है और देश का प्रबुद्ध समाज इन घटनाओं पर हंसेगा नहीं तो क्या। शहर के लोगों को जहां बिजली, राशन तेल दूनी मात्रा या उससे अधिक परिणाम में दिया जाता है, वहीं देहात के लोगों को ग्रामीण लोगों को कम से कम तेल दिया जाता है। इस तरह के आचरण करने वाली सरकार को लोहिया सही में "आधी खोपड़ी की सरकार" कहते हैं।

यह सब स्वतंत्र भारत में हुआ जिसके लिये बड़ी-बड़ी आकांक्षायें और आशायें लोगों के मन में थी कि हम आजाद होंगे, देश का नये सिरे से विकास होगा और हमें खाने-पीने, रहने-सहने, पढ़ने-पढ़ाने की सुविधा होगी, किन्तु अपने देश की आजादी के बाद लोगों ने देखा कि उनकी इन आशाओं पर इस देश के सत्ताधारी दल ने तुषारापात कर दिया। वे सभी बातें हुई किन्तु यह केवल उन लोगों के लिये हुआ जो अपने देश में चालीस लाख अंग्रेजी पढ़े लिखे लोग हैं और जो आज सत्ता को संभाले हुये हैं। सचमुच

लोहिया का अभियोग बिल्कुल यथार्थ और वास्तविक था। इसलिये वे लोक भाषाओं की वकालत करते थे कि जनता तब सरकार के कार्यों से पूर्ण रूपेण अवगत हो जायेगी और सरकार के कार्यों का उचित मूल्यांकन करने की क्षमता सभी के अन्दर रहेगी। अजीब स्थिति अपने देश में है, जहां कि मत का अधिकार तो है किन्तु मत किसे देना चाहिए यह समझने का सही ज्ञान किसी को देने वाला कोई नहीं है। जाति के नाम पर, धर्म के नाम पर, मजहब के नाम पर लोगों को गुमराह किया जाता है और देश की हालत दिनों दिन बदतर होती जा रही है।

डा० लोहिया एक असाधारण प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति इस दृष्टिकोण से थे क्योंकि उनमें एक मौलिक चिन्तन का रूप विराजमान था। आज राजनीति में क्षुद्र स्वार्थ, क्षेत्रीयता एवं भाषाई भावना पाई जाती है, किन्तु इन सबसे ऊपर लोहिया का प्रवर राष्ट्रवाद था जिसमें न अल्पसंख्यकों को कम अधिकार थे न बहुसंख्यकों को वह दोनों को उत्तरदायी नागरिक बनाना चाहते थे जो समाजवाद में आस्था रखें। लोहिया में तो एक अन्तर्राष्ट्रीय नेता के सभी गुण विद्यमान थे, क्योंकि लोहिया ने भारत से अलग नेपाल में राजशाही के खिलाफ विद्रोह का बिगुल फूंका, गोवा में पुर्तगालियों के औपनिवेशिक शासन के विरुद्ध विद्रोह का झण्डा खड़ा किया और जेल की भीषण यातनायें सही। उसी लोहिया ने अमेरिका के टेक्सास शहर में जातिभेद एवं रंगभेद की नीति के खिलाफ प्रदर्शन कर अपने आपको संसार के सबसे समृद्ध राष्ट्र में गिरफ्तार कराया। गांधी को छोड़ विदेश में किसी भारतीय नेता ने इतनी सफलतापूर्वक अपने आचरण से संसार के लोगों को विमोहित नहीं किया। लोहिया में संसार के प्रति एक विश्वास एवं अटूट आस्था हम पाते हैं। स्त्री जाति के तो वे बहुत बड़े रक्षक ही बन बैठे। देश विदेश की नारियों की कथा लिख भेजना एवं उनका निदान मानों लोहिया की रग-रग में समाया था। लोहिया ने श्वेतलाना को भारत में रहने देने के लिये जितना प्रयास किया वह अविस्मरणीय है। सभी लोगों से एक अपनत्व, एक लगाव, एक भाईचारे का रिश्ता लोहिया में हमें मिलता है जो उनकी राजनीति का मूल आधार है।

आने वाली पीढ़ी सहसा विश्वास नहीं करेगी कि इस तरह का भी व्यक्ति पैदा हुआ था जिसमें स्वार्थ एवं क्षुद्र भावनाओं का लेशमात्र भी समावेश नहीं था। लोहिया जिया तो करोड़ों भारतीयों के दुख दर्द दूर करने के लिये और मरा तो करोड़ों भारतीयों के दुख दर्द को दूर करने की तमन्ना ले कर। लोहिया जी के विचार आज भी देश के लोगों तथा सरकारों को सही दिशा-निदेशन करने में समर्थ है। भारत आज भी अपने खोये हुये गौरव को प्राप्त कर सकता है अगर वह लोहिया की बातों में से कुछ को देश में लागू होने दें।

6

क्रान्तिकारी दूरदर्शी—डा॰ राममनोहर लोहिया

—मुलायम सिंह यादव

डा॰ राममनोहर लोहिया के जन्म दिन के उपलक्ष्य में उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व तथा उनकी विचारधारा पर प्रकाशित हो रहे ग्रन्थ के साथ अपने को संबद्ध करके मैं अपार गौरव एवं प्रसन्नता का अनुभव कर रहा हूँ। इस अवसर पर मैं अपने महान नेता और मार्ग-दर्शक को अपने श्रद्धा-सुमन अर्पित करता हूँ और प्रकाशन की सफलता की कामना करता हूँ।

स्वनामधन्य डा॰ राममनोहर लोहिया क्रान्तिकारी दूरदर्शी तथा महान समाजवादी नेता, चिन्तक एवं विचारक थे और उन्होंने भारत में समाजवाद को साकार करने में अत्यन्त उल्लेखनीय योगदान किया। हिमालय बचाओ, अंग्रेजी हटाओ, जाति तोड़ो जैसे क्रान्तिकारी नारे देकर उन्होंने देश में समाजवाद की अवधारणा को चरितार्थ करने के लिए जीवनपर्यन्त संघर्ष किया।

लोकनायक जय प्रकाश नारायण तथा आचार्य नरेन्द्र देव के साथ मिलकर डा॰ साहब ने हमारे देश एवं समाज की अपेक्षाओं और आवश्यकताओं के अनुरूप समाजवाद को नया रूप देकर हमें भारतीय समाजवाद का अभिनव दर्शन दिया। यही नहीं, उन्होंने इस भारतीय समाजवादी दर्शन को चरितार्थ करने के लिए नवजवानों की एक निहायत लड़ाकू और बहादुर टीम भी तैयार की। इसे मैं उनकी एक बहुत बड़ी खूबी मानता हूँ।

डा॰ साहब महान दूरदर्शी नेता थे। उनमें भविष्य को देखने और उस के बारे में सोचने-समझने की विलक्षण क्षमता थी। उन्होंने अपने जीवनकाल में जो कुछ भी कहा था वह आज हमारे सामने सच साबित हो रहा है। जब वर्ष 1956 में हंगरी में जनवादी आन्दोलन के खिलाफ रूस ने वहां अपनी फौजें उतार कर दमन चक्र चलाया तो डा॰ साहब ने उसी समय भविष्यवाणी कर दी थी कि अंग्रेजी साम्राज्यवाद की तरह से रूस का साम्यवाद भी टूटेगा। आज साम्यवादी जगत और स्वयं रूस में जो कुछ हो रहा है वह उनकी भविष्यवाणी को चरितार्थ कर रहा है।

इसी प्रकार डा॰ साहब ने हिमालय नीति के बारे में भी आवाज उठायी थी। मैं समझता हूँ कि यदि नेपाल, तिब्बत, सिक्किम और काश्मीर के बारे में एक समन्वित

११५६९-७

हिमालय नीति की उसी समय चर्चा हो गयी होती और इस पर हमने आन्दोलन करके तथा और जोर देकर एक निर्णय ले लिया होता तो आज स्थिति बिल्कुल दूसरी होती।

डा० साहब इस देश में गैर-कांग्रेसवाद के जनक थे। उन्होंने जिस गैर-कांग्रेसवाद का सूत्रपात किया उसी के परिणामस्वरूप वर्ष 1967 में आजादी के बाद पहली बार देश में चंडीगढ़ से लेकर कलकत्ता तक गैर-कांग्रेसी सरकारें बनी और आज केन्द्र तथा देश के अनेक प्रदेशों में बड़े पैमाने पर सत्ता परिवर्तन सफल हो सका है। लोकतंत्र की मजबूती और उसकी सफलता के लिये यह जरूरी है लेकिन डा० साहब का स्पष्ट मत था कि जोड़-तोड़ करके विधान सभाओं और लोक सभा में जीतकर कोई बड़ा परिवर्तन नहीं किया जा सकता। अगर बड़ा परिवर्तन होगा तो वह बाजारों, सड़कों, खेतों और खलिहानों से होगा, गाँवों से होगा।

पिछले चुनावों के समय हमने सत्ता परिवर्तन के साथ व्यवस्था परिवर्तन का संकल्प लिया था। सत्ता परिवर्तन तो हो गया लेकिन उससे बड़ा परिवर्तन लोगों को सामाजिक और आर्थिक न्याय दिलाना है। इसके लिये हमें सड़कों, बाजारों, खेतों और खलिहानों से व्यवस्था परिवर्तन का संघर्ष चलाना है। तभी हम डा० साहब के सपनों को साकार कर पायेंगे।

व्यवस्था परिवर्तन के इस संघर्ष में हमारे नवजवानों को प्रमुख भूमिका अदा करनी होगी। यह बड़े खेद की बात है कि हमारे नवजवानों में राजनैतिक चेतना जागृत नहीं हो रही है। यह डा० लोहिया जैसे दूरदर्शी राजनेता का ही काम था कि उन्होंने छात्रों द्वारा राजनीति में हिस्सा लेने का समर्थन किया था। दूर-दृष्टा डा० साहब ने ही सबसे पहले 18 साल के नवजवानों को वोट का अधिकार देने की लड़ाई लड़ी थी। आज जब उन्हें वोट का अधिकार मिल गया है तो इसके बाद नवजवानों को राजनीति में भी आना होगा। तभी हम नवजवानों के लिये समाज में दिशाहीनता का माहौल समाप्त कर देश की युवा शक्ति को राजनीति के माध्यम से रचनात्मक कार्यों में लगा सकेंगे।

डा० साहब कितने महान नेता थे यह इसी बात से साबित हो जाता है कि स्वयं पंडित जवाहरलाल नेहरू ने उनकी तमाम बातों को स्वीकार किया था। आजादी के तुरन्त बाद डा० साहब ने नारा दिया "एक घंटा देश को, बाकी अपने पेट को" तो पंडित नेहरू ने चतुराई से "श्रमदान" का कार्यक्रम चलाया। जब डा० साहब ने अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर दोनों गुटों से समान दूरी का नारा दिया तो नेहरू जी ने उसे "गुटनिरपेक्षता" का नाम दे दिया। जब डा० साहब ने कहा प्रधान मंत्री दक्षिण का हो तो पंडित नेहरू ने दक्षिण का राष्ट्रपति बना दिया।

डा० साहब राजनैतिक क्षेत्र में ही क्रान्तिकारी नहीं थे। वह क्रान्तिकारी समाज सुधारक

भी थे। देश में नर-नारी के संबंधों में अगर किसी ने सबसे पहले सोचा था तो वह डा० साहब ही थे। वह पहले नेता थे जिन्होंने महिलाओं के लिए अनिवार्य रूप से आरक्षण की वकालत की थी। जीवन का कोई पक्ष ऐसा नहीं था जिस पर उन्होंने लिखा न हो और हर विषय पर उनके विचार क्रान्तिकारी और अत्यन्त विचारोत्तेजक हैं।

हमारा देश इस समय नाजुक दौर से गुजर रहा है। आज कुछ ताकतें धर्म और संप्रदाय के नाम पर तनाव और हिंसा का माहौल उत्पन्न करके हमारी एकता को खंडित करके देश को कमजोर करने की साजिश कर रही हैं। आज देश में जिस पैमाने पर सांप्रदायिक तनाव है उतना आजादी के बाद कभी नहीं रहा। देश में एकता और सांप्रदायिक सद्भाव को मजबूत बनाना आज प्रत्येक भारतवासी का प्रथम और पुनीत कर्तव्य है। इसके लिए भी डा० साहब ने हमें रास्ता दिखाया है।

डा० साहब ने बहुत पहले कहा था कि राम जन्म भूमि-बाबरी मस्जिद का झगड़ा आज का नहीं है। उनका कहना था कि इसकी जड़ में जाने के लिए हमें 700-800 वर्ष पुराने इतिहास को देखना पड़ेगा। आज हिन्दुओं के दिलों में यह विचार बैठा है कि मुसलमान राज में उनके साथ बहुत जुल्म हुआ। इसी प्रकार मुसलमान सोचता है कि एक समय था जब हमने राज किया लेकिन आज हमें बुरे दिन देखने पड़ रहे हैं। डा० साहब ने बहुत पहले इस विचार को मन से दूर निकालने पर जोर दिया था। हमें लोगों को समझाना पड़ेगा कि लड़ाई हिन्दू मुसलमान की नहीं देसी-परदेसी की थी।

साम्प्रदायिक तनाव मिटाना है तो हमें महात्मा जी और डा० साहब के रास्ते को अपनाना होगा। संकट के समय हिन्दू और मुसलमान दोनों की जिम्मेदारी है कि वे जहां ज्यादा तादाद में हैं अल्प संख्यकों की रक्षा अपनी जान देकर भी करें बहुसंख्यक वर्ग की यह जिम्मेदारी है कि वह अल्पसंख्यकों के मन से भय दूर करके उनमें सुरक्षा की भावना पैदा करे।

आज डा० साहब हमारे बीच नहीं है लेकिन उनके विचार अमर हैं। अगर देश को बचाना है तो हमें उनके विचारों पर चलना होगा। उनके अनुयायी उनके विचारों पर दृढ़ता से चलने की कोशिश कर रहे हैं, चाहे वह भूमि सेना के गठन की बात हो, अंग्रेजी हटाने की बात हो या गाँवों और किसानों के उत्थान तथा कल्याण की बात हो।

मेरे जैसे उनके असंख्य अनुयायी और उनकी महान राजनैतिक विरासत के उत्तराधिकारी उनके सपनों को साकार करने के लिए कृतसंकल्प हैं और इसके लिए बड़ी से बड़ी कुर्बानी देने के लिए तत्पर हैं। हमारी कथनी और करनी में कभी कोई फर्क नहीं होगा। मैं विश्वास दिलाना चाहता हूं कि डा० लोहिया के विचारों के प्रसार-प्रचार के लिए लखनऊ में स्थापित लोहिया ट्रस्ट उनकी स्मृति को अक्षुण बनाये रखने और उनके विचारों के

प्रसार-प्रचार के लिए जो भी कार्यक्रम बनायेगा उन्हें लागू करने में मेरा पूरा सहयोग और समर्थन रहेगा।

हमने अपनी श्रद्धा के प्रतीक स्वरूप उत्तर प्रदेश में डा० साहब की यादगार को ताजा बनाये रखने के लिए भी कुछ निर्णय लिये हैं। उत्तर प्रदेश में डा० साहब जिन जेलों में रहे हैं वहां तख्ती पर वर्णन होगा और उनका पूरा इतिहास लिखा जायेगा। लखनऊ में बन रही 40 किलोमीटर लंबी रिंग रोड का नाम डा० राममनोहर लोहिया मार्ग रखा जायेगा तथा उनके जन्म स्थान अकबरपुर (फैजाबाद) में उनकी मूर्ति स्थापित की जायेगी। फर्रूखाबाद में उनके नाम पर एक बड़ा अस्पताल बनाया जा रहा है। हमारा यह भी विचार है कि प्रदेश में डा० साहब के नाम से कोई बड़ी संस्था भी स्थापित हो।

7
लोहिया—एक अमर व्यक्तित्व
—मधुकर दिघे

यह 1948-49 के दिनों की बात है। मैं गोरखपुर (उ०प्र०) में था और सोशलिस्ट पार्टी के दफ्तर में ही रहता था। 1946 के अंत में मैं गोरखपुर जयप्रकाश जी के निर्देश पर चला गया था, रेल संगठन के कार्य हेतु। जयप्रकाश जी उस समय अखिल भारतीय सोशलिस्ट पार्टी के महामंत्री थे। उस जमाने में सोशलिस्ट पार्टी की सदस्यता रिस्ट्रिक्टेड थी और गोरखपुर जनपद में केवल 30, 35 ही सदस्य रहे होंगे। आज का देवरिया जिला तब केवल एक तहसील थी। गोरखपुर की ही दूसरी तहसील फरेन्दा के एक मशहूर कस्बे नौतनवा में डा० लोहिया का कार्यक्रम था। नौतनवा गोरखपुर जनपद और नेपाल राज्य के सीमा पर स्थित है। इस कस्बे में कार्यक्रम रखने के पीछे एक विशेष उद्देश्य था। उस समय नेपाल में राणा शाही के विरुद्ध जनरोष उभाड़ पर था और नेपाली कांग्रेस आंदोलन-रत थी। डा० लोहिया के गोरखपुर पहुंचने का टेलीग्राम आया था। हम सभी कार्यकर्ता अपने नेता सूर्यनाथ पाण्डे के साथ कार्यालय में बैठे थे। डा० लोहिया के तार को देखकर एक कार्यकर्ता श्री कल्पनाथ सिंह ने कहा कि डा० लोहिया की लिखावट कितनी सुंदर है। हंसी मज़ाक का ही वातावरण था, इस लिये मैंने कहा "हां डा० साहब ने स्वयं अपने हाथ से कागज पर लिखकर टेलीग्राम के पत्रे पर लगा दिया था, जो यहां पहुंच गया"। कल्पनाथ सिंह मज़ाक तो नहीं समझे पर, नाराज़ हो गये। बाद में उनको समझाया गया कि यह हैन्डराइटिंग पोस्ट मास्टर की है न कि डा० साहब की।

परंतु मेरे आश्चर्य का तब ठिकाना नहीं रहा जब मैंने डा० साहब की अपने हाथ की लिखी एक तहरीर देखी। वह लिखावट, पोस्ट मास्टर की लिखावट से भी अधिक सुंदर थी। क्या हिन्दी में क्या अंग्रेजी में, मेरे मस्तिष्क में था कि पोस्ट मास्टर जितनी सुंदर लिखावट तो नहीं होगी डा० साहब की। मेरा अनुमान व धारणा गलत निकली।

इस बात को मैंने विस्तार से इस कारण लिखा कि डा० लोहिया के संबंध में प्रथम दृष्टि में किसी भी प्रकार की धारणा बनाना या उनके विचारों को समझना अथवा जान लेना इतना आसान नहीं, वरन असंभव ही था।

मेरे जैसे सैकड़ों कार्यकर्ता जो अपने को मार्क्सवादी कहलाते थे और जय प्रकाश जी

के संपर्क में ही रहना पंसद करते थे, शुरुआत के दिनों में, डा० लोहिया को एक दकियानूसी और गांधीवादी ही समझते थे। उनके द्वारा मार्क्सवाद की आलोचना करना, मजदूर संगठन से कहीं अधिक किसानों के संगठन पर ज़ोर देना, हमें अच्छा नहीं लगता था। हम मजदूर संगठन को क्रान्ति का ही रावल दस्ता मानते थे और उसके मुकाबले में किसानों के संगठन को प्रापर्टी-होल्डरों का बुर्जुआ संगठन और उसके प्रवक्ता को दकियानूसी मानकर ही चलते थे। चीनी क्रान्ति की सफलता के उपरान्त ही हम डा० लोहिया की बात को महत्व देने लगे।

पंचमढ़ी की उनकी प्रसिद्ध थीसीस हम लोग उ० प्र० सोशलिस्ट पार्टी के हरदोई सम्मेलन में ही थोड़ा समझ सके थे और वह भी श्रद्धेय आचार्य नरेन्द्र देव जी द्वारा उसका विस्तार से किये विश्लेषण के बाद।

मुझे आजतक याद है जब एक लाख से अधिक किसानों ने लखनऊ विधान सभा पर प्रदर्शन करके नारा लगाया था "यू० पी० का किसान जागा और पंत मिनिस्टर भागा", "सोशलिस्ट पार्टी का ऐलान, नहीं देंगे दस गुना लगान"। इस प्रदर्शन का नेतृत्व कर रहे थे, पार्टी के वरिष्ठ नेता, डा० लोहिया, जयप्रकाश, आचार्य नरेन्द्र देव। मानो लाल टोपी का समुन्द्र उमड़ पड़ा था। हम सब खुश थे, लाल टोपी पहनकर अपने पर गर्व कर रहे थे। जय प्रकाश जी, आचार्य जी को भी कार्यकर्ताओं के आग्रह पर लाल टोपी पहननी पड़ी थी। परंतु डा० साहब ने न केवल टोपी पहनने से इनकार किया बल्कि अपनी सफेद टोपी भी उतार दी और कार्यकर्ताओं के बीच अपने भाषण में उन्होंने लाल टोपी या इस प्रकार के किसी निशान से कार्यकताओं का पहचाना जाना दल के लिये नुकसान देह बताया। हम लोगों पर उस भाषण का अच्छा असर नहीं पड़ा और कुछ लोगों ने तो यहां तक कह डाला कि डाक्टर साहब सोशलिस्ट पार्टी नहीं बनने देंगे। डा० साहब की बात का अर्थ तब हम समझ पाये जब हमने स्वयं देखा कि ईमानदार, सत्ता-विहीन, देश भक्त, क्रान्तिकारी, स्वतंत्रता सैनानी भी सफेद गांधी टोपी, खद्दर का कुर्ता-धोती पहन कर, बस में ज़ाते आते गाली खा रहे हैं और उनके अनुनय विनय को सुनना तो दूर, बस के सभी यात्री एक स्वर से खद्दरधारी-गांधी टोपी वालों को बुरा-भला कह रहे हैं। गांधी जी ने स्वयं कभी गांधी टोपी या खद्दर की ड्रेस पहना हो यह मैं नहीं जानता। एक लोटा गंदा पानी पूरे एक बड़े तालाब के स्वच्छ पानी को खराब कर देता है। तालाब के पानी का कोई दोष न होते हुए भी उसे गंदा तालाब ही कहते हैं। डा० लोहिया में इस बात की क्षमता थी कि उन्होंने पहले ही इसके परिणामों का ज्ञान कर लिया था।

वे भविष्य द्रष्टा थे। वर्षों बाद घटने वाली घटनाओं को वे पहले ही देख लिया करते थे। जब उन्होंने भारत-पाकिस्तान का फेडेरेशन बनाने की बात कही थी तो लोगों ने उन्हें

'यूटोपियन' कहा था और बात को मूर्खतापूर्ण कहकर टाल दिया था। वर्षों पूर्व जब उन्होंने भविष्यवाणी की कि पूर्वी पाकिस्तान तीन कारणों से पाकिस्तान में नहीं रहेगा और उसका अलग होना निश्चित है तो उस समय उन पर देश के अखबार वालों ने जिस प्रकार के गंदे आरोप लगाये, उन्हें भुलाया नहीं जा सकता। वैसे मेरी निश्चित राय है कि इस देश के अधिकतर अखबार ही नहीं, बड़ी संख्या में अखबार नबीस भी देश में किसी भी प्रकार के बुनियादी परिवर्तन के विरोधी हैं। पहले अंग्रेज-परस्त रहे, बाद में नेहरू खानदान-परस्त और अब ऊंची जात व सम्प्रदाय-वाद परस्त। कुछ समय तक भले ही कोई पत्रकार लालच से परे रहे पर अंत में वह उसके वशीभूत हो ही जाता है। वैसे पत्र, पत्रकारिता व मीडिया साधारणतः ऊंची जात के ही कब्जे में हैं। यह निसंशय है कि कुछ इमानदारी का टिमटिमाता दीया जलाये हुए हैं।

डा० लोहिया ने जो तीन कारण गिनाये थे, उसी बुनियाद पर बंगला देश की आज़ादी का संघर्ष चला "पूर्वी पाकिस्तान की भाषा पश्चिमी पाकिस्तान से एकदम भिन्न है", पूर्वी-पाकिस्तान व पश्चिमी पाकिस्तान में 1500 कि० मी० की दूरी है। पश्चिमी पाकिस्तान पूर्वी पाकिस्तान के शोषण पर जीवित है। जिस समय डा० लोहिया ने यह बात कही उस समय पाकिस्तान ही नहीं भारत की सरकार ने भी डा० लोहिया को गैर जिम्मेदार कहा था। जब सन् 1970-71 में स्थिति बदली और बंगला देश में उग्र आंदोलन चला तब उस स्थिति से फायदा व श्रेय वे ही लोग उठाने लगे जिन्होंने डा० लोहिया को गैर जिम्मेदार व पागल कहा था। पार्टी ने नागपुर सम्मेलन के बाद तथा हैदराबाद सम्मेलन में दल के पुनर्गठन के पश्चात तो हम सभी क्रान्तिकारी, वैज्ञानिक समाजवादी डा० लोहिया के विचारों और कर्म-क्रान्तिकारिता के आगे अपने को एक दम बौने व शून्य महसूस करने लगे और डा० लोहिया के अनुयायी ही नहीं अनन्य भक्त हो गये।

रूस की कम्युनिस्ट क्रान्ति के लगभग 70 वर्ष बाद जो स्थिति रशिया और संपूर्ण यूरोप में पैदा हुई है इसकी कल्पना आज से 35-40 वर्ष पूर्व करना डा० लोहिया की बुद्धि के लिये ही संभव था। पूंजीवाद और साम्यवाद के उत्पादन के तरीके और साधन एक जैसे हैं अतः दोनों ही एशिया के उन मुल्कों के लिये और विशेष रूप से भारत के लिये जहां जमीन कम, आदमी ज्यादा, पूंजी कम और विकास की आवश्यकता अधिक है अपने उद्देश्य में असफल ही साबित होंगे। छोटी मशीन, अहिंसा, सत्याग्रह, सिविल-नाफरमानी के ज़रिये मनुष्य के मनुष्य द्वारा, राष्ट्र के राष्ट्र द्वारा शोषण की समाप्ति, रंग-भेद, जाति-भेद से छुटकारा, मर्द और औरत की बराबरी, सब को एक वोट के आधार पर "वर्ल्ड-गवर्नमेंट" आदि आदि उनके सप्तक्रान्ति के सिद्धान्त को आज दुनिया में धीरे-धीरे मान्यता मिल रही है, पर उनके संसार से विदा होने के बाद। डा० लोहिया ने ठीक ही कहा था "लोग मेरी बात सुनेंगे, लेकिन शायद मेरे मरने के बाद।"

डा॰ लोहिया इस शताब्दी के सबसे मौलिक विचारक थे। उनका केवल व्यक्तित्व ही नहीं, कर्म भी बहुआयामी था। राजनीति, समाजशास्त्र, साहित्य, इतिहास, धर्म कोई विषय ऐसा नहीं जिसे उन्होंने अछूता छोड़ा हो। देश की आज़ादी की लड़ाई से लेकर अपनी मृत्यु के समय तक वे अपने सिद्धांतों के लिये जूझते ही रह गये।

डा॰ लोहिया केवल क्रान्तिकारी विचारक और कर्मयोगी ही नहीं थे वे एक सच्चे इंसान, एक मित्र, एक पथ प्रदर्शक, गरीब परवर, महिलाओं के प्रति उच्चतम सम्मान की भावना रखने वाले तथा मर्द और औरत में किसी भी प्रकार के भेद भाव को बर्दाश्त न करने वाले एक अनूठे व्यक्तित्व के इंसान थे। उनकी हर बात अनूठी थी।

एक बार डा॰ लोहिया लखनऊ आने वाले थे। हम लोग उनको लेने स्टेशन गये। उन दिनों आज जैसी मोटर गाड़ियों का काफिला तो दूर एक मोटर की व्यवस्था भी संभव नहीं थी। आम तौर पर रिक्शा या तांगा (घोड़ा गाड़ी) किराये पर ले लिया जाता था। डा॰ लोहिया रिक्शा पर नहीं बैठते थे। उनके विचार में रिक्शा पर बैठना पाप था। वे कहा करते थे "आधा घोड़ा, आधा इंसान" बना दिया गया है इस रिक्शा वाले को, और रिक्शा पर बैठने से इंकार कर देते थे। अतः उनको तांगे पर ही बैठा कर हम लोग अपने निवास पर लाया करते थे। उस दिन भी हम उनको तांगे पर न्यू-हैदराबाद वाले आचार्य नरेन्द्र देव जी के निवास पर ले आये। आचार्य जी ने उनका बड़े प्रेम से स्वागत किया और उनको उनके ठहरने के कमरे में ले गये। बाद में नाश्ते के टेबल पर चाय-नाश्ता करते हुए आचार्य जी ने उनके हाथ की एक किताब डा॰ लोहिया की तरफ बढ़ा कर पूछाः "डाक्टर यह किताब पढ़े हो, नई निकली है।" आचार्य जी जब कोई बात पूछते तो उनकी आंखे आमतौर पर मिस्किल हंसी से भरी होती। डा॰ लोहिया ने किताब का ऊपरी पृष्ठ देखा और तुरंत कहा "नरेन्द्र देवजी, इस किताब का मानुस्क्रिप्ट मैं पढ़ चुका हूं।" हम- कई लोग जो टेबल के इर्द-गिर्द खड़े थे, विस्मित नज़रों से देख रहे थे। कमरे से जब डा॰ साहब उठकर चले गये, तब आचार्य जी ने कहा "देखो, तुम लोग नहीं जानते डाक्टर राजनीति में नहीं होते तो इनकी विद्धता से दुनिया चकाचौंध होती। इसमें एक खराबी है। यह एक स्थान पर स्थिर होकर बैठते नहीं, अन्यथा इनके लिखने से दुनिया को, समाजवाद को, बड़ा फायदा होता और इसीलिये तो युसुफ मेहरअली साहब कहा करते थे, "राम मनोहर लोहिया को, मेरा मन करता है, एक कमरे में बंद कर दिया जाये और कलम, कागज, खाना, चाय और सिगरेट-555 देकर, तब तक कमरे से बाहर नहीं निकलने दिया जाये जब तक वह एक पूरी किताब लिखकर तैयार न कर दें।"

आचार्य जी उस जमाने में हज़रतगंज के पास न्यू-हैदराबाद में ही रह रहे थे।

लखनऊ विश्वविद्यालय का अपना सरकारी आवास उप-कुलपति निवास उन्होंने विद्यार्थियों के कष्टों को देखते हुए, "होस्टल" में परिणित कर दिया था।

आचार्य जी जब भी लोहिया जी को संबोधित करते, डा० साहब ही कहते, परंतु डा० साहब उन्हें नरेन्द्र देव जी कह कर ही पुकारते। मुझसे रहा नहीं गया और जब उनके साथ मैं पानदरीबा वाले कार्यालय जा रहा था तो मैंने उनसे हिम्मत करके, डरते डरते, पूछ ही लिया। मैंने कहा "डाक्टर साहब, आप आचार्य जी से उमर में छोटे होते हुए भी वे आपको डाक्टर साहब संबोधित करते हैं परंतु आप उनको नरेन्द्र देव कहते हो ऐसा क्यों?" डा० साहब ने जो जवाब दिया उसे सुनकर मैं अपने अज्ञान पर केवल रहम ही खा सकता था। डा० साहब बोले " कहो। तुम्हारे पिताजी या बड़े भाई यदि उप-कुलपति अथवा राष्ट्रपति हो जायें तो क्या तुम उनको उनके पद-नाम से पुकारोगे? भले ही वे तुम्हारा मन बड़ाने के लिये, तुम्हें सम्मान पद नाम से बुलावें।"

ऐसे ही एक बार डा० लोहिया एक कार्यक्रम के संबंध में गोरखपुर आये थे। हमने उनके ठहरने की व्यवस्था रेलवे के रिटाइरिंग रूम में की थी। सुबह नाश्ता करने के लिये मैं अन्य साथियों के साथ उन्हें रेलवे रेस्टरां में ले गया। डा० साहब और कुछ प्रमुख साथियों को जिसमें सभी लगभग सफेद पोश थे, एक टेबल पर बैठाकर रेस्टरां के बेयरा को नाश्ते में टोस्ट, चाय आदि लगाने के लिये कहकर मैं पार्टी के देहात से आये हुए अन्य साथियों को रेस्टरां के अंदर आने से रोकने के लिये उनके बाहर ही बैठने की व्यवस्था करने में व्यस्त हो गया। मैं उन्हें दूर ही बैठाना चाहता था। मनशा यह थी कि डा० साहब को नाश्ता करने में कोई बाधा न पहुंचे। परंतु कुछ लोग रेस्टरां के दरवाजे पर रखे बैंच पर ही बैठ गये, ताकि वे डा० साहब का ठीक से दर्शन कर सकें। यह उनकी स्वाभाविक इच्छा थी। परंतु मेरी परेशानी यह थी कि अधिक लोगों को होटल का नाश्ता कराने की न तो मेरी क्षमता थी और न ही मैं उनको गन्दे-मैले-कुचैले कपड़ों में रेस्टरां में अंदर ले जाना चाहता था। जब तक मैं पुनः डा० साहब के नज़दीक पहुंचता, डा० साहब अपने एक हाथ में संपूर्ण टोस्ट की प्लेट व दूसरे हाथ में अपनी प्लेट उठाकर जो लोग बाहर बैठे थे उनके बीच में आकर बैठ गये। जो टोस्ट थे वह सबको बांट दिये। अंदर बैठे लोगों को केवल चाय ही नसीब हुई। अर्थ हम सब समझ गये थे। डा० साहब ने हमें बता दिया था कि ग्रामीण कार्यकर्ता को भी नीची निगाह से मत देखो। उसके मैले कुचैले कपड़ों से नफरत न करो।

इस घटना के बाद हम लोगों की हिम्मत किसी के साथ कभी भी भेद-भाव करने की नहीं हुई। औरतें हों या हरिजन, मुसलमान हों या हिन्दू, गरीब हों या अमीर, उनकी दृष्टि में सब बराबर थे, और सबको बराबर का सम्मान वह देते थे।

ऐसे थे डा० लोहिया। छोटी से छोटी बात भी उनकी दृष्टि से ओझल नहीं होती थी। ऐसी हज़ारों घटनायें हैं जिनका ज़िक्र किया जाये तो एक पूरा ग्रंथ भी उनके लिये कम पड़ेगा। आज लाखों समाजवादी कार्यकर्ता ही नहीं, यह देश भी उनके अभाव को महसूस कर रहा है। डा० लोहिया अमर हैं, अमर रहेंगे। उनकी उपयोगिता व उनके विचार हर युग के लिये समयोचित रहेंगे।

8

डा॰ राममनोहर लोहिया—एक महान समाजवादी

—सुरेन्द्र नाथ द्विवेदी

डा॰ राममनोहर लोहिया एक कामरेड और नेता थे। हमने तीन दशकों से अधिक समय तक समाजवादी आन्दोलन में एक साथ काम किया था। समाजवादी आन्दोलन के एक बहुत ही नाजुक दौर में उनका असामयिक निधन सम्पूर्ण राष्ट्र के लिए एक अपूरणीय क्षति थी।

हमारी पीढ़ी में से वे ही एक ऐसे व्यक्ति थे जो महानता के उच्च शिखर तक पहुंचे। इस देश के बहादुर स्वतंत्रता सेनानियों और राष्ट्रीय नेताओं में उनका नाम सदा याद किया जायेगा। ब्रिटिश राज की तुलना में कांग्रेस शासन के दौरान वे कहीं अधिक बार कारावास गये। वे एक महान योद्धा थे जो कहीं भी हो रहे अन्याय को सहन नहीं कर सकते थे और उसका पूरी ताकत के साथ विरोध करते थे चाहे इसके लिए अकेला ही क्यों न आगे आना पड़े। वे तब तक आराम करने को तैयार न थे जब तक कि भारत की भूमि से ब्रिटिश साम्राज्यवाद और सामन्तवादी व्यवस्था के आखिरी अवशेष नहीं मिट जाते। उन्होंने कैलाश मानसरोवर से लेकर कन्याकुमारी तक एक स्वतंत्र भारत की संकल्पना की थी और इसीलिये उन्होंने पुर्तगाली साम्राज्यवाद का सशक्त विरोध किया। वे पहले भारतीय थे जिन्हें गोवा में कैद किया गया। उन्होंने पूर्वोत्तर क्षेत्र में तथाकथित 'इनर लाइन' प्रतिबंध का विरोध किया था और उन्हें मणिपुर में कारावास हुआ। उनके विचार क्रांतिकारी थे और महात्मा गांधी के बाद, स्वतंत्र भारत में वे अहिंसात्मक आन्दोलन के प्रतीक बन गये थे।

बर्लिन विश्वविद्यालय से डाक्टरेट की उपाधि प्राप्त करने के बाद भारत लौटने पर वे समाजवादी आन्दोलन में शामिल हो गये। उन्होंने जर्मनी में स्वयं अपनी आंखों से नाजी आन्दोलन के अत्याचार देखे जिसके कारण उनके मन में हिंसा तथा नाजीवाद के प्रति बहुत घृणा पैदा हो गई।

उन्होंने भारतीय समाजवाद को एक नई अवधारणा और दर्शन देने के लिए कार्य और कड़ा संघर्ष किया। कम्युनिस्टों के साथ संयुक्त मोर्चे की नीति के विरुद्ध विद्रोह की आवाज उठाने वाले समाजवादी नेताओं में वह पहले नेता थे। तत्पश्चात् कांग्रेस समाजवादी

पार्टी द्वारा इसका अनुसरण किया गया। उस दृष्टि से वे एक परम्परावादी समाजवादी नहीं थे और वे मार्क्सवाद तथा साम्यवादी एकतंत्रवाद के विरोधी थे। वे चाहते थे कि भारतीय समाजवादी आन्दोलन मार्क्स की विचारधारा और कार्यप्रणाली से मुक्त रहे। अहिंसा के गांधीवाद सिद्धान्त पर उनका बहुत अधिक विश्वास था और उन्होंने गांधीवादी और मार्क्स की विचारधाराओं के बीच संतुलन बिठाने में अहम भूमिका अदा की। उनका सर्वाधिक महत्वपूर्ण योगदान पूंजीवाद प्रणाली के विरुद्ध समाजवादी पार्टी को सर्वाधिक प्रभावशाली हथियार बनाने के लिए कार्यप्रणाली को नया अर्थ और प्रक्रिया प्रदान करना था। वे कहा करते थे कि साम्यवाद और पूंजीवाद एक ही सिक्के के दो पहलू हैं जो मानव स्वतंत्रता और अधिकारों के केन्द्रीयकरण और दबाने में विश्वास रखते हैं। आचार्य नरेन्द्र देव और जयप्रकाश नारायण जैसे मार्क्सवादियों को भी अन्ततः कम्युनिस्टों से अलग होना पड़ा था।

इस प्रकार समूचा समाजवादी आन्दालन इन तीन नेताओं के विचारों और कार्यप्रणाली से प्रभावित हुआ था। समाजवादियों ने एक सकारात्मक वस्तुपरक दृष्टिकोण का विकास किया, स्वयं को पूरी तरह से साम्यवादी एकतंत्रवाद से अलग कर लिया और लोकतांत्रिक समाजवाद इसकी विचारधारा, लक्ष्य तथा उद्देश्य बन गया। भारतीय समाजवादियों के लिए यह महान गौरव की बात है कि न केवल सोवियत रूस तथा पूर्वी यूरोप के देशों में साम्यवादी साम्राज्य ढह रहा है अपितु धीरे-धीरे इसका स्थान लोकतांत्रिक समाजवाद ले रहा है। इस प्रकार हमारे कथन की पुष्टि हुई है। इस समय यदि जे० पी०, लोहिया और आचार्य जी जीवित होते, तो पूरा देश उनका सम्मान करता और मुझे विश्वास है कि यदि उनमें सबसे छोटे लोहिया जी जीवित होते तो पूरी भारतीय राजनीति ने एक नया क्रांतिकारी मोड़ ले लिया होता।

लोहिया जी के दृढ़ रवैये और अग्रणी भूमिका का ही परिणाम था कि भारतीय समाजवादियों ने अपनी अन्तर्राष्ट्रीय नीति का विकास किया। वे विदेशी मामलों में तीसरे विश्व के देशों के पक्ष में बोलते थे और उस नीति के अनुरूप अन्तर्राष्ट्रीय समाजवादी नीति का निर्धारण हुआ। न तो हम समाजवादी अन्तर्राष्ट्रीय देशों के साथ थे और न ही साम्यवादी अन्तर्राष्ट्रीय देशों के साथ। किन्तु इन दो संगठनों से स्वतंत्र एक स्वतंत्र एशियाई समाजवादी मंच बनाया जाना था। लोहिया जी लगभग सभी दक्षिण एशियाई देशों में गए, उन्होंने समाजवादी दलों के साथ सम्पर्क स्थापित किया और इसके परिणामस्वरूप 1953 में रंगून में एशियाई समाजवादी सम्मेलन हुआ था। जयप्रकाश नारायण ने इस सम्मेलन का उद्घाटन किया था। यह कोई साम्यवाद विरोधी आन्दोलन नहीं था, अपितु एशियाई देशों के उन समाजवादियों का सम्मेलन था जो लोकतांत्रिक समाजवादी विचारधारा में

विश्वास रखते थे। एशियन सोशलिस्ट ब्यूरो ने कुछ वर्षों तक कार्य किया किन्तु एशियाई देशों और भारत में समाजवादी दलों के कमजोर पड़ने पर इसकी भी स्वाभाविक मृत्यु हो गयी। मैं यहां यह कहना चाहूंगा कि लोहिया जी में समाजवादी आन्दोलन को सकारात्मक अन्तर्राष्ट्रीय और राष्ट्रीय छवि प्रदान करने की दूरदर्शिता थी। मुझे विश्वास है कि लोकतांत्रिक समाजवादी आदर्श के विकास में रुचि रखने वाले लोगों को समाजवादी आन्दोलन द्वारा सृजित साहित्य से बहुत लाभ पहुंचेगा।

निस्संदेह, लोहिया जी एक प्रतिभावान, मौलिक चिन्तक और एक महान समाजवादी सेनानी थे, परन्तु वे समाजवादी आन्दोलन में एकता बनाये रखने में बुरी तरह असफल रहे। मैं इस बात से सहमत नहीं हूं कि समाजवादी बन्धुओं में कोई आधारभूत और मूल मतभेद थे। परन्तु व्यक्तिगत कलह, असहिष्णुता और अधैर्य जैसे कारणों से समाजवादी बंट गये। यह एक बहुत बड़ी त्रासदी है कि आज समाजवादी संगठन का एक स्मृति चिन्ह भी शेष नहीं है। आज समाजवाद का सम्पूर्ण ढांचा बिखर गया है और अब ऐतिहासिक दस्तावेज का एक हिस्सा बन कर रह गया है।

9

लोहिया दर्शन में करुणा का महत्व

—धनिक लाल मंडल

महान समाजवादी नेता, दार्शनिक एवं चिन्तक डाक्टर राममनोहर लोहिया जी के बहुआयामी एवं जाज्वल्यमान व्यक्तित्व से सम्बन्धित अनेक ऐसी स्मृतियां हैं जो आज भी मेरे मन में तरोताज़ा हैं। इन स्मृतियों एवं संस्मरणों से उनकी शख्सियत के कतिपय उज्जवल एवं देदीप्यमान पक्ष उद्घाटित होते हैं। यहां मैं डाक्टर साहब से सम्बन्धित अपने जिस संस्मरण का उल्लेख कर रहा हूं, उससे यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि उनके जीवन-दर्शन में करुणा एवं प्रेम का कितना अधिक महत्व था।

शेर घाटी, सोशलिस्ट पार्टी के वार्षिक सम्मेलन की समाप्ति पर जब मैं डाक्टर राममनोहर लोहिया को विदा कर रहा था तो उन्होंने कहा था, "धनिक लाल, मैं बोध गया की डोरमेटरी में कुछ दिन रूकूंगा। सम्मेलन का हिसाब-किताब चुकता कर तुम वहीं आ जाना। मैं तुम्हारा इन्तजार करूंगा।"

अतः मैंने जल्दी-जल्दी सम्मेलन का हिसाब तैयार कर उसे स्वागत समिति को सौंप दिया और दूसरे दिन दोपहर बस से बोध गया पहुंचा। जिस समय मैं डोरमेटरी में पहुंचा, डाक्टर साहब सदा की भांति बिस्तर पर ध्यान-मग्न लेटे हुए थे और रोमा जी तथा अन्य कुर्सी पर बैठे हुए थे। दरवाजा खोल कर मेरे अन्दर दाखिल होते ही रोमा जी बोल उठीं— "डाक्टर साहब, डाक्टर साहब, धनिक लाल आ गया है।" डाक्टर साहब ने आंखे खोलीं और एक कुर्सी की ओर इशारा करते हुए कहा, "बैठो"।

फिर रोमा जी को कहा "धनिक लाल को कुछ खिलाओ-पिलाओ, यह शेर घाटी से आ रहा है" और फिर उन्होंने आंखें मूंद लीं। तत्पश्चात् थोड़ी देर में वहां से अन्य सभी तो चले गये और मैं ही अकेला रह गया। डाक्टर साहब ने पुनः आंखें खोलीं और बोले "धनिक लाल, पंडित जवाहर लाल कहते हैं मुझे राजनीति करनी नहीं आती। सो मैं राजनीति थोड़े ही कर रहा हूं, मैं तो बुद्ध की तरह धर्म नीति कर रहा हूं, जन-जागरण कर रहा हूं। आदर्शों का प्रचार कर रहा हूं।"

मैंने कहा "डाक्टर साहब पंडित जी बात ठीक ही कह रहे हैं।" "सो कैसे"? उन्होंने

पूछा। उत्तर में मैंने कहा "आप एक साथ अंग्रेजी हटाओ, जाति तोड़ो, दाम बांधों, हिमालय बचाओ, अकेला इन्सान सत्याग्रह करो, चरित्र-निर्माण करो आदि-आदि का आह्वान करते हैं जिससे वे सभी शक्तियां एकजुट हो जाती हैं जिनका देश और दुनिया पर शासन है। हम लोगों को कहीं से कोई मदद नहीं मिलती। आखिर अपना-अपना खाकर अपने-अपने घर से कब तक लड़ेंगें? यही कारण है कि सम्मेलन में आपके विरुद्ध इस प्रकार का दृश्य प्रकट होता है जिससे हम लोगों को बहुत दुःख होता है और शर्मसार होना पड़ता है। सम्मेलन में मारपीट की नौबत आ जाती है।"

इस पर डाक्टर साहब बोले, "अब तुम मेरे गुरु हो गये लगते हो।" तब मैंने डाक्टर साहब से क्षमा प्रार्थना की और कहा कि मैं तो सीखने के लिये ही आपसे प्रश्न कर रहा हूं।

मेरे निवेदन की प्रतिक्रिया में डाक्टर साहब बोले, "तुम जो प्रश्न कर रहे हो, वह मैं भी जानता हूं। फिर भी मैं समझ-बूझ कर सप्त क्रान्ति के लिये या सम्पूर्ण क्रांति के लिये आह्वान कर रहा हूं। वह इसलिए कि आंशिक क्रान्ति का अब समय नहीं है। आंशिक क्रान्ति से समाधान होने वाला नहीं है। एक क्रान्ति के बाद दूसरी क्रान्ति की आवश्यकता महसूस होने लगती है। इसलिए अब सम्पूर्ण क्रांति ही समाधान है। अतः मैं अब उसी का आह्वान कर रहा हूं।"

जिज्ञासा भाव से मैंने पूछा, "हम लोग जो आपको अपना गुरु, मित्र और मार्गदर्शक मानते हैं वे क्या करें"? उन्होंने कहा काश! कि उनके पास धन होता तो वे पंडित नेहरू को राजनीति करना किसे कहते हैं, यह दिखा सकते। उस पर मैंने कहा कि डाक्टर साहब यदि आपका आदेश हो तो हमारे जैसे आपके शिष्य पैसे जुटा सकते हैं। समाज में प्रचलित दहेज प्रथा का उपयोग कर दहेज लेकर आपको वह पैसा दे सकते हैं, यदि आपका आदेश हो तो।

इस पर डाक्टर साहब जो अब तक बिस्तर पर लेटे हुए थे उठकर बैट गये और उत्तेज़ित हो ज़ोर से बोलने लगे, "धनिक लाल ऐसा कभी नहीं करना। अधर्म पर धर्म की मुहर लगाने से कोई लाभ नहीं होता। इससे धर्म और अधर्म सभी नष्ट हो जाते हैं।"

मैंने इस घटना का उल्लेख इसलिये किया है कि यह उनके व्यक्तित्व को उजागर करता है और उनकी शिक्षा को भी। डाक्टर साहब एक पूर्ण रूप से उन्मुक्त व्यक्तित्व के

स्वामी थे। सांसारिक अर्थ में कंचन और कामिनी ने कभी उनको अपने मोह-पाश में नहीं बांधा था। लेकिन प्रचलित अर्थ में उनका जीवन नीरस और शुष्क नहीं था। वे सुख और सौंदर्य के उपासक थे। सुख और सौन्दर्य क्या है तथा उसकी प्राप्ति कैसे की जा सकती है, यही उनके जीवन की खोज की दिशा थी।

अतः डाक्टर साहब पल और प्रवाह, पथ और पथिक, साधन और साध्य की बात करते थे। धर्म और राजनीति को जोड़ने की बात करते थे। सांस्कृतिक क्रांति की बात करते थे। डाक्टर साहब का मानना था कि वर्तमान संकट—विश्वव्यापी संकट, इस सदी का संकट सांस्कृतिक संकट है। बीमारी का मूल यही है जो भिन्न-भिन्न स्थितियों में भिन्न-भिन्न रूप में प्रकट होता रहता है।

पूंजीवादी सभ्यता की प्रेरणा मुनाफा है अर्थात् उसकी प्रेरक शक्ति कंचन है। यह प्रतिद्वंदिता को जन्म देती है। प्रतिद्वंदिता हिंसा और तजन्य बुराइयों को जन्म देती है। यह सभ्यता सुख और सौंदर्य की स्थापना में सहायक नहीं बन सकती, उल्टे हिंसा फैलती जायेगी और हम ध्वंस के कगार पर पहुंच जायेंगे।

इस ध्वंस की समझ से प्रसूत उनकी करूणा ही मानव को रास्ता दिखाने के रूप में प्रकट होती थी। करूणा जो प्रेम का सर्वोच्च रूप है जब प्रकट होती है तो वह समता का रूप तो होती ही है उसका अपना ही विवेक होता है। डाक्टर साहब इस अर्थ में विशिष्ट थे।

10

डा० राममनोहर लोहिया की स्मृति में

— चिन्तामणि पाणिग्रही

वर्ष 1942 में भारत छोड़ो आन्दोलन के ऐतिहासिक क्षणों के दौरान जब डा० राममनोहर लोहिया हमारे स्वतंत्रता संग्राम का भूमिगत होकर संचालन कर रहे थे, तब कलकत्ता में, मैं पहली बार उनके सम्पर्क में आया। यह मेरे लिए सचमुच सौभाग्य और गौरव की बात थी।

मैंने 9 अगस्त, 1942 के ऐतिहासिक दिवस को राष्ट्रीय ध्वज फहराया था, तथा छात्रों को सम्बोधित किया था और उस बैठक के पश्चात रावेनशा कालेज के कार्यालय में तोड़फोड़ की थी, मैं तब रावेनशा कालेज के छात्र संघ का निर्वाचित सेक्रेटरी था। इसके बाद मुझे रावेनशा कालेज, कटक से निष्कासित कर दिया गया और मैं कलकत्ता चला आया, उन दिनों पूरे बंगाल में एक विशेष उत्साह व्याप्त था और कलकत्ता क्रांति की लहर और जन-आन्दोलन से उद्वेलित था। बिहार के स्वर्गीय रामबाबू शाह और मैं साथ-साथ रह रहे थे। वह कलकत्ता में भारत छोड़ो आन्दोलन में सक्रिया भाग ले रहे थे और डा० लोहिया के सच्चे प्रशंसक थे। उन्होंने ही डा० लोहिया से मेरी मुलाकात कराई और उनसे मेरा परिचय कराया। भूमिगत रहते हुए ही वह विदेशी संवाददाताओं को साक्षात्कार दिया करते थे और गुप्त कांग्रेस रेडियो के प्रसारण-कार्य का संचालन करते थे।

उनके साथ हुई मेरी पहली मुलाकात का ही मुझ पर गहरा प्रभाव पड़ा। उनकी क्रांतिकारी विचारधारा मौलिक और प्रेरक थी। वह सच्चे देशभक्त थे किन्तु उनका दृष्टिकोण बड़ा व्यापक था। उस समय वह बुद्धिजीवियों के लिए एक व्यापक मंच तैयार करने का प्रयास कर रहे थे। "खोज परिषद" की स्थापना उन्हीं के विचार का परिणाम थी। उनसे प्रेरित होकर मैंने "जनता" पत्रिका में, जो उन दिनों समाजवादी विचारधारा की एक अग्रणी पत्रिका समझी जाती थी, लेख लिखना आरम्भ कर दिया।

डा० लोहिया विद्यासागर कालेज, कलकत्ता के छात्र थे। यह संयोग ही था कि उनके विद्यासागर कालेज छोड़ने के बारह वर्ष पश्चात मैंने अध्ययन हेतु उक्त कालेज में प्रवेश

किया। शायद यह भी संयोग ही था कि वर्ष 1967 में मैं लोक सभा में उनका साथी बना। हां, मैं सत्ताधारी पक्ष में था और वह विपक्ष में थे। फिर भी मेरे लिए उनमें पहले जैसा ही मैत्रीपूर्ण प्रेमभाव रहा। लोक सभा में उनके भाषण प्रहारपर्ण एवं प्रभावशाली होते थे। वह एक उत्कृष्ट आलोचक थे और अपने आदर्शों एवं सिद्धांतों के प्रति कभी समझौता नहीं करते थे और जब वह सभा में बोलते थे, तो अपने प्रहारों और अकाट्य तर्कों एवं तथ्यों से अपने विरोधी को परास्त कर देते थे।

यह एक और संयोग था कि मैं मणिपुर आया, जो उनके कार्यकलापों का केन्द्र था। उन्होंने मणिपुर में अनेक युवकों को समाजवादी विचारधारा की प्रेरणा दी। उन्होंने मणिपुर में लोकप्रिय सरकार पुनः बनाए जाने हेतु तत्कालीन लोकतांत्रिक आन्दोलन के इतिहास में अपनी अमिट छाप छोड़ी। वर्ष 1954 में प्रजा सोशलिस्ट पार्टी के प्रख्यात नेताओं ने मणिपुर में विधान सभा को पुनः सक्रिया करने के लिए एक आन्दोलन आरंभ किया। कुछ समय के पश्चात यह आन्दोलन कमजोर पड़ने लगा। सत्याग्रहियों का मनोबल बढ़ाने और आन्दोलन को तेज करने के लिए प्रजा सोशलिस्ट पार्टी की नेता स्व० श्रीमती सुचेता कृपलानी ने मार्च, 1955 में मणिपुर का दौरा किया। अदम्य योद्धा, डा० राममनोहर लोहिया वर्ष 1955 में मणिपुर के लिए दौड़े और वहां जाकर उन्होंने आन्दोलन के नेताओं की सहायता करने तथा कार्यकर्त्ताओं के गिर रहे मनोबल को बढ़ाने और मणिपुर के लोगों के प्रजातांत्रिक अधिकारों की बहाली के लिए किए जा रहे आन्दोलन में भाग लिया। भूतपूर्व संसद सदस्य और लोक सभा में मेरे साथी, श्री एल० अचाव सिंह उस समय मणिपुर सत्याग्रह समिति की कार्य-परिषद के चेयरमैन थे।

13 अप्रैल, 1955 को डा० लोहिया और श्री एल० अचाव सिंह सहित छह अन्य समाजवादी नेता उस समय गिरफ्तार कर लिए गए जब वे इम्फाल में बीर टिकेन्द्रजीत पार्क में सार्वजनिक सभा में भाषण देने जा रहे थे। डा० लोहिया और अन्य छह लोग निवारक नजरबन्दी अधिनियम के अन्तर्गत अपराधी ठहराए गए और उन्हें जेल भेज दिया गया। डा० लोहिया ने मणिपुर के न्यायिक आयुक्त के न्यायालय में बन्दी प्रत्यक्षीकरण याचिका दायर की। न्यायालय ने लोहिया को रिहा करने का आदेश दिया और उन्हें छोड़ दिया गया। किन्तु जेल के दरवाजे से निकलते ही उन्हें पुनः गिरफ्तार कर लिया गया और पुनः जेल भेज दिया गया। उनकी गिरफ्तारी का मामला संसद में भी उठाया गया। डा० लोहिया ने न्यायालय अवमान अधिनियम के अन्तर्गत जिला मजिस्ट्रेट तथा इम्फाल केन्द्रीय कारागार के अधीक्षक के विरुद्ध न्यायालय में पुनः याचिका दायर की। इस याचिका पर, न्यायिक आयुक्त ने डा० लोहिया को पुनः छोड़ने का आदेश दे दिया और उसने जिला

मजिस्ट्रेट पर 25/-रुपए का जुर्माना भी किया। लोहिया की रिहाई के साथ ही, धारा 144 भी उठा ली गई। श्री एल० अचाव सिंह जिन्होंने उनके साथ काम किया और जो उनके ही साथ गिरफ्तार भी हुए थे, के शब्दों में डा० लोहिया को मणिपुर से तथा लोकतांत्रिक अधिकारों की बहाली के लिए वहां किए गए संघर्ष से इतना अधिक लगाव था कि उन्होंने इससे अपना व्यक्तिगत सम्बन्ध जोड़ लिया था। वह मणिपुर को सिंहद्वार और भारतीयता की अन्तिम सीमा-चौकी कहा करते थे।

हमें डा० लोहिया की स्मृति को संजोये रखना चाहिए। क्योंकि संकट की घड़ी में उनकी स्मृति से हमें अदम्य साहस प्राप्त होगा जिससे हम उन सभी चुनौतियों का सामना कर सकेंगे जिनसे हमारे देश की एकता और अखंडता को खतरा है।

11

डा० राममनोहर लोहिया और समाजवाद

—बी० सत्यनारायण रेड्डी

डा० राममनोहर लोहिया हिन्दुस्तान की आज़ादी और समाजवादी आन्दोलन के महान व्यक्तियों में प्रमुख हैं। वह दलितों, पीड़ितों तथा शोषितों के मसीहा तथा किसानों, मजदूरों और महिलाओं के शुभ-चिन्तक के रूप में सदैव प्रसिद्ध रहे। वास्तव में डा० लोहिया ने समाज सेवा और समाजवाद की स्थापना को अपने जीवन का लक्ष्य बनाया था, जिसके लिए वे जीवन-पर्यन्त संघर्षरत रहे। चाहे वह अनतर्राष्ट्रीय अथवा राष्ट्रीय ग़ैर बराबरी हो या ग़रीबी, बेरोजगारी अथवा अन्याय के विरुद्ध संघर्ष का मामला—वे अदम्य साहस और आत्म विश्वास के साथ जंग करते रहे तथा राष्ट्र को एक नयी दिशा देने तथा देशवासियों में एक नयी स्फूर्ति एवं चेतना जागृत करने के उद्देश्य से सदैव प्रयासरत रहे। उन्होंने पीड़ित मानवता के समग्र कल्याण के लिए कृत संकल्प होकर जब कार्यक्षेत्र में कदम रखा तो कभी पीछे मुड़कर नहीं देखा। किसी से कभी कोई समझौता नहीं किया। पद लोलुपता हो अथवा कैसा ही प्रलोभन, वे कभी अपने "समाजवाद" के एक मात्र लक्ष्य से कदापि विचलित नहीं हुए।

उत्तर प्रदेश में अकबरपुर (फैजाबाद) में 23 मार्च, 1910 को उनका जन्म हुआ। उन्होंने बम्बई तथा कलकत्ता में प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त करने के बाद जर्मनी जाकर अर्थशास्त्र में पी० एच० डी० की डिग्री ली और फिर राजनीति के रणक्षेत्र में ही आजीवन समर्पितभाव से निमग्न हो गये। हालांकि इससे पूर्व सौलह वर्ष की आयु में ही वे कांग्रेस अधिवेशन में भाग ले चुके थे। जर्मनी से वापसी पर राजनीति में सक्रिय डा० लोहिया ने विदेश-नीति निर्माण-कार्य में सबसे पहले देश का मार्गदर्शन किया जिससे उनकी विद्वता का सिक्का लोगों के दिलों पर जल्द ही बैठ गया। उन्होंने स्वतंत्रता संग्राम में बड़ी निर्भीकता एवं सक्रियता से भाग लिया और 1938 के बाद कई बार बन्दी बनाये गये। केवल इतना ही नहीं, इनको आज़ाद भारत में भी समाजोत्थान के लिए निरन्तर संघर्षरत रहने पर अनेक बार बन्दी बनाया गया। लेकिन वह समाजवाद के लक्ष्य की प्राप्ति के लिए मैदान में हमेशा डटे रहे।

डा० राममनोहर लोहिया को आमतौर पर लोग यद्यपि एक राजनीतिज्ञ के रूप में ही

याद करते हैं, किन्तु उनकी समस्त गतिविधियों और क्रियाकलापों में समाजवादी चिन्तन स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। वास्तव में वे एक ऐसे महान सामाजिक चिन्तक थे जिनके हृदय में वर्तमान युग का कल्याण ही नहीं, भावी भारत को एक "आदर्श देश" बनाने की प्रबल इच्छा भी थी। वे गांधी और नेहरू के साथ काफी दिनों देश हित में पूर्ण निष्ठा और लगन के साथ काम करते रहे। हालांकि उन्होंने अपने समाजवादी विचारों के फलस्वरूप समाज में अपनी एक विशिष्ट पहचान बनाई थी। यही कारण है कि "समाजवाद" के प्रश्न पर कतिपय राष्ट्रीय नेताओं में जब मतैक्य नहीं रहा तो उन्होंने श्री जय प्रकाश नारायण, आचार्य नरेन्द्र देव, अशोक मेहता, अरुणा आसिफ अली तथा अच्युत पटवर्धन जैसे प्रख्यात समाजवादियों के साथ कांग्रेस पार्टी का परित्याग कर सोशलिस्ट पार्टी का गठन किया। इस पार्टी के उद्देश्य के बारे में डा० लोहिया कहा करते थे कि सोशलिस्ट पार्टी थोड़े बहुत सुधारों से अपने को सन्तुष्ट नहीं कर सकती। उसे तो समाज के पूरे ढांचे में बुनियादी तब्दीलियां लानी हैं, और यह तभी सम्भव है जब इच्छा शक्ति के साथ-साथ नियम और मर्यादा से बंधकर काम करने का विवेक भी हो। इसके बगैर सोशलिस्ट पार्टी का विकास असम्भव है।

वास्तव में डा० लोहिया के समक्ष संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी का एक मात्र मूल उद्देश्य यही था कि जैसे भी हो हिंसा अथवा रक्तपात के बिना भारत में समाजवाद लाया जाये। इसकी स्थापना जनतांत्रिक ढंग से ही होनी चाहिए। इस प्रकार देखा जाये तो यह बात स्पष्ट हो जाती है कि डा० लोहिया समाजवादी आन्दोलन के एक ऐसे पथ-प्रदर्शक थे, जिन्होंने अपनी अद्वितीय चिन्तन शक्ति से इस आन्दोलन को नये क्रान्तिकारी सामाजिक विचार दिये तथा इसे सशक्त और जन-प्रिय बनाने में कोई कसर उठा न रखी। वे एक सृजनशील एवं दूरदर्शी व्यक्तित्व के धनी व्यक्ति थे। उनके समक्ष जब वर्ग-संघर्ष द्वारा वर्ग व्यवस्था को समाप्त करने की बात आयी तो उन्होंने तत्काल स्पष्ट शब्दों में यह उद्घोष किया कि यदि हम वर्ग-संघर्ष करने के साथ-साथ जाति-व्यवस्था का उन्मूलन करने के लिए संघर्ष नहीं करेंगे तो हमारी क्रान्ति अधूरी रह जायेगी। डा० लोहिया प्रायः मार्क्स के वर्ग-संघर्ष और वर्ग-विहीन समाज की विचारधारा को इस सीमा तक और विकसित करने पर जोर देते रहते थे जिसमें पिछड़ी जनता को आगे बढ़ने का पूरा अवसर प्राप्त हो।

डा० लोहिया वास्तव में समानता के जबरदस्त समर्थक थे। उनका यह मत था कि

जाति-व्यवस्था तथा वर्ग-वाद ही भारत के पतन का प्रमुख कारण रहा है। इसी बात को ध्यान में रखकर उन्होंने "जाति-उन्मूलन" आन्दोलन प्रारम्भ किया था। इस सम्बन्ध में उनका यह कथन है कि परम्परागत असमानता पर आधारित समाज में सभी लोगों को केवल समान अवसर प्रदान कर समानता नहीं लायी जा सकती। उन्होंने ज़ोर देकर कहा कि पिछड़े वर्ग के लोगों, महिलाओं, हरिजनों, आदिवासियों और अविकसित अल्पसंख्यकों को जब विशेष अवसर प्रदान किये जायेंगे तभी वे तरक्की के स्तर पर पहुंच पायेंगे।

डा० लोहिया यद्यपि आधुनिक सभ्यता के आलोचक थे, किन्तु समानता लाने के अभियान के अत्यधिक प्रशंसक रहे हैं। भारतीय समाज में व्याप्त आर्थिक असमानता तथा सामाजिक अन्याय को देखकर उनके मन में अपने समाज के ढांचे में क्रान्तिकारी परिवर्तन करने की प्रबल इच्छा जागृत हुई। अतः उन्होंने सात क्रान्तियों को प्रतिपादित किया। उन्हें यह विश्वास था कि यह सातों क्रान्तियां ऐसी हैं जो न केवल भारत को ही बदल देंगी, वरन जब वे सातों क्रान्तियां पूरी हो जायेंगी तो सम्पूर्ण विश्व को ही परिवर्तित कर देंगी। इस सम्बन्ध में उनकी ये निम्नलिखित सात समाजवादी क्रान्तियां विश्व-विख्यात हैं—"(1) नर-नारी समता के लिये, (2) चमड़ी के आधार पर राजनीतिक, आर्थिक और आध्यात्मिक विषमता के विरुद्ध, (3) पुरानी परम्परा के आधार पर पिछड़े और अगड़े समूहों या जातियों में गैर बराबरी के विरुद्ध और पिछड़ों को विशेष अवसर देने के लिए, (4) विदेशी दासता के विरुद्ध और जनतंत्र के आधार पर विश्व सरकार की स्थापना के लिए, (5) निजी सम्पत्ति के अस्तित्व तथा उसमें आशक्ति के विरुद्ध और आर्थिक समता एवं नियोजित उत्पादन के लिए, (6) निजी जीवन में अन्यायपूर्ण हस्तक्षेप के विरुद्ध और लोकतांत्रिक उपायों के लिये, और (7) शस्त्रों के विरुद्ध सत्याग्रह के लिये।" डा० लोहिया ने इन सातों क्रान्तियों को बीसवीं शताब्दी के स्वास्थ्य के लक्ष्य की उपमा दी है। वे क्रूरता, ग़रीबी तथा बेरोजगारी को इस शताब्दी के लिए अभिशाप समझते थे और इसके निदान के लिए सदैव सामूहिक प्रयास पर बल देते थे।

डा० लोहिया वास्तव में समाजवाद और लोकतंत्र में कोई अन्तर नहीं स्वीकार करते थे। उनकी दृष्टि में दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। इस सम्बन्ध में उनका यह मत था कि "समाजवाद, समाजवाद ही रहेगा चाहे उसे हम किसी भी नाम से क्यों न पुकारें, लोकतांत्रिक, क्रान्तिकारी, वैज्ञानिक और चाहे किसी अन्य नाम से या सभी नामों से। यूरोप के समाजवाद ने एक दयनीय अवस्था को लाने का प्रयास किया जब उसने सामाजिक प्रजातंत्र को बदल कर लोकतांत्रिक समाजवाद अपना नाम बदला। यह कुछ नहीं बल्कि उसका समाजवाद की तरफ युद्ध ही था। भारतीय समाजवाद ने भी उसका ही अनुकरण किया और विशेषणों का प्रयोग किया। समाजवाद अपने आप को केवल विशेषण खोजकर अन्य प्रथाओं से अलग नहीं कर सकता। यह केवल अपने कार्यक्रमों एवं

व्यवहारों से ही उसे साबित कर सकता है। समाजवाद के लिए अच्छा होगा कि वह केवल स्वयं को समाजवाद ही माने और कहे और व्याकरण सम्बन्धी विवाद में न पड़े और मानसिक संतुलन उधर न लगाएं। अपने विचारों की अभिव्यक्ति करना ही इसका ध्येय होना चाहिए।"

डा० लोहिया सामाजिक व्यवस्था में पांच लक्ष्यों यथा समता, प्रजातंत्र, अहिंसा, विकेन्द्रीकरण एवं समाजवाद पर आधारित सिद्धांत को केवल भारत के लिए ही नहीं, पूरे विश्व के लिए महत्वपूर्ण और सर्वोपरि समझते थे। समाजवाद क्या है। इसे डा० लोहिया ने बड़े दिलचस्प ढंग से समझाने की कोशिश की है। समाजवाद को परिभाषित करते हुए उन्होंने लोक सभा में 16 मार्च, 1965 को कहा था कि "समाजवाद से एक सीढ़ी नीचे उतरो, उस सीढ़ी का नाम है बराबरी। उस बराबरी से एक सीढ़ी और नीचे उतरो, आर्थिक बराबरी, सामाजिक बराबरी, राजकीय बराबरी, धार्मिक बराबरी। उससे एक सीढ़ी और नीचे उतरो क्या है आर्थिक बराबरी। तब उसके बाद आयेगी समता, सम्पूर्ण समता, सम्भव समता"।

डा० लोहिया एक बड़े देशभक्त थे। लेकिन वे संकुचित एवं संकीर्ण धारणा के राष्ट्रवादी नेता कदापि नहीं थे। उनका दृष्टिकोण तथा विवेक विश्वव्यापी था। उनका यह विश्वास था कि मानव स्वतंत्रता तथा विश्व एकता का लक्ष्य पूंजीवाद अथवा कम्युनिस्ट-व्यवस्था की सहायता से प्राप्त नहीं किया जा सकता। क्योंकि इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये यह दोनों ही उपयुक्त नहीं हैं।

डा० लोहिया निर्देशन तथा प्रशासन में सामन्तशाही भाषा के इस्तेमाल के कट्टर विरोधी थे। वे सामन्तशाही वेशभूषा तथा महल जैसे भवनों के भी बड़े विरोधी थे। उनका इस सिलसिले में यह मत था कि इन सब चीजों की मौजूदगी वास्तव में जन-साधारण की दुर्दशा और दरिद्रता के बिल्कुल विपरीत हैं। डा० लोहिया यह भी कहा करते थे कि इस देश की जनता में नये जीवन का सूत्रपात उस समय तक नहीं हो सकता जब तक विदेशी भाषा का इस्तेमाल जारी रहेगा। ये डा० लोहिया ही हैं जिनसे प्रेरणा प्राप्त कर हमने लोक सभा में तमिल और तेलगू जैसी दक्षिण भारत की भाषाओं का इस्तेमाल शुरु किया। इसके अलावा डा० लोहिया के ही नेतृत्व में मुझ जैसे गैर-हिन्दी भाषाई लोगों ने लोक सभा और इसके बाहर हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओं के इस्तेमाल पर जोर दिया।

लोहिया जी हिन्दु-मुस्लिम एकता के प्रबल समर्थक थे। हैदराबाद में आयोजित एक सभा को सम्बोधित करते हुए उन्होंने 3 अक्तूबर, 1963 को स्पष्ट शब्दों में कहा था कि कोई भी देश तब तक सुखी नहीं हो सकता, जब तक उसके सभी अल्पसंख्यक सुखी नहीं हो जाते। मेरा मतलब सिर्फ मुसलमानों से नहीं, वैसे तो सच पूछो तो मैं मुसलमानों

को अलग से अहमियत देता हूं, पढ़ाई लिखाई में, गरीबी में, हर मायने में, उसी तरह से और लोग भी हैं। हरिजन, आदिवासी वगैरह जब तक ये सुखी नहीं होते, तब तक हिन्दुस्तान सुखी नहीं हो सकता। यह पहला असूल है। इसमें भी मन ठीक करना।

लोहिया जी तो हिन्दू-मुस्लिम एकता के साथ ही पड़ोसी देश पाकिस्तान और भारत की एकता को भी आवश्यक मानते थे। उन्हें इस बात का पूरा यकीन था कि "अगर हम किसी तरह से हिन्दू-मुसलमान के मन को जोड़ पायें, तो शायद हम हिन्दुस्तान-पाकिस्तान के जोड़ने का सिलसिला भी शुरू कर देंगे। मैं यह मान कर नहीं चलता कि जब हिन्दुस्तान पाकिस्तान का बंटवारा एक बार हो चुका है, वह हमेशा के लिए हुआ है। किसी भी भले आदमी को यह बात माननी नहीं चाहिए।"

वास्तव में लोहिया जी "वसुधैव कुटुम्बकम" के आदर्श के मानने वाले थे। तभी उन्होंने देश के बंटवारे को अच्छा नहीं समझा और दुख प्रकट करते हुए कहा कि "मुझे इस बात का बड़ा अफसोस है कि जब इस देश का बंटवारा हुआ, तब मुझ जैसे लोगों ने इसके खिलाफ कोई काम नहीं किया। हम शायद इसको रोक नहीं सकते थे। कुछ भी करते, लेकिन कम से कम उस वक्त जेल में बैठे होते तो मन में एक तसल्ली होती कि हमने इसका कोई मुकाबला तो किया। उस वक्त हम चूक गये। कई कारण थे। एक कारण महात्मा गांधी भी थे। इस बात को अब छोड़ दीजिए। अब सवाल उठता है कि इस देश का जो बंटवारा हो चुका है क्या उसको स्थायी, मुकम्मिल मान कर चले या कोई रास्ता निकल सकता है। जिससे फिर जोड़ शुरू हो। जिन लोगों ने सोचा था कि बंटवारे के बाद आपस में प्रेम रहेगा, शांति रहेगी, हिंसा नहीं होगी, वह तो हो ही नहीं पाया। प्रेम तो हुआ नहीं, बल्कि द्वेष बढ़ गया। खाली फर्क इतना है कि जो द्वेष या मनमुटाव अंदर रहता था, वह अब दो देशों के रूप में आ गया और हिन्दुस्तान और पाकिस्तान की दोनों सरकारों की ताकत का बहुत बड़ा हिस्सा यानी पैसा, प्रचार, विदेश नीति का बहुत बड़ा हिस्सा आज एक दूसरे को बदनाम करने में खर्च हो रहा है।"

उन्होंने दोनों देशों के एक दूसरे पर प्रायः अकारण ही आरोप लगाते रहने की प्रवृत्ति का बड़ी खूबी से विश्लेषण किया है। इन दोनों देशों की सरकारों की आलोचना करते हुए उन्होंने साफ शब्दों में कहा था कि "ये दोनों सरकारें जब कभी चाहती हैं तो लोगों का मन गरमा देती है, फुला देती हैं, उसमें वैर ला देती है, चाहे हो कुछ नहीं, लेकिन सरहद की छिटपुट खबरें हिन्दुस्तान पाकिस्तान दोनों की छाप देने से, पाकिस्तान के अखबार में, लोगों का मन बिगड़ जाता है, ये खबरे सरकारी महकमों से मिलती हैं, अच्छी तरह से अखबार पढ़ना चाहिए। हो सकता है कि हिन्दुस्तान की सरकार कई बार 44 करोड़ लोगों का मन चीन से हटा पाकिस्तान की ओर मोड़ना चाहे, यह चाल हो

सकती है। चीन तो बड़ा शत्रु है, मजबूत शत्रु है। लोग अगर मान लो, गरमा रहे हैं चीन के खिलाफ, सरकार को डर लग रहा है, तो सरकार की तबीयत हो जाती है कि चीन से जरा मन हटा दो और एक छोटे दुश्मन की तरफ मन मोड़ो। इसलिए उस तरह की खबरें दे देती हैं और हम लोग भी बेवकूफ बन जाते हैं। हम लोग चीन की तरफ से मन हटा कर पाकिस्तान की तरफ ले जाते हैं। उसी तरह से पाकिस्तान की सरकार, जब कभी मुसीबत में पड़ती है अपने देश के किसी मसले को हल नहीं कर पाती है, तो हमेशा हिन्दुस्तान को बदनाम करके कि हिन्दुस्तान ने हमें तबाह कर रखा है, हिन्दुस्तान सरकार हमले की तैयारी कर रही है और चेत जाओ। हमारा मुल्क खतरे में पड़ा हुआ है। इससे पाकिस्तानियों का मन वह किसी तरह से गरमा देती है। हिन्दुस्तान पाकिस्तान का मामला, अगर सरकारों की तरफ देखो, तो सचमुच बहुत बिगड़ा हुआ है। इसमें शक नहीं है। और इसलिए अब जो बात मैं कहने जा रहा हूं, वह बड़ी अटपटी लगती है कि जरा-जरा सी बातों को तो बढ़ा दिया है। लड़ रहे हैं। अखबारों में दिन रात एक दूसरे को गरमा रहे हैं और चमड़ी या शरीर फुला रहे हैं।"

इसी लिए लोहिया जी ने पाकिस्तान और हिन्दुस्तान का महासंघ कायम करने की आवश्यकता बताते हुए जनता का आह्वान किया कि "मैं आपसे पाकिस्तान-हिन्दुस्तान के महासंघ की बात करना चाहता हूं। एक देश तो नहीं एक राज नहीं, लेकिन दोनों कम से कम कुछ मसलों में शुरुआत करें। एक की, वह निभ जाये तो अच्छा। और नहीं निभे तो और कोई रास्ता देखा जाएगा। बातों में न सही, लेकिन नागरिकता के मामले में और अगर हो सके थोड़ा बहुत विदेश नीति के मामले में, थोड़ा बहुत पलटन के मामले में, एक महासंघ की बातचीत शुरु हो। मैं साफ कह देना चाहता हूं जो विचार मैं आपके सामने रख रहा हूं, वही मैंने लोक सभा में रखा था यह कहते हुए कि यह विचार सरकार के पैमाने पर आज शायद अहमियत नहीं रखता, मतलब हिन्दुस्तान की सरकार और पाकिस्तान की सरकार से इससे कोई मतलब नहीं, क्योंकि वे सरकारें तो गंदी हैं, इसलिए हिन्दुस्तान की और पाकिस्तान की जनता को चाहिए, अब इस ढ़ंग से वह सोचना शुरु करें.... आप लोग छोटी-छोटी टोलियां बना कर सोच-विचार करना, अगर इसमें से आपने कुछ नतीजा निकाला, जगह-जगह आपने मुहल्लों से टोलियां बनायी, कहीं कोई सियासत खड़ी की, मिली-जुली सियासत जिसमें हिन्दू और मुसलमान दोनों मिल कर आगे चले चाहे वह अंग्रेजी जुबान को मिटाने के लिए, चाहे महंगाई को खत्म करने के लिए, तो अच्छा होगा।"

लोहिया जी जनतांत्रिक एवं समाजवादी व्यवस्था के समर्थक तो थे ही, इसके साथ ही धर्म-निर्पेक्षता को भी एक आदर्श समाज के लिए अनिवार्य समझते थे। वास्तव में धर्म को राजनीति से अलग नहीं किया जा सकता। धर्म और राजनीति के सम्बन्धों के बारे में

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने "यंग इण्डिया" के 27 नवम्बर, 1924 के अंक में लिखा था कि "मेरे लिए धर्म के बिना कोई राजनीति है ही नहीं। धर्म के मायने वह धर्म नहीं जो अंधा श्रद्धा वाला हो और द्वेष और लड़ाई की बात करता हो, बल्कि धर्म के मायने हैं, सहिष्णुता का वैश्विक धर्म। उस राजनीति को दूर रखना चाहिए, जिसमें नैतिकता न हो।"

लोहिया जी का भी इस सम्बन्ध में स्पष्ट कहना था कि "धर्म और राजनीति के दायरे अलग अवश्य हैं, पर दोनों की जड़े एक हैं।" आवश्यक है कि धर्म और राजनीति के मूलभूत स्वरूप को समझा जाए। धर्म और राजनीति का अविवेकी मिलन दोनों को भ्रष्ट कर देता है। उनके शब्दों में:

> .....(वास्तव में) "धर्म दीर्घकालीन राजनीति है: राजनीति अल्पकालीन धर्म है। धर्म का काम है, अच्छा करे और उसकी स्तुति करे। राजनीति का काम है—बुराई से लड़े और उसकी निन्दा करे। किन्तु जब धर्म अच्छाई न कर केवल स्तुति भर करता है तो वह निष्प्राण हो जाता है और राजनीति जब बुराई से लड़ती नहीं, केवल निन्दा भर करती है तो वह कलही हो जाती है। पर यह सही है कि धर्म और राजनीति का अविवेकी मिलन दोनों को भ्रष्ट कर देता है। किसी एक धर्म को किसी एक राजनीति से नहीं मिलना चाहिए। इससे साम्प्रदायिक कट्टरता जन्मती है। धर्म और राजनीति को अलग रखने का जो आधुनिक सिद्धान्त है, उसका सबसे बड़ा मतलब यही है कि साम्प्रदायिक कट्टरता न उपजने पाये। एक भाव यह भी है कि राजनीति के दण्ड देने के अधिकार और धर्म की व्यवस्थाओं को अलग रखना चाहिए, अन्यथा दकियानूसी भी बढ़ सकती है और भ्रष्टाचार भी। इतना ध्यान में रखते हुए भी, फिर भी ज़रूरी है कि धर्म और राजनीति एक दूसरे से सम्पर्क न तोड़ें, मर्यादा निभाते रहें।"

डा० लोहिया समाज में समानता, समता और भाइचारे के लिए बराबर संघर्षरत रहे इस विश्वास के साथ कि मैं भले मर जाऊँ पर "इंसान जिन्दा रहेगा और आखिरकार जीत समाजवाद की ही होगी।"

इसे देश, समाज और राजनैतिक जगत की अपूर्णीय क्षति ही कहा जायेगा कि यह महान विचारक तथा दार्शनिक समाजवाद की स्थापना के लिए संघर्ष करते ही करते हम सबके बीच से उठ गये और भारतवासियों के सामने सामाजिक चिन्तन की एक धरोहर छोड़ गये जिसके लिए देश एवं भावी भारत के कर्णधार सदैव आदर के साथ उन्हें याद करते रहेंगे तथा समाजवादी इतिहास में उनका नाम हमेशा सुनहरे शब्दों में चमकता रहेगा।

सरकार द्वारा डा० लोहिया के स्वास्थ्य एवं इलाज पर समुचित ध्यान न देने के कारण

ही उनकी मृत्यु 12 अक्तूबर, 1967 को हो गयी। वे सम्पत्ति विहीन जन्मे थे और जब उनका देहावसान हुआ तो वे अपने पीछे कोई सम्पत्ति छोड़ कर नहीं गये। वे धन तथा परिवार के बन्धनों से बिल्कुल मुक्त थे। वस्तुतः पूरी मानव जाति ही उनका परिवार था।

डा० लोहिया के बारे में एक यह तथ्य भी उल्लेखनीय है कि उनका दाह संस्कार भारत की राजधानी दिल्ली के उस विद्युत शवदाह गृह में हुआ था जिसमें प्रतिदिन लावारिस गरीबों की लाशों का शव-दाह होता था। इससे गरीबों के प्रति उनकी सहानुभूति एवं स्नेह का स्वतः अनुमान लगाया जा सकता है।

12

सच्चे समाज सुधारक—डा॰ लोहिया

— यज्ञ दत्त शर्मा

डॉ॰ राममनोहर लोहिया का राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक चिंतन का अपना एक स्वतंत्र दर्शन था। वह एक क्रान्तिकारी, किन्तु समाज और देश की समस्याओं पर किन्हीं टकसाली वादों के कैदी न होकर निहायत सीधी सोच रखने वाले नेता थे। उनके मत में भारत के निकट अतीत की कुछ सदियों के इतिहास में, संस्कृति-सभ्यता के नाम पर, ऐसा दमघोटू दुर्गंधपूर्ण पंक भर दिया गया है कि जब तक इस दलदल से देश को उबारा नहीं जाता तब तक सामाजिक क्रान्ति संभव नहीं।

जातिवाद पर उनका अति स्पष्ट मत था, "इस व्यवस्था ने इंसानी कदरों और आम आदमी की ऊपर उठने की कुदरती सूझ-समझ और ताकत को बेजान बना दिया है। पूरे का पूरा सामाजिक-संतुलन जातिवाद के कैंसर ने बरबाद कर दिया है। ऊँची जात वालों को भीख मांगते हुए कोई शरम महसूस न होती थी, बल्कि अपना काम अपने आप करने में वे लज्जा और अपमान मानते थे। यह कुवृत्ति आज भी कुछ अंशों में कायम है। अनेक ऐसे ऊँची जात के निकम्मों को देने वाला दूसरी दुनियां में, जो आज दे रहा है, उससे कई गुणा ज्यादा पायेगा। चोरी, चालाकी, नंगी गुलामी और धूर्तता एक सफल व्यक्ति के कौशल माने जाते थे, मगर साहस और सच्चाई से जीने को कमजोरी और कमअकली समझा जाता था। झूठ और ठगी सफल जीवन की पहचान समझी जाती थी। जातिवाद समाज-जीवन की बुराइयों के ढंकने वाली चादर का काम कर रहा था।"*

लोहिया जी का समाजवादी दृष्टिकोण सर्वथा भारतीयता की जड़ों से जुड़ा था। निसंदेह वे बहुत पुरानी अच्छी कदरों के महत्व को मानते थे, किन्तु आज के जीवन में बदल लाने की बजाय पुरानी बातों का राग अलापते रहना उन्हें सर्वथा पसंद न था। समाज-सुधारों में वे राजा राममोहन राय, महादेव गोविन्द रणाडे तथा गोपाल कृष्ण गोखले सरीखे महानुभावों से, जो समाज-सुधार के नाम पर पश्चिमी जीवन-प्रणाली के पक्षधर थे, सर्वथा

---

*जातिवाद पर लोहिया के हैदराबाद आदि स्थानों पर दिये भाषणों का सार।

सहमत न थे। भारतीय पुरातन समाज-जीवन के अच्छे पहलुओं की ये महानुभाव पश्चिम की वर्तमान समाज-रचना से तुलना करते हुए वास्तव में विदेशीपन की वकालत करते थे। लोहिया जी का राष्ट्रवादी दृष्टिकोण इस मनोवृत्ति का घोर विरोधी था। बल्कि इसके विपरीत लोहिया जी गांधियन समाजवादी विचारों से विशेष रूप से प्रभावित थे लोहिया जी के मत में गांधी जी भारत में ऐसा समाजवाद चाहते थे जिसमें भारत की अपनी अस्मिता अर्थात् उसका स्वयं का स्वरूप सजीव रहे। गांधी जी पश्चिम की ऊपरी चकाचौंध से सर्वथा सम्मोहित न थे। लोहिया जी गांधी जी की उस सादगी और सरलता के प्रशंसक थे जो भारत जैसे गरीब देश में यहां के साधनहीन सामान्य-जन से शासक या समाज के नेताओं को जोड़ने की एक-मात्र महत्वपूर्ण कड़ी है। डॉ० लोहिया नेहरू जी के नवाबी रंग-ढंग से सदा नाराज रहते थे। परशुराम से लेकर नेहरू तक वशिष्ठ परम्परा के सनकी न्याय-नियमों को घसीटने की बजाय, लोहिया जी के मत में, विश्वामित्र से विश्वेसरैया या बाल्मीकि पर्यन्त की उदारवादी परम्पराओं को विकसित करने की ज्यादा जरूरत है।

लोहिया जी भारत में आधुनिकता तो लाना चाहते थे, किंतु वह पश्चिम से उधार ली जाने वाली सतही और अधूरी आधुनिकता के विरोधी थे। उनका सुविचारित मत था कि हमारा अतिपुराना अतीत अति-उज्ज्वल और महान था। यह तो मात्र गत चार-पांच शताब्दियों के हमारे इतिहास का कोढ़ और कलंक है कि अब हम विकृति को ही संस्कृति मान बैठे हैं। विश्वविद्यालयों के विद्यार्थियों के सामने बोलते हुए डॉ० लोहिया बार-बार कहते थे, "अपना अति-पुरातन खज़ाना टटोलकर देखो, इस पर शोध करो, यह हजारों विषयों पर तुम्हें डॉक्टर की उपाधि से अलंकृत करने की क्षमता से भरा पड़ा है।" लोहिया जी के मत में, "पं० नेहरू ने भारत के व्यक्तित्व को विभाजित कर दिया है। उन्होंने भारत की छवि को भी सर्वथा विपरीत रंग में रंग दिया है। नेहरू जी ने हमारी राष्ट्रीय भाषा, राष्ट्रीय वेषभूषा, राष्ट्रीय खान-पान और रहन-सहन, यह सब बदलकर सामंतशाही ढंग के ढांचे में ढाल दिये हैं।

भाषा पर लोहिया जी के विचार

राष्ट्रभाषा के सवाल पर जो सेवा भारत की लोहिया जी ने की वह सराहनीय और बेजोड़ है। अंग्रेजी के महान वक्ता और लेखक होने के बावजूद, उन्होंने राष्ट्रभाषा हिन्दी को अपनाया और इसको अगणित नये शब्दों से समृद्ध किया। "रिपोर्ट" को "रपट" का रूप देकर उन्होंने ने केवल अंग्रेजी की हिन्दी बना दी, बल्कि इसे आम गांव की बोल चाल की भाषा का रूप प्रदान किया। यह उनकी प्रतिभा और कल्पना के समाजवादीतंत्र

की मौलिकता थी। वे लोक सभा में हिन्दी में ही बोलते थे। जहां सुनने वाले को समझाने के लिए अंग्रेजी में उनके विचार रखना निहायत जरूरी न हो, वहां वे प्रयत्नपूर्वक अंग्रेजी के प्रयोग को टालते थे।

लोहिया जी ने गांधी जी के आदर्शवादी दर्शन को एक निश्चित प्रकार के नपेतुले कार्यक्रमों के सांचे में ढालकर अपने कार्यकर्ताओं का मार्गदर्शन किया। उनका सुविचारित मत था कि जिस प्रकार गांधी अपने प्रयोगवादी जीवन में कथनी और करनी के अंतराल को लगातार साधना द्वारा कम करते-करते एकरूप करने में विश्वास रखते थे, जननेताओं का वैसा ही जीवन समाज में सही सुधार ला पायेगा। हमारी कथनी कर्म से जुड़कर जब तक एकरूप नहीं हो जाती तब तक व्यर्थ का बनावटी-दिखावटी कर्मकाण्ड किसी काम न आयेगा। यदि कथनी-करनी में समस्वरता और एकरसता न होगी तो वाणी अहिंसा का राग अलापती रहेगी, और हाथ छुरेबाजी में लगा रहेगा। अतः वे आग्रहपूर्वक कहते थे कि हमें जीवन की भाषा से समाज-सुधार की राह पर अपने भोलेभाले देशबंधुओं को चलाना है, चालाकी और बनावटी नारेबाजी हमें मंजिल तक न पहुँचा पायेगी।

हम आज दीन-दुखी के कल्याण की बात भूलकर एक ओर जातिवादी जंगल की आग और दूसरी ओर साम्प्रदायिकता की प्लेग का शिकार हैं देश की वर्तमान स्थिति के संदर्भ में डा॰ लोहिया का समाज-दर्शन हमें बरबादी भरी तूफानी आंधी से बचा सकता है। सेवा, सादगी, स्वदेशी, स्वभाषा और स्वदेश-भक्ति, यही बुनियादी शर्तें हैं जो समाज-कल्याण में सफल सिद्ध हो सकती हैं।

13

अपने उसूलों से समझौता नहीं करने वाला व्यक्ति

—उपेन्द्र नाथ वर्मा

डा० राममनोहर लोहिया एक मौलिक चिन्तक थे। उन्होंने अपने उसूलों से कभी समझौता नहीं किया। उनका कहना था "पथ की चिन्ता अधिक करो और पथिक की चिन्ता कम।" रास्ता यदि सही है तो कमजोर व्यक्ति भी उस रास्ते पर चल कर अपने लक्ष्य तक पहुंच सकता है। किन्तु यदि रास्ता ही भटकाव वाला हो, गलत हो तो मजबूत से मजबूत और बुद्धिमान व्यक्ति भी अपनी मंजिल तक नहीं जा सकता। आये राम गये रामों की तरह बराबर राह बदलने वालों से उन्हें सख्त नफरत थी। वे कहते थे—"स्वच्छ प्रशासन के लिए स्वच्छ राजनीति चाहिए।" जब तक राजनीति जाति, लाठी और पैसों के बल पर चलती रहेगी, तब तक प्रशासन साफ-सुथरा नहीं हो सकता। राजनीति को सिद्धान्त, नीति और कार्यक्रम पर चलाना चाहिए। वे सादगी पसन्द व्यक्ति थे। ठाट-बाट, ऐशो आराम, शान-शौकत, फैशन-फूटांगी और फिजूल खर्ची के वे प्रबल विरोधी थे। सत्ताधारी नेताओं और प्रशासन चलाने वाले बड़े अफसरों की फिजूल खर्ची पर वे जमकर प्रहार करते थे। उन्होंने प्रधानमंत्री तक को नहीं बक्शा। उन पर पच्चीस हजार रुपया प्रतिदिन खर्च करने का आरोप लगाया। फिजूल खर्च करने वाले व्यक्तियों को वे काले साहेबों की संज्ञा देते थे। भारत की गरीबी को देखते हुए एक बार उन्होंने कहा था कि जिस व्यक्ति के पास दो से अधिक कुर्ता हो तो समझो-उसने कहीं समझौता किया है। वे घुमा-फिरा कर कहने के आदी नहीं थे जो भी कहते थे स्पष्ट कहते थे उनकी बातें चुभती हुई होती थीं। दो टूक होती थीं। उनका कहना था कि इंसान को सीधा चलना चाहिए।

भारतीय समाज की बनावट और उसमें व्याप्त सामाजिक और आर्थिक विषमता का उन्हें गहरा अध्ययन था। उन्होंने देश की गरीबी और शोषण को निकट से देखा था और इलाज भी ढूंढ निकाला था। उनके द्वारा प्रतिपादित नीतियां जैसे सप्त क्रांति, चौखम्भा राज, विशेष अवसर का सिद्धान्त, भाषा नीति अंग्रेजी भाषा के सार्वजनिक प्रयोग का बहिष्कार और उसकी जगह देशी भाषाओं को प्रतिष्ठित करना दामनीति, हिमालय बचाओ, भारत-पाक एकता, भूमि सेना, साक्षर सेना, गैर-कांग्रेसवाद, आमदनी और खर्च पर सीमा

बांधने की बात आदि नीतियां और कार्यक्रम ऐसे हैं जिन्हें चुनौती नहीं दी जा सकती है। वे आज भी कारगर हैं और आने वाले दिनों के लिए भी उपयोगी सिद्ध होंगे। इंसान इंसान के बीच की खाई पाटने और विकास के रास्ते को प्रशस्त करने में डा० लोहिया की नीतियां बेमिसाल हैं बशर्ते ईमानदारी के साथ उन्हें कार्यान्वित किया जाये।

1954 में केरल में सर्वप्रथम समाजवादी सरकार बनी। श्री पट्टम थाणु पिल्लै मुख्यमंत्री बने उस समय प्रजा सोशलिस्ट पार्टी के नाम से समाजवादियों का संगठन चलता था। डा० राममनोहर लोहिया इसके महासचिव थे। वे जेल में थे और इधर श्री पिल्लै की समाजवादी सरकार ने निहत्थी भीड़ पर गोली चलाकर 7 व्यक्तियों को जान से मार डाला और आठ को घायल कर दिया। डा० लोहिया ने गोली कांड संबंधी समाचार पाते ही जेल से तार भेजकर थाणु पिल्लै की सरकार से त्याग पत्र की मांग कर दी। साथ ही साथ गोली चलाने का आदेश देने वाले अफसरों को निलम्बित करने और गैर सरकारी जांच बिठाने की भी मांग की। बस क्या था? प्रसोपा में खलबली मच गई। पिल्लै ने त्यागपत्र देने से इंकार कर दिया। नागपुर में इसी सवाल पर विचार करने के लिए 26, 27 और 28 नवम्बर, 1954 को दल का सम्मेलन बुलाया गया। डा० लोहिया के पक्ष में 217 और विरोध में 303 मत प्राप्त हुए। फिर भी, वे अपनी बात पर अड़े रहे। उनका कहना था कि जब कांग्रेस सरकार में निहत्थों पर गोली चलती है तो हम यह कह कर त्यागपत्र मांगते रहे हैं कि लाठी-गोली की सरकार नहीं चलेगी, नहीं चलेगी तो फिर हम समाजवादी सरकार से वही मांग क्यों नहीं करें? डा० लोहिया ने इस सवाल को उठा कर दुनियां में एक महान सिद्धान्त को जन्म दिया। वे जीभ पलटने के ख़िलाफ थे। पिल्लै सरकार बहुत दिनों तक चल भी नहीं सकी। कांग्रेस ने इसे 1955 के प्रारम्भ में ही गिरा दिया। यदि लोहिया की बात मानी गई होती तो समाजवादी आन्दोलन काफी ताकतवर होता।

इसी प्रकार एक बार पटना में सरकारी गोली से कई लोग मारे गये। गोली कांड के विरोध में आन्दोलन हुआ। तत्कालीन प्रधानमंत्री पं० जवाहर लाल नेहरू ने गोली चलाये जाने के औचित्य पर बोलते हुए कहा कि राष्ट्रीय झंडे की शान की रक्षा के लिए एक नहीं अनेक मारे जा सकते हैं। डा० लोहिया के लिए यह असहनीय था। उन्होंने तुरन्त कहा "राष्ट्रीय झंडे की शान की रक्षा जान लेकर नहीं, जान देकर करना चाहिये।

नागपुर सम्मेलन ने डा० लोहिया को अलग दल बनाने के लिए विवश कर दिया और उन्होंने 1 जनवरी, 1956 को हैदराबाद में समाजवादियों का सम्मेलन बुलाकर समाजवादी पार्टी की स्थापना कर दी। जुझारू समाजवादियों ने इस पार्टी में शामिल होकर समाजवादी आन्दोलन को एक नई दिशा दी। वोट, फावड़ा और जेल उनका नारा बना। सुविधा की

राजनीति की जगह संघर्ष की राजनीति शुरू हुई। डा० लोहिया का प्रभाव अबाधगति से बढ़ने लगा। दल को दिशा देने, नीति बनाने में डा० लोहिया का कोई मुकाबला नहीं था। वे दल के एकछत्र नेता थे। किन्तु यह बात उन्हें बिल्कुल पसन्द नहीं थी कि हर बात के लिए पूरी पार्टी उन पर निर्भर रहे। उन्होंने इसके लिए हर संभव प्रयास किया कि पार्टी साथी सिर्फ उन्हीं पर निर्भर नहीं करें। स्वयं हाथ पांव चलायें। दिमाग लगायें। नीति बनाने और उसका कार्यान्वयन करने में वे खुलकर भाग लें। 1956 के अगस्त माह में इन्होंने 'मैनकाइन्ड' नामक अंग्रेजी पत्रिका का प्रकाशन भी शुरू किया।

भारत के समाजवादी आन्दोलन का विदेशों से सम्पर्क बनाने में डा० लोहिया की जबर्दस्त भूमिका रही। कांग्रेस के वैदेशिक विभाग की देखरेख करने का इन्हें अनुभव भी प्राप्त था। जनवरी 1953 में रंगून में होने वाले एशियाई सम्मेलन को जन्म इन्होंने ही दिया था, हालांकि वे स्वयं इसमें भाग नहीं ले सके।

लोहिया का जीवन संघर्षों का जीवन था। स्वतंत्रता संग्राम में इन्होंने जमकर हिस्सा लिया था। इनकी पहली गिरफ्तारी कलकत्ता में 24 मई 1939 को हुई थी। तब से ये 25 बार जेल गए। ज्यादा गिरफ्तारियां कांग्रेस शासन में हुई। ये अपने सिद्धान्तों की रक्षा के लिए एक से एक मुसीबत झेलने को तैयार रहते थे। बरेली जेल में डा० लोहिया के हाथ में वजनी हथकड़ी देखकर तत्कालीन संयुक्त प्रदेश विधान सभा के अध्यक्ष श्री पुरुषोत्तम दास टण्डन की आंखों से आंसू निकल पड़े थे किन्तु लोहिया अपने सिद्धान्तों की रक्षा के लिए सब कुछ बर्दाश्त करने के आदी हो चुके थे। डा० लोहिया की बहादुरी और सरलता की चर्चा करते हुए महात्मा गांधी ने कहा था कि मैंने अपने जीवन में लोहिया जितना बहादुर आदमी कभी नहीं देखा। वे जेल में हैं तो मैं खामोश नहीं रह सकता। सन् 1942 की क्रांति में डा० लोहिया लगातार 21 महीनों तक (आठ अगस्त, 1942 से 20 मई 1944 तक) भूमिगत रह कर आन्दोलन की अगुआई करते रहे। आजाद दस्ता को सम्बोधित करते हुए उन्होंने कहा था कि इस बार की चूक ऐतिहासिक भूल होगी। हमें तैयारी कर अंग्रेजी हुकूमत पर टूट पड़ना है और इसे हमेशा के लिए भारत से विदा कर देना है। इस आन्दोलन में अपनी गिरफ्तारी देकर अपने कर्त्तव्यों की इतिश्री समझना भयंकर भूल होगी। भूमिगत रहकर लड़ाई को तब तक आगे बढ़ाते जायें, जब तक देश आजाद न हो जाये। गिरफ्तार होने वाले साथी निकम्मा माने जायेंगे। लाहौर जेल में लगातार चार महीनों तक इन्हें सोने नहीं दिया गया। कोई न कोई जेल अधिकारी दिन रात इनसे कुछ न कुछ पूछते ही रहते थे। चार महीनों तक दांत साफ करने के लिए इन्हें न दातून, न ब्रश, न पेस्ट, न मंजन दिया गया। अमानवीय तथा असहनीय व्यवहार के

११५८६-9

बावजूद डा० लोहिया ने जेल अधिकारियों के सामने घुटने टेकने से इंकार किया। वे जीवनभर अविवाहित रहे। परिवार नहीं बसाया। मातृभूमि और मानवता के लिए वे हमेशा समर्पित रहे।

समाज के कमजोर वर्गों के हितों के लिये वे बराबर जूझते रहे। इनके बीच काम करने वाले लोगों को एक मंच पर लाने का इन्होंने भरपूर प्रयास किया। 1956-57 में दलितों के नेता, भारतीय संविधान के जनक एवं विशिष्ट प्रतिभा वाले व्यक्ति डा० भीमराव अम्बेडकर से इनकी बातचीत हुई। दोनों के एक संगठन में रहने की बात प्रायः तय हो चुकी थी कि डा० अम्बेडकर का निधन हो गया।

कांग्रेस के सिद्धान्तों, नीतियों एवं कार्यक्रमों पर लोहिया का प्रहार जारी रहा। 1962 का आम चुनाव आया और डा० लोहिया ने तत्कालीन प्रधानमंत्री पं० जवाहर लाल नेहरू के खिलाफ अपना नामांकन भर दिया। पहले तो नेहरू जी ने इसे हल्के ढंग से लिया और कहा कि मैं अपने निर्वाचन क्षेत्र में चुनाव अभियान के लिए नहीं जाऊंगा। लेकिन फिर हवा के रूख को देखकर उन्हें चुनाव प्रचार में कई बार फूलपुर जाना पड़ा। इस चुनाव में समाजवादियों ने डा० लोहिया को अपना उम्मीदवार बनाकर कांग्रेस की नीतियों की धज्जियां उड़ा दीं। डा० लोहिया चुनाव हार गये किन्तु 43 मतदान केन्द्रों पर वे नेहरू जी से आगे रहे। उन्होंने अपनी हार पर टिप्पणी करते हुए कहा "चट्टान् टूटी नहीं है, सिर्फ चटक कर रह गई।"

20 अक्तूबर, 1962 को चीन ने भारत पर हमला कर दिया। भारतीय फौज को तीस मील प्रतिदिन की रफ्तार से पीछे हटना पड़ा। डा० लोहिया को इससे बहुत दुःख हुआ। उन्होंने कहा "कांग्रेस शासन में न खेत सुधरा, न उद्योग और न पलटन।" भारत-चीन की उत्तरी-पूर्वी सीमा पर खतरे के मंडराते बादलों को देखते हुए उन्होंने कई बार सरकार का ध्यान इस ओर खींचा था किन्तु सरकार ने इनकी बातों की उपेक्षा की और अन्त में खतरा आ ही गया। भारत की उत्तरी-पूर्वी सीमा रेखा की चर्चा करते हुए उन्होंने कहा कि मैकमोहन रेखा हमारी सीमा रेखा तभी हो सकती है, जब तिब्बत आजाद हो। यदि तिब्बत आजाद नहीं है तो हमारी सीमा रेखा मैकमोहन रेखा नहीं हो सकती। तब हमारी सीमा रेखा मानसरोवर, कैलाश और मनसर गांव होगी। मनसर गांव तो आजादी प्राप्ति के बाद तक भारत को टैक्स देता रहा है। उस पर हमारा शासन रहा है। वहां की भौगोलिक स्थिति, संस्कृति, लिपि, जमीन का ढलाव यह प्रमाणित करता है कि ये इलाके भारत के हैं, चीन के कदापि नहीं। संस्कृत के प्रसिद्ध कवि कालीदास की पंक्तियों का उद्धरण देते हुए वे कहते रहे कि मानसरोवर-कैलाश हमारे देवी-देवताओं का निवास है। चीन के पास इसका कोई प्रमाण नहीं है कि ये इलाके उनके हैं। उन्होंने कहा कि यह हमारी सरकार की

बेवकूफी है कि वह मजबूती के साथ अपने दावे को नहीं रख रही है। नेहरू जी तो कहते हैं कि यह बंजर है, उसर है। यहां कोई बसता नहीं। इस तरह के बयानों से चीन को प्रोत्साहन मिलता है। डा० लोहिया ने उपरोक्त सीमा रेखा के संबंध में जो तर्क दिया था, उसे कौन भूल सकता है। उन्होंने साफ कहा कि यह सरकार ऐसी है जिसे अपनी सीमा की जानकारी भी नहीं है। ऐसी हालत में वह अपनी सीमा की सुरक्षा की जिम्मेदारी कैसे निबाह सकती है?

1963 में फर्रूखाबाद के उप चुनाव में डा० लोहिया जीत कर लोक सभा में पहुंचे। लोक सभा में आते ही उन्होंने 'तीन आना बनाम पन्द्रह आना' (भारतवासियों की औसत आय) के सवाल को उठाकर देश-विदेश के लोगों का ध्यान इस ओर खींचा। लोक सभा में इनके द्वारा उठाये गये सवालों और दिये गये सुझावों पर देश में चर्चा होने लगी। समाचार पत्र पढ़ने वाले डा० लोहिया के भाषणों को पहले पढ़ते। वे प्रायः कुछ न कुछ नयी बात कहते रहते थे। 1965 में भारत-पाक युद्ध के अवसर पर बोलते हुए डा० लोहिया ने कहा था कि हम भारतवासियों को पाकिस्तान के प्रति चट्टान-सा कठोर और भारतीय मुसलमानों के प्रति फूल सा कोमल बनना पड़ेगा। उस अवसर पर देश के साम्प्रदायिक एकता का जो परिचय दिया था, वह अविस्मरणीय है।

सरकार ने 9 अगस्त, 1965 को पटना में डा० लोहिया को गिरफ्तार कर लिया। उन्होंने अपने मुकदमे की पैरवी (बहस) स्वयं की जैसाकि वह प्रायः किया करते थे। सर्वोच्च न्यायालय ने उन्हें बरी किया। वे बराबर कहते गये कि 1967 के आम चुनाव में कांग्रेस अधिकांश राज्यों में हारेगी और हुआ भी ऐसा ही। बंगाल, बिहार, उड़ीसा, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, मद्रास, केरल, हरियाणा और पंजाब (9 राज्यों) में गैर-कांग्रेसी सरकारें बनीं। उन्हें मालूम था कि ये सरकारें अपनी पूरी अवधि नहीं काट सकेंगी। इसी कारण उन्होंने जोर देकर कहा था कि जल्दी-जल्दी कुछ ऐसे काम किये जाने चाहिये जो सूरज की तरह टिकाऊ और बिजली की तरह चकाचौंध पैदा करने वाले हों। जैसे अलाभप्रद जमीनों की मालगुजारी का खात्मा, सार्वजनिक प्रयोग से अंग्रेजी भाषा का खात्मा, अंग्रेजी की अनिवार्य पढ़ाई की समाप्ति आदि।

पूरे देश में डा० लोहिया की चर्चा शुरू हो गई। सुदूर गांवों के लोगों ने कहना शुरू किया कि डा० लोहिया गरीबों का आदमी है, सही बोलता है। और जब पूरा देश उनकी ओर मुखातिब हुआ तो 11 अक्तूबर, 1967 की रात एक बजकर 5 मिनट पर उनका निधन हो गया।

"बड़े शौक से सुन रहा था ज़माना,
कि खुद सो गये, दास्तां कहते-कहते।"

इसमें कोई शक नहीं कि समाचार पत्रों ने डा० लोहिया के मौलिक विचारों के प्रकाशन की उपेक्षा की। वे कहा करते थे कि अखबार के भरोसे राजनीति नहीं की जा सकती। अखबार वाले व्यवस्था के बदलाव से संबंधित बातों को नहीं छापेंगे। समाचार पत्रों के मालिक प्रायः वैसे लोग हैं जो प्रतिक्रियावादी एवं रूढ़िवादी हैं। वे क्रांतिकारी विचारों को अपने अखबारों में जगह नहीं देने देंगे। उनका कहना था कि काम ऐसा करो कि अखबारों में छपने के पहले ही बात मुंह-मुंह फैल जाये। डा० लोहिया के विचार आज भी सामयिक हैं और भारत के लिये उपयुक्त।

14

डा० राममनोहर लोहिया

— मुरलीधर सी० भंडारे

हमारे स्वतंत्रता संग्राम का इतिहास मुख्यतः भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का इतिहास है। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के समाजवादी ग्रुप का इस स्वतंत्रता संग्राम में, विशेष रूप से 1942 के भारत छोड़ो आन्दोलन के दौरान, महत्वपूर्ण योगदान रहा है। अन्य नेताओं के साथ डा० लोहिया भी इस आन्दोलन के अग्रणी नेताओं में थे।

उत्तर प्रदेश के एक साधारण मध्यमवर्गीय बनिया परिवार में जन्मे राममनोहर लोहिया के पिता हीरा लाल, स्वतंत्रता सेनानी और महात्मा गांधी के अनुयायी थे। हीरा लाल ने गांधीजी के कहने पर सविनय अवज्ञा आन्दोलन के दौरान भीषण गर्मी के मौसम में युद्ध-विरोधी नारे लगाते हुए कलकत्ता से दिल्ली तक पैदल मार्च किया। राममनोहर लोहिया ने अकबरपुर, बम्बई, कलकत्ता और बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में शिक्षा प्राप्त की। इससे उन्हें मराठी, गुजराती, बंगाली और हिन्दी में निपुणता प्राप्त करने में सहायता मिली। बाद के वर्षों में उन्होंने अंग्रेजी, जर्मन और फ्रेंच भाषाओं में भी दक्षता प्राप्त कर ली थी। इस प्रकार वह एक श्रेष्ठ बहुभाषाविद् थे। वे उच्च शिक्षा के लिए यूरोप गए और बर्लिन विश्वविद्यालय से डाक्टरेट की उपाधि लेकर लौटे।

राममनोहर लोहिया ने अपना समय राजनीति में लगाने का निर्णय लिया और 1934 में गठित कांग्रेस समाजवादी ग्रुप के सदस्य बन गये। जवाहरलाल नेहरू ने 1936 में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी का विदेश विभाग खोला और इसे संगठित करने के लिए लोहिया को आमंत्रित किया। विश्व के विभिन्न भागों में चल रहे स्वतंत्रता संग्राम आन्दोलनों के साथ सम्पर्क स्थापित करके लोहिया ने विश्व के दरवाजे खोल दिये। यह स्वाधीन भारत की विदेश नीति की शुरूआत थी।

डा० लोहिया पर 1938 में कलकत्ता में राजद्रोह का मुकदमा चलाया गया था। उन्होंने स्वयं ही मुकदमे में अपना पक्ष इतनी कुशलतापूर्वक रखा कि मजिस्ट्रेट का दिल जीत लिया और बरी भी हो गए। इसी प्रकार का करिश्मा उन्होंने वर्षों बाद तब दिखाया जब मूलभूत मानवीय स्वतंत्रता के पक्ष में उच्चतम न्यायालय में एक मुकदमे में भी पैरवी की थी।

प्रायः भारत का प्रत्येक भावी नेता गांधीजी से प्रेरणा लेता था। लोहिया भी इसके अपवाद नहीं थे। वह गांधीजी के अहिंसा और चर्खा, जो प्रत्येक ग्रामवासी की आत्मनिर्भरता और स्वतंत्रता का प्रतीक था के सिद्धान्त से प्रभावित थे। लोहिया ने गांधीजी के प्रत्येक व्यक्ति के आंसू पोंछने के स्वप्न को साकार करने में भाग लिया। गांधीजी के जीवन में कांग्रेस संगठित रही। गांधी जी लोहिया को कितना चाहते थे इसका पता उस समय लगा था जब 1940 में युद्ध विरोधी भाषण देने के लिए लोहिया की गिरफ्तारी के विरुद्ध उन्होंने तत्काल प्रतिक्रिया व्यक्त की थी।

डा० लोहिया को अपनी मातृभूमि को दासता से मुक्त कराने की उत्कट अभिलाषा थी जिससे प्रेरित होकर वह अल्पायु में ही स्वतंत्रता सेनानी बन गए थे। "भूमिगत अखिल भारतीय कांग्रेस समिति" के झण्डे तले 1942 में भारत छोड़ो आन्दोलन को दिशा देने और वैचारिकता प्रदान करने में उन्होंने शानदार भूमिका निभाई थी। यह सुविदित है कि महात्मा गांधी और अन्य नेताओं की गिरफ्तारी के बाद प्रतिरोध की ज्वाला को जीवित रखने में उन्होंने मुख्य भूमिका निभाई थी। लोहिया, बम्बई शहर से गुप्त रूप से चलाए जा रहे कांग्रेस रेडियो से नियमित रूप से प्रसारण करते थे। यह प्रसारण मद्रास तक सुना जा सकता था। उन्हें मई, 1944 में गिरफ्तार किया गया था। जेल से 1946 में रिहा होने के बाद लोहिया ने गोवा में मारगाँव में नागरिक स्वतंत्रता के लिए तत्काल जेहाद छेड़ दिया। गोवा के मुक्तिदाता के रूप में उन्हें आज तक याद किया जाता है।

अम्बेडकर ने जहां स्वतंत्रता, समानता और बन्धुत्व की आवाज उठाई, वहीं लोहिया ने इन तीनों के मूल तत्व के रूप में अवसर की समानता पर बल दिया। दोनों ही जाति प्रथा के विरोधी थे और उन्होंने दलितों का सम्मान करने और उनके प्रति तिरस्कार की भावना दूर करने का आह्वान किया। इससे भी बढ़कर दोनों ही यह मानते थे कि देश में जाति प्रथा, असमानता के मूल में निहित है। लोहिया वर्ग विहीन समाज की स्थापना के लिये जातिविहीन समाज का होना अनिवार्य मानते थे। अम्बेडकर ने अनुसूचित जातियों के लिये संविधान में आरक्षण की व्यवस्था कर उन्हें राजनैतिक शक्ति और मान्यता दिलाने में सफलता हासिल की। पिछड़ी जातियों को आरक्षण, वह भी योग्यता के आधार पर, देने की प्रणाली से वह सन्तुष्ट नहीं थे। लोहिया का तर्क था पीढ़ियों से जिन लोगों की परम्परा निम्नस्तर की रही हो वे उच्च समाज में जन्म लेने वालों से किस प्रकार प्रतिस्पर्धा कर सकेंगे? इस प्रतिस्पर्धा को कुछ हद तक बराबर करने के लिए महिलाओं, हरिजनों, शूद्रों, दलित मुस्लिमों, क्रिश्चियनों, आदिवासियों और अन्य पिछड़े वर्गों के लोगों को असमान अवसर देने पड़ेंगे। लोहिया के विचार से 'इस 90 प्रतिशत दलित और पिछड़े वर्ग को देश में उपलब्ध सभी अवसरों का 60 प्रतिशत तब तक उपलब्ध कराया जाये जब तक ये

लोग अपने वर्ग को समानता के स्तर तक न ले आयें ताकि वर्ग विहीन समाज की स्थापना साकार हो सके।' वे सकारात्मक कार्यवाही किये जाने और दलितों एवं पिछड़ों को अन्य के मुकाबले अधिक अवसर दिये जाने के पहले पक्षधर थे।

यह उनकी परिवर्तन की ललक ही थी कि उन्होंने निम्नलिखित सात सार्वभौमिक क्रांतियों को परिभाषित किया:—

1. पुरुष-महिला समानता के लिए;
2. रंगभेद पर आधारित असमानता के लिए;
3. सामाजिक असमानता एवं जातीयता के विरुद्ध तथा विशेष अवसरों के लिए;
4. उपनिवेशवाद और विदेशी शासन के विरुद्ध;
5. आर्थिक समानता को अधिकतम सीमा तक प्राप्त करने के लिए;
6. गोपनीयता एवं लोकतांत्रिक अधिकारों के लिए; और
7. हथियारों के विरुद्ध तथा निरंकुशता के विरुद्ध सविनय अवज्ञा।

लोहिया पुरुष-महिला समानता के प्रबल समर्थक थे। किन्तु, समाजवादी लोग उनके जीवन काल में एक भी महिला कार्यकर्ता को चुनकर लोक सभा में नहीं भेज पाए। पहली लोक सभा के लिए बारह सदस्य निर्वाचित हुए थे। उनमें महिला कोई नहीं थी। लोहिया द्वारा स्थापित पार्टी ने 1957 में लोक सभा की 8 सीटों पर विजय प्राप्त की। किन्तु, एक भी सीट पर महिला नहीं थी। चौथी लोक सभा में उनकी पार्टी के 23 सदस्य थे, लेकिन एक भी सीट से महिला विजयी नहीं हुई। लोहिया के लिए यह अत्यन्त चिंताजनक विषय था। महिलाओं को निर्वाचित कराने के उनके सतत् प्रयास असफल ही रहे।

उनका विश्वास था कि सरकारी विभागों, विद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों में लोकप्रिय भाषाओं का प्रयोग किए जाने से छिपी हुई जनचेतना का तेजी से विकास होगा। इस बात को लेकर वे दुःखी थे कि गैर-कांग्रेसी मिली जुली सरकारों द्वारा वास्तव में इस क्षेत्र में बहुत अधिक नहीं किया गया है। उन्हें भय था कि किसी प्रकार की छेड़छाड़ करने से उथल-पुथल मच जायेगी। अगर ऊंची जाति और उच्च वर्ग के व्यक्ति अपने बच्चों को अंग्रेजी की शिक्षा दिलाते रहे और अगर विदेशी भाषा का सरकारी काम काज में प्रयोग जारी रहा तो पिछड़े वर्ग के लोग यह महसूस करेंगे कि उनके साथ धोखा किया गया है और वे इस सम्पूर्ण नीति को अस्वीकार कर देंगे। उन्होंने चेतावनी दी कि "बेमन से किए गए उपाय" अंततः गरीबों के बच्चों के लिए नुकसानदेह होंगे। अंग्रेजी का वर्चस्व बना रहेगा।

लोहिया सामाजिक और आर्थिक समानता के आदेशों के प्रति समर्पित थे। वह व्यक्ति की गोपनीयता और स्वतंत्रता के अधिकार को भी उतना ही महत्व देते थे तथा व्यक्तिगत जीवन के प्रत्येक पहलू को शासन द्वारा नियंत्रित किये जाने के सिद्धान्त से घृणा करते थे। वह महसूस करते थे कि अभिव्यक्ति तथा विरोध प्रकट करने की स्वतंत्रता; सप्तक्रांति के अविभाज्य अंग हैं। लोहिया नागरिक स्वतंत्रता और तानाशाही कानूनों के विरुद्ध न्यायालयों में एवं उसके बाहर भी लड़ते रहे। सर्वोच्च न्यायालय ने दो निर्णय उनके पक्ष में दिये थे जिनमें वे न्यायालय में व्यक्तिगत रूप से उपस्थित हुए थे। ये निर्णय मात्र स्वतंत्रताओं को प्रोत्साहन और संरक्षण प्रदान करने के संघर्ष में महत्वपूर्ण युगान्तरकारी घटनाएं हैं।

उनमें हास-परिहास की भावना बहुत थी। और वह न केवल दूसरे से मजाक कर लिया करते थे बल्कि अपने ऊपर भी मजाक का कोई अवसर नहीं चूकते थे। वह सीधे-सादे व्यक्ति थे। उनका सांसारिक वस्तुओं से कोई मोह नहीं था। साहित्य और ललित कलाओं के प्रति उनकी गहरी रुचि थी जिसे वह बनाये रखे।

लोहिया एक बहुमुखी दीप्तिपुंज व्यक्तित्व के धनी थे। वे देशभक्त, विद्वान, विचारक और स्वप्नद्रष्टा व्यक्ति थे। उनमें कल्पना और कर्म का मणि-कांचन योग था। वह प्रवर प्रतिभा के धनी थे और उनमें अपूर्व संगठनात्मक क्षमता थी। उनकी दूरदर्शिता केवल राष्ट्रीय सीमाओं तक ही सीमित नहीं थी बल्कि इससे भी आगे तक इसका प्रभाव था। वह निश्चित रूप से एक ऐसे कर्मनिष्ठ व्यक्ति थे जिनके लिए दार्शनिक सिद्धान्तों का तब तक कोई अर्थ नहीं था जब तक कि वे समाज को बदलने में प्रभावी, क्रांतिकारी कार्य करने के लिए उन्हें कोई प्रेरणा एवं मार्गदर्शन प्रदान न करे। वह अपने दृष्टिकोण पर अटल रहते थे तथा इसी गैर-परम्परागत दृष्टिकोण के कारण वह अपने समय के बहुत ही विवादास्पद राजनीतिक नेता बन गये थे।

लोहिया ने कांग्रेस को नष्ट करने के लिए जी-तोड़ कार्य किया। उनका विचार था कि कांग्रेस को नष्ट किए बिना राष्ट्र अपना नए सिरे से निर्माण नहीं कर सकता था, लेकिन वे यह समझने में नाकाम रहे कि भारतीय समाज में वर्षों से कांग्रेस द्वारा प्रवर्तित और पोषित आधारभूत मूल्यों को अपूर्णीय क्षति पहुंचाए बिना एक ऐसी राष्ट्रीय पार्टी जिसकी जड़ें भारत की हर इन्च भूमि में फैली हुई हैं, को नहीं उखाड़ा जा सकता था। वह यह नहीं समझ सके थे कि कांग्रेस के प्रति घोर घृणा कांग्रेस की असफलताओं का समाधान नहीं था क्योंकि धार्मिक, साम्प्रदायिक, जातीय और भाषा सम्बन्धी सभी भेदों को भुलाते हुए एकता और सौहार्द की राष्ट्रीय भावना के बीज कांग्रेस ने ही बोये थे।

आज वे कैसा अनुभव करते? कांग्रेस विरोधी भावना के आधार पर नवम्बर, 1989 में बनी सभी दलों की एकता पन्द्रह महीनों से अधिक नहीं चल पाई, जिसके कारण देश

साम्प्रदायिकता और जाति-विभाजन की अभूतपूर्व अव्यवस्था में डूब गया। वे कैसा अनुभव करते जब वह यह देखते कि जिन्होंने देश की भलाई के लिए कांग्रेस का विरोध किया था उनका आदर्श वाक्य "देश सबसे ऊपर" न होकर "स्वयं सबसे ऊपर" रहा है? वे कैसा अनुभव करते जब वे यह देखते कि राजनीतिक सत्ता के लिए राजनीतिक आदर्शों की बलि दी जा रही है और हर कार्य ऐसी सत्ता के हाथ में है? वे क्या अनुभव करते जब वे यह देखते कि राजनीति के अपराधीकरण में वृद्धि हो रही है जिसके परिणामस्वरूप लोकतांत्रिक मूल्यों ने बाहुबल और धनशक्ति के समक्ष घुटने टेक दिये हैं वे क्या अनुभव करते जब वे यह देखते कि सत्ता का प्रयोग लोगों के कल्याण हेतु नहीं अपितु धनार्जन के लिए किया जा रहा है। ऐसी स्थिति में वे आध्यात्मिक मूल्यों और लोकतांत्रिक सिद्धान्तों को पुनः प्रतिष्ठित करने, गरीब नागरिकों के उत्थान को सुनिश्चित करने; हमारी व्यवस्था और संस्थाओं की जीवनशक्ति और ताकत के संरक्षण के लिए क्या सुझाव देते?

क्या उनके पास इस बात का कोई उत्तर होता कि समाजवादी कांग्रेस का विकल्प बनने में असफल क्यों रहे अथवा दलित और शोषित (अनुसूचित जातियां और अन्य पिछड़ी जातियां) देश में एक तीसरी ताकत बनने के लिए आपस में मिले क्यों नहीं? लोहिया के आदर्शों और विचारों की प्रासंगिकता का निर्णय इतिहास ही करेगा।

15

उग्र समाजवादी

—प्रो० समर गुहा

डा० राममनोहर लोहिया एक तेजस्वी व्यक्तित्व के उग्र समाजवादी थे जिनका नाम भारतीय समाजवादी आन्दोलन के इतिहास में सदैव अमर रहेगा। वह एक विचारशील व्यक्ति और मौलिक चिन्तक थे। राजनीतिक क्षेत्र में साहसिक कार्य करने के लिए उनमें आश्चर्यजनक रुचि थी। 1947 में सत्ता के स्थानान्तरण के पश्चात डा० लोहिया शासक वर्ग के लिये और अपने वरिष्ठ समाजवादी साथियों दोनों के लिए सदैव चिन्ता का विषय बने रहे। स्वतंत्रतोत्तर भारतीय राजनीति की अपनी यात्रा में उन्होंने अपने सामने एक लक्ष्य निर्धारित कर लिया था और वह था भारत में अपनी राष्ट्रीय प्रतिभा और सांस्कृति पर आधारित एक समाजवादी आन्दोलन की स्थापना करना। डा० लोहिया के मौलिक योगदान को सम्मानपूर्वक स्वीकार किए बिना भारतीय समाजवादी आन्दोलन का इतिहास लिखा ही नहीं जा सकता।

उनके पिता श्री हीरालाल निष्ठावान गांधीवादी थे। जब लोहिया बहुत छोटे थे तभी उन्हें महात्मा गांधी के बहुत करीब आने का विरल सौभाग्य प्राप्त हुआ। जिन्दगी के प्रति अपने दृष्टिकोण और रवैये में तथा अपने स्वभाव से वह हर तरह से गांधी जी के विपरीत होते हुए भी गांधी जी के महान व्यक्तित्व की आभा उन पर पड़ी और युवा लोहिया के प्रति गांधी जी के असीम स्नेह के कारण लोहिया और गांधी जी के बीच एक ऐसा भावनात्मक सम्बन्ध जुड़ गया कि वह कभी भी गांधी जी से दूर न जा सके। लोहिया का व्यवहार प्रायः आम व्यक्ति जैसा नहीं होता था। उनके जीने का ढंग रूढ़िवादी नहीं था। किन्तु गांधी जी का उन पर जबरदस्त प्रभाव पड़ा और परिणामतः उनमें धीरे-धीरे संयम आया। उन्होंने लगातार धूम्रपान करने की अपनी आदत छोड़ दी क्योंकि गांधीजी इसे पसन्द नहीं करते थे किन्तु महात्मा की हत्या की खबर से उन्हें गहरा धक्का लगा और उन्होंने पुनः धूम्रपान शुरू कर दिया। गांधी जी के बारे में लोहिया ने लिखा था, "यदि कोई महान व्यक्ति किसी व्यक्ति से कोई कार्य करवाना चाहता है, जिसके लिये उसके पास बहुत से तर्क हैं, तो चाहे वह व्यक्ति महान व्यक्ति के विचारों से सहमत न भी हो, तो भी महान व्यक्ति के प्रभाव के कारण और उसके प्रति निष्ठा के कारण एक विशेष आत्म-संयम उत्पन्न होता है। इसका संबंध मानवता के पुनर्निर्माण से भी है। "यद्यपि लोहिया कभी

भी गांधीवादी सिद्धान्तों और जीवन के मूल्यों से सामंजस्य नहीं बिठा पाए, फिर भी इस उत्साही व्यक्ति की अन्तरआत्मा को अंत में गांधी जी ही शांति प्रदान करते थे।

वर्ष 1910 में जन्मे श्री लोहिया 1930 वाले दशक के स्वतंत्रता आन्दोलन में लगभग बीस वर्ष के थे। यद्यपि राजनीति की ओर उनका झुकाव गांधीवादी सिद्धान्तों और असहयोग आन्दोलन के शांतिपूर्ण और अहिंसावादी तरीके से प्रेरित होने के कारण हुआ था, फिर भी कई युवा कांग्रेसियों की भांति वह भी कांग्रेस समाजवादी दल में शामिल हो गए जिसकी स्थापना आचार्य नरेन्द्र देव और जयप्रकाश नारायण ने उस समय की थी जब कांग्रेस के युवा लोग गांधी जी के 1930 के नमक सत्याग्रह के असफल होने पर जन-जागरण के विकल्प की तलाश में थे। इसी दौरान लोहिया जी पर गांधी, मार्क्स और नेहरू का मिला-जुला प्रभाव पड़ा। कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी की निष्ठा समाजवादी विचारधारा के मार्क्सवादी सिद्धान्तों के प्रति थी। पण्डित जवाहरलाल नेहरू भी समाजवादी विचारों के समर्थन में बात करते थे। नेहरू जी कभी भी कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के सदस्य नहीं रहे, किन्तु समाजवाद के अनुयायी नेहरू के आधुनिक दृष्टिकोण और समाजवादी सिद्धान्तों से काफी हद तक प्रभावित हुए। नेहरू जी ने आनंदभवन स्थित अखिल भारतीय कांग्रेस समिति के कार्यालय में विदेशी मामलों का दायित्व लोहिया जी को सौंपा और इस युवा समाजवादी का कार्य नेहरू को बहुत अधिक भाया।

लोहिया जी एक अत्यन्त उत्साही कार्यकर्ता थे और गांधीवादी परम्परा के बिल्कुल नहीं थे। वस्तुतः वह 1942 के आंदोलन के क्रांतिकारियों की परंपरा के थे। भूमिगत होकर उन्होंने एक "बागी" रेडियो का संचालन किया, उन्होंने साम्राज्यवादियों का किसी भी तरीके से विनाश करने के लिए समाजवादी शक्तियों को सुदृढ़ किया। इस उद्देश्य के लिए उन्होंने जयप्रकाश नारायण के साथ मिलकर कार्य किया, जिन्होंने उस समय तक हजारीबाग जेल से भागने के पश्चात 'अगस्त क्रांति' का नेतृत्व संभाल लिया था। अपनी गिरफ्तारी और लाहौर दुर्ग की एक एकान्त कोठरी में कैद किए जाने के पश्चात यह प्रश्न लोहिया जी के मस्तिष्क को निरंतर उद्वेलित करता रहा कि मार्क्सवाद में ऐसी क्या कमी है जिसके कारण मार्क्सवाद के भारतीय अनुयायियों को अपनी परतंत्र मातृभूमि की मुक्ति के स्वतंत्रता संग्राम के विरुद्ध जाकर ब्रिटिश साम्राज्यवादियों से हाथ मिलाने के लिए बाध्य होना पड़ा? मार्क्सवाद से लोहिया जी का मोह भंग लाहौर दुर्ग

से ही होना शुरू हो गया था और तब वह मार्क्सवाद के मूलभूत सिद्धान्तों की तह तक गये।

भारत का विभाजन लोहिया जी के लिए एक भयंकर आघात था। जब ऐतिहासिक दृष्टि से एक देश भारत का अंग्रेजों द्वारा विभाजन कर दिया गया था तो वह सिर्फ 37 वर्ष के थे। तब तक उन्होंने इतनी राजनैतिक प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं की थीं कि वह विभाजन का प्रभावपूर्ण ढंग से विरोध कर सकते। किन्तु विभाजन के मामले में नेहरू की जो भूमिका रही, उससे लोहिया जी का उस व्यक्ति के प्रति पूर्णतः मोहभंग हो गया जिनको वह काफी समय से देवतुल्य समझते आ रहे थे। विभाजन सम्बन्धी अपनी महत्वपूर्ण पुस्तक "दी गिल्टी मैन आफ इंडियाज पार्टीशन" में उन्होंने नेहरू जी को विभाजन के लिये मुख्य रूप से दोषी ठहराया है। उसके बाद लोहिया जी नेहरू से पूर्णतः अलग हो गए और उनके प्रति एक उग्र विरोध का दृष्टिकोण अपना लिया। नेहरू जी के प्रधान मंत्रित्व काल के दौरान लोहिया जी ने कई बार सत्याग्रह किया। यह अभी तक एक रहस्य बना हुआ है कि पण्डित नेहरू से लोहिया जी के इस कटुतापूर्ण अलगाव का कारण विभाजन था या कुछ और था।

लाहौर किले से डा० लोहिया भारतीय समाजवादी आंदोलन के लिए जनता को संगठित करने की नई तकनीक और नये विचार का पता लगाने की नई दिशा की ओर उन्मुख हुए। भारतीय समाजवाद को मार्क्सवादी बंधन से मुक्त करने के लिए लोहिया जी ने कई मौलिक लेख जैसे "इकोनॉमिक्स आफ्टर मार्क्स", (मार्क्सपरवर्ती अर्थव्यवस्था) "मार्क्सिज्म एंड सोशलिज्म", (मार्क्सवाद और समाजवाद), "गांधीज्म एंड सोशलिज्म", (गांधीवाद और समाजवाद), "इन्टरनेशनल आस्पेक्ट्स आफ कम्यूनिज्म", (साम्यवाद के अन्तर्राष्ट्रीय पहलू) इत्यादि।

मानव इतिहास की गति का प्रयोजन बताने वाली उनकी "व्हील आफ हिस्ट्री" नामक पुस्तक एक मूल रचना थी। वह मार्क्सवाद के अनेक आधारभूत सिद्धान्तों से सहमत नहीं थे। लोहिया की दृष्टि में मार्क्सवाद यूरोपीय दृष्टिकोण था और वह साम्यवाद तथा पूंजीवाद उत्पादन प्रणाली एवं इसके उत्पादक प्रोत्साहनों में निहित अनिवार्य बातों में कभी अंतर नहीं कर सके। जाति व्यवस्था पर आधारित भारतीय समाज में मार्क्सवाद को वर्ग-संघर्ष की अनिवार्य शर्त उन्हें भारत के दलित लोगों को संगठित करने के लिए बिल्कुल भी पर्याप्त न लगी। साम्यवादी दर्शन का मुख्य सिद्धान्त द्वंदात्मक भौतिकवाद भी उन्हें आधुनिक विज्ञान और दर्शन शास्त्र के प्रतिकूल प्रतीत हुआ। उन्होंने "पूंजीवाद और साम्यवाद की समान अप्रासंगिकता" की स्पष्ट बात सामने रखी, जिसके आधार पर भारतीय समाजवादी लोग अपनी मौलिक विचारधारा को विकसित कर सकें।

कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के दिनों के मार्क्सवादी किस्म के समाजवाद से अलग हट कर भारत के लिए समाजवाद का एक नया स्वरूप खोजते हुए डा० लोहिया ने लिखा था: "न तो मैं मार्क्स का समर्थक हूं और न ही उसका विरोधी हूं और महात्मा गांधी के बारे में भी मेरी यही स्थिति है।" इससे लोहिया का अभिप्राय यह था कि उन्होंने मार्क्स एवं शोषित वर्गों की मुक्ति के लिए उनके योगदान को कभी नहीं नकारा। लेकिन उन्होंने मार्क्सवाद को मानव इतिहास के सहज मार्ग का इच्छानुसार निर्धारण करने वाले अचूक सामाजिक दर्शन के रूप में कभी स्वीकार नहीं किया। अन्य समाजवादियों की भांति लोहिया पर भी मार्क्स और नेहरू का प्रभाव था, परन्तु छठे दशक तक पहुंचते-पहुंचते वह इस प्रभाव से मुक्त हो चुके थे।

उनके समाजवादी विचारों पर गांधी के प्रभाव के बारे में यह कहा जा सकता है कि हालांकि वह अपने आप को गांधीवादी नहीं मानते थे लेकिन उनके राजनीतिक मूल्यों और भारत में सामाजिक परिवर्तन लाने तथा भारत के राजनीतिक ढांचे के पुनर्निर्माण संबंधी उनके विचारों पर गांधी जी के कुछ विचारों का गहरा प्रभाव पड़ा। उदाहरणार्थ वह गांधी जी के समानता, विकेन्द्रीकरण की सामाजिक-राजनीतिक-आर्थिक नीति, लघु उद्योग प्रौद्योगिकी तथा अहिंसा और सत्याग्रह सम्बन्धी विचारों से काफी प्रभावित हुए। वास्तव में लोहिया ने राजनीतिक और सामाजिक अन्याय तथा शोषण के विरुद्ध संघर्ष करने के लिए सत्याग्रह के सिद्धांत में विश्वास व्यक्त किया। भारत में समाजवाद की स्थापना के लिए लोहिया ने "सप्त क्रांति" नामक सात सिद्धान्त बनाए जो इस प्रकार हैं: "(1) स्त्री और पुरूष में समानता के लिए क्रांति (2) रंगभेद पर आधारित राजनीतिक, आर्थिक और अध्यात्मिक असमानता के विरुद्ध क्रांति (3) पुरानी परंपराओं के आधार पर पिछड़े वर्गों और उच्च वर्गों अथवा जातियों में असमानता के विरुद्ध क्रान्ति और पिछड़े वर्गों को बेहतर अवसर दिलाने के लिए क्रांति (4) विदेशी गुलामी के विरुद्ध क्रांति और स्वतंत्रता तथा विश्व लोकतंत्रीय शासन के लिए क्रांति (5) आर्थिक समानता और योजनाबद्ध उत्पादन के लिए तथा निजी पूंजी बनाने और रखने के विरुद्ध क्रांति (6) गैर-कानूनी तरीके से व्यक्तिगत जीवन में हस्तक्षेप के विरुद्ध और लोकतांत्रिक प्रणालियों के लिए क्रान्ति (7) शस्त्रों के विरुद्ध और सत्याग्रह के लिए क्रांति।" डा० लोहिया चाहते थे कि भारतीय समाजवाद इन सात स्तम्भों पर आधारित हो।

डा० लोहिया अपनी समाजवादी विचारधारा को केवल भारत तक ही सीमित नहीं रखना चाहते थे। उन्होंने सात सिद्धान्तों के आधार पर नई विश्व सभ्यता की भी परिकल्पना की जो इस प्रकार है: "(एक) अधिकतम समानता जो प्राप्त की जा सके; (दो) भौगोलिक आधार पर शक्ति का अधिकतम वितरण; (तीन) समाज का स्वामित्व; (चार) लघु उद्योग प्रौद्योगिकी; (पांच) राष्ट्र में अच्छा जीवन-स्तर; (छः) सभी प्रकार के

हस्तक्षेपों से सुरक्षित व्यक्तिगत जीवन; (सात) विश्व संसद और सरकार।" डा० लोहिया एक आदर्शवादी कल्पनाशील व्यक्ति थे तथा आलोचनाओं की परवाह न करते हुए भी वह एक नया समाज और सभ्यता बनाना चाहते थे चाहे कोई इसे कल्पना लोक ही क्यों न कहे।

छठे दशक के अंत में और वर्ष 1967 में लोहिया अपने समाजवादी कार्यक्रम की गतिशीलता का मूल्यांकन करने में जुट गए। भारतीय लोकतंत्र पर जमे कांग्रेस के एकाधिकार को चुनौती देने के लिए विपक्षी ताकतों को एकजुट करने हेतु उन्होंने "गैर-कांग्रेसवाद" का नारा दिया। देश में 1967 में हुए आम चुनावों के बाद उत्तर भारत में संयुक्त विधायक दल नामक वैकल्पिक दल पहली बार उभर कर सामने आया। यद्यपि यह प्रयोग अल्प काल तक ही सफल हो पाया, फिर भी भारतीय लोकतंत्र ने पहली बार एक दल के एकाधिकार से राहत महसूस की।

उन्हीं दिनों डा० लोहिया ने महिलाओं सहित पिछड़ी जातियों को प्राथमिकता के आधार पर अवसर देने का नया सिद्धांत बनाया जो शोषित वर्गों को संगठित करने के लिए 'वर्ग संघर्ष' के मार्क्सवादी सिद्धांत के लिए नयी चुनौती थी। भारतीय समाज में सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन लाने के लिए पिछड़ी जातियों को एकजुट करने के लोहिया के सिद्धांतों का ही परिणाम है आज की "मंडल आयोग की रिपोर्ट"। इसमें कोई संदेह नहीं है कि दलित एवं अवसरों से वंचित जातियों को संगठित करने का लोहिया का नया सिद्धांत पिछड़ी जातियों के मन में ऐसी चेतना और इच्छा पैदा करने में सफल रहा जिससे वे सत्ता और राजनीति पर उच्च जातियों के अधिकार के विरुद्ध सशक्त राजनीतिक शक्ति के रूप में खड़े हो सकें। लेकिन यह महत्वपूर्ण प्रश्न बिना उत्तर के ही रह गया कि जन-जाग्रति का यह नया सिद्धांत भारतीय समाज में जाति प्रथा की बुराइयों को किस प्रकार समाप्त करेगा।

डा० लोहिया ने अंग्रेजी भाषा को हटाने तथा भारतीय लोगों को हिन्दी और अन्य भाषाओं को समान स्तर की मानते हुए उनका राष्ट्रीय भाषा के रूप में उपयोग करने हेतु प्रेरित करने के लिए एक जोरदार अभियान चलाया। अंग्रेजी भाषा के विरुद्ध अपने अभियान में डा० लोहिया ने ऐसी कट्टरता अपनाई कि एक बार प्रजा सोशलिस्ट पार्टी में उन्होंने वयोवृद्ध गांधीवादी नेता डा० पी०सी० घोष से अंग्रेजी में बात करने से इंकार कर दिया और दूसरी ओर डा० घोष ने भी हिन्दी में बातचीत करने से इन्कार कर दिया तथा अंत में दोनों ने बातचीत करने के लिए जर्मन भाषा का सहारा लिया। यद्यपि लोहिया जी के सर्वोत्तम लेख अंग्रेजी में हैं किन्तु उन्होंने भारत में किसी भी अवसर पर अंग्रेजी में न बोलने का संकल्प किया और उस पर दृढ़ रहे। वास्तव में यह

अंग्रेजी-विरोधी-अभियान हिन्दी के पक्ष में आक्रामक अभियान बन गया है जिसने सभी भारतीय भाषाओं को बराबरी का दर्जा देने संबंधी लोहिया जी के विचारों को झुठला दिया है। यह चिन्ता का विषय है कि कहीं डा० लोहिया की भाषा संबंधी नीति से हिन्दी के पक्ष में ऐसा जेहाद खड़ा न हो जाए जिससे राष्ट्रीय अखंडता को क्षति पहुंचे।

डा० लोहिया ने अपने अनुयायियों का उत्साह बढ़ाने के लिए अनेक नए विचार, नये जन संगठन कार्यक्रम और अनेक प्रभावपूर्ण राजनैतिक नारे दिये लेकिन भारतीय समाजवादी संगठन स्थापित करने का उनका उद्देश्य लगभग अपूर्ण ही रह गया। प्रजा सोशलिस्ट पार्टी का गठन सभी भारतीय समाजवादियों को संगठित करने के लिए किया गया था और इस पार्टी में नेहरू और उनके स्तर के कुछ अन्य नेताओं को छोड़कर स्वतंत्रता आन्दोलन के लगभग सभी प्रसिद्ध कांग्रेसी नेता शामिल हो गए थे। डा० लोहिया एक ओर तो अपने समाजवाद, समाजवादी मूल्यों और समाजवादी कार्यक्रमों के मामले में किसी प्रकार के समझौते के लिए तैयार नहीं थे और दूसरी ओर वह सतत सत्याग्रह पर बहुत अधिक जोर देते थे। इसके कारण ही प्रजा सोशलिस्ट पार्टी का विभाजन हुआ और छठे दशक और सातवें दशक के प्रारम्भ में समाजवादी ताकतों का विघटन हो गया। जयप्रकाश जी ने आचार्य विनोबा जी के भूदान आन्दोलन को अपना पूर्ण समर्थन दिया और उनके साथी समाजवादी यह जानते थे कि समाजवादी शक्तियों के विघटन से निराश होकर ही जयप्रकाश जी ने अपने समाजवादी मित्र छोड़े हैं, प्रजा सोशलिस्ट पार्टी छोड़ी है और सर्वोदय आंदोलन में शामिल हुए हैं। सातवें दशक के मध्य में डा० लोहिया ने आत्म चिंतन के क्षणों में यह महसूस किया कि उनकी अभिलाषा वास्तव में पूरी नहीं हो पाई है और भारतीय लोकतंत्र पर एक ही पार्टी के एकाधिकारपूर्ण वर्चस्व के विरुद्ध वह अपने समाजवादी आंदोलन को वास्तव में राष्ट्रीय जन-आंदोलन के रूप में स्थापित नहीं कर सके हैं। वह जयप्रकाश जी को समाजवादी आंदोलन में वापस लाने के लिए बड़े उत्सुक रहे।

मुझे एक हृदयस्पर्शी घटना याद आ रही है जो यह दर्शाती है कि लोहिया जी जयप्रकाश जी को समाजवादी आंदोलन का नेतृत्व पुनः सौंपने के प्रति कितने अधिक उत्सुक थे। अस्वस्थ होने से कुछ सप्ताह पहले वह कलकत्ता आए थे। मैं उनके मित्र के "मार्बल हाउस" में उन्हें देखने गया था। मैंने उस दिन लोहिया जी को असाधारण रूप में भावुक पाया। उन्होंने बहुत ही भावुक होते हुए कहा था: "समर बाबू आप जाओ। जे०पी० को वापस लाओ. मैं तो (वर्तमान सरकारों को) तोड़ सकता, हिला नहीं सकता। अगर हिला सकता है तो वही हिला सकता है। जाओ, जे० पी० को फिर लाओ।"

डा० लोहिया यह जानते थे कि उन दिनों मैं जयप्रकाश जी के काफी नज़दीक था और प्रजा सोशलिस्ट पार्टी पूरी तरह नहीं छोड़ी थी। अगले ही दिन मैं पटना गया। डा० लोहिया ने जो कुछ कहा था, उसे सुनकर जयप्रकाश जी अप्रभावित न रह सके और एक दिन बाद ही अपने बिछुड़े मित्र डा० लोहिया से मिलने के लिए दिल्ली के लिए चल पड़े। दुर्भाग्य से तब तक बहुत देर हो चुकी थी। लोहिया उस समय विलिंगडन अस्पताल में अपने जीवन के लिए संघर्ष कर रहे थे। लोहिया जी की बीमारी के दौरान जयप्रकाश जी उनके साथ अस्पताल में ही रहे लेकिन उन्हें बचा न सके। अगर डा० लोहिया शल्य चिकित्सा के बाद जीवित रहते तो वह "महान क्रांति" के नेता जयप्रकाश नारायण का साथ देते और आठवें दशक में भारतीय समाजवादी आंदोलन का इतिहास स्वर्णाक्षरों में लिखा जाता।

डा० लोहिया को श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए भारतीय समाजवादी आंदोलन उन्हें ऐसे पुरुष के रूप में सदैव याद रखेगा जिन्होंने इस आन्दोलन में सदैव नित्य नये प्राणों का संचार किया और आज भी इसके लिए वैसे ही प्रयास किए जाने चाहिए।

16

राममनोहर लोहिया: एक बहुमुखी प्रतिभा

—मधु लिमये

डा॰ राममनोहर लोहिया एक मौलिक विचारक, विलक्षण और अदम्य प्रतिभा वाले नेता थे। आधुनिक भारत के निर्माण में उन्होंने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। लेकिन कैंट, हेगेल या काम्टेकी परम्परा की तरह वह एक एकान्त दार्शनिक या शिक्षा प्रणाली के निर्माता नहीं थे। वह मूलतः एक कर्मशील व्यक्ति थे। उनके लिए दार्शनिक व्यवस्थाओं का उस समय तक कोई महत्व नहीं था, जब तक कि समाज को बदलने के लिए प्रभावी, क्रांतिकारी कार्यवाही करने की दिशा में इनसे प्रेरणा और मार्गदर्शन प्राप्त न हो। अतः अपने विचारों की छाप छोड़ने और राजनैतिक, आर्थिक तथा सामाजिक विचारों के प्रति अपना मौलिक योगदान देने के बावजूद, उन्होंने इस तथ्य की कभी भी अनदेखी नहीं की कि क्रांतिकारी परिवर्तन के बिना न तो इन विचारों को कार्यान्वित ही किया जा सकता है और न ही अधिकांश लोगों का सुधार किया जा सकता है। अतः मूलतः वह एक कर्मशील व्यक्ति थे।

सन् 1939 में, जब मैं फरगुसन कालेज, पुणे का छात्र था, राममनोहर जी से मेरी मुलाकात हुई। उनके विचारों और व्यक्तित्व ने मेरे ऊपर गहरी छाप छोड़ी।

राममनोहर जी का जन्म, अकबरपुर, उत्तर प्रदेश में एक मध्यम वर्ग के साधारण परिवार में हुआ। उनके पिता, श्री हीरालाल स्वतंत्रता सेनानी थे। डा॰ लोहिया ने विद्यालय स्तर की शिक्षा बम्बई में पूरी की और उच्च शिक्षा बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय तथा विद्यासागर कालेज, कलकत्ता में पाई।

अंग्रेजी, जर्मन और फ्रैंच भाषा पर उनका पूरा अधिकार था। वह बोलचाल में साधारण हिन्दी का प्रयोग करते थे। उन्हें बंगला, गुजराती, मराठी और अन्य भारतीय भाषाओं का भी अच्छा ज्ञान था।

वह एक संवेदनशील व्यक्ति थे। उनका एक ऐसे देश में जन्म हुआ जिस पर

समय-समय पर हमला होता रहा और गुलाम रहा। अतः डा० लोहिया को अपने देश को स्वतंत्र कराने की अदम्य अभिलाषा थी। अतः आरम्भिक जीवन में ही वह एक स्वतंत्रता सेनानी बन गए और अगस्त 1942 के आन्दोलन को उन्होंने दिशा प्रदान की और इसमें महत्वपूर्ण योगदान किया।

सन् 1933 में बर्लिन विश्वविद्यालय से डॉक्टर की उपाधि प्राप्त करने के पश्चात् जब यह भारत वापस आए तब वह मात्र 23 वर्ष के ही थे। उन दिनों युवाओं के मन में एक प्रकार का वैचारिक ज्वार भाटा उबल रहा था। इसी के परिणामस्वरूप भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के भीतर ही समाजवादी पार्टी का गठन हुआ। डा० लोहिया आरम्भ से ही कांग्रेस समाजवादी पार्टी के स्तम्भ थे। इस आकर्षक व्यक्तित्व और प्रतिभाशाली युवक के बारे में जवाहरलाल नेहरू को जमनालाल बजाज से जानकारी मिली। सन् 1936 में जवाहरलाल नेहरू ने जब इलाहाबाद में अखिल भारतीय कांग्रेस कार्यालय का पुनर्गठन किया तो उन्होंने युवा राममनोहर को अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के विदेश विभाग का प्रभारी नियुक्त किया।

कांग्रेस के विदेश सचिव के रूप में, लोहिया जी ने स्वतंत्रता आन्दोलन और एशिया, अफ्रीका और लेटिन अमरीका के प्रगतिशील संगठनों से गहरा संबंध स्थापित किया। उन्होंने विदेशों में रह रहे भारतीयों की समस्याओं का गहराई से अध्ययन किया और भारतीयों का ध्यान विदेशों में रह रहे भारतीयों की शोचनीय दशा की ओर आकर्षित किया। भारत और अन्य देशों में नागरिक स्वतंत्रता के दमन के बारे में वह काफी जागरूक थे। इस विषय पर उन्होंने एक महत्वपूर्ण पुस्तिका भी लिखी।

वह भारत वापस आने के तुरन्त बाद महात्मा गांधी के निकट सम्पर्क में आये। वह गांधी जी के आदर्शों, मूल्यों और तौर-तरीकों से काफी प्रभावित थे। वह गांधी जी के सविनय विरोध और असहयोग के विचारों को 20वीं सदी की मौलिक देन मानते थे। जब 1940 में जय प्रकाश नारायण और लोहिया युद्ध विरोधी भाषणों के लिए गिरफ्तार किये गये थे, तो महात्मा गांधी ने इसका कड़ा विरोध किया था। उन्होंने कहा था कि राममनोहर और जयप्रकाश जैसे देशभक्तों को गिरफ्तार किया जाना सहन नहीं किया जायेगा और यह भी कि वह स्वतंत्रता

के इस अधिकार के प्रति बढ़ते हुए अतिचार के संबंध में मूक दर्शक नहीं बने रह सकते हैं। यह व्यक्तिगत सविनय अवज्ञा आन्दोलन, जो अक्तूबर 1940 में शुरू किया गया था, लोगों के लोकतांत्रिक स्वतंत्रता के अधिकार की रक्षा करने के लिए चलाया गया था।

जापान का पर्ल हार्बर पर हमला और दक्षिण पूर्व एशिया में पश्चिमी साम्राज्यवादी शासन के दिसम्बर 1941 से फरवरी 1942 तक की दो महीने की अल्प अवधि में ढह जाने से, ब्रिटेन की मिली जुली सरकार ने सर स्टेफोर्ड क्रिप्स को युद्ध संबंधी प्रयासों में भारतीय लोगों का सहयोग हासिल करने के लिए भारत भेजा। वार्ता असफल रही। महात्मा गांधी, राममनोहर लोहिया और अन्य समाजवादी क्रिप्स योजना के खिलाफ थे। इसी अस्पष्टता के माहौल में गांधी जी ने अपने उन लोगों को सक्रिय बनाने के लिए भारत छोड़ो आन्दोलन का आह्वान किया, जोकि निराश अंग्रेज साम्राज्यवाद और भारत के दरवाजे पर आक्रामक जापानी साम्राज्यवादी मुहिम के मध्य फंस गये थे। जब 9 अगस्त, 1942 की सुबह राष्ट्रीय नेता गिरफ्तार किये गये, तो डा० लोहिया ने अच्युत पटवर्धन, अरूणा आसफ अली, सुचेता कृपलानी आदि नेताओं के साथ मिलकर भूमिगत अखिल भारतीय कांग्रेस समिति के नाम पर अंग्रेजी शासन के खिलाफ व्यापक रूप से विरोध की पहल की। इसके कुछ ही समय बाद जयप्रकाश बिहार में हजारीबाग जेल से सनसनीखेज ढंग से गायब हो गये और इन सरकार विरोधियों में शामिल हो गये। जयप्रकाश और लोहिया ने इस आन्दोलन को नेपाल में अपने छुपने के स्थान से मार्गदर्शन प्रदान किया। निःसंदेह राममनोहर का नाम हमारे स्वतंत्रता आन्दोलन के इस गौरवपूर्ण अध्याय से हमेशा जुड़ा रहेगा।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात जब उत्तरी भारत और बंगाल के कुछ हिस्सों में साम्प्रदायिक दंगे भड़क उठे, तो डा० लोहिया ने महात्मा गांधी के शांति प्रयासों में अपनी सेवायें देने की पेशकश की। कई बार डा० लोहिया ने शान्ति स्थापना के इस कार्य में अपनी जान भी जोखिम में डाल दी।

जब तक महात्मा गांधी जीवित थे, राममनोहर भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में समाजवादी परिवर्तन के प्रति आशावादी रहे। गांधी जी की हत्या के बाद वह कांग्रेस में बदलाव लाने के संबंध में पूरी तरह से निराश हो चुके थे और इसी वजह से वह इसका एक प्रगतिशील और सक्रिय विकल्प बनाने के लिए कांग्रेस से अलग हो गये। उन्होंने सोचा कि कांग्रेस एक ऐसी पार्टी बन चुकी है जो अपनी यथास्थिति में परिवर्तन नहीं चाहती है और भारतीय समाज में केवल इसका एक प्रगतिशील विकल्प ही महत्वपूर्ण परिवर्तन ला सकता है।

डा० लोहिया ने कभी भी स्वयं को मार्क्सवादी नहीं कहा। साथ ही उन्होंने स्वयं को

मार्क्सवादी विरोधी भी कभी नहीं कहा। उन्होंने ऐसे दोनों दृष्टिकोणों पर खेद प्रकट किया। तथापि, उन्होंने कार्ल मार्क्स तथा यूरोप और अमरीका के अन्य **समाजवादी** विचारकों के विचारों का गहन अध्ययन किया था।

डा० लोहिया ने 1942 के आन्दोलन के दौरान मार्क्स के आर्थिक सिद्धांत पर आलोचनात्मक लेख लिखा। उनका यह शैक्षणिक कार्य अधूरा रहा लेकिन इसका जो हिस्सा प्रकाशित हुआ और उपलब्ध है वह पूंजीवाद और साम्राज्यवाद के उनके सिद्धांत की रूप-रेखा दर्शाता है। उनका हॉब्सन, हिल्फरडिंग तथा लेनिन जैसे सिद्धान्तवादियों से भिन्न मत था जिनका कहना था कि साम्राज्यवाद वित्तीय पूंजीवाद का अन्तिम चरण है। ये सिद्धान्तवादी 19वीं **शताब्दी** के उत्तरार्ध में अफ्रीका तथा अन्य देशों में पश्चिमी साम्राज्यवादी विस्तार के तत्कालीन नवीनतम चरण से यह आम राय बना रहे थे। वास्तव में पश्चिमी विस्तारवाद तथा आक्रामकता का इतिहास कई शताब्दी पूर्व तथाकथित मध्यकालीन युग से **शुरू** होता है। जिस प्रकार पश्चिमी यूरोप में पूंजीवाद के विकास की लम्बी प्रक्रिया का चरम बिन्दु औद्योगिक क्रांति था, उसी प्रकार 19वीं शताब्दी के अन्त का साम्राज्यवाद पश्चिमी दुनिया के राजनैतिक विस्तार तथा इसकी आर्थिक व्यवस्था का अन्तिम चरण था।

मार्क्स तथा एंजिल्स ने "कम्यूनिस्ट मैनिफैस्टो" में लिखा था कि "इसकी वस्तुओं के सस्ते मूल्य ऐसे शक्तिशाली उपकरण हैं जिनसे बड़ी से बड़ी बाधाएं दूर की जा सकती हैं और इसके द्वारा वह विदेशियों के प्रति असभ्य लोगों की तीव्र घृणा को दूर कर सकते हैं" यह सही नहीं था। इसमें पहली आपत्तिजनक बात यह थी कि सभी गैर-पश्चिमी समाजों **के लिए असभ्य शब्द का प्रयोग किया गया था। निःसंदेह वे वैज्ञानिक उन्नति के मामले में** पिछड़े थे, लेकिन वे असभ्य नहीं थे। चीनी, मुस्लिम, अरब तथा भारतीय लोगों की संस्कृति काफी विकसित हो चुकी थी। लोहिया का तर्क था कि भारतीय वस्त्र उद्योग का पतन प्रतिस्पर्धा के कारण नहीं हुआ। ब्रिटेन ने इसके लिए अपनी राजनैतिक शक्ति का उपयोग किया जिसके कारण भारतीय वस्त्र उद्योग का पतन हुआ। इसलिए डा० लोहिया ने यह तर्क दिया कि साम्राज्यवाद और पूंजीवाद एक साथ थे और शुरू-शुरू में ब्रिटिश पूंजीवादी उद्योग की मशीनों से बनी वस्तुएं भारतीय उद्योग और हथकरघे के विनाश के लिए मुख्य रूप से उत्तरदायी नहीं थी, बल्कि जिन मुख्य तत्वों के कारण ऐसा हुआ वह तो राजनैतिक शक्ति थी जोकि ईस्ट इंडिया कम्पनी और ब्रिटिश सरकार ने भारत में प्राप्त कर ली थी। उन्होंने पुराने भारतीय उद्योगों को नष्ट करने और अपने वाणिज्य तथा उत्पादित वस्तुओं के लिए अनुचित लाभ प्राप्त करने के उद्देश्य से बाकायदा राजनैतिक प्रभुत्व का उपयोग किया। इसके फलस्वरूप भारतीय उद्योग निर्बल होता चला गया। इसके लिए पूंजी, तकनीकी नवीनता तथा बाजार उपलब्ध नहीं थे। लाखों लोग अपने

परम्परागत व्यवसाय खो बैठे और विशाल भारतीय बाजार में ब्रिटिश सूती वस्त्र उद्योग तथा लोहे और इस्पात के उत्पाद, इंजीनियरिंग तथा अन्य उद्योगों के पक्ष में राजनैतिक प्राधिकारियों द्वारा खुले तौर पर पक्षपातपूर्ण रवैया अपनाया गया। भारतीय संसाधनों का दोहन, लाभ, लाभांश तथा सरकारी कर्मचारियों के वेतन के अन्तरण तथा प्राप्तियों से ब्रिटिश औद्योगिक क्रांति को और अधिक लाभ हुआ।

समाजवादी आन्दोलन के प्रति डा० राममनोहर लोहिया का अत्यधिक योगदान था। वह भारत में ऐसे पहले समाजवादी विचारक थे जिन्होंने पश्चिम या रूस से प्राप्त विचारों के तहत अपनी विचारधारा सीमित रखने या इनके प्रभुत्व के अधीन रहने से इन्कार कर दिया था। 1952 में समाजवादी पार्टी के पचमढ़ी सम्मेलन को प्रेषित अपनी लिखित भाषण में लिखा थाः—

> "चाहे अमेरिका हो या रूस हो, सब जगह आधुनिक इन्सान अत्यधिक उत्पादन द्वारा कुल पैदावार बढ़ाने तथा एक सुन्दर घर के एक ही उद्देश्य से प्रभावित है और चाहता है कि ये उद्देश्य सभी की पहुंच के भीतर हों, विशेषकर उनके अपने देश में। इन उद्देश्यों की प्राप्ति के बाद तो इस पृथ्वी पर स्वर्ग, आदर्श राज्य, समानता, शांति और पूर्ण जीवन मौजूद है। लेकिन बाधाएं बहुत तेजी से बढ़ रही हैं .... पूंजीवाद अथवा साम्यवाद दोनों के तहत ही आधुनिक जीवन का तनाव और खालीपन दूर होते कठिन लगते हैं क्योंकि बढ़ते स्तर को प्राप्त करने की लालसा ही इनकी उत्पत्ति का कारण है और यह दोनों के लिए है। पूंजीवादियों को आशा थी कि एक पूर्ण प्रतिस्पर्धा के तहत कार्यरत प्रत्येक आदमी के निजी हित से एक आदर्श राज्य उत्पन्न होगा; साम्यवादी अभी भी यह आशा करते हैं कि उत्पादन के साधनों पर सामाजिक स्वामित्व से उत्पन्न उनका राज्य आदर्श होगा। उनकी इस एक ही भ्रान्ति ने अब यह दिखला दिया है कि समाज के सामान्य उद्देश्य कुछ आर्थिक उद्देश्यों से ही अवश्यंभावी रूप से पूर्ण नहीं होते। मानव की समझ द्वारा ही इन उद्देश्यों के दो समूहों के बीच एक एकीकृत संबंध कायम करना होगा।"

लोहिया ने पिछड़े अफ्रीकी-एशियाई-लेटिन अमरीकी देशों के दो तिहाई भाग में, विशेषकर भारत में विद्यमान विशिष्ट परिस्थितियों को ध्यान में रखा और इन परिस्थितियों के सामंजस्य से अपने विचारों को प्रतिपादित करना चाहा। यद्यपि वह गांधी जी के विचारों से अत्यधिक प्रभावित थे लेकिन वह महात्मा गांधी के अन्ध-भक्त नहीं थे।

वह पूर्ण विकेन्द्रीकरण के सिद्धांत के महान समर्थक थे लेकिन उनका यह भी कहना था कि भारत की समस्याओं का समाधान चरखे के स्तर की प्रौद्योगिकी से नहीं किया जा

सकता है। उनका यह विचार था कि नवीन प्रौद्योगिकी द्वारा जिसमें विद्युत का उपयोग और छोटी मशीनों का नवीनीकरण शामिल है, केन्द्रीकृत उत्पादन के दोषों जैसे संपत्ति संकेद्रण, प्रदूषण, शहरों में गन्दी बस्तियों के बनने, बेरोजगारी, पृथकतावाद, आय में विषमताओं आदि से बचा जा सकेगा और साथ ही साथ कीमतें कम की जा सकेंगी और आम कामगारों, चाहे वह खेतों में अथवा छोटी पारिवारिक कार्यशालाओं अथवा छोटे सहकारी कारखानों में कार्य कर रहे हैं, की उत्पादकता और आय को बढ़ाया जा सकेगा।

डा० लोहिया सुधारवादियों द्वारा समर्पित सशस्त्र क्रांति का विरोध करते थे। अगस्त संघर्ष के दौरान उन्होंने ब्रिटिश साम्राज्यवाद के मुख्य केन्द्रों-पुलिस थानों को ध्वस्त करने की मांग की लेकिन किसी व्यक्ति को मारने अथवा जख्मी करने की बात का विरोध किया। वह इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि मानवता की स्वतंत्रता के लिए गांधी जी ने अहिंसा सविनय प्रतिरोध के रूप में एक नया तरीका निकाला था। इससे स्टालिनवाद के उन खतरों से बचा जा सकता था जो हिंसक क्रांति के कारण उत्पन्न हो सकते थे।

लोहिया को मास्को मुकदमों (1938) और साम्यवादियों के उनके बचाव के प्रयास से काफी निराशा हुई। लोहिया ने कहा था कि वह अक्तूबर क्रांति की भूमि को हृदय से श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं। "लेकिन मैं किन्हीं ऐसी कमियों को नजरअंदाज नहीं करूंगा जो स्वतः ही सामने आएंगी। मैं मुकदमों को ऐसी भारी कमी मानता हूं और उनकी तथा उनकी मानवता विरोधी तथा लोकतंत्र-विरोधी जड़ों की आलोचना करता हूं। मैं नहीं चाहता कि ऐसी बातें मेरे अपने देश में ही हों। मैं बंगाल संकल्प (मानवता की रक्षा में) और रूसी मुकदमों में कुछ संबंध, चाहे थोड़ा ही हो देखता हूं। यदि यह बात न होती तो मैं अपने ही दल के प्रांतीय सम्मेलन के संकल्प की आलोचना करने का साहस नहीं करता।" उन्होंने ख्रुश्चेव के सत्तारूढ़ होने से अठारह वर्ष पहले गोर्वाचेव के आगमन से सैंतालीस वर्ष पहले 1938 में यह लिखा था।

उनके वैचारिक लेखों में उनके मूलचिंतन की झलक मिलती है। डा० लोहिया विरोधाभासों और परस्पर-विरोधी समस्याओं को सामने लाते थे और स्वयं ही उन विरोधाभासों एवं समस्याओं का नये तरीके से सही समाधान प्रस्तुत करते थे। उनकी क्रोध और प्रेम के मिश्रण के रूप में सविनय अवज्ञा की उनकी संकल्पना, वाक् स्वतंत्रता और नियंत्रित कार्यवाही के रुप में लोकतंत्रात्मक कार्य-प्रणाली, सक्रियता और निष्क्रियता से भिन्न शांतिपूर्ण ढंग से कार्य करने का उनका तरीका, विश्व के मामलों में विरोध और सह-अस्तित्व से भिन्न सह-अस्तित्व का उनका सिद्धांत इसके उदाहरण हैं। अतः यह कहा जा सकता है कि डा० लोहिया हीगल के दर्शन से प्रभावित थे।

डा० लोहिया ने बुराइयों का विरोध करने पर बल दिया और साथ ही उन्होंने रचनात्मक कार्यों की महत्ता पर भी जोर दिया। वह भली-भांति जानते थे कि राजनीति सत्ता से पृथक नहीं है इसलिए सत्ता के प्रश्न को टाला नहीं जा सकता। इसके साथ ही उनका यह स्पष्ट विचार था कि जब तक जनशक्ति द्वारा राज्य शक्ति को नियंत्रित नहीं किया जाएगा, मार्गदर्शन नहीं दिया जाएगा और वश में नहीं रखा जाएगा, तब तक कोई मौलिक परिवर्तन सम्भव नहीं है। इसी वजह से उन्होंने देश में सामाजिक क्रांति के लिए जेल, साधन और मत संयुक्त करने का फार्मूला दिया। उन्होंने युवकों से राष्ट्रीय पुनर्निर्माण के लिए "एक घण्टा स्वैच्छिक श्रम" का सहयोग देने का आह्वान किया।

राममनोहर के जीवन काल में एक भी ऐसा आंदोलन नहीं था जिसको उन्होंने प्रेरणा नहीं दी थी अथवा जिससे वह जुड़े नहीं थे। 1946 में जेल से रिहा होने के बाद डा० लोहिया ने गोवा की यात्रा की। जब उन्होंने देखा कि पुर्तगाली फासिस्ट शासन द्वारा गोवा की जनता को आधारभूत नागरिक स्वतंत्रता से वंचित रखा जा रहा है तो उन्होंने नागरिक स्वतंत्रता के लिए गोवा के मारगांव में तत्काल अपना आन्दोलन शुरू कर दिया। 18 जून, 1946 को पुर्तगाली शासकों ने उन्हें गिरफ्तार कर लिया। उनकी गिरफ्तारी की तिथि को गोवा में स्वतन्त्रता दिवस के रूप में मनाया जाता है।

लोहिया अपने जीवन के अन्तिम चरण में (1963 में) संसद के लिए चुने गए। वह 5 वर्षों से कम समय तक लोक सभा के सदस्य रहे। तथापि उन्होंने लोक सभा की कार्यवाही पर एक गहरी छाप छोड़ी है। उन पर अभद्र व्यवहार करने का आरोप लगाया गया है। परन्तु यह आरोप प्रेरित था। उन्होंने अनेक गम्भीर मामले उठाये जैसे हमारी जनसंख्या का 60 प्रतिशत गरीबी से नीचे रहने का प्रश्न (प्रसिद्ध चर्चा 15 आना बनाम 3 आना) उठाया और हमारे आर्थिक विकास के संभ्रान्त वर्गोन्मुखी स्वरूप को उजागर किया। उन्होंने भ्रष्टाचार का पर्दाफाश किया और दलितों के हितों का जोरदार समर्थन किया।

राममनोहर जी जानते थे कि हमारी जनसंख्या का अधिकांश भाग ग्रामीण क्षेत्रों में रहता है। वह निर्धन किसानों, भूमिहीन लोगों और कृषि श्रमिकों की आकांक्षाओं के प्रतीक बन गए। डा० लोहिया उन महान नेताओं में से थे जिन्होंने केवल हमारे सामाजिक संबंधों में मूल परिवर्तन की आवश्यकता के लिए ही वकालत नहीं की बल्कि उन्होंने इस क्रान्तिकारी परिवर्तन के लिए एक विचारधारा भी प्रदान की। डा० लोहिया ने इस मूल परिवर्तन को सप्तक्रान्ति के नाम से पुकारा था। यदि कोई सतही विचार छोड़कर समस्या की बारीकी से अध्ययन करे तो वह समझ जाएगा कि सर्वोदय अथवा गरीबों और दरिद्रों

के सुधार के बारे में गांधीजी की धारणा, लोहियाजी की सप्तक्रांति संबंधी अवधारणा और सम्पूर्ण क्रान्ति के बारे में जयप्रकाश जी के विचार क्रान्तिकारी परिवर्तन की एक ही प्रक्रिया के विभिन्न नाम हैं। अन्तर इतना है कि लोहिया जी की धारणा में जयप्रकाश जी की धारणा के समान अस्पष्टता नहीं थी और उसमें "एक कदम ही मेरे लिए पर्याप्त है" में परिलक्षित होने वाली गांधी जी की अति व्यवहारिकता भी नहीं थी। लोहिया जी के विचार स्पष्ट, ठोस और इतने व्यापक थे कि वे आदर्श बनकर ही रह गए।

राममनोहर जी साम्राज्यवाद विरोधी और उपनिवेश विरोधी क्रान्ति को तेजी से निष्पादित करना चाहते थे। वह ऐसी विश्व संसद और सरकार की स्थापना करना चाहते थे जिसके लिए सम्प्रभुता सम्पन्न राज्य स्वैच्छिक रूप से अपनी प्रभुसत्ता का कुछ भाग देंगे। लोहिया जी बड़े भाग्यशाली थे कि उन्होंने एक ऐसे विश्व का स्वप्न साकार होते देखा जो सीधे साम्राज्यवादी शासन से मुक्त था। तथापि वह विश्व में आर्थिक स्वतंत्रता की विजय तथा मानव श्रम का समान महत्व और विश्व सरकार की स्थापना देखने के लिए अधिक समय तक जीवित नहीं रहे। उनके 81वें जन्म दिवस पर भी उनका उद्देश्य पूरा नहीं हो पाया है।

उन्होंने केवल जातिवाद और रंगभेद के विरूद्ध आन्दोलन का समर्थन ही नहीं किया था बल्कि उन्हें स्वयं अमेरिकी अश्वेतों के समान अधिकारों के आन्दोलन में भाग लेने के कारण 1964 में गिरफ्तार किया गया था। यह दूसरी बात है कि अमरीकी सरकार के अनुकम्पाशील क्षमादान के कारण उन्हें तत्काल छोड़ दिया गया था।

डा० लोहिया का आर्थिक समानता में पक्का विश्वास था, वह पूर्ण समानता में नहीं बल्कि अधिकतम और प्राप्तव्य समानता में विश्वास करते थे। उनका विचार था कि अफ्रीका, एशिया और लेटिन अमेरिका के सुधार के लिए साम्यवाद और पूंजीवाद प्रासंगिक नहीं हैं। दोनों विचारधारायें वर्तमान भाषा में कहे जाने वाले "उपभोक्तावाद" का समर्थन करती हैं। लोहिया ने उपभोक्तावादी विचारधारा को, जिसमें भौतिक वस्तुओं और धन के अर्जन की उत्सुकता होती है, अस्वीकार कर दिया था। उनका विश्वास था कि विकेन्द्रित आर्थिक और राजनैतिक व्यवस्था, चौखम्भा राज्य और छोटे पैमाने के उद्योगों का औद्योगिकीकरण विश्व के पिछड़े देशों की समस्याओं को हल कर सकते हैं।

डा० लोहिया पाश्चात्य सभ्यता की जिज्ञासु और साहस की भावना के प्रशंसक थे। उन्होंने स्त्री-पुरूष की समानता समेत समानता के लिए पाश्चात्य अभियान का भी स्वागत किया था। परन्तु उन्होंने विश्व पूंजीवाद के शोषणात्मक पहलू को पसंद नहीं किया था। इन देशों की आम जनता की न्यूनतम उपभोग आवश्यकताओं और सामाजिक सुरक्षा की गारंटी सुनिश्चित करने के लिए साम्यवादी संस्थाओं ने जो कुछ कार्य किया वह उसके प्रशंसक थे।

परन्तु वह साम्यवादी प्रणाली में निहित केन्द्रीकरण, हिंसा तथा विचारों का दमन करने से घृणा करते थे। इन दोनों प्रणालियों को उनकी मुख्य आलोचना का आधार यह था कि इन विचारधाराओं में सम्पूर्ण मानवता के लिए एक बेहतर जीवनस्तर की संल्पना नहीं की गई थी बल्कि यूरोपीय-अमरीकी साम्यवादी राष्ट्रों के भीतर ही निरन्तर बढ़ने वाले भौतिक जीवनस्तर के आत्म-केन्द्रित आदर्श का समर्थन किया गया था। हेनरी फोर्ड तथा जोसेफ स्टालिन के आदर्शों में समानता के सम्बन्ध में की गई उनकी टिप्पणी को इस व्यापक दार्शनिक संदर्भ में समझे जाने की आवश्यकता है।

डा० राममनोहर लोहिया सामाजिक समानता के एक कट्टर समर्थक थे। उनका कहना था कि इस महान देश का पतन तथा इस पर बार-बार विदेशी आक्रमणों का होना तथा यहां विदेशी शासन के कायम होने का मुख्य कारण जातिप्रथा तथा जन्म पर आधारित धर्मतांत्रिक व्यवस्था थी। उन्होंने "जाति-प्रथा समाप्त करो" नामक आन्दोलन चलाया था। उन्होंने कहा था कि परम्परागत असमान समाज में सभी को केवल समान अवसर प्रदान कर देने भर से ही समानता स्थापित नहीं की जा सकती। उन्होंने कहा था कि काफी लम्बे समय तक पिछड़ी जातियों, स्त्रियों, हरिजनों, आदिवासियों तथा अल्पसंख्यकों के पिछड़े वर्ग को विशेष अवसर प्रदान करने होंगे ताकि वे उन्नत लोगों के स्तर तक पहुंच सकें। वह पिछड़ेपन को कायम करने के लिए नहीं बल्कि इसे समाप्त करने के लिए एक ऐसी योजना बनाना चाहते थे जिसमें साठ प्रतिशत आरक्षण की व्यवस्था हो। क्रान्तिकारी परिवर्तन लाने सम्बन्धी उनके कार्यक्रम में आरक्षण केवल एक मद के रूप में था, वोट-प्राप्ति के साधन के रूप में नहीं।

भारतीय समाज में व्याप्त आर्थिक असमानताओं तथा सामाजकि अन्याय ने उनके मस्तिष्क में हमारे समाज के ढांचे में ही सर्वांगीण परिवर्तन लाने की तीव्र इच्छा उत्पन्न कर दी थी। इस प्रकार उन्होंने सात परिवर्तन लाने के कार्यक्रम की योजना बनाई। उनका विश्वास था कि ये सात परिवर्तन जब पूर्णता को प्राप्त हो जाएंगे तो इनसे न केवल भारत में ही अपितु सम्पूर्ण विश्व में ही भारी परिवर्तन आ जायेगा।

डा० लोहिया एक महान देशभक्त थे परन्तु वह एक संकीर्ण राष्ट्रवादी नहीं थे। वह सम्पूर्ण विश्व को ध्यान में रखकर विचारते थे। उनका विश्वास था कि मानवता की मुक्ति तथा विश्व एकता न तो पूंजीवादी प्रणाली के आधार पर और न ही साम्यवादी प्रणाली के आधार पर प्राप्त की जा सकती है क्योंकि उनके अनुसार ये दोनों ही प्रणालियां इस उद्देश्य के लिए असंगत थीं।

वह सम्पन्न लोगों अथवा सामन्तवादियों की भाषा को शिक्षा के माध्यम तथा प्रशासन की भाषा के रूप में प्रसारित करने के बिल्कुल खिलाफ थे। वह सामन्तवादी वस्त्रों तथा

आलीशान रिहायशी भवनों के भी खिलाफ थे। उन्होंने स्पष्ट कर दिया था कि इन सुविधाओं का अस्तित्व में बने रहना आम व्यक्ति की निर्धनता तथा इसके घोर दुःख का ही दूसरा रूप था। उनका विश्वास था कि इस देश की जनता में एक विदेशी भाषा के सतत प्रयोग से नव-जीवन का संचार नहीं किया जा सकता। उनके विचारों से ही प्रेरणा पाकर लोक सभा के वाद-विवाद में तेलुगु, तमिल तथा अन्य दक्षिणी भाषाओं के साथ-साथ अनुवाद की व्यवस्था की गई थी। पुनः उनके ही नेतृत्व में मुझ जैसे गैर-हिन्दीभाषी व्यक्तियों ने संसद में तथा उसके बाहर हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं का प्रयोग करना आरम्भ किया था।

महात्मा गांधी के अतिरिक्त अन्य किसी भी नेता ने पुरुष-स्त्री की समानता पर इतना अधिक जोर नहीं दिया। उन्होंने स्त्रियों को केवल राजनीति में ही नहीं अपितु जीवन के सभी क्षेत्रों में एक सक्रिय भूमिका निभाने के लिए हमेशा प्रोत्साहित किया था। उनके मन में स्त्रियों के प्रति गहन सहानुभूति थी। उन्होंने उन ग्रामीण स्त्रियों की गंभीर समस्याओं पर भी चर्चा की थी जो काफी लम्बी दूरी से पानी लेकर आती हैं तथा शौचालय सुविधा के बिना कार्य करती हैं और धुंआ रहित उपकरणों तथा स्टोव के बिना काय करती हैं।

डा० लोहिया का कहना था कि जब तक विश्व में अन्याय व्याप्त रहेगा, जब तक मजदूर उत्पादकता तथा मजदूरी की वापसी के अनुपात में इतनी अधिक असमानता बनी रहेगी, तब तक न तो अस्त्र-शस्त्रों को समाप्त किया जा सकता है और न ही इस पृथ्वी पर स्थायी शान्ति की स्थापना की जा सकती है। फिर भी, उनका तर्क था कि परमाणु हथियारों के अविष्कार के पश्चात ऐसी चरम सीमा आ गई है जिसके आगे सशस्त्र क्रांति का मार्ग अप्रासंगिक हो गया है।

डा० लोहिया सामाजिक और आर्थिक समानता के आदर्शों के प्रति पूर्ण रूप से समर्पित थे। इसके साथ ही वे राज्यवाद के कट्टर विरोधी थे। वे गोपनीयता और स्वतंत्रता को महत्व देते थे और राज्य द्वारा राष्ट्रीय जीवन के प्रत्येक पक्ष को नियंत्रित करने के अधिकार के विरोधी थे। उनका विश्वास था कि विमति तथा अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता सातों क्रांतियों का अविभाज्य पक्ष है। गरीबों और असहयोग के विरुद्ध आपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा 107-109 के दुरुपयोग से वे काफी द्रवित हुए थे। उन्होंने इन धाराओं के अंतर्गत निर्धारित गिरफ्तारियों की संख्या को पूरा करने की चाल का पर्दाफाश किया। उन्होंने इन धाराओं को गरीब जनता के लिए "मीसा" अथवा "नासा" कहा। वे अदालत में भी और बाहर भी निरंतर मानव अधिकार व स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करते रहे। उच्चतम न्यायालय ने उनके पक्ष में दो निर्णय दिए। मानव स्वतंत्रता के लिए संघर्ष जिनमें महत्वपूर्ण युगांतरकारी निर्णय है।

अपने देश को प्यार करने के साथ ही डा० लोहिया एक विश्व द्रष्टा भी थे। एक ओर वे अपने देश को दरिद्रता व दैन्यावस्था से निकालना चाहते थे। तो दूसरी ओर वे मानव जाति के अन्य वर्गों से मित्रता भी स्थापित करना चाहते थे। उनका यह बन्धुभाव तथाकथित विश्वहितैषियों के आडम्बर से रहित था। मानव जाति की एकता के उनके सिद्धान्त का आधार भारत माता के प्रति उनका एकनिष्ठ प्रेम था। वे राष्ट्रीयता और जाति के संकुचित दायरों से परे बुद्धि और आदर्शों के नागरिक अधिकारों की नवीन अवधारणा के समर्थक थे। उन्होंने एक ऐसी अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था का स्वप्न देखा था जिसमें वे पासपोर्ट और वीसा के बिना ही पूरे विश्व में भ्रमण कर सकें। किसी अन्य राष्ट्रीय नेता का ऐसा अनूठा और आकर्षक स्वप्न नहीं होगा। मैंने विगत पचपन वर्षों में कई नेताओं को देखा है किन्तु सिर्फ डा० लोहिया ही राजा और रंक के साथ एक समान व्यवहार कर सकते थे। फटे-पुराने, मैले-कुचैले वस्त्रों में एक फकीर को वह उतना ही स्नेह व प्रेम देते थे जितना वह अपने राजवंशीय मित्र बीकानेर के महाराजा को देते थे। दरिद्रों, उपेक्षितों व शोषितों के साथ उनका आत्मिक संबंध था। देश के युवाओं के लिए भी वे एक प्रेरणा स्रोत थे। वे युवाओं को सदैव प्रोत्साहित करते गये कि वे आगे बढ़ कर अपने तेज को प्रदर्शित करें। महात्मा गांधी व जयप्रकाश नारायण के समान ही उनमें दूसरों को आकृष्ट करने का यह गुण था। डा० लोहिया के व्यक्तित्व का निर्माण, प्रज्ञा व व्यक्तिगत आकर्षण के गठबंधन से हुआ था। वे एक प्रतिभावान वक्ता थे। वें एक सुरुचिसम्पन्न, नाट्य चेतना से युक्त व्यक्ति थे, उनमें हाजिरजवाबी की विलक्षण प्रतिभा थी जो विरले नेताओं में होती है। फिर भी उन्हें समझना सरल नहीं था। वे कटुभाषी थे। वे कई अपेक्षाएं तो रखते थे किन्तु गांधी के समान व्यक्ति की सर्वोत्तम प्रतिभा से लाभ उठाने की क्षमता उनमें नहीं थी। कई बार वह यह तथ्य भुला देते थे कि मानव में, विशेषकर एक भारतीय में कुछ कमियां भी होती हैं।

डा० लोहिया एक शुष्क, संकुचित दृष्टिकोण के राजनीतिज्ञ नहीं थे। कट्टरता उनकी प्रकृति में सम्मिलित नहीं थी। उनकी रूचि व्यापक थी। इतिहास में, दर्शन में, साहित्य में, मूर्तिकला में, चित्रकला में और वास्तुकला में वह रूचि रखते थे। इन विषयों पर उनके विचारों में एक प्रीतिकर ताजगी थी। इसी कारण इन क्षेत्रों के कुछ विशेषज्ञ उनके प्रशंसकों में से थे।

राममनोहर लोहिया इतिहास के बारे में भारतीयों के दृष्टिकोण में परिवर्तन लाना चाहते थे। एक ओर वहां वे मुसलमानों से कहते थे कि वे गजनी, गौरी और बाबर को विदेशी आक्रमणकारी के रूप में देखें, तो दूसरी ओर हिन्दुओं से कहते थे कि वे रजिया, शेरशाह, रहीम और जायसी को अपने श्रद्धेय पूर्वजों जैसा ही सम्मान दें। उनका

विचार था कि तभी इस देश के हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच सौहार्द्र स्थापित हो सकेगा।

डा० लोहिया मुस्लिम समुदाय, विशेष रूप से इसके पिछड़े वर्गों के कल्याण और अन्य अल्पसंख्यक समुदायों के हितों के लिए बहुत सजग रहते थे। उन्हें उर्दू भाषा से विशेष प्रेम था। वह साम्प्रदायिक दंगों में होने वाली बर्बरता से काफी खिन्न थे। अनेक बार उन्होंने अपनी जान जोखिम में डालकर मुसलमानों की जिंदगी और सम्पत्ति बचाने का प्रयास किया। वह किसी बात को इस त्याग से बड़ा नहीं मानते थे कि हिन्दू समुदाय इस बारे में अपने कर्तव्य सही प्रकार से निभाए। वह चाहते थे कि हिन्दू-मुस्लिम समाज में मिल-जुलकर रहें और उन्होंने सुझाव दिया था कि रक्षाबंधन के दिन बहुसंख्यक समुदाय के व्यक्तियों को अल्पसंख्यक समुदायों के अपने भाइयों-बहिनों के जीवन और गरिमा की रक्षा का संकल्प लेना चाहिये।

24 वर्ष पूर्व डा० लोहिया की मृत्यु उचित चिकित्सा प्रदान न किये जाने तथा शासन की लापरवाही से हुई। वह इस संसार में कुछ नहीं लेकर आए थे और न ही अपने पीछे कुछ छोड़कर गए। वह धन और परिवार के मोह से मुक्त थे। वास्तव में संस्कृत के कथन "वसुधैव कुटुम्बकम्" का पालन करते हुए वह पूरी मानव जाति को अपना परिवार मानते थे और उनका अंतिम संस्कार उसी विद्युत शवदाहगृह में किया गया जहां देश की राजधानी दिल्ली के गरीबों की लावारिस लाशों का अंतिम संस्कार किया जाता है।

डा० लोहिया बहुमुखी प्रतिभा वाले व्यक्ति थे। इसमें कोई संदेह नहीं है कि उनके बारे में अनेक विवाद थे। सभी क्रांतिकारियों ने विरोधाभासों और विवादों को बढ़ावा दिया है। यहां तक कि प्रेम के महान मसीहा, ईसा मसीह ने यह कहा था कि वह परिवारों को विभाजित करने और पुत्र को पिता के विरुद्ध खड़ा करने के लिये आये हैं। शायद यह सही है कि कभी-कभी वह इतनी कटु आलोचना करते थे कि उनके प्रशंसक भी यह महसूस करते थे कि वह अपने समकालीनों और सहयोगियों के विरुद्ध भी अभद्र प्रकार की टिप्पणियां कर देते हैं। इन सब कमियों के बावजूद कोई व्यक्ति इस बात से इंकार नहीं कर सकता है कि देश के पुनरुद्धार और पुनर्निर्माण में उन्होंने महत्वपूर्ण योगदान दिया।

डा० लोहिया के कुछ आलोचकों का यह मत था कि डा० लोहिया के कुछ विचार कोरी कल्पना हैं। सभी स्वप्नदृष्टाओं और क्रांतिकारियों के कुछ आदर्श और कल्पनाएं होती हैं। ऐसे आदर्शों और कल्पनाओं के बिना लोग बड़े कामों के लिए त्याग करने के लिए तैयार नहीं होते। मेरा यह विश्वास है कि डा० लोहिया के विचारों को उनके जीवनकाल में निष्पक्ष रूप से समझा नहीं गया था। शायद देश की समस्याओं को सुलझाने के लिए

भविष्य में इनके औचित्य को स्वीकार किया जाएगा। पिछले वर्ष जिस आरक्षण विवाद में पूरे राष्ट्र को हिला दिया था वह लोहिया के विचारों के प्रति श्रद्धांजलि है। उनके व्यक्तित्व और कार्यों के नकारात्मक और विवादास्पद पहलू समय के साथ धुंधले होते जाएंगे और केवल उनके राजनीतिक, आर्थिक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और सामाजिक समस्याओं से संबंधित विचार ही रह जाएंगे। मुझे इस बात में कोई संदेह नहीं है कि आधुनिक भारत के निर्माण में उनका योगदान महात्मा गांधी के बाद दूसरे स्थान पर माना जाएगा।

17

लोहिया : नेहरू के अनुयायी के रूप में

—मधु लिमये

राममनोहर लोहिया ने मैट्रिक बम्बई से पास किया; बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय से इन्टरमीडियेट तथा कलकत्ता से स्नातक हुए। वे उच्च शिक्षा के लिए जर्मनी गये और वहां से पी०एच०डी०, की उपाधि प्राप्त की। 1933 में भारत लौटने पर लोहिया को राजनीतिक हलचल ने अपनी ओर आकर्षित किया तथा उन्होंने पहली बार संगठित रूप में सोशलिस्ट पार्टी की स्थापना को नेतृत्व प्रदान किया जो राष्ट्रीय स्वतंत्रता संघर्ष के साथ गहन रूप से जुड़ी थी। अपने विदेश-प्रवास के दौरान एक छात्र के रूप में लोहिया ने राजनीति के प्रति मौन धारण किया हुआ था। उनके समकालीन व्यक्तियों ने बताया है कि लोहिया जर्मनी में क्रांतिकारी विचारों के भारतीय छात्रों के दल के सदस्य थे। यह दल जर्मनी और यूरोप में भारत की स्वतंत्रता हेतु प्रचार करता था तथा लोहिया ने इस दल की गतिविधियों में एक "प्रमुख भूमिका" निभाई थी। 1929 में लोहिया ने जब बर्लिन विश्वविद्यालय में प्रवेश लिया तब वे मात्र 19 वर्ष के थे।

लोहिया के पिताजी कलकत्ता में कांग्रेस के एक कार्यकर्ता थे। ये तो कांग्रेस के कोषाध्यक्ष जमनालाल बजाज थे जिन्होंने लोहिया का महात्मा गांधी और अन्ततः नेहरू से परिचय कराया।

1936 में, जवाहर लाल, जिन्हें कमला नेहरू के गंभीर रूप से बीमार हो जाने तथा बाद में स्विटजरलैंड में उनकी मृत्यु हो जाने के कारण रिहा कर दिया गया था, गांधी द्वारा आग्रह किए जाने पर दूसरी बार कांग्रेस के अध्यक्ष चुने गये थे। लोहिया की लखनऊ अधिवेशन में नेहरू के साथ मुलाकात हुई थी। यह मुलाकात अध्यक्ष के शिविर में हुई थी। नेहरू उनके आश्चर्यजनक व्यक्तित्व से अत्यधिक प्रभावित हुए। उन्होंने लोहिया का समाजवादी आकाश में एक उभरते सितारे के रूप में स्वागत किया। उन्होंने लोहिया से पूछा कि क्या उन्होंने अध्यक्षीय भाषण पढ़ा है? लोहिया ने कहा "हां, यह उत्कृष्ट भाषण था।" "उत्कृष्ट भाषण?" अध्यक्षीय भाषण का वर्णन करने के लिए लोहिया ने जिस असाधारण विशेषण का प्रयोग किया था, नेहरू जी उससे बहुत प्रसन्न हुए। दोनों इससे

भली-भांति सहमत हुए। कांग्रेस आन्दोलन में नई जान डालने के लिए अध्यक्ष ने स्वप्न सजा रखे थे और योजनाएं बना रखी थीं। उस समय के इस दौर में लोहिया, नेहरू के बहुत बड़े प्रशंसक थे तथा गांधी के बाद उनका प्यार और सम्मान नेहरू के लिए ही था।

जवाहर लाल नेहरू विदेश में शिक्षा प्राप्त होनहार युवकों तथा युवतियों के प्रति सहज रूप से आकर्षित हो जाते थे और युवा लोहिया से तो वह अत्यधिक प्रभावित हुए। लोहिया न केवल अत्यधिक बुद्धिमान थे बल्कि वह एक प्रतिभाशाली संवादपटु भी थे और "अधिकांश विषयों पर एक विशेषज्ञ की भांति बात कर सकते थे।" नेहरू ने उन्हें विदेश विभाग का कार्य-भार सौंपने की पेशकश की जिसे वे अखिल भारतीय कांग्रेस समिति के मुख्यालय में स्थापित करना चाहते थे। वैसे तो लोहिया स्वयं को किसी विशिष्ट संगठनात्मक उत्तरदायित्व से बांधने के लिए सदैव अनिच्छुक रहते थे, परन्तु उस समय उन पर नेहरू का इतना प्रभाव था कि लोहिया उक्त कार्यभार संभालने के लिए सहमत हो गए।

अखिल भारतीय कांग्रेस समिति के विदेश सचिव के रूप में लोहिया ने विदेशों में चल रहे प्रगामी आन्दोलनों से सम्पर्क बनाया। उन्होंने विदेश नीति के मसलों पर एक बुलेटिन प्रकाशित किया और अनेक पैम्फलेट जारी किए। लोहिया के एक साम्यवादी सहयोगी ने उनके कार्य को जवाहर लाल नेहरू के "नए संगठनात्मक ढांचे" की एक विशिष्ट उपलब्धि बताया और उन्हें भारत के स्वतंत्रता आन्दोलन का पहला गैर-सरकारी विदेश मंत्री घोषित किया।

नेहरू के साथ अपने सहचर्य के आरंभिक वर्षों में लोहिया का नेहरू के प्रति जो रुख रहा वह नेहरू की आत्मकथा की उनकी समीक्षा में भली-भांति परिलक्षित होता है। लोहिया का मानना था कि जवाहर लाल—जिन्होंने वे तीनों अवस्थाएं देखी थीं जिनसे पिछले बीस वर्षों में भारत गुजर चुका था—ने प्रत्येक अवस्था पर अपनी "अमिट" छाप छोड़ी है। लोहिया ने "हाल की घटनाओं पर चिन्तन" में कहा कि जवाहर लाल समय की भावना को पूर्णतः समझने में सफल रहे और इसको विकसित करने और उसे प्रोत्साहित करने में जुटे रहे और वह उसके साथ-साथ निरन्तर आगे बढ़ते गए। लोहिया के अनुसार जवाहर लाल नेहरू के जीवन की कहानी उनके युग की भी कहानी थी जो स्वयं प्रसूत कष्ट की कहानी थी जिसमें शारीरिक कष्ट की तुलना में आध्यात्मिक कष्ट अधिक था। जवाहर लाल ने अपने समय के साथ गहन और सद्भावपूर्ण तादात्म्य स्थापित करके जीवन बिताया। ऐसे संघर्ष की घड़ी में केवल वही व्यक्ति ब्लैक मैरिया (पुलिस द्वारा गिरफ्तारी) के समय अपने चेहरे पर मुस्कान ला सकता है अथवा लाठी चार्ज में दोनों ओर के घृणित चेहरों को देख सकता है जो मानव जीवन की सुन्दरता और संस्कृति के

अंतिम और श्रेष्ठतम स्तरों के लिए अपनी आंखें सदैव खुली रखता हो और प्रगति में विश्वास रखता हो। लोहिया के अनुसार जवाहर लाल ने न्याय और सुन्दरता, इन दो शब्दों के लिए संघर्ष किया।

परन्तु जबकि लोहिया नेहरू के वीर-पूजक सहयोगी थे तब भी उन्होंने मौलिक अधिकारों पर अपनी पकड़ का हनन नहीं होने दिया। उन्होंने नेहरू की आत्मकथा की समीक्षा इस महत्वपूर्ण टिप्पणी के साथ समाप्त की कि "जवाहर लाल द्वारा उच्च स्तर से समाजवाद लाने के लिए किए गए प्रयोग को बशर्ते कि निम्न स्तर पर इस कार्य की उपेक्षा नहीं की गई, आवश्यक रूप से एक भुलाई-जाने वाली असफलता नहीं माना जा सकता।"

लोहिया उस कार्य से प्रसन्न नहीं रह सकते थे जिसने उन्हें बहुधा उनके कार्यालय तक ही सीमित करके रख दिया हो। वह समाजवादी नेता और कांग्रेसी नेताओं दोनों के ही रूप में सक्रिय जीवन बिताना चाहते थे। वह अखिल भारतीय कांग्रेस समिति के साथ-साथ सी०एस०पी० की राष्ट्रीय कार्यकारिणी समिति के सदस्य भी थे। लेकिन नेहरू के प्रति अपनी वचनबद्धता से हटना आसान नहीं था। नेहरू जब कांग्रेस के अध्यक्ष नहीं रहे थे तब भी लोहिया अखिल भारतीय कांग्रेस समिति के विदेश विभाग में कार्य करते रहे। वह इस कार्य को छोड़ना चाहते थे परन्तु कृपलानी ने उनसे कहा कि नेहरू के यूरोप से लौटने से पहले वह यह कार्य नहीं छोड़ सकते।

सी०एस०पी० में उनकी सहकर्मी कमलादेवी ने अपने ऊपर पड़ी लोहिया की छाप को स्मरण करते हुए कहा कि "वह किसी लीक से बंधे हुए नहीं थे।" अपने समाजवादी आन्दोलन के प्रारम्भिक वर्षों में भी वह एक विलक्षण व्यक्ति थे। वह इस बात को स्पष्ट ही नहीं कर सकीं कि उनसे उनका कब मतभेद हुआ और कब वह दूर हो गया। लोहिया स्वयं इस बात के प्रति सजग थे और उन्होंने उसे अभिव्यक्त किया परन्तु इसके बारे में उन्होंने "ऊंचे स्वर" में बात नहीं की अथवा इसे मुद्दा नहीं बनाया।" कमलादेवी ने लिखा है:

> "जब वह अखिल भारतीय कांग्रेस कार्यालय, इलाहाबाद में विदेश विभाग के अध्यक्ष के रूप में कार्य कर रहे थे तो किसी को भी उनसे शिकायत नहीं थी। जब वह वहां कार्यरत थे तो मुझे कई एक-बार उनके पास जाने का अवसर प्राप्त हुआ था। उनको देखने से ऐसा लगता ही नहीं था कि वह उक्त पद पर आसीन हैं। बल्कि मुझे याद है, इससे मुझे दुःख हुआ था। वह इतने अकेले और उदास दिखते थे जैसे कि उनकी आत्मा किसी पिंजड़े में बन्द हो। मेरा विचार था कि शायद स्वराज भवन समुदाय की औपचारिकता और शिष्टाचार का उन पर प्रतिकूल

> प्रभाव पड़ा हो। यह सच है कि उन पर पुराने जमाने की वास्तुकला का, कमरों और गलियारों के अव्यवस्थित फैलाव का कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा था, परन्तु बाद में, मैंने उनमें इस तत्व को गहनतर होते देखा, मैं जानती हूं कि इसका कहीं न कहीं कोई कारण तो अवश्य ही होगा; हो सकता है इसके एक से अधिक कारण हों।"

शायद नेहरू जी लोहिया की बेचैनी से अवगत थे। इसलिए अन्ततः उन्होंने उन्हें अखिल भारतीय कांग्रेस समिति कार्यालय को छोड़ने की अनुमति दे दी। परन्तु लोहिया की योग्यता के बारे में उनकी राय उच्च कोटि की बनी रही। अतः 1940 में जब अमरीकन इंस्टिच्यूट आफ पैसिफिक रिलेशन्स ने उनसे पूर्व एशिया के साथ भारत के आर्थिक और राजनैतिक सम्बन्धों के बारे में लिखने हेतु एक उच्च कोटि के विद्वान के चयन के लिए नाम मांगा तो नेहरू जी का ध्यान स्वाभाविक ही लोहिया की तरफ गया क्योंकि उनका विश्वास था कि यदि वह इस कार्य को अपने हाथ में लेकर समय निकाले तो वह इसे भली-भांति कर सकते हैं।

उन्नीसवीं सदी के चौथे दशक के बाद के वर्षों के दौरान नेहरू और लोहिया के विचार अधिकांशतः नीतिगत प्रश्नों पर एक जैसे थे। लखनऊ सत्र के तुरन्त पश्चात् नेहरू और अधिकृत बहुमत के बीच कार्य करने की शैली पर मतभेद हो गये। गांधी ने सदा की भांति दोनों की मध्यस्थता की। गांधी ने नेहरू से मामलों को अखिल भारतीय कांग्रेस समिति में न रखने के लिए कहा। "तुम्हारे लिए उन लोगों के साथ कार्य करने में इतनी कठिनाई क्यों होनी चाहिए जिनके साथ तुम वर्षों तक बिना किसी झगड़े के कार्य करते रहे? तुम्हारी आपसी असहनशीलता के कारण देश को नुकसान नहीं होना चाहिए।" जवाहर लाल गांधी की इच्छा के सामने झुक गये क्योंकि वह इस बात से सहमत थे कि टूटने के परिणाम गंभीर होंगे।

आचार्य कृपलानी ने जिनका गांधी जी के आलोचकों से विरोधाभास था नेहरू को अपने इस मत से अवगत कराया कि महात्मा गांधी की नीतियों की आलोचना करना समाजवादियों की गलती थी। राजनीतिक तौर पर गांधी जी के प्रभाव को कम करके देखना कोई बुद्धिमानी नहीं थी। कृपलानी जी ने लिखा कि "संघर्ष के लिए हमें उनकी एक बार फिर आवश्यकता पड़ेगी।"

नेहरू ने सुभाष बोस को एक पत्र में लिखा था कि पुराने कांग्रेसी नेतृत्व की आलोचना और उस पर आरोप लगाने में सक्षम होने से राजनीति में वामपंथ की कोई परख नहीं है लेकिन वामपंथियों में चौथे दशक के दौरान अधिकृत नेतृत्व की कड़ी आलोचना करना प्रगति की निशानी माना जाता था। साम्यवादियों, रायवादियों, सुभाषवादियों और अनेक समाजवादियों की दृष्टि में गांधी जी एक पिछड़े प्रक्रियावादी थे तथापि वामपंथियों की आम विचारधारा में लोहिया जी अपवाद थे और वह महात्मा गांधी के नेतृत्व का नेहरू द्वारा किये गये मूल्यांकन से सहमत थे। जब 1939 में अध्यक्ष के चुनाव ने कांग्रेस में संकट खड़ा कर दिया तो लोहिया ने लेखों की एक

श्रंखला के माध्यम से कांग्रेस के विभाजन के विरुद्ध तर्क पेश किये थे। उनके विचार से गांधी जी का नेतृत्व स्वतंत्रता संग्राम की सफलता हेतु अति आवश्यक था और "वैकल्पिक नेतृत्व" की सभी बातों की निन्दा की।

वैकल्पिक नेतृत्व की संकल्पना को "वर्ग संघर्ष की गलत समझ" ने जन्म दिया। निजी सम्पति को समाप्त करने संबंधी समाजवादी संकल्पना और गांधी जी की न्यासी व्यवस्था की प्रारंभिक अवस्था के माध्यम से सामाजिक स्वामित्व संबंधी विचार आवश्यक रूप से एक दूसरे के विरोधी नहीं है।" लोहिया का कहना था कि "दो मत एक हो सकते हैं परन्तु विरोधी हो सकते हैं," लेकिन जब वे इस प्रकार से विरोध कर रहे हों तो क्या किसी को वर्तमान नेतृत्व को इस बात पर हटाने की बात करना ठीक होगा। वह दक्षिण पंथ और वामपंथ शब्दों के प्रयोग को समाप्त करना चाहते थे। वैकल्पिक नेतृत्व और परस्पर विरोधी ग्रुपों के बारे में सोचने की बजाय वह चाहते थे कि वामपंथियों को संयुक्त कार्यवाही संयुक्त कार्यक्रम और संयुक्त नेतृत्व को ध्यान में रखना चाहिए। लोहिया का विचार था कि इस लक्ष्य को प्राप्त करने में नेहरू की भूमिका निर्णायक थी। 1939 में वह सुभाष बोस की बजाय नेहरू के अधिक निकट थे। गांधी जी के अनुयायियों और समाजवादियों के आन्तरिक संबंधों के बारे में लोहिया जी ने लिखा थाः

> "मैं समझता हूं कि गांधीवादी और समाजवादी अपने अधिकांश सफर को अच्छे मित्रों की भांति तय कर सकते हैं। ऐसा भी हो सकता है कि एक साथ लम्बा सफर तय करते-करते वे अपनी कुछ रायों में संशोधन कर फिर कभी जुदा न हों। इतिहास में ऐसे सुखद निष्कर्ष कभी-कभार ही देखने को मिलते हैं, लेकिन यदि ऐसी स्थिति रही जैसी अब है तो हम यह कभी नहीं भूल सकते कि गांधी जी में एक ऐसी बात है जो सभी दलों वर्गों से ऊपर है और हर समय के लिए अनुकूल है और वह बात है उनका अहिंसक सत्याग्रह पर जोर देना तथा अच्छे तरीके अपनाना।"

जवाहर लाल भी इस बात को भली-भांति जानते थे। वह भी "ऐसा कुछ करने के लिए तैयार नहीं थे जो कांग्रेस को बांट दे।" हो सकता है कि निकट भविष्य में उन्हें एक बड़ा संघर्ष करना पड़े और 'वह संघर्ष, 'गांधी जी के सक्रिय सहयोग और नेतृत्व के बिना प्रभावशाली सिद्ध नहीं होगा।"

लोहिया ने सुभाष बोस की उम्मीदवारी का समर्थन नहीं किया था और वह फारवर्ड ब्लाक का गठन करने तथाकथित वामपंथी एकीकरण तथा साम्यवादियों के साथ मिलकर एक होने के आलोचक थे क्योंकि उन्हें भय था कि कहीं सी०एस०पी० अन्तर्राष्ट्रीय साम्यवाद का एक अभिकरण बनकर न रह जाये। लोहिया, कलकत्ता ए०आई०सी०सी० में किए गए जवाहर लाल नेहरू के प्रस्ताव के पक्ष में थे जिसमें सुभाष चंद्र बोस से त्यागपत्र वापस

लेने की अपील की गइ थी तथा एकता को बनाए रखने के लिए पुरानी कार्यकारी समिति को पुनःनामित करने का अनुरोध किया गया था। सी०एस०पी० में इस मुद्दे पर मतभेद इतने गहरे थे कि लोहिया ने अपने कुछ सहयोगियों के साथ सी०एस०पी० की राष्ट्रीय कार्यकारिणी से त्याग पत्र दे दिया।

महात्मा गांधी, सुभाष बोस और जवाहर लाल नेहरू से साथ बने रहने की संयुक्त अपील हेतु लोहिया को पक्षकार बनाए जाने पर उनके द्वारा किए गए हल्के विरोध से नेहरू लोहिया समझौते को कम आंका जाता है। "मैं कौन हूं, मैं ही क्यों यह करूं और किस लिए मैं देश के तीन सर्वोत्तम व्यक्तियों से एकता बनाए रखने तथा नेतृत्व करने की अपील करूं।" लोहिया ने आत्मसम्मान की परवाह न करते हुए मीनू मसानी को लिखा था। "मैं देखता हूं कि आपके द्वारा बताए गए तीन व्यक्तियों में से केवल जवाहर लाल नेहरू जी इस दिशा में कुछ प्रयास कर रहे हैं।"

लोहिया ने अपने साथी समाजवादियों को सुझाव दिया था कि जवाहर लाल नेहरू द्वारा कांग्रेस के संकट पर अपनाए गए रुख पर उन्हें और अधिक गहराई से विचार करना चाहिए।"हम वामपंथी उनके द्वारा त्याग दिए जाने पर आसानी से नाराज हो सकते हैं।" "लेकिन इस स्थिति का एक दूसरा पहलू भी है............। कोई अपनी वर्तमान स्थिति से सहमत है या नहीं, इस बारे में दोष निकालना कोई अधिक लाभप्रद नहीं होगा, इससे ज्यादा उपयुक्त तो यह होगा कि एक ठोसतर तथा पहले से अधिक समझदारी के आधार पर कांग्रेस की एकता को स्थापित करने में उनकी मदद की जाए।"

लेकिन लोहिया और नेहरू में इतनी निकटता होने के बावजूद उनके बीच एक संभावित मतभेद के बीज अंकुरित हो गए थे। इसका कारण था अंतर्राष्ट्रीय घटनाओं का प्रसार और भारत पर उनका प्रभाव। युद्ध के प्रति स्वतंत्रता आंदोलन के रुख के मामले पर नेता और उसके समर्थकों में पहली बार मतभेद सामने आए।

ए०आई०सी०सी० का विदेश विभाग इस विकासमान संकट के प्रति काफी मिश्रित रुख अपना रहा था। विभिन्न तत्वों का सूक्ष्म संतुलन रखना था और प्रगतिशील ताकतों से सहयोग के मामले में प्राथमिकताओं का उचित निर्धारण करना था।

लोहिया ने विश्व की ताकतों को मुख्य रूप से चार प्रमुख वर्गों में विभाजित कियाः

पहले वर्ग में पूंजीवादी, साम्राज्यवादी और फासिस्ट शक्तियों के अन्य शोषक वर्ग और वित्तीय हित थे।

दूसरे वर्ग में पराधीन राष्ट्रों की जनता जो साम्राज्यवादी प्रभुत्व को हटाने के लिए संघर्ष कर रही थी।

तीसरे वर्ग में रूस था, जिस ने अपनी अर्थव्यवस्था को समाजवादी बनाकर कामगारों और किसानों का देश बनाया था।

चौथा वर्ग साम्राज्यवादी देशों के अपने ही शोषितों और स्वतंत्रता प्रेमी लोगों का था।

तब लोहिया ने फासिज्म को साम्राज्यवाद का बिगड़ा हुआ रूप...एक आदर्श साम्यवादी फार्मूले के रूप में वर्णित किया जो निश्चय रूप से संकुचित बाजारों और लाभ की दरों में गिरावट के संदर्भ में सामने आया। लोहिया ने सोचा कि पूंजीवाद के समूल नाश से पहले इसके दो रूप साम्राज्यवाद और फासिज्म संसार को एक अन्य विनाशकारी युद्ध में धकेल देंगे।

अब यहां पर भविष्य के मतभेद का स्रोत देखा जा सकता है। पश्चिमी लोकतांत्रिक राष्ट्रों में आतंरिक और बाह्य दोनों प्रकार के फासिस्ट आक्रमण के खतरे का मुकाबला करने हेतु जनमोर्चा तैयार करने के लिए साम्यवादी और समाजवादी कार्य कर रहे थे। इन यूरोपीय (फ्रांस, हालैंड आदि के) वामपंथियों ने "औपनिवेशिक प्रश्न पर अनिच्छा दिखाई", उन्होंने अरबों और ईस्ट इंडीज लोगों (जिन्हें अब इंडोनेशियाई कहा जाता है) के द्वारा किए जाने वाले प्रदर्शनों और उनके संघर्ष की इस आधार पर निंदा की कि इनसे फासिज्म और जापानी सैन्यशक्तिवाद को सहायता मिल रही थी। यूरोपीय साम्यवादियों और वामपंथियों ने तर्क फल से पेश किया कि मामला फ्रांस और हालैंड के "स्थिर साम्राज्यवाद" और जर्मनी, इटली और जापान के "पाशविक फासिज्म" के बीच में "किसी एक के चयन" का था।

लोहिया ने चेतावनी दी कि ऐसी दलील एक "दीर्घकालिक शरारत" से परिपूर्ण थी। हालैंड, फ्रांस और ब्रिटेन के साम्राज्यवाद के शिकार लोगों की वास्तविक समस्या "स्वतंत्रता प्राप्ति और इसे बनाए रखने हेतु शक्ति संवर्धन" की थी। इसके विपरीत इच्छा के भयंकर परिणाम होंगे।

> सबसे पहले तो यह उस मानव जाति को ही नाकारा बना देता है जो संघर्ष के माध्यम से स्वतंत्रता के लिए शक्ति प्राप्त कर रही होती है और जो अब फासीवाद हमले का एक आसान शिकार है। दूसरा, यह मानव स्वतंत्रता के आदर्श को मैला और धुंधला कर देता है और प्रजातंत्र की अधिक से अधिक उत्कृष्टता को फासीवाद में समाहित कर लेता है। तीसरा, यह सत्ता में उस पूंजीवादी वर्ग को भी स्थापित कर लेता है जो विश्व पर अपना अधिकार रखता है।

अंत में लोहिया ने हालैंड और फ्रांस के समाजवादी और साम्यवादी लोगों से अपील की कि वे अपनी औपनिवेशिक नीतियों में परिवर्तन करें।

किसी साम्राज्यवाद-विरोधी की दुविधा का जो विश्लेषण लोहिया ने किया था वह न केवल बहुत प्रखर था अपितु दूरदर्शी भी था। मास्को की साम्यवादी विचारधारा वाले एक ऐसे ही प्रबुद्ध भारतीय साम्यवादी ने "कांग्रेस सोशलिस्ट" के एक लेख में यह तर्क दिया था कि रूस, ब्रिटेन और फ्रांस जैसे शांतिप्रिय देशों द्वारा नाजी जर्मनी तथा फासीवादी जापान के साथ युद्ध करने की स्थिति में साम्यवादी और अन्य वामपंथी राष्ट्रों का यह कर्तव्य होगा कि वे युद्ध का विरोध करने के संबंध में कांग्रेस के संकल्प को भूल जाएं तथा फासीवाद के विरुद्ध संयुक्त संघर्ष को जीतने के लिए भारत में ब्रिटिश सरकार के युद्ध के प्रयासों में मदद करें।

द्वितीय विश्व युद्ध के प्रारम्भ में अंतर्राष्ट्रीय ताकतों का गठबंधन अपेक्षित आधार पर नहीं हुआ था। एक ओर ब्रिटेन तथा फ्रांस और दूसरी और जर्मनी के बीच युद्ध शुरू हुआ। रूस इस मामले में तटस्थ रहा। भारत में साम्यवादियों को कोई खास विकल्प नहीं ढूंढना पड़ा। रूस और भारत के हितों में कोई विवाद नहीं था। परन्तु जब 1941 में यह युद्ध सचमुच सारे विश्व में फैल गया तो स्थिति में बदलाव आया और साम्यवादियों ने अपना रुख बदला। जैसा कि उक्त अनुबोधक साम्यवादी को चार वर्षों पहले ही इसका आभास हो गया था।

युद्ध शुरू होने के पश्चात् समाजवादी चाहते थे कि कांग्रेस 1927 में मद्रास में हुए अधिवेशन से जिस युद्ध-विरोधी संकल्पों को पारित कर रही है उसे ही कार्यान्वित करे। प्रारम्भ में, गांधी जी इस बात के पक्ष में नहीं थे और जवाहर लाल भी इस प्रतीक्षा में टाल-मटोल करते रहे कि ब्रिटिश सरकार पहले अपने युद्ध के उद्देश्यों को स्पष्ट करने के लिए कांग्रेस की मांगों का क्या जवाब देती है।

लोहिया का फिर भी जवाहर लाल पर पूर्ण विश्वास था और उन्होंने सोचा कि यह कदम स्वतंत्रता के लिए भारत की मांग के पक्ष में विश्व मत बनाने के प्रयास का एक हिस्सा था। इस अवसर पर लोहिया ने साम्राज्यवाद के विरुद्ध अथक संघर्ष के लिए नेहरू के उत्साह में कमी आने पर कोई ध्यान नहीं दिया। साम्राज्यवाद के विरुद्ध नेहरू के उत्साह तथा समाजवाद के प्रति उनके समर्थन जैसी बातों ने ही पहली बार 1927 में युवा पीढ़ी में उनको लोकप्रिय बना दिया था।

साम्राज्यवाद तथा फासीवाद के विरुद्ध लड़ी तीनों ताकतों के बीच समन्वय स्थापित करना कोई आसान काम नहीं था। यह भी नहीं कहा जा सकता है कि साम्राज्यवाद तथा

फासीवाद हमेशा के लिए एक हो जाएंगे तथा कभी अलग नहीं होंगे और विश्व को युद्ध के कगार पर ले जाएंगे। औपनिवेशिक लोग उस समय फासीवाद के विरुद्ध लोकतांत्रिक देशों की लड़ाई जीतने के नाम स्वतंत्रता के लिए अपने संघर्ष को कैसे छोड़ सकते थे? और क्या रूस को फासीवाद के विरुद्ध युद्ध में शामिल हो जाना चाहिए था, रूस के अल्पकालीन हितों के साथ उन देशों के तात्कालिक और अल्पकालिक हितों का किस प्रकार सामंजस्य हो सकता था? लोहिया ने कहा कि यहां एक विरोधाभास था और विश्व में अच्छाई और बुराई इस प्रकार घुल-मिल गई थी कि किसी भी व्यक्ति को "सकारात्मक" अथवा "नकारात्मक" विचारधारा के असत्य का त्याग करना पड़ रहा था।" वास्तविक रूप में इस पहेली का अर्थ क्या है? किसी भी भारतीय के लिए, राष्ट्रीय स्वतंत्रता संघर्ष की महत्ता और उच्च प्राथमिकता का खंडन करना गलत था।

चाहे ब्रिटिश नागरिक सही हो और वह फासीवादी आक्रमण के विरुद्ध लोकतंत्र की रक्षा करने में शामिल हो, फिर भी भारतीय नागरिक का यह कर्तव्य बनता है कि वह भारत में ब्रिटिश साम्राज्य का विरोध करे, यही लोकतंत्र की दूरदर्शी सुरक्षा है जो विश्वव में प्रसन्नता और आशा के दिन ला सकती है। यदि औपनिवेशिक लोगों को लोकतंत्र की अवसरवादी विचारधारा अथवा कमजोरियों से अपने साम्राज्यवादी अधिपतियों के साथ खड़ा होना पड़े तो स्वतंत्र विश्व और अधिक कमजोर और संकीर्ण होता जाएगा।

फासिस्टवाद से कुप्रभावित लोगों के लिए फासिस्टवाद के विरुद्ध संघर्ष की अविलम्बनीयता और महत्व को बिना सोचे समझे नकारना उतना ही अनुचित होगा जितना कि "कम्युनिस्ट इंटर-नेशनल" ने पश्चिमी यूरोप से 1939-41 में करने को कहा था। साथ ही, पश्चिमी यूरोप के समाजवादी और साम्यवादी भी बिना सोचे समझे अपने देश की सरकारों की औपनिवेशिक नीति की अभिपुष्टि नहीं कर सके। लोहिया ने पश्चिम के समाजवादियों और साम्यवादियों को एक और तर्क दिया, वह यह था कि साम्राज्यवाद का प्रतिरोध अरबों को ईस्ट इण्डियनों को और भारतीयों को संभावित नाज़ी और जापानी आक्रमण के खिलाफ और मजबूत करेगा। प्रतिरोध न किए जाने से वे हतोत्साहित और निर्बल हो जाएंगे। जब उन्हें इस आक्रमण का सामना करना पड़ेगा तो वे आसानी से ढह जाएंगे। 1942 में लोहिया की बात सही साबित हुई। स्वयं गांधी जी ने अपने भारत छोड़ो आन्दोलन का औचित्य सिद्ध करने के लिए इस तर्क को अपनाया। अन्ततः नेहरू जी ने भी जुलाई-अगस्त 1942 में लोहिया जी के तर्क को अकाट्य पाया।

युद्ध के मुद्दे पर...यूरोपीय युद्ध के पहले छः महीनों में...महात्मा गांधी और जवाहर लाल की स्थिति एक जैसी थी। यदि नेहरू की ओर से कोई हिचकिचाहट थी तो वह नागरिक अवज्ञा आन्दोलन तुरन्त शुरू करने के बारे में गांधी जी की स्वयं की अनिच्छा के पीछे ढक गयी थी। लोहिया ने कांग्रेस की नीति का व्यापक रूप से समर्थन किया। "कांग्रेसियों को अधिक जानकारी के लिए यह समझ लेना चाहिए की गांधी जी की भाषा का विरोध करना ठीक नहीं है।" मार्च, 1940 में रामगढ़ अधिवेशन से निश्चित रूप से एक आह्वान किया जाना था। इसी बीच, लोहिया ने जे०पी०.....सहित...."जो हमारे सर्वाधिक प्रिय और सबसे महत्वपूर्ण साथियों में से एक थे—कांग्रेस कार्यकर्ताओं की गिरफ्तारी पर जवाहर लाल को चेतावनी का हवाला दिया" हमने अपने आपको तब तक धैर्यपूर्वक रोक रखा है, जब तक कि हमसे किसी कार्य को करने के लिए नहीं कहा जाता। यह धैर्य इस बात का सूचक नहीं है कि हमने अपने ऊपर बढ़ते जा रहे आक्रमण को स्वीकार कर लिया है।

फासिस्टवाद के प्रति नेहरू की नापसन्दगी और पश्चिमी लोकतंत्रों, चीन और रूस के प्रति उनकी सहानुभूति के कारण नेहरू जी को उनकी प्राथमिकताएं सही रूप से नहीं मिलीं। निचले देशों पर जर्मनी के आक्रमण और मई 1940 में फ्रांस की लड़ाई ने उन्हें हतोत्साहित कर दिया। वह एक पराधीन राष्ट्र में साम्राज्यवाद-विरोधी दुविधा का हल नहीं कर सके। उनकी फासिस्टवाद-विरोधी विचारधारा ने ब्रिटिश साम्राज्यवाद के खिलाफ प्रभावकारी कार्यवाही करने की उनकी इच्छा को कुंठित कर दिया। वह यह भूल गए कि स्वतंत्रता संग्राम में उनका ऐतिहासिक योगदान उनकी वह न झुकने वाली साम्राज्यवादी-विरोधी आवाज ही थी जो उन्होंने बुलन्द की थी। अब 1940 में मौलाना आजाद को और 1942 में महात्मा गांधी और समाजवादियों को नेहरू की बाग खींचनी पड़ी।

नेहरू ने फ्रांस के पतन की पूर्व संध्या पर लखनऊ में एक भाषण में कहा था कि ब्रिटेन के पतन से फायदा उठाना और "उसके गले पर चढ़ जाना" भारत की शान के खिलाफ है। आजाद का नेहरू से घोर विरोध था। कांग्रेस युद्ध में सहायता को रोकने के लिए प्रतिबद्ध थी और मौलाना ने यह महसूस किया कि युद्ध अध्यादेशों के विद्यमान होने तथा अलग-अलग नेताओं और कार्यकर्ताओं की सरकार द्वारा गिरफ्तारी के कारण यह युद्ध प्रतिरोध "अपने आप नागरिक अवज्ञा का रूप ले लेगा।" यदि नेहरू का "नैतिक दर्शन" सही था तो इसका अर्थ यह था कि "रामगढ़ में लिया गया निर्णय भारत के सम्मान और गरिमा के एकदम विरुद्ध था।" मौलाना के विचार से जवाहर लाल की सोच भ्रांतिपूर्ण और तर्कहीन थी।

1940 में लोहिया को गिरफ्तार कर लिया गया और उन्हें भारत सुरक्षा अधिनियम के तहत लम्बी अवधि के लिए कारावास की सजा दे दी गई। 1940 के ग्रीष्म में वह नेहरू की हिचकिचाहट से परिचित नहीं थे। व्यक्तिगत नागरिक अवज्ञा आन्दोलन शुरू किए जाने के साथ ही, नेहरू को भी चार साल की कड़ी सजा दी गयी तथापि 1941 के अन्त में अवज्ञा आन्दोलनकारियों की आम रिहाई की गई। जापान ने युद्ध में शामिल होकर आश्चर्यजनक विजय हासिल की।

नेहरू में अब परिवर्तन आ गया था। वह क्रिप्स योजना के आधार पर समझौता करने और बिना इस आश्वासन के कि परिषद् को मंत्रिमंडल के रूप में कार्य करने दिया जाएगा, वायसराय की विस्तार की गयी कार्यकारी परिषद् में शामिल होने के लिए उतने ही अधीर हो गये जितने की राजाजी। नेहरू उलझे हुए उद्देश्य लेकर चल रहे थे। वह अधिकार जमाना चाहते थे और साथ ही फासिस्टवाद की पराजय में सहयोग भी देना चाहते थे, क्योंकि वह बहुत पहले से फासिस्टवाद-विरोधी थे। गांधी जी के विरोध के कारण क्रिप्स प्रस्ताव अस्वीकृत हो गया। अत्यधिक निराश होकर और भारत सरकार के एक नेता के रूप में चीन और रूस के साथ दोस्ती करने में अपनी असमर्थता से दुखी होकर जवाहर लाल ने जापान के खिलाफ गुरिल्ला फौज खड़ी करने को कहा और प्रतिज्ञा की कि यदि सुभाष बोस जापान की आक्रमणकारी सेना के साथ भारत आए तो वह उनके विरुद्ध लड़ेंगे। लोहिया नेहरू के भाषणों से आहत हुए थे। लोहिया ने नेहरू से उनके "ब्रिटेन और उसके मित्र राष्ट्रों के प्रति अत्यधिक समर्थन वाले दृष्टिकोण" का विरोध किया था। किन्तु नेहरू ने उसी ढंग से बोलना जारी रखा। अतः 1942 में अल्मोड़ा में हुए राजनैतिक सम्मेलन में लोहिया ने नेहरू को "शीघ्र बदल जाने वाला कलाकार" कहा, उन्हें चेतावनी दी कि यदि वह अपने रुख में परिवर्तन नहीं करते हैं तो लोग और विशेष रूप से युवावर्ग जो अब तक दो व्यक्तियों (गांधी और नेहरू) की बातोंको सुनते आ रहे हैं, अब केवल एक व्यक्ति (गांधी) की ही बातें सुनेंगे।

किन्तु नेहरू अपने आपको जनभावना के अनुरूप बदलने में सक्षम थे और उन्होंने असाधारण रूप से लचीलापन दिखाया। उन्होंने राजाजी की तरह कार्य नहीं किया। वह मुख्य धारा में बने रहे। नेहरू ने यथासमय गांधी के संघर्ष का समर्थन किया और जेल गये। अगस्त, 1942 में भी लोहिया स्वयं को "नेहरू का अप्रमाणिक अनुयायी" मानते थे। तथापि, लोहिया पर नेहरू के जादू का असर कम होने लग गया था।

नेहरू का पुराना आकर्षण समाप्त हो गया था तथापि वह एक संवेदनशील व्यक्ति थे और वे सभी लोग उनकी प्रसंशा करते थे जिन्होंने प्रतिरोध की आवाज बुलन्द की थी। उनमें लोहिया, जयप्रकाश, अच्युत पटवर्धन और अरुणा आसफ अली थे।

लोहिया के प्रति नेहरू के रुख का पता उस पत्र से आसानी से चल सकता है, जो जवाहरलाल ने जेल से उनकी रिहाई के बाद उन्हें भेजा था। यह एक बहुत सुन्दर पत्र है और जो उनके व्यक्तित्व का ही प्रतिरूप है :

नई दिल्ली
17 अप्रैल, 1946

प्रिय राममनोहर,

मैंने पिछली बार तुम्हें पत्र कब लिखा था अथवा तुमसे कब मिला था, याद नहीं। लगता है बहुत लम्बा अर्सा हो गया है और मुझे यह सोचते हुए आश्चर्य हो रहा है कि अब तुम कैसे दिखायी देते होंगे और कैसा महसूस करते होंगे। जो भी हो, बाह्य परिवर्तनों से आन्तरिक परिवर्तन अधिक महत्वपूर्ण होते हैं। मैं लगातार परिवर्तन की अनुभूति महसूस करता रहता हूं। किन्तु ये परिवर्तन अच्छे हैं अथवा बुरे इसका पता लगाना दूसरों का काम है। मुझे उम्मीद थी कि तुम अपनी रिहाई के बाद यहां आओगे, किन्तु तुम्हें कलकत्ता जाना था। इस बीच मैं यहां शाही राजधानी में हूं जो मुझे अपने अनुरूप ढालने की असफल कोशिश कर रही है। पता नहीं यह कार्य कब तक पूरा होगा और इसका क्या परिणाम निकलेगा।

जयप्रकाश से हुई मुलाकात बड़ी सुखद रही। उसको पहले की ही भांति प्रिय और हंसमुख पाया उसमें कोई खास बदलाव तो नहीं दिखाई देता था, फिर भी शायद उसमें कई बदलाव आए हैं। उससे दो बार बहुत ही संक्षिप्त बातचीत हुई और उसके बाद वह चले गए थे। क्या तुम अभी भी पहले की तरह अपने ओजस्वीपन और बुद्धिमत्ता तथा कुछ-कुछ सनकीपन और घुम्मकड़पने को कायम रखा है अथवा जिन्दगी के कटु अनुभवों ने तुम्हारा स्वभाव बदल दिया है। परन्तु ये प्रश्न तो ऐसे हैं जिनका तुम उत्तर नहीं दे सकते हो। इनका उत्तर तलाशने के लिए मुझे ही तुमसे मिलना होगा। आशा है अब जब भी हम मिलेंगे तुम मुझसे कुछ भी छिपा कर नहीं रखोगे। तुम्हारे पिताजी की मृत्यु के समय मैं असम में था और मुझे उनकी बहुत याद आयी तब मुझे इस बात का एहसास हुआ

था कि तुम्हें कितना बड़ा आघात पहुंचा है। तुम्हें बता दूं इस बीच मैंने एक और पुस्तक लिखी है जो पहले की ही तरह अत्यंत आत्मपरक है। मैं उसकी एक प्रति तुम्हें भेजना चाहता था किन्तु इस समय मेरे पास नहीं है। मेरे विचार से इसके लिए सबसे आसान तरीका यही है मैं इसके साथ प्रकाशक को संबोधित एक नोट संलग्न कर दूं, अगर प्रकाशक के पास कोई प्रति हुई तो वह तुम्हें भेज देगा। स्वस्थ और प्रसन्न रहो।

दैनिक घटनाक्रम के तनाव से निरपेक्ष रहो।

सस्नेह।

तुम्हारा

परन्तु लोहिया के हृदय में उनके प्रति अभी तक जो समान बना हुआ था वह आगे कायम नहीं रहा। 1946 में आजाद के स्थान पर नेहरू कांग्रेस अध्यक्ष बने। नेहरू ने लोहिया को महासचिव के लिए और जयप्रकाश को कार्यकारिणी समिति में शामिल होने के लिए आमंत्रित किया।

यदि यह सुझाव गांधी जी से नहीं आया था तो कम से कम इसे उनका उत्साहपूर्ण समर्थन अवश्य मिलना चाहिए था।

हमारे तीन सत्र हुए, सभी मध्यरात्रि के बाद तक चलते रहे और एक तो सुबह लगभग तीन बजे तक चलता रहा..... श्री नेहरू ने मेरी दो मांगों को एकदम अस्वीकार कर दिया। एक तो यह थी कि कांग्रेस कार्यकारिणी समिति का कोई सदस्य सरकार में मंत्री नहीं होना चाहिए और दूसरी यह कि कोई ऐसा फार्मूला बनाया जाए जिसके अन्तर्गत कांग्रेस पार्टी अपनी ही सरकार की रचनात्मक आलोचना कर सके तथा मेरी तीसरी मांग को अंशतः स्वीकृति प्रदान की कि कांग्रेस अध्यक्ष को सरकार में नहीं होना चाहिए लेकिन मेरे इस निवेदन को अपने ही व्यक्ति पर लागू करने से इन्कार कर दिया।

नेहरू ने, समझबूझ के लिए स्नेहपूर्ण अपील के साथ कहा कि प्रादेशिक मंत्रियों ने उनके सुझावों पर कोई खास प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की, यद्यपि वे उस समय कांग्रेस अध्यक्ष थे। "सलाहकार और प्रबंधक दो अलग-अलग हस्तियां हैं और केवल खास परिस्थितियों के सिवाय प्रबन्धक अपनी ही कार्यपद्धति को अपनाना चाहते हैं।"

सरकार में शामिल होने के नेहरू जी के तर्क से लोहिया प्रभावित नहीं हुए और इसलिए उन्होंने नेहरू की महासचिव की पेशकश को ठुकरा दिया। जे० पी० भी कार्यकारिणी समिति में शामिल नहीं हुए।

लोहिया ने ये शर्तें क्यों रखी थीं? आगे आने वाले संकटकालीन वर्षों को देखते हुए लोहिया का विचार था कि उनके समक्ष दो कार्य हैं। एक तो यह था कि एक राज्य हासिल किया जाय जिसमें सशक्त प्रभुत्व स्थापित करके इसे सुरक्षित बनाया जाए। दूसरा कार्य यह था कि जर्जरित सामाजिक व्यवस्था को बदलने की प्रक्रिया प्रारम्भ की जाए। इस दोहरे कार्य को पूरा करने के लिए लोहिया शीर्षस्थ समाधानों और मूलभूत समाधानों का और सरकार के प्रयासों तथा जनता के कार्य-कलापों का सम्मिलन चाहते थे। लोहिया और अन्य समाजवादी नेताओं ने अपने विचार कांग्रेसी नेताओं के सामने रखे। गांधी जी का रवैया सहानुभूतिपूर्ण था। लेकिन नेहरू और पटेल दोनों ने ही लोहिया की मांगों को अव्यवहारिक एवं मात्र सैद्धान्तिक कहकर ठुकरा दिया।

नेहरू और पटेल ने अपनी कार्यशक्तियों को शीर्षस्थ समाधानों, जनता की पहल से हटकर सरकार के प्रयासों पर केन्द्रित रखा। लोहिया जी का विचार था कि सरकार और कांग्रेस संगठन के बीच कुछ तनाव आना अपरिहार्य है। जब तक दोनों के बीच मूलभूत समझबूझ बनी रही तो मामला ठीकठाक रहा। लेकिन समाजवादी नेताओं और सरकार के बीच ऐसी बात नहीं थी। नेहरू और पटेल दोनों ही किसी भी प्रकार के लोकप्रिय संघर्ष के उठ खड़ा होने से घबड़ा जाते थे, फिर चाहे वह मजदूर संघ की हड़ताल के रूप में हो या कृषक आन्दोलन हो या राज्य की जनता का आन्दोलन हो अथवा चाहे वह गोवा की जनता द्वारा नागरिक स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए संघर्ष के रूप में हो या नेपाली जनता द्वारा लोकतांत्रिक अधिकारों हेतु संघर्ष के रूप में हो।

1946 में, लोहिया ने गोवा में फासिस्ट सालाजार शासन के विरुद्ध तथा नेपाल में राणा के निरंकुश शासन के विरुद्ध सविनय अवज्ञा आन्दोलन चलाया। नेहरू ने जे० पी० को अपने पक्ष में लाने में सफलता प्राप्त कर ली और इस प्रकार अगस्त 1946 में उन्होंने जे० पी० को कार्यकारिणी समिति में सम्मिलित होने को राजी कर लिया। अब उन्होंने जे० पी० और अन्य समाजवादी नेताओं पर नेपाल संघर्ष कार्यक्रम स्थगित करने हेतु दबाव डालना शुरू किया। 10 अक्तूबर, 1946 को नेहरू ने लोहिया को इस आशय का तार भेजा कि वे गोवा न जाए अथवा जल्दबाजी में कोई कार्यवाही न करें। "मैं सरकारी तौर पर इस मामले को निपटा रहा हूं..... इसलिए समाधान के प्रति हमारे दृष्टिकोण में परस्पर मतभेद नहीं होना चाहिए।" ऐसा नेहरू ने लोहिया को उसी दिन लिख दिया। उन्होंने कृष्णा मेनन को भी सूचना भेज दी कि वे गोवा के मामले पर कार्यवाही करना चाहते हैं।[20] वास्तविकता यह है कि नेहरू ने दिसम्बर 1961 अर्थात् तीसरे आम चुनाव की पूर्व संध्या तक कुछ नहीं किया।

नेहरू को अपनी विश्वासोत्पादक शक्ति पर बहुत कम विश्वास रह गया होगा। उनका जादू अब समाप्त होने लगा था। इस प्रकार यह मोहभंग बढ़ता गया और गांधी जी की हत्या से पहले लोहिया ने कांग्रेस छोड़ने की आम समाजवादी सहमति को अपना लिया। वास्तव में, उन्होंने 1947 के अन्त से पहले ही इस बारे में अपना विचार बना लिया था। लोहिया के लिए अनुयायी बने रहने की स्थिति समाप्त हो गई थी। विरोधी संबंध शुरू हो गए थे। लेकिन यह पूर्णतया एक अलग कहानी है।

—

18

डा० राममनोहर लोहिया—एक क्रांतिकारी

—जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी

डा० राममनोहर लोहिया भारत के युगांतरकारी राजनीतिज्ञ थे। यह सही है कि वे जितने बड़े राजनीतिज्ञ थे, उसकी न इस देश में और न बाहर स्वीकृति सहजता से प्राप्त हो सकी। परन्तु यह भी सही है कि स्वाधीन भारत की राजनीति निर्माण में डा० राममनोहर लोहिया ने जो दूरगामी प्रभाव डाले, उसका परिणाम हम आज समझ रहे हैं। इस बात को भी प्रायः भुला दिया जाता है कि भारतीय स्वाधीनता संग्राम में डा० राममनोहर लोहिया की क्या निर्णायक भूमिका थी। उसका कारण यह था कि इस समय देश में महात्मा गांधी, पंडित जवाहरलाल नेहरू, आचार्य नरेन्द्र देव, डा० राजेन्द्र प्रसाद जैसे वरिष्ठ नेता थे, जिनके समक्ष डा० लोहिया कनिष्ठ ही माने गये। अपने सिद्धांतों की खातिर और दूसरे लोगों को सम्मान देने के लिए डा० लोहिया बड़े पदों से बचते रहे। इसका परिणाम यह हुआ कि उनके बैठाये हुए लोग उनसे अधिक ख्याति प्राप्त कर गये। मैं यह नहीं कहता कि डा० लोहिया का योगदान उन नेताओं से अधिक है, जिनका मैंने उल्लेख किया है परन्तु यह सच है कि जब वे नेता भूतकाल के नेता थे, डा० लोहिया आने वाले भारत के नेता थे। आज यदि वे जीवित होते तो निश्चित ही देश में सबसे अधिक प्रतिष्ठित और शक्ति सम्पन्न व्यक्ति होते। क्योंकि आज जो ढांचा हमें दिखायी देता है, उसकी कल्पना डा० राममनोहर लोहिया की ही थी।

डा० लोहिया का यह दुर्भाग्य रहा कि वे समय से आगे की सोचते थे। साथ ही उनके बहुत से साथी, जिन पर उन्होंने भरोसा किया था, उनको छोड़कर उधर चले गये, जिधर सत्ता और शासन था जबकि लोहिया अपने सिद्धांतों पर अडिग रहे। मुझे डा० लोहिया से उस दिन बड़ी अंतरंग बात करने का अवसर मिला जिस

दिन या जिसके दूसरे दिन ही वे विलिंगडन अस्पताल में अपनी पौरूष ग्रंथी का आपरेशन कराने गये थे। सायंकाल का समय था, संसद के सेंट्रल हाल में बहुत थोड़े लोग थे और हम दोनों काफी देर तक पास-पास बैठे बात करते रहे। अब उस बातचीत को याद करता हूं तो ऐसा लगता है कि जैसे वे अपने हृदय की बात अंतिम समय में किसी से कह रहे थे और उसे सुनने वाला उस समय मैं ही था। बातों-बातों में उन्होंने कहा—चतुर्वेदी, जिन्दगी में कोई मजा नहीं आया। मैंने कहा—ऐसी बात तो नहीं है। आप लाखों के नेता हैं। आपके कहने पर लोग सब कुछ भी करने को तैयार रहते हैं। इस पर उन्होंने कहा कि कोई सुनता नहीं है। तब मैंने कहा कि आप जब बोलते हैं, लोग मंत्रमुग्ध होकर सुनते हैं। सभा में पत्ता भी नहीं खड़क सकता, आप जो लिखते हैं, उसे लाखों लोग पढ़ते हैं और उनमें बहुतेरे उसे वेद-वाक्य मानते हैं। फिर भी उन्होंने कहा कि नहीं, कोई छवि बनी नहीं। उस समय मैंने कुछ हल्के ढंग से कह दिया कि डाक्टर साहब आपको अपनी छवि बनाने की फुरसत ही कहां थी। आप तो दूसरों की मूर्ति तोड़नें में ही अपना समय लगाते रहे। परन्तु अब मैं सोचता हूं कि डा॰ लोहिया की शिकायत सही थी और वह शिकायत समस्त भारतीय समाज से थी। उनके जीवनकाल में उनके देशवासियों ने उनके महत्व को स्वीकार नहीं किया। उसके दो कारण थे, एक तो वे इतने स्पष्टवादी थे कि बड़े से बड़े व्यक्ति की चूक को बड़े जोरदार ढंग से प्रकट करते थे। दूसरी बात यह थी कि उन्होंने अपने कामों का न तो कभी स्वयं डंका बजाया और न किसी से बजवाने दिया।

डा॰ राममनोहर लोहिया का नाम मैंने सबसे पहले उस समय सुना जब पंडित जवाहरलाल नेहरू 1936 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्ष चुने गये। महामंत्री तो उन्होंने आचार्य कृपलानी को ही रखा था, लेकिन उन्होंने महासमिति कार्यालय में चार पढ़े-लिखे नवयुवकों को विभागीय मंत्री बनाया था। ये थे—डा॰ राममनोहर लोहिया, डाक्टर के॰एम॰ अशरफ़, डा॰ ज़नैुल आबदीन अहमद (जेड॰ए॰ अहमद) और चौथे संभवतः एक यूरोपियन थे—ल्योनार्ड शिफ। डा॰ लोहिया जर्मनी से पी॰एच॰डी॰ की उपाधि लेकर आये थे और आर्थिक मामलों में विशेषज्ञ थे। उन दिनों कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी बन चुकी थी। डा॰ लोहिया की सहानुभूति उसके साथ थी जबकि अन्य तीन

साम्यवादी विचारों के समझे जाते थे। कांग्रेस कार्य-समिति में आचार्य नरेन्द्र देव, श्री जयप्रकाश नारायण और श्री अच्युत पट्वर्धन जैसे समाजवादी आ चुके थे। महात्मा गांधी कांग्रेस समाजवादियों के दृष्टिकोण से सहमत नहीं थे यद्यपि उनके गुणों की वे प्रशंसा करते थे विशेषतया आचार्य नरेन्द्र देव और श्री जयप्रकाश नारायण की। जब सन् 1942 का 'करो या मरो आन्दोलन' शुरू हुआ और महात्मा गांधी सहित देश के बड़े-बड़े नेता गिरफ्तार हो गये, उस समय डा० राममनोहर लोहिया और उनके साथी ही थे जिन्होंने पुलिस की निगाहों से बचकर 'अगस्त क्रांति' को, जो उस आन्दोलन का सही नाम होना चाहिए, संचालित किया। वे उन नेताओं में से थे जो गिरफ्तार नहीं हो सके थे। उसके बाद कभी महाराष्ट्र और कभी कलकत्ता और कभी कहीं, बैठकर ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध बम्बई में, कलकत्ता में, बिहार में, बंगाल और उत्तर प्रदेश में एक हिंसक क्रांति का संचालन कर रहे थे। श्री जयप्रकाश नारायण उस समय हज़ारीबाग जेल में पहले ही नज़रबंद थे, तभी उन्हें उनके कुछ साथियों के सहित हज़ारीबाग जेल से निकलवाया गया। सरकार जानती थी कि यह समाचार देश में बिजली की तरह कौंध जायेगा और इसलिए ऐसोसिएटिड प्रेस ने उस दिन एक छोटे से समाचार में उन व्यक्तियों की सूची प्रसारित की, जो हज़ारीबाग जेल से भाग निकले थे। उसी में श्री जयप्रकाश नारायण तथा पांच अन्य साथी थे। समाचारपत्र इस समाचार की अहमियत को भांप भी नहीं पाये। दिल्ली के'स्टेट्समैन' और 'नेशनल काल' में छोटे छोटे समाचार छपे। लेकिन दिल्ली के दैनिक 'विश्वमित्र' के पारखी सम्पादक श्री सत्यदेव विद्यालंकार ने इस समाचार की गरिमा को पहचान लिया और प्रमुख समाचार का शीर्षक दिया— 'जयप्रकाश जेल से भाग निकले'। जयप्रकाश नारायण हज़ारीबाग से बनारस पहुंचे और फिर उनको लेकर नेपाल में आज़ाद दस्ता बनाने का निर्णय किया गया। उस आज़ाद दस्ते के दो संचालक थे—श्री जयप्रकाश नारायण और डा० राममनोहर लोहिया। बिहार से सटी नेपाल की भूमि पर रेडियो स्टेशन बनाया गया। डा० लोहिया अपना ट्रांसमीटर लेकर आये और रेडियो प्रचार विभाग के संचालक बने। उनके बयानों ने हिन्दी क्षेत्रों में आग फूंक दी। अंग्रेज़ शासन विचलित हो गया। डा० लोहिया के मन में इस आन्दोलन का, भावी क्रांति का जो नक्शा था, वह उनके लेख 'क्रांति की तैयारी करो' में इस प्रकार कहा गया था—"धुन के पक्के और शिक्षा पाए हुए पांच-पांच आदमियों के दस्ते ऐसे तैयार किये जाएं, जो ज्यों ही क्रांति शुरू हो, आगे बढ़कर जनता का नेतृत्व करें और कामयाबी तक पहुंचाएं। बड़े से बड़ा बलिदान करके भी आप से आप विद्रोह के लिए खड़ी हुई जनता जो काम पूरे तौर से

नहीं कर सकती, वे ही काम इन दस्तों के चलते आसानी से सम्पन्न हो सकेंगे। जुलूस पर गोली चलाने के लिए भेजे गए या अंग्रेज़ी सरकार के केन्द्रों की रक्षा पर तैनात किए गए सैनिकों के हथियार छीनने की बात हो, या सड़क काटने, रेल की पटरियां उखाड़ने और रेलगाड़ियों का चलना बंद करने की बात हो, या थानों पर, जेलों पर, कचहरियों पर, और सेक्रेटेरियट पर, जनसमूह को लेकर धावा करने की बात हो—इन कामों के लिए पहले से ही विशेष शिक्षा प्राप्त किए हुए नौजवानों से बनें ये दस्ते कमाल कर दिखाएंगे। जिन-जिन क्षेत्रों में ऐसे दस्ते होंगे, वहां क्रांति शुरू होते ही अंग्रेज़ी राज का खात्मा चुटकी बजाकर कर दिया जा सकता है और इनसे प्रोत्साहन पाकर दूसरे क्षेत्रों में भी क्रांति की ज्वाला धधक उठेगी और अंग्रेजी राज को स्वाहा कर देगी।"

कोसी नदी के कछार में 'बकरो का टापू' नामक थल में श्री जयप्रकाश नारायण और डा० लोहिया के कार्यालय थे। लेकिन वे लोग वहां पर दो महीने ही रह पाये थे कि ब्रिटिश शासन को पता चल गया कि नेपाल क्षेत्र में क्रांतिकारी भर्ती किये जा रहे हैं और रेडियो प्रसारण होता है। डा० लोहिया को इस बात का विश्वास था कि यदि हर ज़िले में सौ मज़बूत आदमी भी उन्हें मिल जायें तो क्रांति सफल हो सकती है। भर्तियां जारी थीं, प्रचार चल रहा था कि नेपाली पुलिस ने उन्हें घेर लिया। फिर भी रात को पुलिस की नाकेबंदी से बचकर जयप्रकाश नारायण और डा० लोहिया वहां से निकल गये और कलकत्ता पहुंचे। जहां से श्री सुभाषचन्द्र बोस को पत्र भेजा गया, परन्तु बाद में वे दोनों पकड़े गये और लाहौर के किले में अलग-अलग रखे गये, अमानुषिक अत्याचार हुए और फिर उन्हें आगरा की जेल में भेजा गया। उस समय डा० लोहिया ने ब्रिटिश अर्थशास्त्री और लेबर पार्टी के तत्कालीन अध्यक्ष हेराल्ड लास्की को एक पत्र भेजा, जिसमें देश में किये जा रहे अत्याचारों का विवरण दिया गया था। उस समय वर्ष 1945 में 16 महीने की नज़रबंदी के बाद श्री जयप्रकाश नारायण और डा० लोहिया को आगरा जेल भेज दिया गया और जब संसद सदस्यों का एक शिष्टमंडल भारत आया तो वह आगरा ज़ेल में इन दोनों समाजवादी नेताओं से मिलने भी गया। बाद में जब मंत्रिमंडल मिशन भारत में स्वतंत्रता की बातचीत करने आया, तभी 11 अप्रैल; 1946 को ये दोनों आगरा जेल से छोड़े गये।

महात्मा गांधी ने जेल से छूटने के बाद 'अगस्त क्रांति' के सिलसिले में हुई सारी हिंसात्मक गतिविधियों से अपने को और कांग्रेस को अलग कर दिया था। उस समय सारा आन्दोलन डा० लोहिया और उनके साथियों के जिम्मे ही था और यह बात सब जानते हैं कि उस आंदोलन के फलस्वरूप ब्रिटिश शासन को जो

चोट पहुंची, उसी के बाद अंग्रेजी सरकार ने भारत छोड़ने का निर्णय किया। पर कितने लोग हैं जो इस सफलता का श्रेय डा॰ राममनोहर लोहिया को देते हैं।

डा॰ लोहिया की यह पहली स्वाधीनता की लड़ाई नहीं थी। उन्होंने ही गोआ को स्वाधीन कराने का आंदोलन प्रारंभ किया, जिसे तत्कालीन बम्बई राज्य के मुख्यमंत्री श्री मोरारजी देसाई ने गैर-कानूनी घोषित कर दिया, फिर भी भारत सरकार को गोआ को मुक्त कराने के लिए पुलिस कार्रवाई के लिए बाध्य होना पड़ा था। कितने लोग यह जानते हैं कि जब 1967 में विभिन्न राज्यों में कांग्रेस विरोधी संविद सरकारें बनीं तो उनके निर्माण में डा॰ राममनोहर लोहिया की रणनीति की क्या भूमिका थी, क्यों उन्होंने चौधरी चरण सिंह को उत्तर प्रदेश का मुख्य मंत्री स्वीकार किया।

डा॰ लोहिया का यह मत था, जिससे हम असहमत हो सकते हैं कि देश में जनता का शासन तभी आयेगा, जब वे लोग जो अभी तक सत्ता और समृद्धि से दूर रहे हैं, वास्तव में सत्ताधारी बनें। वैसे यह समाजवाद का आधारभूत सिद्धांत है परन्तु डा॰ लोहिया का ऐसा ख्याल था कि जो हिन्दू उच्च वर्ण के लोग अभी तक सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक प्रभुत्व को भोगते रहें हैं, वे यदि अपने को समाजवादी या साम्यवादी कहें तो भी देश में उन लोगों का राज्य नहीं बन पायेगा, जो आर्थिक दृष्टि से पिछड़े हैं। उनका ऐसा भी ख्याल था कि भारत में जाति-प्रथा इतनी जमी हुई है कि समाजवादी व्यवस्था में भी उससे हटना मुश्किल होगा। इसलिए उन्होंने सोचा कि पिछड़ी जातियों को सामूहिक रूप से समाजवाद के मार्ग में प्रशिक्षित किया जाये। उसी का परिणाम था कि बिहार में कर्पूरी ठाकुर जैसे नेता पैदा हुए और उन्होंने चौधरी चरण सिंह, राव वीरेन्द्र सिंह या इसी प्रकार के जाट, यादव, केवट, माली आदि जातियों के प्रतिनिधियों को प्रोत्साहन दिया जिसका परिणाम हम आज देख रहे हैं।

डा॰ लोहिया समाजवादी तो थे, पर अपने को मार्क्सवादी नहीं मानते थे। इसलिए वर्ग संघर्ष की उनकी अपनी अलग धारणा थी, परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि डा॰ लोहिया को अन्तर्राष्ट्रीय विचारधाराओं का पता न था। भारत आने से पहले डा॰ लोहिया जर्मनी में चार वर्ष रहकर आये थे वहां पर बर्लिन विश्वविद्यालय में उन्होंने अर्थ-शास्त्र, इतिहास और दर्शन-शास्त्र का अध्ययन किया था उन्होंने पी॰ एच॰ डी॰ के लिए अपना विषय चुना था—'भारत में नमक पर कर'। अपने इस शोध प्रबंध में उन्होंने भारत में नमक पर कर लगाने के आर्थिक, ऐतिहासिक और राजनीतिक प्रभाव की चर्चा की थी। जब वे

1146S-12A

बर्लिन में थे तो केन्द्रीय यूरोप की जो 'हिन्दुस्तान ऐसोसिएशन' थी, उसके भी वे काफी समय तक सचिव रहे थे। उन्होंने मद्रास के दैनिक हिन्दू में 'जर्मनी में हिटलरवाद' के उदय पर लेख भी भेजा था। जब वे भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस कार्यालय में आये तो उन्हें अंतर्राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में आर्थिक सिद्धांतों को अध्ययन करने का अधिक अवसर मिला। डा० लोहिया स्वयं फैजाबाद के एक वैश्य परिवार से आए थे और उन्हें देशी और विदेशी अर्थ-समाज के बारे में गहरा ज्ञान था। वे अविवाहित थे, इसलिए इलाहाबाद के 'स्वराज भवन' में ही उनकी सारी दुनिया बसती थी। जिस कमरे में डा० लोहिया बहुत दिन रहे, वह कमरा 'स्वराज भवन' के पुराने गाइडों की ज़बान पर आज भी डा० लोहिया के कमरे के नाम से चढ़ा हुआ है।

जिस समय डा० लोहिया कांग्रेस समाजवादी दल के सदस्य हुए, उस समय श्री जयप्रकाश नारायण उसके महामंत्री नियुक्त हुए थे। आचार्य नरेन्द्र देव सबसे बुजुर्ग नेता थे और समाजवाद तथा बौद्ध-दर्शन, दोनों में ही उनकी समान गति थी। इन दोनों नेताओं का श्री जवाहरलाल नेहरू के साथ व्यक्तिगत संबंध भी बहुत अच्छा था। श्री जयप्रकाश नारायण को तो महात्मा गांधी भी अपना दामाद कहकर पुकारते थे क्योंकि उनकी पत्नी प्रभावती महात्मा गांधी की शिष्या थी। यद्यपि उन दिनों श्री जयप्रकाश नारायण ने महात्मा गांधी के सिद्धांतों की खासतौर पर खादी और चर्खे के कार्यक्रमों की बड़ी आलोचना की थी। 1936 में श्री जयप्रकाश नारायण ने कांग्रेस समाजवाद का जो लक्ष्य रखा था उसमें मार्क्सवाद का उल्लेख किया था। वे आजादी के बाद भी यह समझते थे कि नेहरू के रूप में समाजवादियों ने एक समाजवादी कांग्रेस में जोड़ दिया है और कांग्रेस के विरोध में सरकार बनाने की दृष्टि से कोई पार्टी चलाना उनकी रुचि की बात नहीं थी। लेकिन 1952 में समाजवादी दल ने चुनाव लड़ा और इस उद्देश्य से किसान मज़दूर प्रजा पार्टी के साथ सहयोग कर सितम्बर, 1952 में प्रजा समाजवादी पार्टी की स्थापना की। डा० लोहिया इससे इसलिए सहमत थे कि उनका ख्याल था कि कांग्रेस के विरुद्ध मत बटेंगे नहीं और फिर कांग्रेस का विकल्प निकलेगा। लेकिन चुनाव में प्रजा समाजवादी दल उतना भी सफल नहीं हुआ जितना साम्यवादी हो गये थे, यद्यपि उन्हें काफी मत मिले थे। अंदाज लगाया गया कि अगर प्रजा समाजवादी दल ने कम स्थानों पर चुनाव लड़ा होता तो परिणाम बेहतर होता। फिर भी 1953 में पं० जवाहरलाल नेहरू ने श्री जयप्रकाश नारायण को केन्द्रीय मंत्रिमण्डल में सम्मिलित होने के लिए आमंत्रित किया। लेकिन श्री जयप्रकाश नारायण ने इसे अस्वीकार किया और एक पत्र लिखा जिसमें साफ कहा कि यदि

समाजवाद की दिशा में राष्ट्रीय पुनर्निर्माण के लिए कोई प्रयास हो, तभी आपके इस निमंत्रण का कोई मूल्य है, केवल कुछ स्थानों की प्राप्ति के लिए, चाहे वे केन्द्र में हो या राज्यों में हों मैं मंत्रिमंडल प्रवेश को महत्व नहीं देता। मार्च, 1953 में जब श्री जयप्रकाश नारायण श्री जवाहरलाल नेहरू को अपना जवाब देकर लौटे थे और श्री ब्रजकृष्ण चांदीवाला के यहां ठहरे हुए थे तो मैं उनसे मिला था। मैंने जयप्रकाश बाबू से पूछा कि आपने मंत्रिमंडल में स्थान क्यों नहीं स्वीकार किया। श्री नेहरू के बाद आप ही सबसे प्रभावशाली व्यक्ति होते, तो उन्होंने कहा कि मैं अकेला क्या कर लेता। जब तक श्री नेहरू मेरे अन्य साथियों को लेने के लिए तैयार न हों, तब तक मैं क्या करूंगा। उनकी बातचीत से स्पष्ट था कि श्री जवाहरलाल नेहरू, डा० राममनोहर लोहिया को अपने मंत्रिमंडल में लेने के लिए तैयार नहीं थे और श्री जयप्रकाश नारायण बिना डा० लोहिया के मंत्रिमंडल में जाने के लिए तैयार नहीं थे। उनका यह निर्णय ठीक ही था क्योंकि तब तक प्रजा समाजवादी दल या उसका समाजवादी तत्व अगर किसी को अपना वास्तविक नेता मानता था तो वह डा० राममनोहर लोहिया थे। वे अच्छे संगठनकर्ता थे, अपने कार्यकर्ताओं का आदर करते थे और उनके सुख-दुख में भागी रहते थे। यह तो था ही, लेकिन जहां तक राजनीतिक प्रश्नों के दूर-दृष्टि से देखने का सवाल था, उनकी आंख बड़ी चौकन्नी थी और अपने विचारों को प्रकट करने में उन्हें अपूर्व कौशल प्राप्त था। डा० लोहिया को पंडित जवाहरलाल नेहरू में उतना विश्वास नहीं था, जितना जयप्रकाश जी को था और जैसा डा० लोहिया ने भय प्रकट किया था, पंडित नेहरू ने श्री जयप्रकाश नारायण के प्रस्ताव के उन चौदह-सूत्री कार्यक्रम को स्वीकार नहीं किया, जिसमें समाजवाद की दिशा में आर्थिक सुधार होने थे जैसे भूमि का वितरण, बैंकों, बीमा कम्पनियों, कोयला तथा अन्य खनिज उद्योगों का राष्ट्रीयकरण, राज्य व्यापार का विकास और सरकारी नौकरों के बड़े वेतनों में कमी। श्री नेहरू ने सिद्धांततः इनमें से किसी का विरोध नहीं किया, लेकिन आगामी चार वर्षों में यह प्रस्ताव लाने का वायदा करना भी उचित नहीं समझा। डा० लोहिया पहले ही इसके विरोधी थे कि बातचीत की जाये क्योंकि वे समझते थे कि सरकार से बातचीत करने का अर्थ यही होगा कि लोग प्रजा समाजवादी दल को सरकार से भिन्न विशेष विचारधारा वाली पार्टी नहीं मानेंगे।

श्री लोहिया कितनी स्पष्टता से अपने विचार प्रकट कर सकते थे, इसका उदाहरण उनका वह लेख है जो उन्होंने मई 1953 में 'जनता पत्र' में लिखा था। उन्होंने लिखा था—'दो रास्ते हैं जिनके द्वारा श्री जयप्रकाश नारायण श्री नेहरू के उत्तराधिकारी हो सकते हैं। इनमें से एक रास्ता है कि श्री नेहरू की दयावंत सद्भावना और समझौते के द्वारा,

जिस रास्ते का मेरे जैसे लोग अपनी पूरी शक्ति भर विरोध करेंगे। क्योंकि ऐसी स्थिति में श्री जयप्रकाश नारायण श्री नेहरू से भी बुरे प्रधानमंत्री साबित होंगे। दूसरा रास्ता है कि उन्हें हमारे देश के उन करोड़ों लोगों के नेता के रूप में खड़े होने का अवसर दिया जाये जो या तो समाजवाद के लिए वोट डाल रहे होंगे या महान सविनय अवज्ञा आंदोलन में भाग ले रहे होंगे। मैं समझता हूं कि इस प्रकार लोग अपनी पूरी शक्ति के साथ श्री जयप्रकाश नारायण को प्रधानमंत्री बनाने में मदद करेंगे और इस प्रकार श्री जयप्रकाश नारायण एक बढ़िया प्रधानमंत्री सिद्ध होंगे।'

श्री जयप्रकाश नारायण से डा० लोहिया का मतभेद होने पर जब श्री जयप्रकाश नारायण व कुछ साथियों ने पार्टी से त्यागपत्र दे दिया तो डा० लोहिया ने सभी को इस्तीफा वापस लेने के लिए कहा और यह कहा—जयप्रकाश और अपने संबंधों के बारे में मैं इससे ज्यादा और क्या कह सकता हूं कि हम दोनों ने जब 1944 में नेपाली जेल से आज़ाद दस्ते द्वारा आज़ाद किये गये तो साथ-साथ गोलियों का सामना किया था। यह दूसरी बात है कि वे गोलियां हमें नहीं लगीं लेकिन इससे कहने के अलावा कि मेरे अपने कोई भाई नहीं, मैं अपने और जयप्रकाश के संबंधों के बारे में और ज्यादा कहना आवश्यक नहीं समझता। इससे क्या फर्क पड़ता है कि भूतकाल में हम लड़ते रहे हैं और शायद भविष्य में भी लड़ेंगे।

डा० लोहिया के विचारों का श्री जयप्रकाश नारायण आदर किया करते थे। अन्ततोगत्वा समाजवाद के जिन सिद्धान्तों को लोहिया ने प्रतिपादित किया था, वही समाजवादियों के आधार को देर-सवेर उन सारे प्रस्तावों को कांग्रेस सरकार ने स्वीकार किया, हालांकि भूमि-सुधार अधूरा रहा और सरकारी अधिकारियों के वेतन और फायदे घटने के बजाय बढ़ते गये। ये वे कारण थे जिन्होंने समाजवाद की प्राप्ति को कठिन बना दिया और समाजवाद को संविधान में शामिल करने के बाद भारत पूंजीवाद की ओर और अधिक बढ़ गया।

डा० राममनोहर लोहिया से सम्पर्क तो मेरा तभी हुआ जब वे लोक सभा के सदस्य होकर आये। परन्तु उन्होंने आते ही बड़ी आत्मीयता प्रकट की, जिससे मुझे आश्चर्य हुआ। एक अज्ञात व्यक्ति से इतना सम्मान पाने का कोई कारण समझ में नहीं आता था। लेकिन शीघ्र ही मुझे यह पता लग गया कि डा० लोहिया और मेरे बीच में इस सद्भाव को लाने वाली बात कौन सी है। यह सही है कि अपने छात्र जीवन में मैं कांग्रेस समाजवादी दल का एक सदस्य बना था, परन्तु उस समय मेरा सम्पर्क या तो आचार्य नरेन्द्र देव

से हुआ या श्री एम० आर० मसानी से, जो उस समय दल के महासचिव थे। डा० लोहिया कांग्रेस महासमिति में आर्थिक विषयों के मंत्री थे लेकिन छात्र कार्यकर्ता के नाते मेरा सम्पर्क उनके दो अन्य साथियों डा० के० एम० अशरफ़ और डा० ज़ेड० ए० अहमद से अधिक था। ये दोनों बाद में साम्यवादी दल के प्रमुख नेता बने। इसलिए मैं कह सकता हूं कि जब तक डा० लोहिया दिल्ली नहीं आये थे, तब तक न तो मेरा उनके साथ सम्पर्क था और न बहुत विचार साम्य ही। छात्र आन्दोलन में मैं कम्युनिस्ट कार्यकर्ताओं का सहयोगी रहा था और उस नाते बाद में कांग्रेस समाजवादी सहयोगियों से पृथक भी हो गया। परन्तु छात्र जीवन समाप्त होते होते छात्र राजनीति भी समाप्त हो गयी और उसके बाद मैंने यदि किसी संगठन में सक्रिय हिस्सा लिया था तो या तो वह कांग्रेस संगठन था या अखिल भारतीय देशी राज्य लोक परिषद। यह संगठन ऐसा था जिसमें सभी राजनीतिक विचारधाराओं के लोग इकट्ठे थे। मैंने इस आन्दोलन की वृद्धि के लिए नयी दिल्ली में आने के बाद वर्ष 1947 में ही मार्च के महीने में लोक समाचार समिति या पीपल्स प्रेस आफ इंडिया नाम की एक समाचार समिति की स्थापना कर ली थी जो देशी राज्यों की प्रजा सम्बन्धी समाचारों और गतिविधियों का प्रचार करती थी। प्रारंभ में तो मैं 'दैनिक नवभारत' (टाइम्स, दिल्ली) तथा 'अमर भारत', दिल्ली से सम्बद्ध रहा परन्तु बाद में कई वर्ष केवल इस समाचार समिति का ही कार्य करता रहा। चूंकि विंध्य प्रदेश राज्य संघ में टीकमगढ़ के अनेक कार्यकर्ता सक्रिय थे इसलिए विंध्य प्रदेश मेरी गतिविधि का विशेष केन्द्र था। मैं टीकमगढ़ में चार वर्ष रह चुका था और ओरछा सेवा संघ के कार्यकर्ताओं के साथ राजनीतिक कार्य कर चुका था।

वर्ष 1948 में 13 मार्च को बुन्देलखण्ड के राजाओं तथा रीवां नरेश ने विंध्य प्रदेश के नाम से एक राज्यसंघ बनाने के समझौते पर हस्ताक्षर किये थे। 14 अप्रैल, 1949 को मंत्रिमण्डल के आपसी संघर्ष और एक मंत्री द्वारा पच्चीस हजार रुपये रिश्वत में लेने के आरोप में गिरफ्तारी के बाद मंत्रियों ने त्यागपत्र दे दिया था और एक सरकारी अधिकारी को मुख्यमंत्री बना दिया गया था। सितम्बर, 1949 में एक आई० सी० एस० अधिकारी श्री एन० एम० बुच सरदार पटेल की ओर से इस राज्य की प्रशासकीय और राजनीतिक स्थिति की जांच करने के लिए विंध्य प्रदेश गये थे और उनकी रिपोर्ट के बाद सरदार पटेल ने यह फैसला किया था कि इस राज्य को उत्तर प्रदेश तथा मध्य प्रदेश में बांट दिया जाये। वस्तुतः सरदार का मन तो इसे मध्य प्रदेश को ही देना था और इसीलिए वहां पर मध्य प्रदेश के एक अधिकारी श्री एस० एन० मेहता मुख्यमंत्री बनाकर बुलाये गये थे और पुलिस महानिरीक्षक भी मध्य प्रदेश पुलिस से आये थे। राज्य मंत्रालय के सचिव श्री

बी० पी० मेनन 17 दिसम्बर को नौगांव पहुंचे और वहां पर सब राजाओं से विलीनीकरण के लिए हस्ताक्षर लेने चाहे तो रीवां महाराज वहां नहीं पहुंचे और यह संदेश भेज दिया कि वे बहुत बीमार हैं। तीन-चार राजाओं ने तो हस्ताक्षर कर दिये लेकिन बुन्देलखण्ड एजेंसी के अन्य राजाओं ने यह कहा कि जब रीवां नरेश हस्ताक्षर कर देंगे तो हम भी हस्ताक्षर कर देंगे। इस पर श्री मेनन रीवां गये। यह समाचार रीवां वालों को लग चुका था कि वे क्यों आ रहे हैं और जब श्री बी० पी० मेनन रीवां में महाराजा से मिलने किले में गये तो रास्ते में दो हजार व्यक्तियों की भीड़ ने उन्हें रोक दिया और उन्हें आगे नहीं बढ़ने दिया। प्रदर्शनकारी विंध्य प्रदेश को ज्यों का त्यों रखने की मांग कर रहे थे। श्री मेनन लौट गये लेकिन बाद में उन्होंने महाराजा रीवां पर अन्य राजाओं का दबाव डलवाकर उनसे हस्ताक्षर ले लिये। यह प्रायः निश्चित था कि विंध्य प्रदेश का या तो विभाजन हो जायेगा या उसे मध्य प्रदेश को सौंप दिया जायेगा। प्रदेश कांग्रेस कमेटी ने एक प्रस्ताव पास कर विभाजन का विरोध किया था परन्तु यह समझते हुए कि प्रांतीय कांग्रेस समिति प्रस्ताव पास करने के अतिरिक्त और कुछ नहीं करेगी, विंध्य प्रदेश समाजवादी पार्टी ने जो वहां काफी शक्तिशाली हो गई थी, यह निश्चय किया कि वह विलीनीकरण के विरुद्ध आन्दोलन करेगी। इस सिलसिले में डा० लोहिया रीवां गये थे और उन्होंने 28 दिसम्बर, 1949 को एक बड़ा जोशीला भाषण रीवां की एक सार्वजनिक सभा में दिया और यह कहा कि अगर जनता संगठित है तो कोई भी अपना निर्णय उस पर नहीं थोप सकता। पहली जनवरी 1950 को एक मशाल जुलूस निकाला गया और दो जनवरी को हड़ताल आयोजित की गयी।

रीवां की हड़ताल का केन्द्र बिन्दु बस स्टैंड या लारीखाना था, जहां से कार्यकर्ताओं ने धरना देकर बसों का आना-जाना रोक दिया। नगर में दफा-144 नहीं लगायी गयी थी और सैकड़ों व्यक्ति पुलिस और प्रदर्शनकारियों के बीच विवाद को देख रहे थे। बाद में वहां पर इंस्पैक्टर जनरल पुलिस भी पहुंचे। जिला मजिस्ट्रेट ने न तो लाठी चार्ज कराया और न उस सभा को गैर कानूनी घोषित किया और कुछ पत्थरबाजी के उत्तर में गोली चलाने का आदेश दिया, जिसके परिणामस्वरूप 18 व्यक्तियों को गोली की चोटें आयीं, जिनमें से दो मर गये। पुलिस ने डाकखाने और तारघर पर बाहर संदेश भेजने पर रोक लगा दी और उस समय वहां से कोई व्यक्ति बाहर टेलीफोन भी नहीं कर सका। टीकमगढ़ के समाजवादी कार्यकर्ता श्री नन्दराम कठैल ने टीकमगढ़ पहुंचकर संचार मंत्री श्री रफी अहमद किदवई को इसकी शिकायत का

तार भेजा और मुझे फोन किया कि समाचारों को जनता तक पहुंचाने के लिए मैं रीवां पहुंचूं।

डा० राममनोहर लोहिया उस समय बम्बई में थे। चूंकि यह सारा घटनाक्रम समाजवादी दल और डा० लोहिया के आह्वान के बाद घटित हुआ था इसलिए उन्हें इसकी सूचना इलाहाबाद से दी गयी और 4 जनवरी, 1950 को समाजवादी पार्टी के प्रधानमंत्री श्री जयप्रकाश नारायण, हिन्द मज़दूर सभा के प्रधानमंत्री श्री अशोक मेहता तथा हिन्द किसान पंचायत के सभापति डा० राममनोहर लोहिया ने एक वक्तव्य में यह शिकायत की कि सरकार ने रीवां के समाचारों पर परदा डाल दिया है और उन्होंने यह मांग भी की कि 15 जनवरी को सारे भारत में विंध्य दिवस मनाया जाये। डा० लोहिया इसके बाद 7 जनवरी, 1950 की रात को रीवां पहुंचे। सवेरे विटोरिया अस्पताल में उन्होंने घायलों को देखा और उन्होंने उस दिन एक सार्वजनिक सभा बुलाने का प्रयास किया। लेकिन डिवीज़नल कमिश्नर ने उन्हें बताया कि शहर में दफा-144 लगी हुई है और बहुत तनाव है इसलिए वे सभा नहीं कर सकते। अधिकारियों ने उनको समझाया कि इस समय सभा करना उचित नहीं है। परन्तु जब डा० लोहिया ने दफा-144 का उल्लंघन कर सभा करने का संकल्प दोहराया तो उन्हें विंध्य प्रदेश छोड़ने का आदेश दिया गया।

रीवां से समाचार नहीं आ रहे थे, उस समय श्री नंदराम कठैल ने फोन पर मुझसे अनुरोध किया कि मैं रीवां जाकर गोलीकांड की जांच करूं और समाचारपत्रों में अपनी रिपोर्ट छपवाऊं। मैं तत्काल रीवां के लिए रवाना हो गया। सतना रेलवे स्टेशन से उतरकर जब रीवां जाने वाली बस में मैं जा रहा था तो नगर से पहले मुझसे पूछताछ की गयी कि मैं कौन हूं और कहां जा रहा हूं। इस अवसर पर मैंने किसी तरह उन्हें भ्रमित कर नगर में प्रवेश कर लिया। बाद में मैंने मुख्यमंत्री, मुख्य सचिव और पुलिस के इंस्पेक्टर जनरल तथा ज़िला मजिस्ट्रेट से भेंट की तथा स्वास्थ्य और चिकित्सा निदेशक लेफ्टीनेंट कर्नल एल० ओसवाल की 3 जनवरी की रिपोर्ट और मैडिकल आफीसर एस० टी० भट्टाचार्य की 6 जनवरी की रिपोर्ट भी प्राप्त कर समाचारपत्रों में एक ब्यौरेवार रिपोर्ट प्रकाशन करने को दी। इलाहाबाद में मैं एक प्रति 'अमृत बाज़ार पत्रिका' के समाचार सम्पादक श्री प्रमोद सेन को, जिन्हें मैं जानता था, दे आया। यह पत्र हमारी सर्विस के लेख और समाचार छापता था और एक प्रति 'नेशनल हेराल्ड' को भेजी। 'नेशनल हेराल्ड' ने अपने संवाददाता श्री लक्ष्मीकांत त्रिपाठी को भी भेजा था और उनकी रिपोर्ट भी छापी थी। उसके बाद भी उन्होंने मेरी रिपोर्ट आठ कालमों में प्रकाशित की। उस रिपोर्ट में मैंने यह सिद्ध किया था कि पुलिस द्वारा जो गोली चलाई गयी, वह गैर कानूनी तो थी ही, आवश्यक भी नहीं थी

और लोगों को जानबूझ कर पुराने बदले की भावना से गोली का निशाना बनाया गया इसके प्रमाण में विभिन्न अधिकारियों के परस्पर विरोधी वक्तव्य, जो मैंने लिपिबद्ध कर लिए थे उद्धृत किये। सरकार उस गोली काण्ड का कोई औचित्य सिद्ध नहीं कर सकी और जब संसद के बजट अधिवेशन में उस गोली काण्ड को लेकर श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' तथा कई अन्य सरकारी दल के सदस्यों ने विंध्यप्रदेश शासन और राज्य मंत्रालय की आलोचना की तो सरदार बल्लभभाई पटेल ने, जिनके तहत राज्य मंत्रालय काम करता था, डा० लोहिया को बहुत बुरा भला कहा था। परन्तु वे यह साबित नहीं कर सके कि गोलीकाण्ड का कोई औचित्य था।

रीवां का गोलीकाण्ड इस प्रकार डा० लोहिया के लिए एक संवेदनशील विषय बन गया था और जब उन्हें बुन्देलखण्ड के समाजवादी कार्यकर्ताओं ने यह बताया कि यह समाचार किसने संगृहीत किया और प्रसारित किया तब से डा० लोहिया के हृदय में मेरे लिए एक विशेष सहानभूति उदय हो गयी थी।

एक अन्य घटना भी हुई। उन दिनों मैं वाराणसी के दैनिक 'आज' का नई दिल्ली में विशेष प्रतिनिधि था। मैं किसी कार्य से आर्थिक शोध संस्थान गया हुआ था कि वहां पर उनके द्वारा किये गये एक सर्वेक्षण की रिपोर्ट मुझे प्राप्त हुई। उस रिपोर्ट से पता लगा कि उत्तर प्रदेश के टेहरी गढ़वाल और देवरिया जिले में प्रति व्यक्ति न्यूनतम आय देश में सबसे कम है। मैंने वह समाचार 'आज' में प्रकाशित कराया था लेकिन उसमें आय का आंकड़ा वार्षिक था, जो रुपयों में था। डा० लोहिया ने उस समाचार को पढ़कर अपने गणित से यह निकाल लिया कि प्रतिदिन की मज़दूरी दो आने रोज़ पड़ती है। उन्होंने लोक सभा में योजना मंत्री श्री गुलज़ारीलाल नन्दा को दो आने मज़दूरी के प्रश्न को छेड़कर मुसीबत पैदा कर दी और संसदीय विवादों में वह महत्वपूर्ण विवाद हो गया।

जब मेरी पुस्तक 'चीन में विस्तारवाद के दो हजार वर्ष' प्रकाशित हुई तो समाजवादी विचारों की पत्रिका 'जन' में उन्होंने पुस्तक की प्रशंसात्मक समीक्षा लिखी।

डा० लोहिया की निगाह चौकस थी और वे छोटे से छोटे व्यक्ति का भी यथेष्ट सम्मान करते थे। उनकी असामयिक मृत्यु से भारत का एक समाजवादी शिखर धड़ाम हो गया।

भाग तीन

जीवन-दर्शन

(लोक सभा में डा० राममनोहर लोहिया द्वारा दिए गए
कुछ चुनींदा भाषणों से उद्धृत अंश)

19

मंत्रिपरिषद् में अविश्वास प्रस्ताव* (1965)

उपाध्यक्ष महोदय, अचरज होगा कुछ लोगों को कि इस सरकार को आजादी के तीन-चार महीनों तक मेरे ऊपर भी मोह रहा। लेकिन कई कारण हुये जिन में से कि एक का उदाहरण मैं आप को देता हूं। गांधी जी से एक बार मैं अन्न सेना द्वारा नई जमीन को तोड़ कर खेती करने के लायक बनाने के बारे में बात कर रहा था। इतने में प्रधान मंत्री आये और उन्होंने मुझ से बड़े ताव से पूछा कि कहां हैं यह जमीनें? जिस तरीके से कल यहां पर खाद्य मंत्री ने यही सवाल पूछा था तब मैंने जवाब दिया था कि वह खुद अपनी किताबें देख लें और कम से कम तब भी और अब भी 17-18 करोड़ एकड़ जमीन ऐसी है जिन पर खेती हो सकती है। उस में से 3, 4 करोड़ एकड़ जमीन ऐसी है कि बिना खर्चा किये हुये खेती आसानी से हो सकती है। लेकिन ऐसे रास्ते न जाकर प्रधान मंत्री ने देश को क्या-क्या नुस्खे दिये—गमले में खेती करो, मकान की छत पर खेती करो। यह नुस्खे उन्होंने एक बार नहीं बल्कि कई बार दिये हैं। इसका नतीजा है....

*** *** ***

यहां पर यह मेरा पहला भाषण है इसलिये कृपया आप मुझे कुछ अधिक समय दीजिये।

मैं बतला रहा था कि प्रधान मंत्री जी ने क्या-क्या नुस्खे दिये। गमले में खेती, मकान की छत पर खेती जिसका कि नतीजा हुआ कि कुछ अर्से पहले पुरुलिया जिले में फकीर महातो जोकि कई बार अंग्रेजों के खिलाफ लड़ाई लड़ते हुये जेल गये और जिनकी बदौलत हजूर प्रधान मंत्री आज इस गद्दी पर बैठे हुये हैं उन के पिता की मौत बिन खाये हो गयी। इसी तरह राजस्थान के कई इलाकों में और हिसार तहसील में बिना चारे के जानवरों की हालत बिगड़ी। कुछ लोग कहेंगे कि गमले में खेती करना केवल विक्षिप्त दिमाग का सबूत है लेकिन मैं ऐसा नहीं मानता। यह सबूत इस बात का है कि कोई

---

*लोक सभा वाद-विवाद, 21 अगस्त, 1963

आदमी शब्द जोश के द्वारा अपनी जनता को मोह ले। यह बात इतनी हुई है कि कुछ कहना नहीं। सब से पहला आरोप मैं इस सरकार के खिलाफ लगाना चाहता हूं कि यह अज्ञान के आधार पर बांझ और परिणामहीन लफ्फाजी तथा शब्द जोश के ऊपर अपना कामकाज चला रही है। इसका नतीजा यह हुआ है कि कल खाद्य मंत्री पाटिल साहब यहां आकर फरमाते हैं कि खेती की पैदावार बहुत बढ़ी है। क्या बढ़ी है? मैं चाहूंगा कि वे अपने आंकड़े सुधारें। 6 करोड़ टन से 8 करोड़ टन तक पैदावार बढ़ी है लेकिन आबादी उसी समय में कितनी अधिक बढ़ गयी है उसको भी तो उन्हें ध्यान में रखना चाहिये था। उस के हिसाब से कोई सवा सात करोड़ टन होनी चाहिये।

अगर कोई तर्क हो तो बतलाइये आप को जवाब सीधे मिल जायेगा। व्यर्थ का हो हल्ला मत मचाइये। कोई तर्क है क्या आप के पास? कोई तर्क नहीं है न? 6 करोड़ से सवा 7 करोड़ आबादी के हिसाब से बढ़ना चाहिये था। तो क्या बढ़त हुई अनाज की पैदावार में?

इसी के साथ-साथ मैं आपको बतलाना चाहता हूं कि जिस चीन से आज हम लड़ रहे हैं उस के अनाज की पैदावार 24 करोड़ टन है। वह तो खुद 30-40 करोड़ टन की पैदावार का दावा करते हैं लेकिन जैसा कि 24 करोड़ टन की पैदावार उनकी आंकी गई है तो हमारे अनाज की पैदावार 16 करोड़ टन होनी चाहिये। इसके अलावा मैं आपको यह बतला दूं कि हम दुनिया के सब से भूखे देश हैं। 1500-1600 कैलोरीज में रहते हैं। मुझे बड़ी लज्जा होती है जब कोई खाद्य मंत्री यहां आकर अनाज के बारे में इतनी शेखी बघारता है।

इसी के साथ-साथ मैं यह भी आप के सामने अर्ज करूं कि दाम के बारे में बड़ा जिक्र किया जाता है। लेकिन वह कौन से दाम हैं? वे कुछ मंडियों के थोक दाम हैं। फुटकर दामों की यह सरकार कभी चर्चा नहीं करती क्योंकि यह सरकार खाली 50 लाख बड़े लोगों की सरकार है और साढ़े तेंतालीस करोड़ छोटे लोगों का इससे कोई वास्ता नहीं है। इस तरह से देश के अन्दर इस सरकार की असफलता रही है और एक कुदृष्टि सरकार के अन्दर और देश में फैली है। आज कुशल मंत्री कौन हैं? कुशल मंत्री वह नहीं, जो देश की पैदावार बढ़ाये। कुशल मंत्री वह है, जो रूस से मिग विमान लाये या अमरीका से गेहूं लाये। देश की और सरकार की दृष्टि इतनी ज्यादा बिगाड़ी गई है कि हम आंतरिक प्रयत्न की जगह पर बाहरी प्रयत्नों पर ज्यादा विश्वास करने लग गये हैं।

विष्णु महाराज की तो कई बांहें हैं और मैं श्री हिरेण मुकर्जी से कहूंगा कि कहीं वह सहस्त्रबाहु के चपेटे में न आ जायें। न जाने कब कोई बाहु उन पर भी आ सकती है। जहां एक तरफ एक मंत्री अमरीका के साथ चिपटता है, वहां दूसरा मंत्री सोवियत कैम्प के साथ चिपट जाया करता है। यह भी विदेश नीति, बिन लगाव, निरपेक्ष नीति का परिणाम हुआ है। मैं यहां जोर के साथ कहना चाहता हूं कि वर्तमान सरकार की विदेश नीति बिल्कुल ही निरपेक्ष नीति और बिन लगाव की नीति नहीं है, क्योंकि शुरु से ही कोशिश यह की गई है कि कुछ मंत्रियों को लगा दिया जाये सोवियत कैम्प के साथ और कुछ मंत्रियों को लगा दिया जाये अटलांटिक कैम्प के साथ और जादूगर ने सोचा कि वह व्यक्तित्व के चमत्कार से न जाने किसी तराजू के दोनों पलड़ों को ठीक रख लेगा। वह निरपेक्ष नीति रही है। निरपेक्ष नीति तब होती, जब देश विदेशी मसलों पर एक देश की तरह से सोचता। आज हम टूटे हुए हैं। मंत्री मण्डल दो हिस्सों में टूटा हुआ है। लोक सभा विदेशी मामलों में दो हिस्सों में टूटी हुई है। अगर देशी मामलों में टूटती, तो समझ सकता। सारा देश टूटा हुआ है। देश की आत्मा टूट गई है। मैं जानना चाहता हूं कि क्या इतिहास में और कोई भी देश ऐसा रहा है, जो किसी विदेशी प्रश्न पर इतना टूटा है, जितना हिन्दुस्तान।

नतीजा यह हुआ है कि हमारे देश में उन्नति नहीं हुई है। मैं कोई गंवार आंकड़े आप को नहीं दूंगा। हालांकि मैं पढ़ा-लिखा बहुत ज्यादा नहीं हूं, लेकिन फिर भी इन दोस्तों से तो कुछ बात कर ही सकता हूं। जहां तक उन्नति का प्रश्न है, सबसे पहले हम को दो दृष्टियां सामने रखनी होंगी। एक तो यह कि पड़ौसी के मुकाबले हमारी क्या हालत रही और दूसरे, हमारी खुद की भूत के मुकाबले हालत क्या रही।

जहां तक पड़ौसी के मुकाबले में हमारी हालत का सवाल है, घाना अफ्रीका का बिल्कुल कल का देश है, जो अभी आजाद हुआ। वह तीस, चालीस रुपया फ़ी आदमी फ़ी साल उन्नति कर रहा है, बढ़ रहा है। अमरीका, रूस वगैरह 200, 250, 300 रुपये के हिसाब से बढ़ रहे हैं। इनके मुकाबले में हिन्दुस्तान छः सात रुपये के हिसाब से बढ़ रहा है। सैंकड़े बाजी के आंकड़े बड़े खराब होंगे, क्योंकि अमरीका और हिन्दुस्तान दोनों दो, ढाई सैंकड़ा के हिसाब से बढ़ रहे हैं और इस सरकार की चाल यह रहती है कि सैंकड़ा बता दे—ढाई सैंकड़ा, लेकिन वह ढाई सैंकड़ा अमरीका के लिए 300 रुपये है और हिन्दुस्तान के लिए रहता है 7 रुपये। यह मैं उन्नति की बात कह रहा हूं। वर्तमान राष्ट्रीय आमदनी वगैरह की नहीं।

कम से कम पहले दस बरस तक अपने खुद के भूत के मुकाबले में हम थोड़ा बहुत आगे रेंग रहे थे। उसी से कुछ लोगों को यह कहने का मौका मिल जाता था कि हम

बढ़े। हम थोड़ा रेंग रहे थे, चाहे कोई कारखाना बन गया सिंदरी का, चाहे कोई चीज हो गई। लेकिन अब हालत यह है कि हम लोग पैदावार बढ़ा रहे हैं डेढ सैंकड़ा के हिसाब से और आबादी हमारी बढ़ रही है, दो सवा दो, ढाई सैंकड़ा के हिसाब से। हम अपने भूत के हिसाब के भी बंध गए हैं। जिस तरह बंधा हुआ पानी सड़ जाता है, उसी तरह से हमारा आर्थिक जीवन भी बंधा चला जा रहा है।

अब मैं इसको एक दूसरे ढंग से भी बताना चाहता हूं। 1948 में कोई 8,500 करोड़ रुपए हमारी राष्ट्रीय आमदनी थी, जो अब उन्हीं दरों के हिसाब से करीब 13,500 करोड़ हुई है। अब 5,000 करोड़ रुपये के हिसाब से हमारी जो आमदनी बढ़ी है वह गई कहां है, उसके भी आंकड़े मैं आप को बताता हूं। 1948 में 1,000 करोड़ रुपये खर्च होता था सरकार के द्वारा, जो अब बढ़ कर 5,500 करोड़ रुपये हो गया है। सरकारी नौकर, जो पहले आबादी का डेढ़ सैंकड़ा था, अब बढ़ कर करीब तीन सैंकड़ा हो गया है। अगर ये सरकारी नौकर पैदावार बढ़ाऊ होता, तो मुझे इस में कोई ऐतराज़ न होता, लेकिन यह कलम-घिसू सरकारी नौकर है, जो कागज भरा करता है, जिससे पैदावार नहीं बढ़ पाती है, लेकिन जिससे खाली दिखाने के लिए चमत्कार सा हो जाता है कि लोग काम-धाम कर रहे हैं।

इस बारे में आप से एक तफ़सील की बात कहे देता हूं कि योजना का एक तरीका है कि बरस के आखिर में कितना पैसा खर्च किया गया। इस से योजना कूती जाती है। आदमियों के हिसाब से नहीं, चीजों के हिसाब से नहीं, पैसा कितना ख़र्च किया गया, इस हिसाब से कूती जाती है। इस का लाज़मी नतीजा यह होता है कि जब बरस खत्म होने लगता है, पैसा बच जाता है, तो सरकारी दफ़्तर और महकमे उस पैसे को अंधा धुंध ख़र्च करने लगते हैं और अपने रिश्तेदारों और जात-बिरादरी वालों को नौकरी में रख लेते हैं। कहा जाता है कि विकास-ख़र्च हुआ, लेकिन वास्तव में वह खर्च हो जाता है अपने खानदान को बढ़ाने के लिए।

उसी तरह से मुझे एक सवाल पूछना है, या जवाब देना है, कि आखिर यह सब हुआ क्यों। बहुत सोचा मैंने। इसका एक ही जवाब मुझे मिला और वह यह है कि जब अंग्रेज यहां से गए, तो सरकार के सामने प्रश्न था कि कैसा राज्य चलायें और बजाये इसके कि वे अंग्रेजों से भिन्न एक राज्य चलाते, उन्होंने सोचा कि शायद उनका बड़प्पन इसी में होगा कि उनका जैसा बढ़िया राज्य हम भी चला सकते हैं। नतीजा यह निकला कि बजाये इसके कि वे बड़े लोगों को ऊंची जगह से पकड़ कर नीचे लाते और सारी जनता के स्तर को उठाते, मंत्रियों ने यह सोचा कि हम भी छलांग मार कर बड़े के साथ बैठ जायेंगे।

जैसा कि हिन्दुस्तान के योजना कमीशन के एक सदस्य ने कहा है, इसका नतीजा यह

हुआ है कि 60 सैकड़ा कुटुम्ब 25 रुपये महीना पर निर्वाह करते हैं, यानी 27 करोड़ आदमी तीन आने रोज़ के खर्च पर जिन्दगी निर्वाह करते हैं। मैं चाहता हूं कि यह हमेशा याद रखा जाये कि 27 करोड़ आदमी तीन आने रोज़ के खर्च पर आज जिन्दगी चला रहे हैं, जबकि प्रधान मंत्री के कुत्ते पर तीन रुपये रोज़ खर्च करना पड़ता है। यह है आज हमारे हिन्दुस्तान की हालत। ज्यादा होगा, लेकिन मैं जान-बूझकर कर कम कह रहा हूं, ताकि कोई मेरी जीभ न पकड़े।

इसका नतीजा यह हुआ है कि हमारे देश में ग़ैर-बराबरी जितनी थी, उससे ज्यादा बढ़ती चली जा रही है। मैं खाली यही बताऊं कि हमारे देश में खेत-मजदूर 12 आने रोज़ कमाता है, क, ख, ग या अलिफ़ बे पे पढ़ाने वाला अध्यापक दो रुपये रोज़ कमाता है, हिन्दुस्तान का एक व्यापारी खानदान है, जो तीन लाख रुपये रोज़ कमाता है, जो सबसे अमीर व्यक्ति है हिन्दुस्तान का वह तीस हजार रुपये रोज़ कमाता है और जो सरकार में सबसे बड़ा आदमी है, यानी प्रधान मंत्री उसके ऊपर पच्चीस, तीस हजार रुपये रोज़ खर्च होते हैं।

*** *** ***

....लोग समझते हैं कि मैं प्रधान मंत्री से कोई द्वेष करता हूं। यह बिल्कुल झूठ बात है। मेरा उनसे कोई निजी द्वेष नहीं है। मैं माफ़ कर देता, मैं सोचता कि उम्र बड़ी है, चलो, कुछ तकाजे हुए हैं, लेकिन पचास लाख बड़े लोगों ने उनकी नकल करते हुए आज हिन्दुस्तान को बर्बाद कर दिया है। पचास लाख बड़े लोग डेढ़ खरब रुपये की राष्ट्रीय आमदनी में से पचास अरब रुपये हज्म कर लेते हैं और साढ़े 43 करोड़ लोगों के लिए कुल सौ अरब रुपये बच जाते हैं। इस सबब से पूंजीकरण नहीं हो पाता। क्या कारण है कि हमारा पूंजीकरण इतना खराब है, खेती खराब है, उद्योग धंधे खराब हैं, सब खराब है, हम आगे नहीं बढ़ पा रहे हैं? चीन ने हमको आ दबोचा है, इसलिए नहीं कि हमारी पल्टन खराब थी—वह भी एक सबब था—बल्कि इसलिए हमारा आर्थिक जीवन बिल्कुल सड़ चुका है और चीन को एक मौका मिल गया हम पर हमला करने का।

इस सम्बन्ध में मैं एक चीज़ जरूर कह देना चाहता हूं इस योजना के बारे में। आदमी और चीज़ों का जो रिश्ता होना चाहिये वह इस योजना ने बिगाड़ दिया है। हम गाय, बकरी, बैल नहीं हैं, बोली के लोग हैं। हमारी बोली नहीं रही। अंग्रेज़ी के ज़रिये इस योजना को चलाने की कोशिश की गई है। अगर गाय, बैल, बकरी का कोई खेत होता तब फिर बोली के बिना काम चल सकता था। और मैं अर्ज़ करूं कि मेरा मतलब हिन्दी से बिल्कुल नहीं है, मातृभाषा से है। जिस किसी की जो मातृभाषा हो, उसके ज़रिये कामकाज चले तो पैदावार बढ़ सकती है। इस संबंध में मैं द्रविड़ मुनेत्र कषगम की स्तुति

करना चाहता हूं कि उन्होंने बहुभाषी केन्द्र अथवा दो भाषी केन्द्र के सिद्धान्त को अपनाया है और अंग्रेज़ी को वे हटाना चाहते हैं। प्रधान मंत्री जी से मैं अर्ज़ करना चाहता हूं कि वह द्र० मु० क० के साथ बैठ करके इस अंग्रेज़ी को जल्दी से जल्दी खत्म करने का रास्ता निकालें।

इस संबंध में मैं यह भी कहना चाहता हूं कि संविधान की 344वीं धारा को हम लोग रोज़ यहां तोड़ रहे हैं। उस में लिखा है कि अंग्रेज़ी का घटता स्थान होना चाहिये, हिन्दी का बढ़ता स्थान होना चाहिये। मैं स्वयं हिन्दी की जगह मातृभाषा कहूंगा, मातृभाषा का बढ़ता स्थान होना चाहिये। इस लोक सभा में मैं नहीं चाहता कि कोई भी भाषण अंग्रेजी में हो, सब अपनी मातृभाषा में बोलें और अगर विज्ञान भवन में कानफून से सब लोग तर्जुमा सुन लेते हैं तो यहां पर क्यों नहीं कानफून से सब तर्जुमा सुना जा सकता है?

ऐसी चीज़ जब उठती है तो मैं आप से कुछ व्यापार और राजनीति के सम्बन्ध में भी कहूंगा। वैसे श्री द्विवेदी ताकतवर आदमी हैं, इनको मेरी रक्षा की जरूरत नहीं है। लेकिन मैं दंग रह गया जो सवाल भ्रष्टाचार के बारे में उठा। वह क्या है? क्या राजनीति और व्यापार का ऐसा सम्बन्ध रहेगा कि राजनीति के जरिये व्यापार फायदा उठाये और व्यापार के जरिए राजनीति फायदा उठाये....? यह सवाल है जिसका जवाब हमें देना है। असली सवाल तो यह है कि व्यापार और राजनीति का रिश्ता हिन्दुस्तान में इतना बिगड़ गया है कि वे एक ही कुटुम्ब के दो अंग हो जाते हैं और ऐसी जोड़ियां मशहूर हैं अपने देश में, बाप बेटों की जोड़ी, मियां बीवी की जोड़ी आदि। अगर आप चाहें तो बाप बेटों की जोड़ी के बारे में मैं कुछ कहूं...

*** *** ***

...उपाध्यक्ष महोदय, बाप बेटों की जोड़ी के बारे में मैं कुछ कहना चाहता हूं अगर आप चाहें तो मैं सदन के सामने ऐसे कागज़ात रख सकता हूं जिन से यह साबित होगा कि बाप तो एक सूबे की मोटर यातायात को चलाता है और बेटा उसी को अपनी मोटरें बसें वगैरह बेचा करता है। यह एक ऐसा काम है जो बिल्कुल ही भ्रष्टाचार वाला है। एक ही कुटुम्ब के दो अंगों के काम का बंटवारा कर लिया, एक अंग बन जाता है मंत्री और दूसरा अंग बन जाता है व्यापारी।

इसके अलावा एक और सिलसिला भी चला है। कुछ व्यापारी कंपनिया चाहे चन्दे के रूप में और चाहे मंत्रियों के लड़कों को ऊंची-ऊंची नौकरियां दे कर के अपने काम-काज को चलाया करती हैं, जैसे बर्ड कम्पनी वाला हिसाब है। बिल्कुल साफ है। मैं इस संबंध में यह भी कहना चाहता हूं कि अब तक यह कहा गया है कि अंग्रेज़ लोग बड़े अच्छे होते हैं व्यापार में, लेकिन अब यह साबित हो गया है कि कम से कम हिन्दुस्तान में

अंग्रेज़ लोग बहुत गन्दा व्यापार चलाया करते थे और एक पानी के जहाज से जिसमें वे क्रोम ले जाया करते थे अस्सी नब्बे लाख रुपया कमाया करते थे। मुझमें इतनी ताकत नहीं है। लेकिन त्यागी जी के एक दोस्त थे। मुझे अफसोस है कि यहां नहीं है और चाहता हूं कि वह यहां होते क्योंकि सरकारी पार्टी के वह आदमी थे। एक मसला उठा सकता हूं और वह मसला कानपुर की उस कम्पनी का है जिसमें एक मंत्री लुढ़का। उसी कम्पनी में कुछ ऐसी बातें हो गई हैं, जिसमें न जाने और कितने लोग लुढ़क सकते हैं।

इन सब का नतीजा हुआ है कि दामों की जबर्दस्त लूट चल रही है। कोई भी कारखाने की ज़रूरी चीज़ को आप लें तो आपको पता चलेगा कि औसत लागत खर्चा 40 सैंकड़ा होता है और सरकारी कर 30 सैंकड़ा और कम्पनी का मुनाफा 20 सैंकड़ा और फिजूली दस सैंकड़ा। चाहे वह चीनी हो या मिटी का तेल हो या कोई भी चीज हो। खाली तपेदिक की बीमारी के खिलाफ जो सुई होती है उसका मैं ज़िक्र करता हूं। स्ट्रैप्टोमाइसीन की सुई सरकारी कारखाने में बनती है। दो आने के खर्च में तैयार होती है लेकिन बाजार में वह दो आने के बजाय बारह-चौदह आने में बिक रही है। तपेदिक के फेफड़े से लूट करते हुए सरकार को शर्म नहीं आती है? जरूरी चीज़ों के दाम में इतनी ज़बर्दस्त लूट कम्पनियों और सरकार की चल रही है। लेकिन मैं एक बात इस वक्त कह देना चाहता हूं। यह सही है कि हममें से कुछ हैं जो सिर्फ कम्पनियों की लूट बन्द करना चाहते हैं, कुछ हैं, जो सिर्फ सरकार की लूट को बन्द करना चाहते हैं लेकिन कम से कम मैं उनमें से हूं जो दोनों लूटों को बन्द करवाना चाहते हैं।

रूस को बहुत कुछ चिन्ता हम लोगों के बारे में हुई है और वे कह रहे हैं कि हिन्दुस्तान के कुछ प्रतिक्रियावादियों ने कोशिश की है कि इस सरकार को हटायें। मैं एक बात बता दूं कि रूस है शिखर वामपंथी, चीन है दखलअंदाजी वाला राक्षस और हिन्दुस्तान की सरकार? प्रधान मंत्री साहब वामपंथी कहते हैं अपने को। या दिखाऊ वामपंथी हैं उन के मुंह में वामपंथ और समाजवाद रहता है लेकिन उन के हाथों में पूंजीवाद भी नहीं, सामंतवाद रहता है। हिन्दुस्तान में एक नकली और घूसखोर वामपंथ को चलाना चाहते हैं। मुझ जैसे आदमी ने उस पर फैसला दिया है। रूस चाहे जब हम को गलत समझे लेकिन हिन्दुस्तान में हम जनता का तन्दुरुस्त वामपंथ चला करके यहां जनता की क्रांति करेंगे।

नीति की तरफ जब हम जाते हैं तो मैं आपका ध्यान चार बंदियों की तरफ खींचना चाहता हूं, शराब-बन्दी, वैश्या-बन्दी, चक-बन्दी और अब जो बन्दी चौथी आई है, सोना-बन्दी। हमेशा से ही अब तक मैं शराब-बन्दी के हक में रहा हूं लेकिन आज नहीं हूं। ऐसा कोई न समझे कि मुझे अब शराब की आदत पड़ गई है। लेकिन अब मैं

शराब-बन्दी के हक में नहीं हूं क्योंकि मैंने देख लिया कि बारह-तेरह वर्ष के लगातार जुल्म, अत्याचार, पुलिस के डंडे के बाद एक प्रान्त जिसने शराब-बन्दी चलाई थी, चीन की लड़ाई के शुरू होते ही उसने शराब-बन्दी खत्म कर दी। मुझे ऐसा लगता है कि यह सरकार उस बच्चे की तरह है जो झूले में बैठकर के पेंगे मारता है, कभी इधर पेंगे और कभी उधर पेंगे मारता है। विपरीत दिशा में जाती हुई, कभी शराब-बंदी बारह-तेरह बरस तक और कभी फिर शराब खुली, उससे तो मुझे इस वक्त यह भी डर लग रहा है कि सोनाबन्दी का भी वही हाल होगा। इतनी ज़ोर जर्बदस्ती, इतना जुल्म और नतीजा कुछ नहीं निकल पाता क्योंकि जो काम खुल कर होता था वह काम छिपकर होता है। नए धंधे अलबत्ता खुल जाते हैं, नए रोज़गार अलबत्ता खुल जाते हैं, पुलिस वगैरह के।

इसका सबब क्या है? सबसे बड़ा सबब है कि सरकार के इरादे बड़े कच्चे हैं, किसी चीज़ पर यह जम नहीं पाती है। शराब-बन्दी भी अगर करती है तो जम करके शराब-बन्दी को करें तो शायद कुछ नतीजे हासिल हों, लेकिन ज़रा सा धक्का लगा, इरादा छोड़ा, शराब-बन्दी खत्म कर दी और अब जरा सा धक्का लगेगा तो सोनाबन्दी भी छूट जाएगी। कल या परसों जब वित्त मंत्री को मैंने यह कहते हुए सुना कि सोने का तस्कर व्यापार अब बन्द हो चला है तो मुझे बहुत आश्चर्य हुआ कि इस तरह का जवाब वह दे सकते हैं। पता नहीं कैसे उन्होंने यह जवाब दे दिया। सोने का तस्कर व्यापार चल रहा है यह भी मैं कह देना चाहता हूं कि सोने के कर्मचारियों ने, सुनारों ने आश्वासन दिया है सरकार को भी और मैं आपके सामने उस आश्वासन को रख देना चाहता हूं कि अगर यहां पर सरकार तैयार है सब तरह की कानूनी कार्रवाई तस्करों के खिलाफ करने को, चाहे वे लोग मंत्रियों के बेटे क्यों न हों, तो सुनार लोग भी तैयार हैं, हिन्दुस्तान से सोने के तस्कर व्यापार को बिल्कुल खत्म करवा देने के लिए। इसके लिए सोनाबन्दी की जरूरत नहीं थी।

एक सरकार की और भी नीति है, भला चाहती है शायद आधुनिकता भी। लेकिन कब्ल-अज़-वक्त भला, कब्ल-अज़-वक्त आधुनिकता। इसी के कारण ऐसी नीति चलती है। नतीजा यह हुआ है कि आज हम एक संकट-कानून के बस में हैं। मैं आपका ध्यान यहीं के एक माननीय सदस्य की तरफ खींचना चाहता हूं, श्री किशन पटनायक। हमारे साथ वे होने चाहिये थे, लेकिन आज वे जेल में बन्द हैं। इसका क्या कारण है? उन्होंने अपने एक भाषण में कहा था कि इस संकट स्थिति में सब को त्याग करना चाहिये, लेकिन सरकारी लोगों के जो बड़े-बड़े बंगले हैं, उनमें और एक कमरा बढ़ाने के लिये जो कोशिश करते हैं, उनको गर्दन पकड़ कर के निकाल देना चाहिये। कुछ लोग कहेंगे गर्दन पकड़कर निकालना या कान पकड़कर निकालना भाषा अच्छी नहीं है, अपनी-अपनी राय है। चर्चिल साहब इस भाषा को बहुत ज्यादा इस्तेमाल करते हैं। जार्ज फर्नेन्डीज चार

महीनों से जेल में पड़े हुए हैं। यह जार्ज फर्नेंडीज है कौन? इतनी उत्कट राष्ट्रीयता का जो आदमी कि उसके सवाल को ले कर खुद प्रधान मंत्री ने मैं समझता हूं बड़े अनुचित ढंग से चीन के प्रधान मंत्री से माफी मांगी थी। उस जार्ज फर्नेंडीज को जेल में रख छोड़ा है। वकील अहमद कैफी, दरभंगा, क्या कसूर उनका? 1,000 मन मिट्टी खोदने के लिये 110 रु० ठेकेदार को दिया जाता है, सबसे बड़ा जो है, मजदूर, उसको जा कर मिलता है 30 रु०। इतनी जबर्दस्त लूट।

इसी तरह से बम्बई की हड़ताल के संबंध में देखिये। इस पर ज्यादा न कह कर इतना मैं बतला दूं कि वही मेहतर लोग, जो हड़ताल किये हुए थे, जुलाई, 1962 में 90 रुपये पाने लगे थे और सितम्बर 1962 के बाद 85 रु० महीना पाने लगे थे। उनकी तनख्वाह घट गई, बढ़ी नहीं। कोई यह कहे कि जीवन का खर्च बम्बई में उसी समय में घट गया तो मैं कहूंगा कि फिर यह आंकड़े किसी विश्वास के लायक नहीं। मैं तो यह भी तजवीज रखना चाहूंगा कि अगर मेहतरों की आमदनी खूब बढ़ा ली जाये और ऊंची जाति वाले मेहतरी करने लगें तो इस से जाति पांत टूटने का कुछ मौका आये, कुछ ब्राह्मण और बनिये भी मेहतरी करें तो अच्छा है।

इसी के साथ-साथ मैं आपसे हिन्दुस्तान के जबर्दस्त अन्दरूनी पतन के साथ-साथ चीन के बारे में कुछ कह देना चाहता हूं। चीन का रहस्य क्या है? क्यों हमने चीन के संबंध में इतनी बुरी नीति अपनाई। मैं इस पर भी सोचता रहा। बरसों सोचता रहा, तब जाकर एक मुझे अन्दरूनी कारण मालूम हुआ, और वह है स्पर्श क्रान्तिकारिता। जब आदमी खुद पीछे देखू होता है, प्रतिगामी होता है देश को आगे बढ़ा नहीं पाता, अपने देश की गैरबराबरी दूर नहीं कर पाता, अगर क्रान्ति ला नहीं पाता तो सोचता है कि जो मशहूर है क्रान्तिकारिता के हिसाब से उसे छू लूंगा तो मैं भी थोड़ा बहुत क्रान्तिकारी बन जाऊंगा। मैं बड़ी नम्रता से इस सदन के सामने इस विचार को रखना चाहूंगा क्योंकि मैं सन् 1948 से देख रहा हूं कि चीन के संबंध में हिन्दुस्तान की विदेश नीति बिगड़ी, और खुद प्रधान मंत्री के सिद्धान्तों के हिसाब से बिगड़ी, क्योंकि प्रधान मंत्री ने कहा कि संयुक्त राष्ट्र में हर एक देश को, जो अपनी जमीन का मालिक है, जगह मिलनी चाहिये। दो चीन थे। एक कम्यूनिस्ट चीन और दूसरा चांग काई शेक वाला कुमिटांग चीन। स्पर्श क्रांतिकारिता की लालच से प्रधान मंत्री ने चीन को छुआ। सोचा शायद उससे क्रान्ति अथवा क्रान्तिकारिता बढ़ जायेगी। लेकिन इसके नतीजे बड़े खराब होते हैं। पूरे अफ्रीका और एशिया में एशिया के कम्यूनिज्म के बारे में जो विचार चलने चाहिये थे वे चल नहीं पाये। एशिया का कम्यूनिज्म दखलन्दाज हो गया राक्षसी, हो गया क्योंकि उसका सामना करने वाला पूंजीवाद या सामन्तवाद या नकली घूसखोर, वामपंथ ताकतवर है नहीं यूरोप

में जर्मनी, फ्रांस और अमरीका में यह सब ताकतवर थे, वह रूस का मुकाबला कर सकते थे। चीन का मुकाबला करने की ताकत अभी तक एशिया में नहीं पैदा हुई। मैं समझता हूं कि सन् 1948 में वह मौका खो दिया गया जब हिन्दुस्तान ने चीन के प्रति इस प्रकार की नीति अपनाई। और नीतिहीनता कैसी है? चीन हमारे देश पर हमला किये हुए है। युद्ध है, कहते हैं। लेकिन फिर भी हिन्दुस्तान राष्ट्र संघ में चीन की भरती के लिये पैरवी करता है। कोई लड़का अपनी मां के बलात्कारी के साथ अपनी मां की शादी करवाने की इच्छा करे, यह कैसी बात है?

*** *** ***

....मैं आप को नीतिहीनता के और भी सबूत दूंगा। मगर मेरा पूरा विश्वास है यह सब चीजें देखकर कि अगस्त, 1962 में सरकार को चीनियों से कहीं ज्यादा अच्छी शर्तें मिल सकती थीं बनिस्बत उनके जो आज कोलम्बो प्रस्तावों में हैं। क्योंकि तब तो दिमाग ऊंचा था। मैं आप को याद दिलाता हूं हजरत प्रधान मंत्री का 12 अक्तूबर का बयान और फिर 19 नवम्बर का बयान। 12 नवम्बर को उन्होंने कहा कि चीनियों को खदेड़ बाहर करो, यह शेर की दहाड़ थी और 7 दिन बाद 19 नवम्बर को जब बोमंदीला और वालोंग गिर गये तब रेडियो पर उन्होंने भाषण दिया, घिग्घी बंधी हुई थी, वह बकरी की पुकार थी। मंत्री का मन बड़ा संयमी होना चाहिये। इतनी जल्दी खुश और इतनी जल्दी दुखी उसे नहीं होना चाहिये। अगर मंत्री का, राज करने वालों का मन संयमी नहीं रहता, तो हिन्दुस्तान की विदेश नीति कभी चल नहीं पायेगी।

फिर इसी संबंध में मैं आपका ध्यान हवाई जहाज की तरफ ले जाऊंगा। भारत की एक विद्रोही सन्तान है नागा। उनके ऊपर हवाई जहाज से बम वर्षा की गई। भागते हुए पुर्तगाल वालों पर बमवर्षा की गई। अगर हिन्दुस्तान बिल्कुल बम वर्षा न करता तो मैं इस चीज को समझ पाता। बम वर्षा हिन्दुस्तान कर रहा है। लेकिन बढ़ते हुए चीनियों पर कोई बमवर्षा नहीं हुई। लोग कहते हैं कि हमें विश्व शांति बड़ी प्रिय है। सारी दुनिया जानती है कि विश्व की शांति को अगर कोई तोड़ सकता है तो वह है रूस और अमरीका। इन दो के अलावा कोई तीसरा ऐसा नहीं है जो चाहे भी तो विश्व शांति को तोड़ सके क्योंकि कम्यूनिस्ट चीन के पास वह ताकत नहीं है जो विश्व की शांति को खत्म कर सकती है।

*** *** ***

मैं कोशिश करूंगा कि जल्दी से जल्दी अपनी बात पूरी कर लूं, लेकिन यह अविश्वास प्रस्ताव है। आज यहां पर मैं ही अकेला ऐसा हूं इस सदन में जिसको पहले चार महीनों को छोड़ कर पूरे पन्द्रह वर्ष इस सरकार में विश्वास नहीं रहा है।

*** *** ***

....प्रधान मंत्री से मेरी कोई निजी लड़ाई नहीं है। मेरी सिर्फ नीति की लड़ाई है। मैं इस संबंध में आपसे एक बात कह दूं। जब अमरीका में भारतीय राजदूत से पूछा गया कि तुम्हारी सरकार हवाई जहाज का इस्तेमाल क्यों नहीं करती तब उन्होंने सीधा जवाब दिया कि इसलिये कि हमें डर है कि चीनी लोग बदले में अपने हवाई जहाज इस्तेमाल करेंगे। यह है असली बात। मैंने गप्प सुनी है कि दिल्ली के राजमहलों में अक्तूबर और नवम्बर के महीनों में जब कभी भुर्र भुर्र की ज्यादा आवाज सुनाई पड़ती थी तब लोग पूछते थे "क्या आ गया"।

बहुत बातें चलती हैं हथियारों की। हथियारों से और निरपेक्ष नीति से कोई संबंध नहीं और मैं प्रधान मंत्री को उनकी बहुत पुरानी एक बात याद दिलाना चाहूंगा जब वह ऐसा कहा करते थे कि जब घोड़ा ही नहीं है तो लगाम किस काम की? जब हिन्दुस्तान का राष्ट्र ही नहीं बचा रह पाता तो क्या निरपेक्ष नीति, क्या सापेक्ष नीति और क्या कोई नीति? सब से पहला कर्त्तव्य यह हो जाता है कि जब देश पर हमला हो तो हम उसकी रक्षा करें। अब इस संबंध में आप नीति देखिए। कभी तो प्रधान मंत्री कहते हैं कि हम नाखून से लड़ेंगे, लाठी से लड़ लेंगे, फिर कहते हैं कि हम हथियार खरीद लेंगे। जब चीनी डंडा जोर से पड़ता है तो कहते हैं कि हम उधार और दान ले लेंगे, जब और जोर की मार पड़ती है तो कहते हैं कि अब हम अपनी हवाई ताकत की शिक्षा के लिए शिक्षक भी लें लेंगे। अगर और मामला जाता तो कहते कि हम सिपाही भी ले लेंगे। निजी जीवन में यह सही हो सकता है, मोहब्बत करते वक्त, कि उंगली पकड़ो अब आगे मत बढ़ना, पहुंचा पकड़ो अब आगे मत बढ़ना, कोहनी पकड़ो लेकिन अब आगे मत बढ़ना, मगर राष्ट्र के साथ ऐसा नहीं हो सकता।

अब मैं प्रधान मंत्री की एक और बात बतलाऊं। यहां पर बड़ी चर्चा हुई वाइस आफ अमरीका की। खाली यही कहा न कि मैंने पढ़ा है, लेकिन उसे आप ऐसा ही मानें कि बे-पढ़ा है। यह कोई नई बात नहीं है। केरल में मुस्लिम लीग से जब इन्होंने समझौता किया था, जब उस समझौता क नतीजे निकल रहे थे, कांग्रेस के चुनाव में जीतने की सम्भावना थी, तो कुछ नहीं बोले। जब कांग्रेस जीत गई तो उन्होंने कहा, मैंने मुस्लिम लीग के घोषणापत्र को ठीक तरह से पढ़ा नहीं। मैं हीरेन मुखर्जी साहब से कहूंगा कि याद रखा करो, अपने दोस्त की आदतों को पहचानों कि कैसी हैं।

प्रधान मंत्री होने के पहले की तो मैं नहीं जानता। किसी जमाने में मैं भी थोड़ा बहुत चक्कर में रहा हूं, लेकिन जब से यह प्रधान मंत्री बने हैं तब से साफ बात कहने की आदत तो बिल्कुल ही नहीं रही। हमेशा गोल बात करते हैं। मैंने ऐसा सुना है कि वाइस

आफ अमरीका के समझौते को इन्होंने करीब-करीब हर सफे पर देखा है और टिक लगाई है। लेकिन उसकी भी जरूरत नहीं है। आखिर वाइस आफ अमरीका के समझौते का मतलब क्या था? यही न कि अमरीका भी हिन्दुस्तान की जमीन से अपना भाषण कर दिया करे। इसमें तफसील में जाने की क्या जरूरत थी।

इसी तरह से मैं आपका ध्यान एक और बात की तरफ खीचना चाहता हूं कि चीन पाकिस्तान की सरहद के मामले में सन् 1957 के पहले प्रधान मंत्री को बिल्कुल चिन्ता नहीं थी। जब हिन्दुस्तान के अफसर चीन के अफसरों से बात करने लगे और इतने मोटे-मोटे पोथे छपे थे उनमें कहीं जिक्र नहीं है। लेकिन अब उनकी चीन पाकिस्तान की सरहद की बहुत ज्यादा चिन्ता होने लगी है।

अब आपको लांगजू के बारे में कुछ कहना चाहता हूं। लांगजू घाटी है। उसके बारे में प्रधान मंत्री ने अक्सर कहा है कि विवादग्रस्त इलाका है। सबसे पहले तो मैं आपके जरिये एक यह प्रार्थना करना चाहता हूं कि किसी भी देश के प्रधान मंत्री को अपने देश की भूमि के किसी भी अंग के बारे में, खासतौर से लड़ाई के दिनों में, यह नहीं कहना चाहिए कि यह विवादग्रस्त इलाका है। इस तरह के शब्द किसी अच्छे प्रधान मंत्री के नहीं होते। लांगज़ू के बारे में कई बार इस सदन को प्रधान मंत्री ने गुमराह किया है क्योंकि मैं जानता हूं कि लांगजू दो तीन वर्गमील का इलाका नहीं सैकड़ों वर्गमील का इलाका है। लांगजू में लोग बसते हैं।

प्रधान मंत्री साहब बहस नहीं चलाना जानते, शायद चाहते नहीं क्या मालूम क्या सबब है। दूसरे भी इनकी नक्ल करने लगते हैं। मैं एक देशी मिसाल लेता हूं। हमारी तरफ से कई बार कहा गया कि साढ़े छह् एकड़ से कम खेती वाले किसानों का लगान माफ कर देना चाहिए, जो कि वह खुद कहा करते थे। इस पर इन्होंने फरमाया कि लगान खत्म कर दिया जाएगा तो सरकार कैसे चलेगी। मैं आपको बताऊं कि आज सरकर साढ़े पांच हजार करोड़ रुपया सालाना खर्च कर रही है और साढ़े ६ एकड़ तक की खेती करने वाले किसानों से केवल 70 या 80 करोड़ रुपया आता है। यानी सौ पैसे में से एक पैसा। यदि सरकार की इच्छा हो तो इसको आसानी से छोड़ सकती है। यह 35-40 करोड़ किसान लोग तीन आने रोज में अपना कपड़ा, लत्ता, खाना-पीना, बच्चे की फीस, पढ़ाई-लिखाई सब चलाते हैं। लेकिन उनका लगान खत्म करने को कहा जाता है तो क्या तर्क दिया जाता है।

इसी तरह से तिब्बत की हत्या के संबंध में क्या तर्क दिया है। सब से पहले तो मैं यह कह दूं कि मैं युद्धवादी नहीं हूं। न पहले था न आज हूं। चीन ने हिन्दुस्तान की बहुत-सी जमीन पर कब्जा कर लिया है। मैं नहीं चाहता कि हिन्दुस्तान की पल्टनें जाएं और उस

जमीनं को वापस ले लें, और मैं कहूं भी किस मुंह से। मैं इस सरकार से किस मुंह से कहूं, जो पांच दिन तक लगातार 30 मील की रफ्तार से उलटे मुंह भागी हो। क्या मैं उस सरकार से कहूं कि जाओ उस जमीन को वापस ले लो। मैं सिर्फ यह कह रहा हूं कि उन कारणों को दूर करो जिन कारणों से हम कमजोर रह गए और तिब्बत के मामले में बिल्कुल साफ बात है। 1941 में मुझ जैसे लोगों ने कहा था, करो तिब्बत की रक्षा, और रक्षा से मतलब हमेशा लड़ाई से नहीं होता। मेरा कहना था स्वीकारो मत। जो तिब्बत की शिशु हत्या चीन ने की थी उसे स्वीकार करके प्रधान मंत्री ने बड़ी भूल की। जब मैंने कहा था कि स्वीकारो मत तो उसका यह मतलब नहीं था कि अपनी फौजें भेज दो। उस समय प्रधान मंत्री ने अपने लिए एक तर्क यह दिया कि तिब्बत के मामले के समय हम बहुत कमजोर थे, अब हम ताकतवर हो रहे हैं। यह तर्क बिल्कुल गलत है क्योंकि चीन उस वक्त कमजोर था। इस संबंध में आपको एक आंकड़ा देता हूं। उस वक्त चीन दस लाख टन फौलाद पैदा करता था साल भर में और हम साल भर में 11 लाख टन फौलाद पैदा करते थे। लेकिन आज चीन साल भर में डेढ़ करोड़ टन फौलाद पैदा करता है जब कि हम साल भर में ३५ लाख टन पैदा कर पा रहे हैं। यहां आंकड़े बहुत दिए जाते हैं।

*** *** ***

....उस वक्त आपसी गृह युद्ध के कारण जो कि कुओमिंटुंग और कम्युनिस्टों के बीच चल रहा था चीन की स्थिति कमजोर थी और अगर उस वक्त तिब्बत के मामले में हिन्दुस्तान ने स्वीकारोक्ति न की होती तो नतीजा निकल सकता था।

यहां कूटनीति का बहुत ज़िक्र किया जाता है। कहा जाता है कि हम लड़ाई के मैदान में हार गए लेकिन कूटनीति में हम लोग जीत गए। अगर कूटनीति से ही नतीजा निकालना था तो उस कूटनीति को सन् 1962 में दिखलाना चाहिए था और चीन के साथ समझौता करके इससे ज्यादा अच्छी शर्तें ले लेनी चाहिए थीं।

प्रधान मंत्री को पछतावा नहीं होता जितनी भूलें हों—

*** *** ***

जितना भी देश गिरता चला जाता है, लेकिन फिर भी यह पूरी ताकत के साथ कहा करते हैं कि देश तो बढ़ रहा है। मेरा सरकार से कोई सरोकार नहीं रहा। अंग्रेजों ने आठ बार मुझे जेल में रखा, तो प्रधान मंत्री ने भी मुझे दस बार जेल में रखा। फिर भी मेरे मन में ग्लानि होती है, मैं शर्म खाता हूं कि आज हिन्दुस्तान कमजोर रह गया और हम उसके लिए कुछ न कर पाए। लेकिन प्रधान मंत्री को, कोई शर्म नहीं लगती कि हिन्दुस्तान इतना

कमजोर रह गया, और हम चीनियों के मुकाबले में नहीं अड़ पाये और हमारे 27 करोड़ आदमी तीन आना रोज पर अपनी जिन्दगी बसर कर रहे हैं।

प्रधान मंत्री हमेशा अपनी गलतियां मानते हैं, बार बार कहते हैं कि हम से गलतियां हुई लेकिन कोई एक गलती नहीं मानते क्योंकि उसको मानें तो उसको सुधारने की जिम्मेदारी आती है। वह कोई एक गलती नहीं मानते।

फिर कहा जाता है कि चीन ने हमको धोखा दिया। यह बात बिल्कुल गलत है। चीन ने शुरू से आखिर तक बिल्कुल साफ बताया है कि जिस पर इतने पोथे लिखे गये हैं। जो हुआ उसमें चीन ने कोई धोखा नहीं दिया। लेकिन अगर थोड़ी देर के लिये मान लिया जाए कि यह तर्क सही है और चीन ने धोखा दिया, तो जो मंत्री इस तर्क को इस्तेमाल करता है उसको क्या कहा जाए। आज से ढाई हजार साल पहले चाणक्य कह गया है कि जो राजा अपने पक्ष में यह बात कहता है कि विपक्ष की तरफ से, दुश्मन की तरफ से उसको धोखा हो गया, उस राजा को एक क्षण में हटा कर बाहर करो।

अब मैं कुछ ऐसी चीज कहूंगा जिस पर मेरे कुछ पुराने दोस्त तिलमिला उठेंगे। लेकिन मैं यह कह देना चाहता हूं कि हम सब इसके शिकार हैं, और वह है जाति प्रथा। डेढ़ हजार वर्ष से यह देश रोगी है और 15 वर्ष से इसको कोढ़ हो रहा है। डेढ़ हजार वर्ष का रोग और 15 वर्ष का कोढ़ है। इस जाति प्रथा के कारण अवसर और योग्यता की निरन्तर, लगातार, सिकुड़न होती रहती है। जिन योग्य लोगों को मौका मिलता है वे बहुत कम तादाद में होते हैं। यह सही है मेरे बाप के मेरे सिवा और कोई लड़का या लड़की नहीं थे। मैं अपने लिए कोई बड़ी चीज नहीं कह रहा हूं। शायद यही एक अकस्मात बात हो गई जिसके सबब से मेरा कोई लगाव बुझाव नहीं है।

*** *** ***

हो सकता है कि मैं भी अगर कहीं किसी जगह पर पहुंच जाता तो मेरी जाति बिरादरी के लोग मेरी तरफ खिंच जाते। और अभी भी मैंने देखा है कि कुछ लोग आ जाते हैं और कहते हैं कि हम तुम्हारे भाई हैं या बहिन हैं। मैं इस को बहुत खराब समझता हूं। लेकिन मैं यह कहना चाहता हूं कि इस जाति परस्ती और कुनवा परस्ती का अगर कोई सरदार है तो इस देश में तो यह प्रधान मंत्री हैं। उन के जितने भी महकमे हैं आप देख लीजिए केन्द्रीय सरकार के सब महकमों में उन की जाति बिरादरी के और उन के रिश्तेदार लोग भरे हुए हैं। मैं उनका नाम यहां नहीं लूंगा। खाली एक का लेता हूं। वह सेनापति जिसके कि बारे में उन्होंने ग़लत बयानी की थी कि उसने लड़ाई के मैदान में देखी थी जो कि बिल्कुल ग़लत बात है। कभी देखी नहीं थी। उस अफसर को उर्वसीअं का अफसर बना कर भेजा। मैंने कुछ दिनों पहले प्रधान मंत्री से सवाल किया कि क्या दिल्ली से कोई

ऐसा सरकुलर भेजा गया है कि जब कोई जगह गिरने वाली हो तो उसको खाली कर दो। उसका अर्थ क्या लगाया गया? जब कोई चीज़ गिरने वाली हो तो खाली कर दो। बोमडीला में तो गोली वगैरह चली नहीं फिर भी लोगों ने फैसला कर लिया कि यह तो खाली कर देना चाहिए। पतन और खाली करना इन दोनों के सम्बन्ध में जो कुछ हुआ वह किसी से छिपा नहीं है। शब्दों को लेकर एक ग़लतफहमी हो सकती है लेकिन मैं यह बतला दूं कि उस वक्त रक्षा मंत्री मेनन साहब नहीं थे रक्षा मंत्री खुद प्रधान मंत्री थे।

बहुत ज्यादा मामले बिगड़ जाया करते हैं। इतने बिगड़ जाते हैं कि पिता बन जाता है सरकार का मालिक और पुत्री बन जाती है जनता की मालिक। योग्यता की अवसर की इतनी जबरदस्त सिकुड़न होती है। मैं आप से बहुत नम्र निवेदन करना चाहता हूं कि हिन्दुस्तान की औरतें हरिजन, आदिवासी, पिछड़ी जातियां धार्मिक भी अल्पसंख्यकों की हैं और शुद्र यह जो पांच बड़े वर्ग हैं जिनकी कि आबादी कुल मिला कर 90 सैकड़ा होती है उनको जब तक आप विशेष अवसर नहीं देंगे तब तक देश का गंदा पानी साफ नहीं हो सकता है। समान अवसर के सिद्धान्त को लेकर सारे लोग चल रहे हैं, रूस और फ्रांस वाले सिद्धान्त, लेकिन मैं अर्ज करना चाहता हूं कि विशेष अवसर के सिद्धान्त को हमें अपनाना पड़ेगा। योग्यता और अवसर इस समय कुछ ही लोगों में सिकुड़ कर रह गये हैं।

उपाध्यक्ष महोदय, मैं अपने मन में एक टीस अनुभव करता हूं और वह यह कि मैं चुनावों वगैरह के चक्कर में पड़ गया क्योंकि मेरे पास साधन नहीं हैं, पैसा नहीं है फिर भी सैकड़ों लोग आते हैं कि हमारा फलांना काम कर दो हमारा ढिमाका काम कर दो। सिर्फ राज्य दल के लिए नहीं कह रहा हूं बल्कि हम सब इस चक्की में पिसे जा रहे हैं। व्यक्तिगत मामलों को लेकर हम लोग इतने फंस जाते हैं कि सार्वजनिक नीति के मामलों के ऊपर पूरा ध्यान नहीं दे पाते। इस में कोई शक़ नहीं कि हम सबको मिल कर इस चीज़ का हल निकालना पड़ेगा।

इसी तरीके से मैं आपका ध्यान दिलाऊं इस बात पर कि अक्तूबर नवम्बर से देश में बड़ा बदलाव हुआ है। यहां पर बहुत आंकड़े दिये गये। 1962 का एक तर्क मैं रखना चाहता हूं। सन् 62 के शुरू में शायद स्थिति रही हो कि कांग्रेस सरकार को देश की जनता का समर्थन रहा हो लेकिन अक्तूबर-नवम्बर 1962 के बाद से यह स्थिति नहीं रह गई है। हिन्दुस्तान की जनता का समर्थन कांग्रेस सरकार को नहीं है यह मैं नवम्बर 62 के बाद की बात कहना चाहता हूं। इसलिये मैं यह मांग करता हूं कि इस बदली हुई परिस्थिति में इस सरकार को इस्तीफा दे कर नये चुनाव कराने चाहिए। मैं आम चुनाव की मांग करता हूं।

यही सही है कि यहां पर कहा गया कि विरोध बड़ा टूटा हुआ है। जरूर टूटा हुआ है हालांकि कुछ ऐसे हैं जो शायद फिर से जुड़ सकते हैं, लेकिन यह जरूर है कि आज वह टूटा हुआ है। लेकिन ये हजरत खुद अपने में कितने टूटे हुए हैं? राज्यों के मंत्रिमंडल टूटे हुए हैं। केन्द्रीय मंत्री मंडल टूटा हुआ है। सरकारी बैंचों पर बैठने वालों की बात का तो कहना ही क्या? यहां मेरे खिलाफ और भले ही वे सरकार के समर्थन में कितना ही थपथपाते हों लेकिन रात में पहुंच कर घर में जा कर यह कहेंगे कि भाई वाकई लोहिया खूब बोला, जो हमारे मन की बात है वह उसने साफ़ तौर से रख दी लोहिया ने हमारे मन की बात कह दी है यह वह यहां से बाहर निकल कर कहेंगे। मैं इस टूटे हुए विरोधी पक्ष के बारे में केवल इतना ही कहूंगा कि अभी मसाला गीला है, सांचा बना नहीं, लेकिन सांचा बन रहा है। हो सकता है कि अगले दो, तीन साल में ऐसा कोई सांचा बन जाय कि एक दल तो हो 15 अगस्त 1947 की सीमा रखने वालों का और दूसरा दल हो 8 सितम्बर, 1962 की सीमा रखने वालों का।

*** *** ***

....हो सकता है कि इस 15 अगस्त, 1947 की सीमा मानने वालों में भी विरोध हो। जैसा कि मैंने शुरू में कहा था कि इनमें वे लोग हैं जो कि कम्पनी लूट और सरकार लूट दोनों के खिलाफ हैं, तो कुछ इसमें ऐसे लोग हैं जो सिर्फ सरकारी लूट के खिलाफ हैं और कम्पनी लूट के खिलाफ नहीं हैं। लेकिन मेरी यह आशा है कि जब सांचा पूरी तरह से बन जायेगा तो हमारे जैसे लोग इस सांचे में बहुसंख्या में रहेंगे और तब मैं आशा करूंगा कि श्री हीरेन मुकर्जी तो शायद इस सांचे में न आयें लेकिन गोपालन साहब इसमें जरूर चले आयेंगे।

*** *** ***

....एक तरीका यह है कि हम लोग हिन्दुस्तान में आम चुनाव करवा कर जनता की दृष्टि का अंदाजा लगा लें क्योंकि मैं फिर जोर से कहना चाहता हूं कि यह सरकार राष्ट्रीय शर्म की सरकार है और जनता का इस सरकार को समर्थन प्राप्त नहीं है।

*** *** ***

....प्रधान मंत्री ने एक बार एक जलूस के बारे में कहा था कि वह ढाई सौ आदमियों की हुल्लड़बाजी से इस्तीफा नहीं देंगे कलकत्ते में 250 आदमियों ने प्रदर्शन किया था। उस प्रदर्शन और जलूस को उन्होंने हुल्लड़बाजी कहा था। ....लेकिन 20-30 हजार की हुल्लड़बाजी हो गई तब तो इस्तीफा दे देंगे न? मैं कहना चाहता हूं ज़ोर से कि जब सरकार अपने समर्थन में प्रदर्शन निकालना शुरू कर देती है, जिस सरकार को पलटन, सेना, पैसा, 5 हजार, 500 करोड़ रुपये साल का जिसको खर्चा करने का मौका मिलता

है, जब वह भी अपने पक्ष में प्रदर्शन निकालना शुरू कर दे तब समझना चाहिए कि वह सरकार खुद एक हुल्लड़बाजी सरकार है।

मैं हुल्लड़बाजी पसन्द नहीं करता। मैं शांति पसन्द करता हूं। शांति के आधार पर विरोध चलाना चाहता हूं लेकिन मैं आप से अर्ज करूंगा कि पिछले 5-7 दिन में अपने को मैंने दबाया है और जब तक बन सकेगा आखिर तक अपने को मैं दबाता रहूंगा लेकिन हुआ क्या था जिस चीज़ के लिए मुझ को यहां पर लोगों ने न जाने क्या क्या कह डाला? यह कहा कि इस की शिक्षा नहीं है। इशारे से यह भी कहा गया कि इसके न जाने किसी तरह के मां-बाप रहे हैं। एक हजरत ने ब्रीडिंग का शब्द इस्तेमाल किया था...

*** *** ***

....उपाध्यक्ष महोदय, मैं आपका ध्यान इस बात पर आकर्षित करूंगा कि मैंने प्रधान मंत्री से प्रश्न पूछा था, इस दिल्ली से भेजे हुए सरकुलर के बारे में प्रश्न पूछा था कि किसी जगह का पतन हो रहा है तब उसे खाली करेंगे या जैसा कि उसका अर्थ लगा कर खाली किया गया वह अपने इलाके खाली कर दिये गये, वैसा उसका अर्थ है? क्या सिर्फ पलटन की ही तैयारी हो रही है या मन की भी तैयारी हो रही है? प्रधान मंत्री ने मेरे उस सवाल का जवाब देने के बदले कहा कि यह सब बहाना है। यह क्या हो रहा है? तरह तरह की बातें कह दीं। मैं निवेदन करना चाहता हूं कि प्रधान मंत्री बहुत रोब से, बहुत हिम्मत से और घमंड से बोला करते हैं और व्यंग कसा करते हैं। उसी पर मैं ने कहा था कि प्रधान मंत्री नौकर हैं सदन मालिक हैं। एक ऐसा शब्द, बढ़िया शब्द, जिस पर कि हर एक को खुश होना चाहिए था लेकिन उसके बजाय मेरे ऊपर न जाने किन किन लोगों ने क्या क्या कह डाला। मैं आपसे अर्ज़ कर देता हूं कि मैं कभी भी कोई निजी झगड़ा किसी से नहीं चलाना चाहता, मैंने चलाया नहीं है, चलाऊंगा भी नहीं, जब तक कि मैं मजबूर न कर दिया जाऊंगा। वह अलग बात है। मैंने निजी झगड़ा नहीं किया। अगर कहीं किसी अदालत में जायें, तो यह साबित हो जाये कि मैंने निजी झगड़ा नहीं किया, बल्कि हमेशा प्रधान मंत्री ने मुझे गालियां दीं, कभी गुंडा कहा है, कभी झूठा कहा है, कभी बदतमीज कहा है। यह सही है कि एक ज़माना था जब मैं जवाब दे दिया करता था उन के गुस्से का गुस्से से, लेकिन आज वह भी नहीं करता हूं। रहम आता है। मैं यह कहूंगा कि कुछ देर के लिए मन में होता है कि जब गुंडा कहते हैं, तो उन को गुंडाई कर के दिखलाया जाये।

*** *** ***

यह सही है कि यह चेहरा ऐसा था कि कभी हम ने भी मुहब्बत की थी। हो

सकता है कि बदगुमानी रह जाये। अब मैं मुहब्बत बिल्कुल नहीं करता हूं, यह बात मैं अच्छी तरह से कह देना चाहता हूं, ताकि कहीं ग़लतफहमी न रह जाये।

....मेरे एक भाषण में कहा गया है कि मैं सरकार के बारे में पूरा इस्तीफा नहीं चाहता हूं। मैं पहले से साफ़ किये देता हूं। यह उस समय था जब अगर वे अपनी मर्ज़ी से काम करते, तो पूरा इस्तीफ़ा न होता। मैंने चाहा था कि प्रधान मंत्री जी खुद इस्तीफ़ा दे देते, फूलपुर में फिर से चुनाव लड़ लें, जिस से नवम्बर के बाद जो कुछ भी हुआ है, चीजें हुई हैं, वे साफ़ हो जायें। लेकिन आज यह प्रस्ताव इस्तीफ़े वाला नहीं है, यह प्रस्ताव है निकालने वाला।

20

मंत्रिपरिषद् में अविश्वास प्रस्ताव* (1965)

श्री अशोक सेन की बहस सुनते समय सब के मन में एक सवाल उठा होगा कि क्या बात है कि कभी तो यह उड़ीसा के मन्त्रियों को दोषी बनाते हैं और कभी निर्दोष बता देते हैं। इस सरकार की मुसीबत यह है कि वह फैसला नहीं कर पा रही है कि उड़ीसा के मंत्री दोषी हैं अथवा नहीं। जब उससे कहा जाता है कि बड़ी, छोटी चाहे जिस तरह की, एक जांच कमेटी बिठाओ जिसके सामने पूरी तरह से सब तथ्य आ सकें, तब वह जवाब देती है कि किसी को बिना दोषी पाए हुए, निर्दोष को, दोषी कह कैसे सकते हो। और जब उससे कहा जाता है कि इतना बड़ा दोष आपके सामने आया, तो चागला साहब और सभी कह देते हैं कि आखिर हमने उनको दोषी बता तो दिया।

यह सरकार एक बात कहना सीखे। अगर उड़ीसा के ये दोनों मन्त्री निर्दोष हैं, तब तो यह सवाल उठना नहीं चाहिए, तब कहना चाहिए कि जांच वगैरह बिठाने की कोई जरूरत नहीं है। और अगर वे दोषी हैं और उनके दोष की हद पर बहस होती है कि किस हद तक उनका दोष है—आया वे जेल में रखने लायक हैं या नहीं, आया उनकी सम्पत्ति छीनने लायक है या नहीं—तो फिर उस पर जांच बिठाना ज़रूरी हो जाता है। लेकिन मुसीबत श्री अशोक सेन की यह थी कि वह दो रास्तों पर एक साथ चलना चाहते थे। इसीलिए उन के दो पैर अलग अलग दिशाओं में जा रहे थे और यही सिलसिला इस सरकार का हमेशा चलता रहेगा। बहुत उलझन हो चली है। उनके दिमाग में दो परस्पर-विरोधी बातें आ गई हैं। यही सबब है कि जो उनकी तरफ से उठता है, वह सीधा जवाब नहीं दे पाता है कि आखिर जब इतना मान लेते हो कि वे मुख्य मन्त्री बनने लायक नहीं थे, तो फिर जांच क्यों नहीं बिठाते। न ही वह इस बात का जवाब दे पाता है कि जब वे निर्दोष थे, तो उन बेचारों के ऊपर इतना अड़ंगा क्यों लगाया गया।

चागला साहब कल बोले। उन्होंने इस बात पर बहुत कुछ कहा कि गुप्त कागज़ को

*लोक सभा वाद-विवाद, 16 मार्च 1965

कैसे इन लोगों ने सामने रखा। चागला साहब के लिए गांधी जी का कोई बड़ा उदाहरण नहीं होगा, यह मैं मानता हूं। लेकिन 1942 के अगस्त महीने में जब अंग्रेज़ों ने अपने सूचना विभाग से किसी तरीके से एक परिपत्र भेजा, तो गांधी जी ने खुद उस को छपवाया था और उन्होंने कहा था कि जनता के हित के लिए यह ज़रूरी है कि ऐसी चीज़ें छापी जायें। इस पर एक कानून भी मैं चागला साहब को बताए देता हूं। सरकार के पास जो ऐसे कागज़ हैं, जिन को वर्गीकृत कहा जाता है और जिन के इस्तेमाल से परदेशी पल्टन या राज्य को फ़ायदा हो सकता है, उन को निकालना देश के लिए अपराध हो सकता है, लेकिन सरकार के पास जो ऐसे कागज़ हैं, जिनसे जनता का हित होता है और सरकार की चोरी पकड़ी जाती है, उनको निकालना जनता के हित में है और हमेशा करना चाहिए। वर्गीकृत कागज़ों और गैर-वर्गीकृत कागज़ों का यह फ़र्क मत्रियों को हमेशा अपने दिमाग़ में रखना चाहिए।

वैसे मैं चागला साहब के ज़मीर के बारे में कुछ ज्यादा नहीं कहना चाहता हूं। दुनिया को उसके बारे में काफ़ी शक है, क्योंकि आज कल वह ऐसे आदमी के साथ बैठे हुए हैं, जिनके बारे में वह जज की हैसियत से कह चुके हैं कि वह कसम लेकर झूठ बोला करते थे। इसके अलावा अभी हाल ही में उन्होंने एक ऐसा काम किया, जिससे उनके ज़मीर पर शक होता है। कलकत्ता में एक वैज्ञानिक ज्योतीशचन्द राय, को एक तरफ उन्होंने कहा कि एमेरीट्स वैज्ञानिक बन जाओ और दूसरी तरफ उनसे कहा कि तुम अपनी प्रयोगशाला में कदम नहीं रख सकते हो। कहीं ज़रूर दाल में काला रहा होगा। तभी ऐसे दो परस्पर-विरोधी हुक्म उन को निकालने पड़ते हैं।

यह तो पृष्ठभूमि हुई। असली बात यह है कि आखिर यह मामला क्यों उठा करता है और कौन हैं यह पटनायक साहब। एक ज़माना था कि मैं उन को जानता था। 1942 में वह बहादुर थे। उन्होंने खुद मुझे अंग्रेज़ी राज के खिलाफ़ बहुत जोखिम उठाते हुए दिल्ली से कलकत्ता हवाई जहाज़ में उड़ाया था। कहां उनका बिगाड़ हो गया? बिगाड़ किया है उधर और इधर के सभी राजनयिकों ने, जिन्होंने चाहा कि ऐसे लोगों का इस्तेमाल अपने दल के हितों या अपने हितों के लिए कर सकें। और पटनायक जैसे आदमी, जो किसी कारखाने में या हवाई जहाज़ चलाने में या और किसी काम में रहना चाहिए था, उनको राजनीति में लाकर एक अड़ंगा खड़ा कर दिया गया, जिससे आज हिन्दुस्तान को नुकसान हो रहा है।

एक बात आप याद रखें कि इन्हीं पटनायक साहब और इन्हीं मित्रा साहब के बारे में क्या क्या सब लिखा जाता रहा है कि वह बड़े संगठन कुशल हैं, बड़े कार्य-क्षम हैं या बड़ा अच्छा काम कर सकते हैं, इसलिए उनकी ज़रूरत है। उनके बारे में यह भी कहा जाता था कि हिन्दुस्तान में नेतृत्व की एक नई पौध आ रही है—वह आदर्शवादी पौध, वह बोलने वाली, विचारों को सामने रखने वाली पौध तो खत्म हो रही है—अब वह पौध आ रही है, नया नेतृत्व आ रहा है, जो हिन्दुस्तान में कुछ करके दिखायेगा अपनी संगठन-कुशलता और कार्य-क्षमता से। क्या थी वह कार्यकुशलता? चुनाव जीत लेने की ताकत। चुनाव कहां से जीत लेते थे? अपनी पार्टी को पैसा दिला कर। पैसा कहां से दिलाया करते थे, जहां उसका जवाब आप देने आप बैठ जायेंगे, वहां आप को इस नतीजे पर पहुंचना पड़ेगा कि उनकी कार्य-कुशलता में भ्रष्टाचार निहित था, क्योंकि वह हिन्दुस्तान में ऐसी राजनीति को चलाना चाहते थे, जिसके द्वारा विजय पाते और विजय पाते, तो इन ज़रियों से पाते। इस कुशलता में भ्रष्टाचार निहित है।

इसी तरह आपने सुबह क्या देखा? श्री अशोक सेन ने बार-बार क्या कहा? यह कि श्री अतुल्य घोष साहब बड़े कुशल आदमी हैं, तीन तीन बार साधारण चुनाव जीत चुके हैं, इसलिए तुम को गुस्सा आ रहा है। मैं उस बहस में नहीं पड़ना चाहता। तीन बार चुनाव जीत चुके हैं न? उससे सब पाप धुल जाते हैं। जो चुनाव जीत जाता है, वह अगर पाप करे, सब पाप धुल जाया करते हैं। मैं जानता हूं कि श्री रघुनाथ सिंह और उनके जैसे बहुत से लोग बड़ी भूल करते हैं कि गद्दी पर बैठने वालों को और मुझ जैसे असहाय, कमज़ोर और अक्षम आदमियों को एक तराजू पर तोलने लग जाते हैं। यह बिल्कुल सही बात है। उनको याद रखना चाहिए कि अगर मुझे कभी ताकत मिली, तो मैं उन जैसे लोगों को ज़बरदस्ती सोचना सिखाऊंगा।

जब यह बात चल पड़ी कि क्या इस मामले में सारी जड़ में बेईमानी है, तो मुझे कई बार लगता है कि बेईमानी के अलावा नासमझी है और हमारे उस तरफ वाले जो दोस्त कभी कभी यह नासमझी दिखा दिया करते हैं, खास तौर से मैं उन वामपंथियों से कहूंगा, जो अपने आप को समाजवादी कहते हैं—उन्हें समझना चाहिए कि जब वे हिन्दुस्तान की बेहतरी चाहते हैं और यह चाहते हैं कि वह दान स्वरूप जनता को मिल जाये ऊपर से मिल जाये, तब यह भ्रष्टाचार होकर रहेगा, बेईमानी होगी, सब कुछ होगा, क्योंकि वामपंथी अपनी राजनीति कहां से चलायेंगे? कोई मज़दूरों के संघ बनायेंगे नहीं, किसानों के संगठन बनायेंगे नहीं, तो फिर उन को पैसा कहां से मिलेगा? एक तरफ़ चलाना समाजवाद और वामपंथ और दूसरी तरफ पैसा कमाना ऐसे ढर्रे से, और नतीजा होगा कि जब वे ऊपर के समाजवाद लाने की कोशिश करेंगे, तो बेईमानी हमेशा हो कर रहेगी, लेकिन अगर जनता

को उभाड़ कर, उसको गरमा कर दुख में आग लगाकर, क्रान्ति के रास्ते से समाजवाद लाने की कोशिश करेंगे, तो शायद ईमान आ जायेगा।

और जब मैं समाजवाद के बारे में यह कहता हूं, तो उसके साथ साथ पूंजीवाद के बारे में भी कह देना चाहता हूं कि आज का पूंजीवादी और आज का नकली दिखाऊ वामपंथी, वह चाहे इधर हो या उधर,—मैं खाली उधर के लोगों को नहीं कह रहा हूं वे कई दफा नाहक़ घबरा जाया करते हैं—,ये जितने लोग हैं, ये सब मिल कर के हिन्दुस्तान की राजनीति को बिगाड़ा करते हैं।

सवाल उठता है कि जब ऐसी बात है, तो यह सरकार गिर क्यों नहीं जाती है? मैं कई दिनों से—खास तौर से कल और आज—यह सोचता रहा हूं कि जब ये लोग इतने कुकर्म करते हैं, कभी उड़ीसा का कुकर्म, कभी काश्मीर का कुकर्म—इस वक्त मैं गिनाना नहीं चाहता—,एक से एक कुकर्म पड़े हुए हैं, छिपे हुए हैं, जो कभी खुलेंगे, तो फिर यह सरकार गिरती क्यों नहीं है।

इसका जवाब इधर वालों को भी सोचना चाहिए। कहीं कोई गड़बड़ है। मैं मानता हूं कि पचासों ऐतिहासिक कारण हैं, पिछले सत्रह बरस के कई कारण हैं, पचासों ऐसे कारण भी हो सकते हैं कि आखिर जब कोई ऐसी चीज़ जम जाती है, तो उसको उखाड़ने में देर लगा करती है। मैं अपना धैर्य नहीं खो रहा हूं, दूसरे चाहे खो दें। लेकिन एक कारण मैं यह भी बताना चाहता हूं कि हमारे दोस्त कांग्रेस वाले इस बात में सफल हो गए हैं कि आज हिन्दुस्तान की पूरी ताकतों का प्रतिबिम्ब अपने अन्दर ले लें। उड़ीसा वाले मामले में भी गन्दगी भी उन लोगों में है और जो चाहते हैं कि गन्दगी को झाड़ू देकर साफ कर दिया जाये, वे भी उनमें हैं—दोनों उन में हैं। इसका नतीजा यह होगा कि अगर कभी उड़ीसा का मामला ठीक हो जायेगा, तो उसका फायदा यही लोग उठा लेंगे। ये लोग सब विरोधों के आभास को अपने अन्दर मिला लेते हैं। इसी तरह और बहुत सी बातें हैं। मैं जानता हूं कि न जाने कितने सूबों में किसी चीज़ को लेकर लोग कांग्रेस पर नाराज हैं। तो आप जानते हैं कि नतीजा क्या होता है? उधर कैरों साहब जब रहते थे तो थोड़ा बहुत सिख खुश रहते थे और जैसे ही कैरों साहब हट कर राम किशन साहब आते हैं तो हिन्दू कुछ खुश हो जाते हैं और कहते हैं कि चलो हिन्दू तो आया। उसके बाद सिख सोचते हैं कि हमारा भी फिर नम्बर आयेगा। फिर यादव, हैं, राजपूत हैं, दक्षिण है, उत्तर है। इतने विरोध कांग्रेस के अन्दर हैं कि वह आज सब विरोधों का संगम बन रही है जब तक वह विरोध का संगम रहेगी तब तक देश का भला नहीं हो सकता है। उसके साथ साथ में यह भी कह देना चाहता हूं कि आप दिमाग में देखो मैं कोई कड़ा शब्द इस्तेमाल नहीं करना चाहता। दिमागों के अन्दर जब सब विरोधों का संगम हो जाया करता है तो फिर

वह मनुष्य, मनुष्य नहीं रह जाया करता है, फिर वह और कुछ हो जाया करता है। मेहरबानी करके आप मेरी बातों पर ध्यान दो। जहां आप सभी जातियों, सभी भाषाओं, सभी नीतियों; सभी हालातों, पवित्रता और गन्दगी सब का संगम बनते चले जा रहे हैं तो यह तो हो सकता है कि आप गद्दी पर कुछ और दिन बैठे रहो लेकिन आप के हाथों इस देश का मिट्टी भर भी कल्याण नहीं हो सकता है। यह निश्चित बात है।

इस वास्ते मैं कहना चाहता हूं कि जड़ को देखना चाहिये कहां है यह जड़ इसको देखना चाहिये। इधर इशारा क्यों करते हो? यह विरोधों का आभास यहां भी हो जाया करता है। इसीलिये हम आपको इतनी जल्दी गिरा नहीं पाते हैं।

*** *** ***

व्यवधान[क]

*** *** ***

हमारे अन्दर भी विरोधों का आभास है और उन्हीं विरोधों के आभास की वजह से हजरत लोगों को कुछ दिन और रह जाने का मौका मिल जाया करता है।

*** *** ***

व्यवधान[ख]

*** *** ***

मैं जानता हूं कि आप उनको तो रोक नहीं सकते हैं मुझ को चाहे रोक दे।

इसी के साथ साथ यह सारा मामला चलता है। यह जो चीज़ मैं कहने जा रहा हूं इस पर मैं ज्यादा बहस नहीं करूंगा। आपको मैं यह दिखाता हूं कि यह जो मामला है बेईमानी का यह कितनी दूर चला गया है। मेरे पास एक साधारण आदमी आया बहुत दूर से बेचारा आया। मैं नहीं बताऊंगा कि कहां से। लेकिन जो चीज़ उसने एक सरकारी दूकान से खरीदी वह मैं आपको बतलाना चाहता हूं। यह नई साड़ी उसने खरीदी। यह सही है कि वह लालच में पड़ गया उसने इसको कम दाम में खरीदनी चाही लेकिन जब वह घर गया तब उसने देखा कि यह साड़ी नई तो है लेकिन है इस ढंग की। मैं यह बतलाना नहीं चाहता हूं कि यह कहां खरीदी गई है क्योंकि एक जगह की बात बतलाने से क्या फायदा।

और यह बच्चों की खांसी की दवाई की शीशी है। इसको भी आप देख सकते हैं। यह बच्चों की दवाई है।

[क]श्री अभ्या० विद्यालंकर (होशियारपुर): आपके अन्दर भी तो विरोधों का आभास है।
[ख]उपाध्यक्ष महोदय: लोहिया साहब मेरे साथ बोलिए।

*** *** ***

...यह शीशी है बच्चों की खांसी की दवाई की। इस शीशी में न जाने कौन कौन से...यह भ्रष्टाचार का नमूना है जो हिन्दुस्तान में हो रहा है।

*** *** ***

ये जो बातें मैंने बताई हैं ये खाली एक जगह के लिए नहीं हैं। आज सारे हिन्दुस्तान में सभी वर्गों के खिलाफ ऐसे काम हो रहे हैं। हिन्दुस्तान ज्यादातर भ्रष्ट हो चुका है। इसलिए इस प्रश्न का हल निकालने की कोशिश आपको करनी चाहिये न कि माननीय सदस्य खाली आरोप प्रत्यारोप उड़ा दिया करें। जैसे उनके ऊपर कोई आरोप लगाता है और कहता है कि वे बेइमान हैं और उनका यह फ़र्ज हो जाता है कि वे साबित करें कि ईमानदार हैं महज़ इससे काम नहीं चल सकता है। हमें देखना होगा कि आखिर देश को हो क्या गया है? आज हम इस अवस्था पर पहुंच क्यों गये हैं? बड़े लोग बड़े मामलों में भ्रष्ट होते हैं और उनकी देखा देखी छोटे लोग छोटे मामलों में भ्रष्ट हो गये हैं।

जहां हम इसकी जड़ ढूंढने जाते हैं जहां उड़ीसा का मामला आया वहां बिहार के मामले को भी मैं बता देना चाहता हूं। मैं नहीं चाहता कि बिहार के मुख्य मंत्री के लड़कों के बारे में कुछ कहूं। मैं उसके पहले चाहता था कि प्रधान मंत्री के सुपुत्रों के बारे में और उनके जो उनसे सम्बन्ध हैं उसके बारे में कह दूं। लेकिन यहां पर एक बात कहना मैं आवश्यक समझता हूं। एक बेरिल नाम की धातु को किसान के खेत में पा कर, जिस तरह से उन लोगों ने पैसा बनाया है।

यह कोई एक उड़ीसा का मामला नहीं है। चारों तरफ बात बिगड़ी हुई है। बिहार के ऊपर जो फैसला दिया है कैबिनेट सब कमेटी ने वह क्या है कि "साधारण तौर पर कोई खराबी नहीं पाई गई।" साधारण तौर पर कहा गया है। और उस के साथ यह कि जो हम ने सब मामला इकट्ठा किया उस मामले से कोई बात वापिस नहीं होती है। तो आखिर ऐसी बात बढ़ जाती है तो सरकार का यह फर्ज हो जाता है कि वह सारे मामलों को या तो जनता के सामने लाये या उन के उपर अच्छी तरह से जांच बैठाये और अच्छी तरह से मुकदमा चलाये। यह कह देना कि हम लोग मुकदमा चलायें कोई खास मतलब नहीं रखता क्योंकि जो सरकार के मंत्री हुआ करते हैं उन के खिलाफ कोई गैरमंत्री या बाहर का आदमी मुकदमा चला कर जीत सकता है, चाहे वह हजार सच्चा हो, यह सही

नहीं है। वह मुकदमा तो तभी अच्छी तरह से चल सकता है जब सरकार के अपने कागज जनता के सामने और अदालत के सामने आयें। आखिर जड़ कहा है। जड़ है कि इधर सत्तरह वर्षों से सम्पत्ति के मामले में जीवन स्तर के मामले में हिन्दुस्तान का विचार बिगड़ चुका है। हर आदमी चाहता है कि सम्पत्ति बढ़ावे अपने जीवन स्तर को ऊंचा करे।

बाकी जनता को तो मैं क्या कहूं, मैं इस वक्त काबीना के खाली 15 आदमियों के ऊपर कहना चाहता हूं जोकि देश की पूरी बागडोर अपने हाथ में लिये हुए हैं कि काबीना के पन्द्रह आदमियों में से एक भी आदमी ऐसा नहीं है जिसने पिछले सत्तरह वर्षों में अपने जीवन स्तर को ऊंचा नहीं किया हो या जिसने अपनी सम्पत्ति न बढ़ाई हो। फिर भी अगर इसे समाजवाद कहा जाता है तो यह ठीक नहीं हो सकता।

तो जब सारे देश के सामने सम्पत्ति बढ़ाने और जीवन स्तर को ऊंचा करने का आदर्श हो जाया करता है तो उड़ीसा जैसा भ्रष्टाचार अवश्यम्भावी है। इस के साथ साथ यह भी अवश्यम्भावी है कि कानून मंत्री कभी तो यह कहें कि वह निर्दोष हैं और इसलिये उन के उपर जांच बैठाने की जरूरत नहीं, और कभी यह कहें कि हम कितने अच्छे हैं कि आज उन को हम ने कहा तो कि तुम दोषी हो। इस तरह से अगर बातें ठीक करनी हैं तो जरा अपनी सरकार की तरफ भी देखो कि कहां यह गड़बड़ हुआ करती है।

मैं देखता हूं कि आप कुल 59 आदमी हो मंत्रिपरिषद् में। 59 आदमी। उन में से ज्यादा से ज्यादा पन्द्रह आदमी जेल गये हुए हैं। मैं यह नहीं कहना चाहता कि जेल गये हुए आदमी ज्यादा अच्छे होते हैं हर हालत में बनिस्बित जेल न गये हुए के, लेकिन आखिर जिस चीज़ पर आप इतना घमंड करते हैं कि हम ने हिन्दुस्तान की क्रान्ति में हिस्सा लिया है, तो क्रान्ति में हिस्सा लेने वालों की कितनी जगह है आज आप की मंत्रिपरिषद् में। मुश्किल से 30 सैंकड़ा। फिर कोई मुझ से कह सकता है कि योग्य लोग चागला साहब जैसे और कृष्णामाचारी जैसे क्यों न मंत्रिपरिषद् में लिये जायें। क्या जो लोग जेल नहीं गये उन को महरूम कर दिया जाये। तो मेरा जवाब यह होता है कि जो जनता बेचारी किसान मजदूर और नीचे स्तर वाली है वह कहां मंत्रिपरिषद् में बैठती है। मंत्रिपरिषद् में बैठते हैं वे लोग जो हमेशा पुश्तैनी गुलाम रहे हैं और न० 2 के राजा होना जानते हैं। न० 1 का राजा बदलता रहा है। मुगल राज्य खत्म हुआ। अंग्रेज़ राज्य आता है, अंग्रेजी राज्य जाता है। कांग्रेसी राज्य आता है। नं० 1 का राजा बदलता है लेकिन जो नं० 2 के पुश्तैनी गुलाम हैं वह हमेशा अपनी इन्हीं जगहों पर बैठे रह जाते हैं। अगर आप मुझ से जानना चाहें कि आज देश इतनी सड़ी हुई हालत में क्यों पहुंच गया है तो उस का सब से बड़ा सबब है कि हम लोग आज तक रास्ता नहीं जान पाये कि पुश्तैनी गुलामों को किस तरह से अपने काबू में ला सकें।

मैं जानता हूं कि हमारे दोस्त लोग जो सामने हैं उन में से करीब 100 आदमी ऐसे हैं जो लखपती से ऊपर की हैसियत के हो गये हैं। वे आज इस तरह की हुकूमत को रखना चाहते हैं। लेकिन मैं नम्रता से कहना चाहता हूं कि इन में से 100 आदमी ऐसे हैं जो कम से कम भाषा और जाति के मामले में यहां बैठे हुए आदमियों से ज्यादा अच्छे हैं। भाषा और जाति के मामले में मैं कई बार सोचता हूं कि क्या चीज है जो हिन्दुस्तान इतना बिगड़ा हुआ है। क्यों नहीं आप लोग कुछ करते, क्यों ऐसी हुकूमत को अपने ऊपर लादे हुए हैं। अभी मैं इस सवाल को यहां ही छोड़ता हूं, लेकिन बड़ी नम्रता से आप लोगों के सामने यह सवाल रखता हूं कि आप में से 100 आदमी ऐसे हैं जो जाति और भाषा के मामले में चाहे अच्छे हों लेकिन सरकार के कुकर्मों में साझेदारी कर रहे हैं। इस पर मेहरबानी कर के आप जरा सोचिये।

हर हालत में क्रांति कैद हो गई है। या तो क्रांति हो ही नहीं पाई सत्तरह वर्ष पहले पूरी तरह से, और अगर हुई तो उसे कैद में रखा गया और सत्तरह वर्षों से निर्णयहीनता के दलदल में हर चीज़ फंसती चली जा रही है। बारूद फूटी थी तमाम इलाकों में भाषा को ले कर के। लेकिन मैं एक चेतावनी देना चाहता हूं कि पिछले सत्तरह वर्षों से निर्णयहीनता के कारण एक एक सवाल पर अलग अलग बारूद इकटठी हो गई है क्योंकि सवाल को हल करने की कोई कोशिश यह सरकार नहीं कर पाती, और वह बारूद अब हर सवाल पर अलग अलग फटेगी जब तक यह सरकार है तब तक इसे कोई रोक नहीं सकता। बारूद फटती चली जायेगी और देश का बिगाड़ होता चला जायेगा।

सांप को छेड़ना नहीं चाहिये और कोई छेड़ दे तो छोड़ना नहीं चाहिये। भाषा के सांप को इन लोगों ने छेड़ दिया फिर छोड़ दिया। सम्पत्ति के सांप को इन लोगों ने छेड़ दिया फिर छोड़ दिया, जाति के सांप को छेड़ दिया फिर छोड़ दिया। सत्तरह वर्ष से खाली यह लोग सांप छेड़ना जानते रहे हैं, सांप को खत्म करना नहीं जानते। यह स्थिति ऐसी है जिस पर सदन को सोच विचार करना चाहिये। हमें क्या है, दो तीन, चार पांच वर्ष, दस वर्ष रह गये हैं, लेकिन तुम मेरे जैसे आदमी की बातों को सुन लो। लोगों का दिल टूटता है कि कहां आपने देश को लाकर रख दिया है। आज इस समय लोक सभा के नेता नहीं हैं, लेकिन नेता साहब को जानना चाहिये कि किस तरह से अपने दरबार को चलाया जाये। कैसे बहुसंख्या को रखखा जाये, इस लोक सभा में किस तरह से हिन्दुस्तान के हित और अनहित की बातों को लाना चाहिये। राज दरबार हमेशा से बड़ा कठोर हुआ करता है राज दरबार में आम तौर से द्रौपदी का चीर हरण हुआ करता है, और जिस पर जुल्म होता है उसी को कहा जाता है कि यह आदमी निकम्मा है।

इतना ही नहीं मैं आपको बतलाऊं कि उस दिन मुझे कितना बुरा लगा था जब कम्युनिस्ट पार्टी के नेता ने बाकायदा आपको उकसाया कि मुझ जैसे आदमी से यहां लोक सभा की शोभा नहीं बढ़ती है लेकिन आज मुझे अफसोस हो रहा है यह कहते हुए कि श्री हीरेन मुकर्जी कौन हैं। उनको थोड़ा सा आप जान लीजिये। जब हमारी विद्यार्थी उम्र के लोग अंग्रेजों से लड़ते हुए कलकत्ते में पुलिस के द्वारा पकड़े जाते थे तब श्री हीरेन मुकर्जी साहब पुलिस को बतलाया करते थे कि कौन से लोग अनुशासन तोड़ते हैं। वही काम वे आज तक कर रहे हैं। इस तरह की सभी चीजें वे आज तक अदा कर रहे हैं।

इसके साथ जनता की दृष्टि टूट जाया करती है और सारे देश की दृष्टि इस वक्त टूट चुकी है। मैंने पहले बतलाया कि इस सरकार की दृष्टि कैसे टूट चुकी है विपरीत दिशाओं में जा कर के। मैं ने एक दफे कहा था कि सरकार के एक माथे की जगह दो माथे हैं, लेकिन थोड़े दिनों से मुझे ऐसा लग रहा है कि वह माथा रह ही नहीं गया है। जैसे मैं ने तस्वीर देखी है एक खास मुर्गी की कि वह सर कटा देने के बाद भी चलती रहती है उसी तरह से श्री अशोक सेन से मैं कहना चाहता हूं कि उनकी सरकार का सिर कट जाने के बाद भी जो वह चलती रहती है उसका सब से बड़ा अपराध मेरे जैसे आदमियों का है जो इस सरकार को देश में चलने देते हैं। लेकिन वास्तविकता यह है कि आप किसी चीज़ पर निर्णय ले नहीं पाते, किसी चीज़ पर सोच नहीं पाते, किसी चीज़ पर फैसला करके काम को बढ़ा नहीं पाते। किसी ईश्वर या खुदा के ऊपर अपनी तकदीर को लटका कर कहते हैं कि हमारा साथ निभाये जाओ। क्योंकि हम लोग निकम्मे हैं।

*** *** ***

मुझे पांच, सात मिनट और दे दीजिये। मैं असल में कुछ सिद्धान्त की बातें कहना चाहता हूं। मैं जानता हूं कि उसमें समय बरबाद ही होता है।

असल में गड़बड़ी क्या हुई? समाजवाद का नाम हमने बहुत लिया। पिछले 17 बरसों में समाजवाद का नाम बहुत लिया। लेकिन समाजवाद हर किसी अन्य सिद्धान्त की तरह, एक होता है थोक एक होता है फुटकर एक होता है सगुण एक होता है निर्गुण, एक होता है सिद्धान्त, एक होता है कार्यक्रम। तो इन्होंने समाजवाद की थोक दुकान खोली, फुटकर दुकान नहीं खोल सके। हरे समाजवाद, हरे समाजवाद, हरे समाजवाद सुनाई देता रहा। लेकिन मैं बताता हूं कि थोक से फुटकर की ओर आओ, सिद्धान्त से अमल में आओ। समाजवाद से एक सीढ़ी नीचे उतरो, उस सीढ़ी का नाम बराबरी। उस बराबरी से एक सीढ़ी और नीचे उतरो, आर्थिक बराबरी, सामाजिक बराबरी, राजकीय बराबरी, धार्मिक बराबरी। उससे एक सीढ़ी और नीचे उतरो। क्या है आर्थिक बराबरी। तब उसके बाद आएगी समता, सम्पूर्ण समता, सम्भव समता। सम्पूर्ण समता का सपना देखो। मैं बचपन

में यह सपना देखता था, और अभी भी कभी कभी देख लेता हूं। लेकिन सम्भव समता। आज के देश और काल को देखते हुए कितनी समता ला सकते हो अपने देश में। तब एक सीढ़ी और नीचे उतरो और तब अधिकतम और न्यूनतम की सीमा लगाओ।

सब से ज्यादा कितना और सब से कम कितना भ्रष्टाचार की बात सुनते सुनते मेरे कान पक गए हैं। यह सीमा बांधो, सब से ज्यादा और सब से कम। मैं समझता हूं कि आज देश काल की स्थिति को देखते हुए एक हजार और एक सौ की सीमा अच्छी होगी। लेकिन सोच लो उसके ऊपर अच्छी तरह।

मान लो कि ऐसी सरकार बन जाए जो मेरे कहने में चले तो में कहूंगा कि न्यूनतम सीमा को उठाने में तो पांच वर्ष या सात बरस लग सकते हैं, लेकिन जो ऊंचा है उसको गिराने में दो तीन महीने से ज्यादा वक्त नहीं लगना चाहिए। तो जो अधिकतम है उसे गिराओं और पूंजी बनाओ और उसको लगाओ कारखानों में और खेती में और तब एक सीढ़ी और नीचे उतरो और देखो कि समाजवाद का मतलब क्या होता है।

1. प्राथमिक स्कूल सब एक ही ढंग के होने चाहिए चाहे उन में राष्ट्रपति का बच्चा पढ़े या भंगी का बच्चा। मैं कालिजों और विश्वविद्यालयों के लिए नहीं कह रहा हूं केवल प्राथमिक स्कूल।
2. रेलगाड़ी में एक दरजे को छोड़ कर बाकी सब दरजे खत्म कर दिए जाएं।
3. एक हजार रूपए महीने से ज्यादा किसी को खर्च न करने दिया जाए। और
4. अंग्रेजी को खत्म करो। मैं यह कहे देता हूं कि अंग्रेजी का इस्तेमाल करते हुए देश में समाजवाद लाना नामुमकिन है, ढोंग है और झूठ है। तो अंग्रेजी को खत्म करो।

उसके साथ साथ एक बात और कहना चाहता हूं।

5. हिन्दुस्तान में जो भी तीस या 31 करोड़ एकड़ जमीन है उस जमीन के लिए बिना सिंचाई के रेट के लिये हुये किसान को पानी दो। जब तक ऐसा नहीं होता समाजवाद नहीं आ सकता।

लोग हमसे कहते हैं कि बातें तो तुम बहुत करते हो लेकिन चुनाव में तो कांग्रेस ही जीतती है। उसके लिए भी मैं एक सुझाव देता हूं। वह कैसे जीतती है? आप देख चुके हैं। श्री अतुल्य घोष, श्री संजीव रेड्डी, श्री कृष्णमाचारी और श्री लाल बहादुर शास्त्री, जो हमारे प्रधान मंत्री हैं, ये जितने लोग हैं सभी की दुरवस्था हो जाया करता है क्योंकि अपनी पार्टी को जिताने के लिए ये लोग देश में सब तरह के कुकर्म किया करते हैं। अच्छे काम के लिए कुकर्म।

*** *** ***

मैं एक मिनट में खत्म करता हूं।

पहली बात तो मुझे यह कहनी है कि चुनाव के समय में कम से कम ये चीजें हों:

1. चुनाव वाले दिन चुनाव क्षेत्र में मोटर बिल्कुल न चलें।
2. जो परची उम्मीदवार बांटा करते हैं वह गैर कानूनी कर दी जाए और सरकार की तरफ से परची सभी लोगों के चुनाव चिन्हों की बांट दी जाए, वोटर के नम्बर समेत।

और उसके साथ साथ मैं यह बहुत जोरों से अपील करना चाहता हूं कि हिन्दुस्तान का प्रधान मंत्री हिन्दी इलाके का हरगिज न हो, क्योंकि अगर वह रहता है तो संविधान भंग होता है, जीभ का निरादर होता है, सभी कामों में अड़ंगा आ जाता है। जब मैं यह कहता हूं तो मेरा यह मतलब नहीं है कि तमिल ही प्रधान मंत्री हो। कोई भी हो गुजराती हो, मराठी हो, बंगाली हो, तमिल हो। अगर बंगाली और तमिल प्रधान मंत्री बनेगा तो मैं उससे नहीं कहूंगा कि आप अंग्रेजी में मत बोलो, हालांकि मुझे अपेक्षा रहेगी कि वह न बोलें। लेकिन अगर गुजराती और मराठी प्रधान मंत्री होगा तो मैं उससे कहूंगा कि वह सदन में अंग्रेजी में न बोले।

21

अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों का उत्थान*

यह सरकार सांप को छेड़ना जानती है लेकिन उस के दांत तोड़ना नहीं जानती है। अकाल के सांप को, भाषा के सांप को सम्पत्ति के सांप को जिस तरह इस सरकार ने छेड़ कर के जगा दिया है उसी तरह जाति के सांप को भी इस सरकार ने जगा दिया है। जो ऊंची जाति के लोग हैं खास तौर से गांवों में उन को चिढ़ हो गयी है कि हरिजन और दूसरे पिछड़े उठ रहे हैं। लेकिन वास्तव में जो भी 7-8 करोड़ हरिजन हैं उन में से मुश्किल से 70—80 हजार हरिजन उठे होंगे । हो सकता है कि कुछ ज्यादा हों। हजार में एक । जब हजार में एक का सुधार हुआ हो तो ऊंची जाति के प्रायः सभी लोगों की आंखों में यह किरकिरी गिरने लग जाय तो समझ लें कि देश का कोई सुधार नहीं हो सकता है। इस का सब से बड़ा कारण शायद हमारी आजकल की राजकीय पद्धति है। वर्तमान सरकार दोषी है। हम लोग भी दोषी हैं अगर उस दोषी चीज का अनुकरण करें और वह यह है कि आज सरकार जो कुछ करती है वह बड़े लोगों के लिए करती है और इस दृष्टि से करती है कि हमारे वोट के ठेकेदार कितने मिलते हैं? भला करने के लिए देश को ऊंचा करने के लिए नहीं बल्कि असरदार लोगों को पकड़ा जाय जोकि वोट ला सकें। अब यह 70—80 हजार बाकी सब हरिजनों के लिए आकर्षण के केन्द्र बन जाते हैं और वे वोट के ठेकेदार बन जाते हैं, ...

जो भी पंच-वर्षीय योजनायें हैं, उनमें हरिजनों अथवा पिछड़ों के लिए अनुदान की रकम अलग से दे दी जाती है, लेकिन पूरी पंच-वर्षीय योजना से पिछड़े लोगों का कितना उद्धार हुआ, इसका मूल्य-माप कभी नहीं किया जाता है। पंच-वर्षीय योजनाओं में अन्य विषयों में मूल्य-माप होता है, न जाने कितनी रपटें हमारे पास आती हैं, लेकिन मैंने इस सरकार की एक भी रपट नहीं देखी है, जिसमें ऐसा मूल्य-माप हो कि पंच-वर्षीय योजना का रुपया खर्च करने पर हरिजन, आदिवासी या पिछड़े कितना सुधरे हैं और किस दिशा में सुधरे हैं। आज चौथी पंच-वर्षीय योजना बन रही है। उस में दो खरब और कुछ अरब रुपयों का खर्च होगा। हो सकता है कि हरिजनों के लिए 70, 80 करोड़ रुपया अलग से

* लोक सभा वाद-विवाद, 12 मार्च, 1965

दे दिया जायेगा—जरा सा छोटा सा एक पुछल्ला जोड़ दिया जायेगा। लेकिन जो सारा जानवर है पंच-वर्षीय योजना वाला, वह वास्तव में जो पहले से ऊंचे हैं, उनको और ऊंचा उठाता है और जो नीचे दबे हुए लोग हैं, उन पर कोई विशेष असर नहीं पड़ता है।

जहां ऐसी स्थिति है, वहां मैं पूरे समाज से यह कहना चाहूंगा कि एक व्यापक दृष्टि रखो। हमारी 48 करोड़ की आबादी है। उसमें 7-8 करोड़ हरिजन हैं। सब पिछड़े मिला कर करीब 43 करोड़ होंगे। जहां तक औरतों का सम्बन्ध है, मैं सबको पिछड़ा मानता हूं, चाहे वे किसी भी जाति की हों। सब मर्द-औरत मिलाकर पिछड़े 43 करोड़ होते हैं। अब रह जाते हैं ऊंची जाति के गरीब लोग। वे हैं करीब साढ़े चार करोड़। और पचास लाख हैं सचमुच बड़े लोग, जो ज्यादातर ऊंची जाति वाले हैं। जब तक हम इस वर्तमान सामाजिक दोष को नहीं समझ पायेंगे कि जो ऊंची जाति के साढ़े चार करोड़ गरीब लोग हैं, उन का मुंह लगा रहता है अपनी ही जाति के अमीर लोगों की तरफ और उन्हीं से वे अपना सोचने का तरीका लिया करते हैं, तब तक कोई सुधार नहीं हो सकता है। इन साढ़े चार करोड़ ऊंची जाति के गरीब लोगों का मुंह अपनी जाति के ऊंचों से मोड़ कर 43 करोड़ पिछड़ों की तरफ लगाना होगा और जब 43 करोड़ पिछड़ों और साढ़े चार करोड़ ऊंची जाति के गरीब लोगों की राजकीय दोस्ती की खिचड़ी पकेगी, तब उसमें से वह बारूद पैदा होगा, जो पचास लाख बड़े लोगों की ऐयाशी को जला कर राख कर देगा और फिर उसके ऊपर नये हिन्दुस्तान का निर्माण हो सकेगा। सिवाय इसके अब और कोई रास्ता नहीं रह गया है।

....वास्तव में जितना भी आज हिन्दुस्तान है, वह टूट गया है मैं इस वर्तमान सरकार के पापों और कुकर्मों की सूची में सब से बड़ा पाप यह मानता हूं कि इसने लोगों की दृष्टि को तोड़ दिया—कहीं कोई व्यापक और सम्यक दृष्टि नहीं है। लोग विश्वास नहीं करते हैं कि सारा देश बढ़ सकता है, सारे देश की दौलत बढ़ सकती है। खाली अपना-अपना हिस्सा बढ़ाने में सब लगे हुए हैं।

इस लिए हरिजनों अथवा पिछड़ों को उनका हिस्सा कभी नहीं मिल सकता है, जब तक व्यापक दृष्टि नहीं बनेगी कि सब की दौलत बढ़ाओ। सब की दौलत तभी बढ़ सकती है जब हरिजनों की दौलत बढ़ेगी। मैं जानता हूं कि जिनके यहां हरिजन या पिछड़े काम करते हैं उनके मन में यह है कि अगर उनकी तनख्वाह पचास साठ रुपये हो जायेगी तो हमारा हिस्सा कम हो जायेगा। जब तक वे यह नहीं सोचेंगे कि जब हरिजनों, कुम्हारों, बर्तन साफ करने वालों या मेहतरों की तनख्वाह सौ, डेढ़ सौ, दो सौ रुपया महीना होगी तब सारे देश की दौलत बढ़ेगी, सारे देश की उन्नति हो जायेगी तब तक यह समस्या हल नहीं हो सकती है।

मुझे तो कई दफा लगता है कि अगर मेहतरों की तनख्वाह वह कर दी जाये,—अध्यक्ष महोदय, मैं कहना तो यह चाहता था कि जो प्रधान मंत्री की है लेकिन प्रधान मंत्री के तो ऊपर लवाज़िमात ऐसे हैं कि मैं वह नहीं कह सकता—जो मंत्रियों की है,—अगर श्री कृष्णमाचारी साहब की हो तो और अच्छा है क्योंकि उसमें और बहुत मामला आ जाता है,—अगर आज मेहतरों की तनख्वाह तीन चार सौ रुपया महीना कर दी जाये तो मैं समझता हूं कि बड़ा जबर्दस्त असर पड़ेगा और जो ये ऊंची जाति वाले लोग हैं तब इन में से बहुत से झाड़ू लगाना और पाखाना साफ़ करना शुरू करेंगे तब जाकर इस देश में कोई सुधार होगा।

22

राष्ट्रीय आय का वितरण*

अध्यक्ष महोदय, अभी तक इस बहस का नतीजा इतना निकला है कि मैंने 27 करोड़ हिन्दुस्तानियों के लिये तीन आने रोज की आमदनी कही, प्रधान मंत्री ने 15 आने रोज़ की और योजना मंत्री ने साढ़े सात आने रोज़ की। अब प्रधान मंत्री और योजना मंत्री आपस में निबट लेंगे कि दोनों में कौन सही है।

मेरी बहस यह नहीं है कि हिन्दुस्तानियों की और खास तौर से 27 करोड़ की आमदनी तीन आने या साढ़े तीन आने या ढाई आने है। बल्कि यह देश इतना गरीब है जिस का अंदाजा इस सरकार को नहीं है, और इस गरीबी को दूर करने के लिये जब तक इस सरकार में भावना नहीं आयेगी, तब तक कोई अच्छा नुस्खा तैयार नहीं हो सकता।

पहली बात तो मुझे कहनी है, जो आंकड़े योजना मंत्री ने यहां रखे उन के बारे में, कि वह कर जांच कमेटी के लिये तैयार किये गये थे। वित्त मंत्रालय ने पूछा था कि किस तरह से हिन्दुस्तान के लोगों की आमदनी है और खपत है ताकि वह कर अच्छा और ज्यादा लगा सकें। इसलिये इस जांच समिति के आंकड़े पहले से ही संदेहात्मक थे क्योंकि उन का तात्पर्य ही कुछ और था

* * * *** * * *

व्यवधान@

* * * *** * * *

ठीक है लेकिन वह दिखाना चाहते थे कि हिन्दुस्तानी ज्यादा खर्च करते हैं, इसलिये उन के ऊपर ज्यादा टैक्स लगाओ। बिल्कुल साफ बात है, छपा हुआ है किताब में। जो सेंट्रल सर्वे छापता है। उस में लिखा है कि वह टैक्सेशन एनक्वायरी कमेटी की तरफ से कहा गया है ताकि फाइनेंस मिनिस्ट्री उस से अपना काम काज चला सके...।

और दूसरी बात यह है कि सन् 1948-49 की जो आधार कीमतें हैं उन को छोड़कर अक्सर चालू कीमतें ले ली जाया करती हैं, और इस तरह की एक रुकावट मेरे सामने और आ जाती है कि ये अंक शास्त्री लोग कौन हैं। जिस वक्त बंगाल में पचास लाख आदमी भूख से मरे थे, उस वक्त इन अंक शास्त्रियों ने साबित किया था कि खाली पांच

---

*लोक सभा वाद-विवाद, 6 सितम्बर, 1963

@श्री त्यागी (देहरादून): वह खर्च के आंकड़े थे, आमदनी के नहीं थे।

लाख मरे हैं। तो इसलिए मंत्रियों को बड़ा सावधान रहना चाहिए, और उन्हें कोई दिशा देनी चाहिए। मैं कोशिश करूंगा कि इन अंकों को, जहां तक हो सके, अपने दिमाग को लगा कर के भी इस्तेमाल करूं। तो पहली बात मुझे यह कहनी है। और दूसरे योजना मंत्री ने जो आंकड़े दिये उस के अनुसार देहाती खपत 87 अरब रुपये की हो जाती है। ...और जो हमारी राष्ट्रीय आमदनी खेती से है जिसमें कि मैं पशुधन को शामिल किये लेता हूं वह कुल 66 अरब या 6600 करोड़ रुपये की है। तो 6600 करोड़ रुपये की देहाती आमदनी और 8700 करोड़ रुपये का खर्चा यह योजना मंत्री के आंकड़ों से बिल्कुल साफ साबित होता है। वैसे मुझे चाहिए कि खेती की आमदनी में से पशुधन की रक़म अलग कर लूं लेकिन उस को बिना अलग किये हुए ही 2000 करोड़ रुपये का फर्क पड़ता है। एक माने में 3000-3500 करोड़ रुपये का फर्क पड़ जाता है, जो दो हिसाब दिये हैं उन में। हो सकता है कि सरकार की तरफ़ से यह कहा जाय कि आमदनी में और खर्चे में फर्क है क्योंकि खर्चे में दान भी जोड़ लिये जाते हैं कर्जा भी जोड़ लिया जाता है। अब इस के बारे में मैं यह कहना चाहूंगा कि लगातार कर्ज़ा नहीं चल सकता है। कर्जा तो 2, 4, 5 या 10 वर्ष की चीज़ होती है। आखिर कर्ज़ा और खर्चा यह किसी न किसी तरीके से एक होना ही चाहिए, थोड़ा बहुत फर्क चाहे रहे।

एक बहुत बड़ी गलती इन उपभोक्ता आंकड़ों में होती है और वह यह कि इन में मूल्य फर्क जोड़ लिया जाता है? मिसाल के लिये मैं आप को बतलाऊं कि ईंधन और रोशनी पर 13वें चक्र के आंकड़े हैं जो छप चुके हैं और योजना मंत्री ने 17वें चक्र के बताये, उन के लिये हमारे पास कोई आधार नहीं है। 13वें चक्र में मैं बतला रहा हूं कि ईंधन और रोशनी पर नकद खर्चा सब से नीचे के लोगों पर 20 पैसे रखा गया है और खर्चा रखा गया है 91 पैसे। 20 पैसे और 91 पैसे। इसी तरीके से एक और समूह रखा है। नकद खर्चा 28 पैसे और दूसरा कुल खर्चा 1 रुपये 2 पैसे। चीनी के लिए 15 पैसे नक़द खर्चा है और दूसरा खर्चा 19 पैसे रख दिया गया है। इस तरीके से कुल खर्चे को बढ़ा दिया जाता है लेकिन कितना भी बढ़ायें 6600 से 8700 तक बढ़ा देंगे, मैं समझता हूं कि यह बहुत ही अनुचित काम है।

मैं एक दूसरा तरीक़ा बतलाऊंगा उस हिसाब को लगाने के लिए और वह यह है कि सन् 1960-61 में हिन्दुस्तान के 32 करोड़ खेतिहारों को जो देहात में रहते हैं, 45 पैसे रोज़ की आमदनी पड़ती थी। आज 61-62 में 35 करोड़ खेतिहारों को 43 नये पैसे रोज़ के हिसाब से हो गयी। अब यह हिसाब मैंने कैसे लगाया है, वह तो एक लम्बा क़िस्सा होगा, खाली इतना ही बतला दूं कि यह सरकार के आंकड़ों से ही हिसाब लगाया गया है, 45 पैसे रोज़ और 43 नये पैसे का। यह साधारण तौर से मान लिया जाता है कि जो

ऊपर के 10 सैकड़ा लोग हैं वह उन की पूरी आमदनी का 50 सैकड़ा ले लिया करते हैं जिसका कि नतीजा यह होता है कि 60-61 में खेतिहरों को 25 पैसे रोज़ की आमदनी थी और 61-62 में 23 पैसे रोज़ की आमदनी थी, यह सरकार के आंकड़ों से सिद्ध होता है। अगर मान लीजिये इन में पशुधन की आमदनी जोड़ भी ली जाये तो 27 पैसे रोज़ की आमदनी यानी साढ़े चार आने की आमदनी पड़ती है। लेकिन पशुधन जोड़ना नहीं चाहिए क्योंकि जिन लोगों के बारे में मैं चर्चा कर रहा हूं वह इस हैसियत में नहीं हैं कि पशु वगैरह रख कर अपनी आमदनी को बढ़ा लिया करें। इसलिए जो सरकार के अपने आंकड़े हैं उन से यह सिद्ध होता है 27 करोड़ से ज्यादा आमदनी 4 आने रोज़ के ऊपर जिंदा रहते हैं। यह जो राष्ट्रीय आमदनी के आंकड़े सरकार की तरफ से छपे हैं, उन के बारे में मैं कह रहा हूं।

इस सिलसिले में मैं एक थोड़ी सी जानकारी जो मैंने हासिल की वह बतलाना चाहूंगा। अब वह कहां तक सही है या ग़लत है यह मैं नहीं कह सकता। बहर हाल मैं आप को बतलाता हूं कि जब से यह राष्ट्रीय आमदनी का सिलसिला सरकार ने चलाया है तब से शुरू से ही 20 सैकड़े की बढ़ती कर दी गई है चाहे जिस इरादे से की गई हो। बढ़ती इसलिए भी की जा सकती है कि हिन्दुस्तान को ज्यादा अमीर दिखाना है जितना कि वह है। दूसरे इसलिए भी हो सकती है कि सरकार को यह कर लगाने की सुविधा हासिल करनी है और यह सब को मालूम है कि जो भी आंकड़े हमारे असली हैं उन में 20 सैकड़े की बढ़ती कर के यह सारे आंकड़े छापे जाते हैं।

अब मैं आप से एक और बात बतलाता हूं और वह है गरीब प्रदेशों की दर, जिन आंकड़ों को योजना मंत्री ने रखा था और वह दूसरे सैंशस जनगणना वाले आंकड़े थे। उस में उत्तर प्रदेश, बिहार, राजस्थान, मध्य प्रदेश, उड़ीसा और आन्ध्र प्रदेश यह 6 हिन्दुस्तान के सब से गरीब इलाके हैं। उन की कुल देहाती जनसंख्या 20 करोड़ होती है वैसे तो कुल 23 करोड़ है। मुझे उत्तर प्रदेश का एक आंकड़ा मालूम है। सरकार ने वह आंकड़े हर साल छापे हैं। एक बार तो 182 रुपया फ़ी आदमी हर साल देहात की आमदनी थी और वही अगर तर्क लगाया जाय कि ऊपर का 10 सैकड़ा 50 सैकड़ा आमदनी हज्म कर लेता है या दूसरा तर्क जोकि मैं लगाता हूं कि उपभोक्ता जरीब से ले कर ऊपर का 20 सैकड़ा खा लेता है 60 सैकड़ा और नीचे के 80 सैकड़ा के लिए केवल 40 सैकड़ा बच जाता है। यह आंकड़े मैंने खुद सरकार की किताब से लिये हैं। यह बात दूसरी है कि आंकड़े दूसरे के हैं, अलबत्ता जो कुछ हिसाब मैंने लगाया है वह मेरा अपना है। मैं सरकार को सलाह दूंगा कि विशेषज्ञों के आंकड़ों को वह इस तरीके से इस्तेमाल न करे बल्कि किसी दिशा के साथ करे। बिना दिशा के इस्तेमाल करने का नतीजा खराब हो

सकता है। इसलिए यह जो 182 रुपया फ़ी आदमी की हर साल उत्तर प्रदेश के देहात की आमदनी है वह अगर 50 सैकड़े वाला घटा दिया जाता है तो 101 रुपये हो जाती है और अगर 60 सैकड़ा ले लिया जाता है तो 91 रुपये हो जाती है। इस के मानी यह हुए कि वह चार आने के नीचे रहता है। 4 आने के नीचे खुद सरकार के आंकड़ों से 27 करोड़ से ज्यादा लोगों की आमदनी रह जाती है यह तो बिल्कुल सिद्ध हो जाता है फिर उस के बाद 193 रुपये की भी रक़म दी गई है फ़ी आदमी पीछे और वह थोड़ी सी बढ़ सके तो वह चार आने रहेगी या साढ़े तीन आने या सवा चार आने होगी। इस से ज्यादा फर्क नहीं पड़ेगा। यह मैंने उत्तर प्रदेश के बारे में कहा है... जोकि इतना गरीब सूबा है। उस के साथ-साथ उड़ीसा, मध्यप्रदेश, बिहार और राजस्थान यह सब भी उसी हालत में पड़े हुए हैं और करोड़ों लोग मैंने आप से बतलाया, 20 करोड़ देहाती, उन में से या तो आप घटा दीजिये 10 सैकड़े के हिसाब से 2 करोड़ और 20 सैकड़े के हिसाब से 4 करोड़ हुए, तो यह 18 करोड़ या 16 करोड़ लोग सरकार के अपने आंकड़ों के मुताबिक चार आने या साढ़े तीन आने रोज पर अपनी ज़िन्दगी चला रहे हैं।

....प्रधान मंत्री ने 22 अगस्त, सन् 1960 को कहा था, कि राष्ट्रीय आय में 42 प्रतिशत और प्रति व्यक्ति आय में 20 प्रतिशत की वृद्धि हुई। फिर उन्हें बड़ा अचरज हुआ कि यह बढ़ती चली कहां गई? तो सच पूछो एक माने में वह पहले ही इसे मान चुके हैं कि उन्हें पता नहीं कि कहां चली गई यह बढ़ती। तब उन्होंने यह 14 अक्तूबर सन् 1960 को आय वितरण समिति बनाई थी। अब मेरा सवाल है कि वह समिति कहां चली गई? इस सवाल पर कुछ थोड़ी सी तफ़सील की बात मैं आगे बतलाऊंगा लेकिन पहले एक और चीज़ के ऊपर मैं आप का ध्यान खींच दूं कि हिन्दुस्तान में एक एकड़ से कम खेती करने वाले 34 सैकड़ा कुटुम्ब हैं और 14 सैकड़ा ज़मीन एक सैकड़ा कुटुम्ब के पास चली जाती है। इस आंकड़े से कुछ खतरनाक नतीजा निकलता है। मैंने तो 27 करोड़ के लिए 3 आने वाली बात कही थी। अब मैं यहां कहना चाहता हूं कि 10 से 15 करोड़ हिन्दुस्तानी सिर्फ़ 2 आने की आय पर रहते हैं। मेरे पास खत आये हैं, बहुतेरे खत आये हैं कि यह तुम ने तीन आने कह कर कैसा अन्याय कर दिया? अगर इस तरह के आंकड़े को दूसरे ढंग से भी साबित करना चाहें तो खेतिहर मज़दूरों की संख्या करीब 7 करोड़ है। इन में से 1 या आधा करोड़ घटा दीजिये जो शायद ऊंची अवस्था में हों।

फिर छोटे किसान की संख्या मालूम है, ढाई एकड़ तक के किसानों की संख्या कम से कम 15-16 करोड़ होगी। फिर कारीगरों की संख्या मालूम है। वह भी 2,3 करोड़ होगी। फिर शहर के अन्दर 20 से 25 सैकड़ा लोग ऐसे हैं जोकि बड़ी मुश्किल से ज़िंदगी बसर करते हैं। मुश्किल से क्या, वह कैसे ज़िंदा रहते हैं, मुझे नहीं मालूम। वे बेचारे पगपग

पर और झुग्गी झोंपड़ियों में रहते हैं और शहर के कूड़ेदानों पर जा कर उस में से दाने बीन बीन कर किसी तरह से अपनी जिंदगी बसर करते हैं। और जो लोग देहात से आ कर यहां आमदनी करते भी हैं, वे खुद बहुत कम खर्च करते हैं, क्योंकि अपने देहाती आदमियों को उन्हें पालना होता है। फिर आदिवासी हैं, विधवायें हैं, और अगर मैं कहूं, तो फक्कड़ साधू हैं—सरकारी साधू नहीं। इन सब को मिला कर कोई 27—30 करोड़ आदमी आ जाते हैं।

अगर इन आंकड़ों के अलावा मैं आंखों देखी हालत बताऊं, जोकि प्रधान मंत्री, योजना मंत्री और सरकार को अपने सामने रखनी चाहिए, तो वह यह है। मैंने बनारस में गाय को मुर्दे का मांस खाते देखा है इस सरकार में। मैंने उड़ीसा में, जहां मछलियां बिल्कुल नहीं रह गई थीं, बहुत मामूली थीं, सैकड़ों लोगों को जाल फैंक कर मछली पकड़ते देखा है। मैंने तामिलनाडु में सेलम में लाखों कारीगरों को दस आने, बारह आने, चौदह आने रोज़ कमाते देखा है और सुना है और अगर वह हिसाब भी लगाया जाये, तो तीन आने से कम पड़ता जाता है। इसी तरह से और जो भी हमारी जनसंख्या के छोटे वर्ग हैं, अगर हम उन की तरफ़ ध्यान देंगे, तो आमदनी उतनी ही आ जायेगी

*** *** ***

....ये खुद सरकार के ही आंकड़े हैं। इन सरकारी अंक-शास्त्रियों में कुछ होड़ भी चला करती है। एक संस्था यहां दिल्ली में ही काम करती है, जिस को कहते हैं आर्थिक जांच की राष्ट्रीय कौंसिल। उस ने 29 जिलों के नाम दिये हैं, जिस में कुछ जिले हैं—बहुत सम्भल कर बोलना पड़ता है— जो 100 रुपये के नीचे जाते हैं। दरभंगाः 96 रुपये फ़ी आदमी, सारन, छपराः 96 रुपये फ़ी आदमी, देवरियाः 98 रुपये फ़ी आदमी, टेहरी गढ़वालः 84 रुपये फ़ी आदमी। अगर वही तरीका यहां भी लागू किया जाय, जो मैंने पहले दिया था कि ऊपर के 10 सैकड़ा के लिए 50 सैकड़ा निकाल दो और अगर इस खपत जरीब के ज़रिये 20 सैकड़ा के लिए 60 सैकड़ा निकाल दो, तो फिर इन ज़िलों की आमदनी तीन आने फ़ी आदमी रोज से भी कम पड़ती है। मैंने चार के ही नाम गिनाये हैं। और इस तरह के चालीस के करीब हैं, जोकि 110,. 120 और 125 रुपये की आमदनी वाले हैं

*** *** ***

जीवन स्तर कितना नीचे गिरता जा रहा है, यह इस तेरहवें चक्र से साबित होता है कि करीब 30 सैकड़ा आबादी का खर्चा 1952 में पड़ता था 10 रुपये 28 नये पैसे—यह मैं सरकार वाले आंकड़े दे रहा हूं—और 1957-58 में वह घट कर 10 रुपये, 14 नये पैसे हो गया। प्रधान मंत्री जी अपनी किताबों को खुद पढ़ लिया करें, तो उन को पता चल जाये कि चीज़ें घटती रहती हैं। 15 रुपये, 70 नये पैसे था और तीस सैकड़ा घरों के लिए, जो घट कर 14 रुपये, 50 नये पैसे हो गया। सिर्फ 2 सैकड़ा घरों का खर्चा 43

रुपये से बढ़ कर के 48 रुपये हुआ है। यह जीवन-स्तर घटता चला जा रहा है।

जहां तक राष्ट्रीय आमदनी का सवाल है, वह पहले 7 रुपये फ़ी आदमी हर साल बढ़ा करती थी। वह अब बन्द हो गई है, ऐसा मेरा हिसाब बताता है, जो दो नये पैसे प्रति व्यक्ति होता है—दो नये पैसे फ़ी आदमी फ़ी साल, अगर इस रफ़्तार से हम लोग चलते गये, तो न जाने हम को किस किस का शिकार होना पड़ेगा, सिर्फ चीन का ही नहीं। दूसरे देशों में घाना और चीन की बात मैं खास तौर से कहूंगा, रूस और अमरीका की नहीं। घाना में करीब 30-40 रुपये फ़ी साल फ़ी आदमी के हिसाब से बढ़ रहा है और चीन 50-60 रुपये फ़ी आदमी फ़ी साल। हम क्यों बंध गये? इस का कारण यह है कि खपत का आधुनिकीकरण हमारे यहां हुआ और पैदावार के आधुनिकीकरण को किये बगैर हम ने यूरोप और अमरीका की नकल करना शुरू कर दिया। नेताओं, नगर सेठों और नौकरशाहों का जीवन स्तर तो उठता चला गया। ताकि वे यूरोप और अमरीका के बराबर आ जायें, लेकिन साधारण जनता का जीवन स्तर नहीं उठ पाया।

दो तीन लाख हर साल साहब बनते हैं, यह इस योजना का परिणाम जरूर होता है और वहां बहुत काफी हिस्सा बढ़ती हुई आमदनी का चला जाता है। मेरे हिसाब से इस वक्त पचास लाख बड़े लोग हैं और हर साल तीन लाख साहब या बड़े लोग बनते हैं। पिछले बारह पंद्रह बरस से तीन लाख साहब बड़े साहब हो गये हैं एक माने में कहा जाये तो अंग्रेजों की सरकार तो तीन लाख लोगों की सरकार थी और यह सरकार पचास लाख लोगों की सरकार है।

अगर आमदनी के आंकड़े, आय-कर, को भी आप देखें, तो पता चलता है कि 9,52,000 आदमी कर देते हैं, जिन के ऊपर दो अरब का कर है और बारह अरब आमदनी है। लेकिन हर एक जानता है कि कम से कम उतनी ही रकम और है मुनाफा की या दूसरी तरह से सुविधा वगैरह की, जोकि मंत्रियों वगैरह को मिलती है। तो सब मिला कर करीब 25 अरब रुपया है। यह 25 अरब रुपया केवल एक सैकड़ा आदमी ले लेते हैं, यह सरकारी आंकड़ों से सिद्ध होता है। मेरे आंकड़े तो खैर और ज्यादा आगे जाते हैं।

मैं समझता हूं कि आसानी से 10-12 अरब रुपया एक हिसाब से और 15-20 अरब रुपया दूसरे हिसाब से बचाया जा सकता है इस खपत के आधुनिकीकरण से, जिस से सरकार का भी काम ठीक चल सकता है, लोगों के ऊपर करों का बोझ कम हो सकता है और खेती, कारखानों का यंत्रीकरण भी ज्यादा अच्छा हो सकता है। लेकिन वह वही कर सकता है, जो इस दर्द को जाने।

यह विशेषज्ञों की सरकार हो गई है और दिशाहीन विशेषज्ञों की। कोई भी पुर्जा मंत्री को बढ़ा देता है और मंत्री बगैर सोचे समझे उस को पढ़ देता है, क्योंकि मंत्री बेचारों को कुछ पता ही नहीं होता है कि क्या खेती है, क्या कारखाने हैं, क्या राष्ट्रीय आमदनी है। मंत्रियों को खुद अपना दिमाग लगाना चाहिए। इन बातों के ऊपर सोच विचार कर उन्हें दिशा बतानी चाहिए क्योंकि अंक शास्त्री और अर्थ शास्त्री तो विषधर की तरह हैं और बीन जिस तरह की बजाओगे, उसी तरह से वह नाचने लग जायेगा और अगर बीन बजाना ही नहीं जानते हो, तो फिर नतीजा क्या निकल सकता है?

मैं दावे के साथ कहना चाहता हूं कि अगर हिन्दुस्तान की आमदनी के बंटवारे को ठीक किया गया, तो बीस रुपया हर साल की वृद्धि की जा सकती है और कोई मामूली अक्ल के आदमी भी इस काम को कर सकते हैं, लेकिन तब जब बढ़ती के सब हिस्सेदार हों।

23

व्यक्तिगत मासिक व्यय की सीमा निर्धारित करने हेतु समिति की नियुक्ति के बारे में प्रस्ताव*

"यह सभा संकल्प करती है कि सरकार को व्यक्तिगत मासिक व्यय 1500 रुपये तक सीमित करने के हेतु प्रस्ताव तैयार करने के लिए एक समिति नियुक्त करनी चाहिये ताकि विकास कार्य में लगाने के लिए प्रति वर्ष एक हजार करोड़ रुपया उपलब्ध किया जा सके।"*....   ***   ***   ***

अध्यक्ष महोदय, तीन आना बनाम पन्द्रह आना वाली बहस पूर्वार्ध थी; पहले की बहस थी, आज की बहस 1500 रु० महीने की सीमा लगाने वाली उत्तरार्द्ध की बहस है, रोग का निदान है। यह कहते वक्त एक बात मैं साफ कर दूं—रुपये का मूल्य बदलता रहता है। अगर मुझे 6 महीने पहले बोलना होता या साल भर पहले मैं एक हजार रुपया कहता और मैं यह दावा करता हूं कि मेरा सुझाव यदि लागू कर दिया जाये तो यही 1500 रु० एक महीने के अंदर-अंदर यानी सुझाव लागू होने के एक महीने के अंदर-अंदर दो हजार रुपया कम से कम हो जायेगा, यानी जो 100 रुपये है वह 125 हो जायेगा। क्योंकि रुपये का मूल्य बदलता रहता है।

सब से पहले मैं एक प्रश्न उठाना चाहता हूं। माननीय सदस्य कई बार पूछ बैठते हैं, यह हो कैसे? बात तो बड़ी अच्छी है, तो मैं जड़ में जाना चाहता हूं। कैसे यह हो? हम बहुत तरह के टैक्स लगाते हैं। एक लाख रुपए में से 92 हजार रुपया आय-कर ले लेते हैं, फिर भी नहीं हो पाया, दौलत के ऊपर टैक्स लगा दिया, फिर भी नहीं हो पाया, यहां तक कि खर्चे पर भी टैक्स लगाया, फिर भी नहीं हो पाया। मैं उदाहरण के लिये, केवल उदाहरण के लिये एक बात कहना चाहता हूं—स्रोत पर जाओ, स्रोत कहां—जहां पर लोग खर्चा कर रहे हों, ऐसी तरकीबें निकालो कि उन विलासी खर्चों को रोक दिया जाये, जैसे कि मोटरवाली बात को लेता हूं। इस समय चार लाख निजी मोटरों का इस्तेमाल अपने देश में हो रहा है अगर मान लो कि एक मोटर पर औसतन 500 रु० महीने का

* डा० राम मनोहर लोहिया ने यह प्रस्ताव 4 अगस्त, 1967 को लोक सभा में रखा। इस प्रस्ताव पर चर्चा के दौरान डा० लोहिया ने जो विचार व्यक्त किये उनके अंश यहां दिये गये हैं।

खर्चा रखा जाय, कुछ 200-300 वाली हैं, कुछ हजार दो हजार वाली हैं, अगर सब को लेकर औसतन 500 रु० रखा जाए, तो करीब 200 करोड़ रुपये की बचत हो जाती है। थोड़ी देर के लिये मान लें कि आखिर चलना-फिरना तो होगा ही बसों से या टैक्सियों से, या मान लीजिए किसी संस्था या सरकारी गाड़ियों में, तो भी 200 करोड़ रुपये की बचत इन निजी मोटरों के बंद कर देने से हो जायेगी, स्रोत के ऊपर इस तरह से पहुंचा जा सकता है।

असल में मैंने यह प्रश्न खाली इस लिये नहीं उठाया है कि हम को समाज के अंदर कोई न्याय कायम करना है। सब से बड़ी बात यह है कि जब हम अभाव को, कमी को, जब तक हम अपने यहां जो अभाव है, तंगी है, कमी है, सभी चीजों को चाहे वह अकाल के रूप में या चाहे मुफलसी के कारण है, जब तक अभाव की साझेदारी तंगी और कमी से अपने देश में कायम नहीं कर देंगे तब तक हम किस मुंह से जनता को कहेंगे कि तुम तकलीफ उठा कर इस देश को बनाओ। जो लोग इस देश का निर्माण करने वाले हैं, कानून बनाने वाले हैं, सरकार को चलाने वाले लोग हैं, यदि वे विलासिता में रहते हैं, ठाठ-बाट से रहते हैं, उन के मुंह में यह शक्ति नहीं है कि वह जनता को कह सकें कि तुम मन लगा कर और पेट काट कर के देश का निर्माण करो...

*** *** ***

हमारा देश-समाज सरकार अभिमुख है, और सरकार अफसर अभिमुख हैं, यानी जनता सरकार की नौकर है और सरकार अफसरों की नौकर है। किसी हद तक मैं सही बात कर रहा हूं...

एक करोड़ के करीब सरकारी नौकर हैं, उन में से बहुत से ऐसे हैं जो कोई भी पैदावार बढ़ाने का काम नहीं करते, कलमघिसू लोग हैं, उपजाऊ लोग नहीं हैं और यह बिल्कुल निश्चित बात है कि जैसे और देशों में पार्किन्सन नाम का नियम लागू है—हमारे देश में कुटुम्ब के कारणवश, जाति के कारणवश, प्रदेश और भाषा के कारणवश लोग खाली जगहें समाज में और सरकार में बनाया करते हैं, इसलिये नहीं कि कोई जरूरत है, बल्कि खाली जगहों का निर्माण करो, जिस में अपने कुटुम्बियों, जातिवालों, भाषा वालों को भर सको। मेरा अनुमान है कि 30-40 लाख आदमी ऐसे हैं, जिन की कोई जरूरत नहीं है, लेकिन फिर भी वह सरकारी काज काम में लगे हुए हैं, इस से कितनी फिजूलखर्ची होती है। इस का अंदाजा लगाना मुश्किल है। 30-40 लाख न सही, यदि हम 20 लाख को ही मान लें तो इन से 300 करोड़ रुपये की बचत हो जाती है।

*** *** ***

व्यवधान@

*** *** ***

जो आज भारत की छाती पर बैठे हुए मूंग दल रहे हैं यह 300 करोड़ रुपया बच सकता है लेकिन यह सरकार कुछ नहीं कर सकती, जब तक कि वे खुद अभाव और

@एक माननीय सदस्यः आपका सुझाव है कि इसको निकाल दिया जाये।

तंगी को सहने के लिये तैयार नहीं हैं और दुनिया को दिखा नहीं देते हैं कि हम भी तुम्हारी तरह से तकलीफ उठा रहे हैं। मैं इन को बरखास्त करने की बात नहीं कह रहा हूं—मैं यह कह रहा हूं कि इन सरकारी नौकरों को कलम-घिसाऊ कामों से हटा कर उपजाऊ कामों में लगा दीजिये, जिस में कि वे देश की दौलत को बढ़ावा देने के काम में लग सकें। यह काम सरकार कर सकती है, जिस के लिये कि मैं ने यह बहस यहां पर उठाई है। आज क्या हो रहा है? एक तरह से यह सरकार चलती रह गई तो हमारा देश यादवस्थली बन जायगा। आज हर एक वर्ग महंगाई भत्ता मांग रहा है। बनर्जी साहब महंगाई भत्ते की मांग को बढ़ावा दे रहे हैं, मैं उन से कहना चाहता हूं कि वह सही कदम क्यों नही उठाते, ऊपर के लोग विलासिता में क्यों रहते हैं? मैं अगर मजदूर नेता होता, तो मैं महंगाई भत्ते का बात नहीं करता. मैं यह मांग करता कि बड़े लोगों के खर्चे घटाये जायें, ताकि चीजों के दाम घट सकें और हमारा समाज अच्छी तरह से चल सके।

*** *** ***

बिरला, सरकारी नौकर जितने ये बड़े-बड़े लोग हैं, इन सब के खर्चे घटाये जायें, तभी जा कर हम अपने समाज को बना सकेंगे।

आप को मैंने रकमें बताई हैं, रकमों पर ज्यादा जोर मत देना, मैं तो बहुत डर-डर कर हजार करोड़ कह रहा हूं। लेकिन मेरा अंदाजा 1500 करोड़ रुपये का है। दो मंत्रियों ने यहां पर 25 करोड़ कहा है— एक तो श्री अशोक मेहता ने और दूसरे श्री मोरारजी देसाई ने। श्री अशोक मेहता के कभी ताजगी के दिन थे, पुष्प प्रफुल्लित हुआ था। मैं नहीं जानता श्री देसाई का फूल कब खिला था या नहीं खिला था, उन्होंने कोई निशानी नहीं छोड़ी, लेकिन श्री मेहता ने निशानियां छोड़ी हैं, और मैं एक निशानी पढ़ कर सुनाता हूं— वह यह है कि—

"In India, 0.14 per cent takes five per cent of the national income."

जिस का मतलब हो जाता है—सात लाख, यानी डेढ़ लाख परिवार कमाने वाले, 10 अरब रुपया पा जाते हैं आज की राष्ट्रीय आमदनी के हिसाब से। मैं यह मानता हूं कि उन्होंने जब यह किताब लिखी थी 1953 में तब से समानता और ज्यादा घटी है, असमानता बढ़ी है, 10 अरब रुपये से ज्यादा हो जायगी, लेकिन यदि 10 अरब ही मान लिया जाय और मेरा 1500 करोड़ रु० वाला नियम लागू कर दिया जाय, इन डेढ़ लाख कुटुम्बों पर, तो ढाई अरब रुपया खर्च होगा और 750 करोड़ रुपये की बचत हो जायेगी।

यह है श्री अशोक मेहता की ताजगी के जमाने की, जब उनकी कली खिली थी, उस जमाने की बात। अब यह पच्चीस करोड़ पर आ गए हैं। श्री मोरारजी देसाई की मुझे पता

नहीं है कि कली खिली थी। जरूर खिली होगी। लेकिन नमूना मेरे पास नहीं है, इसलिये मैं नहीं कह सकता हूं।

......अभी कम से कम मैं राष्ट्रीय आमदनी के कुल वितरण में नहीं जाऊंगा क्योंकि किस्सा लंबा हो जायगा। खाली इतना समझिये कि अगर मेरा नियम लागू कर दिया जाए तो इस व्यापारियों के चेम्बर की किताब के अनुसार भी 57 करोड़ बचता है। मैं खाली कहे देता हूं कि कितने लोग हैं, इस के बारे में आप आय-कर के जो कमिश्नर हैं उनकी किताब के आंकड़े से मेरा जवाब देंगे तो वह बिल्कुल गैर-जरूरी, बेमतलब, असंगत जवाब होगा। उसका कुछ भी मतलब नहीं हो पाता है। इसलिए कि सब लोग आयकर देते नहीं हैं। कम देते हैं। 57 करोड़ का तीन गुना कम से कम करना चाहिये। लेकिन अगर दो गुना भी आप करो तो 114 करोड़ रुपया तो ऐसा है जो उद्योगी रकम है, आमदनी उसमें से बच जाएगी, खेती वगैरह का भी उतना शामिल कर लो तो तीन सौ करोड़ इन लोगों के हिसाब से बचता है। एक-एक जगह से अगर मैं हिसाब लगा कर बताऊं तो यह साबित कर सकता हूं कि कितना ज्यादा रुपया बचता है।

एक बार बहस हुई थी। नन्दा जी बैठे हुए हैं। इन्होंने एक बात को माना था। इनके उस वक्त के मुखिया के बारे में मैं कुछ नहीं कहूंगा। इन्होंने साढ़े सात आने माना था। मोटे तौर पर आठ आना सही। मैंने तीन आना कहा था। मैं अब चार आना बढ़ाये देता हूं। अगर उस तरह से देखा जाए तो औसत आमदनी जितनी है और जो साठ सैकड़ा जनता को कम मिलता है श्री नन्दा के जब वह मंत्री थे कहने के अनुसार... तो 6000 करोड़ रुपया बच जाता है और मेरे हिसाब से नौ हजार करोड़ रुपया......

*** *** ***

......यह हो सकता है कि जो मैंने छः हजार करोड़ रुपये की बचत बताई है वह सब की सब बड़े लोगों को न मिलती हो, मध्यम लोगों को मिल जाती हो। लेकिन उस हिसाब से हजार करोड़ रुपये का जो मैंने हिसाब रखा है वह गलत नहीं होता है।

एक बार यहां पर नोबल पुरस्कार विजेता श्री पाउलिंग आए थे। उन्होंने कहा था कि हिन्दुस्तान में हालत गिर रही है। उस पर बहुत ज्यादा हल्ला मचा था। सवाल जवाब हुए थे। जवाब ठीक तरह से लोग नहीं दे पाए थे। अगर सरकार के अपने नैशनल कंजम्पशन सर्वे राष्ट्रीय खपत सर्वेक्षण को देखा जाए तो उसके अनुसार जो नीचे के बीस सैकड़ा लोग हैं, आबादी है उसके तरल पदार्थ यानी तेलों में और मीठी चीजों में कमी हुई है। यह सरकार ने खुद माना है।

हो सकता है कि मेरी बात पर कुछ लोग कहें कि तुम काम देश में कम करवा दोगे क्योंकि काम के अनुसार मजदूरी या मुनाफा मिलना चाहिये। इससे किसी को प्रेरणा नहीं

रहेगी। यदि प्रेरणा नहीं रहेगी तो कैसे काम चलेगा। ऐसे लोगों को मैं कहूंगा कि जब राजाजी बारह सौ एकड़ के मकान में रहते थे तब जितना वह काम करते थे मेरा अपना अनुमान है कि उम्र बढ़ जाने पर भी अब एक चौथाई एकड़ के मकान में रहते हुए उससे भी ज्यादा काम वह करते हैं। मैं चाहता हूं कि वह सौ बरस काम करते चले जायें। इस तरह से काम का मजदूरी और धन से ताल्लुक नहीं रहता है।

नौकरशाह और नगर सेठ के संबंध को आप जरूर जान लो। नौकरशाह अपने देश में ज्यादा हैं, नगर सेठ कम हैं। तीस लाख मान लो नौकरशाह बीस लाख मान लो नगर सेठ या बीस लाख दोनों मान लो तो बारह लाख नौकरशाह और आठ लाख नगर सेठ। ये जितने लोग हैं इन सबके बारे में कराची प्रस्ताव में जो गलती की गई है वह गलती अब हम लोगों को दोहरानी नहीं चाहिये। वह गलती यह है कि सरकारी नौकरों और मंत्रियों की तनख्वाह को तो बांध देना, कम कर देना, आदर्शमय बना देना और चारों तरफ उनके लालच का समुद्र बहा देना, सरकारी नौकरों और मंत्रियों को आदर्श के द्वीप में बैठा देना और नगर सेठों को लालच के समुद्र में बहते रहने देना। यह चीज असम्भव है। लालच के समुद्र में और सब जगह जब लगाम लगाओगे तभी जा कर सरकारी नौकर और मंत्री लोग अपने काम में ईमानदार बनेंगे और आदर्शवादी बनेंगे।

अब एक सवाल उठता है। कई लोग कहते हैं कि तुम खपत और खर्च के ऊपर क्यों जोर देते हो। राष्ट्रीयकरण की बात क्यों नहीं करते हो। ऐसे लोगों से मैं खाली इतना कहूंगा कि मेरा प्रस्ताव बहुत आगे जाता है। यह क्या चुटकुले लगाते हुए कि बैंकों का राष्ट्रीयकरण करो इस प्रस्ताव के पास होने के बाद जो लोग समझते हैं कि उनको काम करने की प्रेरणा नहीं है उन सबका राष्ट्रीयकरण हो जाता है। अगर प्रेरणा लोग समझते हैं तो हम ऐसी बात भी सोच सकते हैं। मैंने सुना है कि संतान वगैरह के मामले में आदमी जरा कुछ बहुत ज्यादा आतुर रहता है और उसकी भावनायें रहती हैं। कुछ रुपया बीस बरस तक हम उनके नाम में जमा करते रह सकते हैं। इस का कारण यह है कि मैं जो कुछ कह रहा हूं। वह केवल बीस बरस के लिए कह रहा हूं। अपना देश जब भरपूर हो जाए उसके बाद जो आपको करना हो कर लो। ये पैसे आप चाहो तो उनको दे दो, उनकी सन्तानों को दे दो। लेकिन बीस बरस तक इस तरह से जैसा मैंने बताया है काम चलाओ।

कई बार लोग कहते हैं कि तुम्हारी अपनी क्या हालत है। मैं पहले से बता देता हूं कि यह विशेषाधिकार का समाज है। मेरी तनख्वाह पांच सौ रुपये मासिक है लेकिन सुविधाओं के हिसाब से देखा जाए तो जिस ढंग का मुझे मकान मिला हुआ है और जो सुविधायें हैं उन सबको जोड़ा जाए तो ढाई हजार रुपया माहवार तनख्वाह बैठती है। जहां

मैंने अपनी बात कही वहां मैं मंत्रियों की भी कह देना चाहता हूं उनको करीब सात हजार महीना मिलती है और वह साल की जा कर एक लाख के करीब पड़ती होगी। और ठाट-बाट के क्या कहने हैं! मैंने राष्ट्रपति भवन के बारे में एक बार कहा था कि खाली लिफ्ट बदलने के लिये चालिस लाख रुपया खर्च करने की योजना बनी थी जिसमें से पांच छः लाख रुपया खर्च भी हो गया।

कहने के लिए तो राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री में से प्रत्येक पर दस, बीस, तीस लाख रुपया खर्च होता है लेकिन मैंने साबित कर दिया है कि उनमें से प्रत्येक पर कम से कम एक करोड़ रुपया साल का निजी खर्च होता होगा। इतने ठाट-बाट इतनी शानों-शौकत इतना ऐश्वर्य इतनी शौकीनी क्या हम लोग यूरोप और अमरीका की नकल करके अपने देश में पैदावार बढ़ाना चाहते हैं? अगर पहले हम बीस वर्ष तक पैदावार बढ़ा लें और उस के बाद उस ऐश्वर्य की नक्ल करें तो मुझे कोई एतराज नहीं होगा।

मैं खुद चाहता हूं कि मैं आराम से रहूं। एक रूसी से मेरी दोस्ती हो गई थी। शायद वह रूस की सी० आई० ए० वाला रहा हो। वह दिन में दो बार मेरे पास आने लग गया। यह ताशकंद से पहले की बात है। अब तो उन की शक्ल दिखाई नहीं पड़ती है। उन्होंने मुझे कहा कि तुम अपने घर में वातानुकूलित करने वाली ठंड करने वाली मशीन क्यों नहीं लगा लेते; तुम इस तरह काम कैसे कर सकते हो; मजदूरों का भला कैसे करोगे। मैंने कहा कि पहले मुझे अपने देश को तुम्हारे रूस जैसा एक आधुनिक पैदावार वाला देश बनाने दो फिर वातानुकूलित करने वाली मशीन की बात करना।

मैं यह भी कह देना चाहता हूं कि मैंने अपने प्रस्ताव में यह नहीं कहा है कि लोग अपनी चीजों को छोड़ दें। वह तो धर्म के लोग करते हैं। धर्म के लोग एक तो प्रेरणा पर काम करते हैं और दूसरे सन्तई पर काम करते हैं। राजनीति के लोगों का काम प्रेरणा पर चलता है और दूसरे विधि और कानून पर चलता है। हम लोग यहां पर कोई सन्तई करने नहीं आए हैं हम लोग विधि और कानून बनाने आए हैं ताकि करोड़ों के लिए कोई काम किया जा सके न सिर्फ एक दो चार आदमी सन्त बन कर उदाहरण रख दें और लोग कहें कि कितने अच्छे और बढ़िया आदमी हैं।

इसी लिए मैं आप को एक बड़ा भंडार बताना चाहता हूं और वह है सिंचाई वाला भंडार। मैंने एक मोटा सा हिसाब लगाया है कि पूरी खेती के लिए सिंचाई की व्यवस्था करने के लिए 40 अरब से 1 खरब रुपये की जरूरत पड़ेगी एक खरब रुपये यानी दस हजार करोड़ रुपये। मैं समझता हूं कि इतना ज्यादा सिंचाई का काम करना असम्भव है जब तक हम स्वयं सेवकी को न शामिल कर लें और वह स्वयंसेवकी भी असम्भव है

जब तक हम सारी जनता के सामने यह आदर्श न रख दें कि हम ने इस देश में अभाव की साझेदारी करनी शुरू कर दी है।

कुछ लोग यह सवाल उठायेंगे कि क्या मैं निजी धंधे और सार्वजनिक धंधे जैसे बड़े विषय के बारे में कुछ नहीं करुंगा। मैंने तो बुनियादी बात कह दी है। मैं आप से बड़ी गम्भीरता के साथ कहना चाहता हूं कि अगर इस देश को चलाने वाले लोग चाहे व निजी धंधे वाले हों और चाहे सार्वजनिक धंधे वाले इतने नादान हों कि वे कहें कि चलो कोई बात नहीं है हम अपने कारखानों का माल हिन्देशिया भेजेंगे, बर्मा भेजेंगे या और कहीं भेजेंगे और उन से चावल और गेहूं मंगायेंगे—यह बात केवल सार्वजनिक धंधे वाले ही नहीं कह सकते हैं निजी धंधे वाले भी कह सकते हैं—तो यह वही गलती होगी जो कि इस देश में पिछले बीस बरस से हो रही है यानी नाईलोन, रेयन, टेरीलीन वगैरह के न जाने कितने वाहियात किस्म के कारखाने तो बन गए और सिंचाई का काम नहीं हो पाया।

जो लोग कहते हैं कि उपभोक्ता पर छोड़ दो खुला धंधा छोड़ दो मैं उन्हें कहूंगा कि ऐसा करने का नतीजा आज हम देख ही रहे हैं। और जो लोग कहते हैं कि सार्वजनिक धंधे बनाए जायें मैं उन्हें कहूंगा कि राउरकेला और जमशेदपुर में आज कोई फर्क नहीं है। जिस तरह से लूट जमशेदपुर में है उसी तरह लूट राउरकेला में भी है क्योंकि वहां पर उसी तरह की अफसरशाही ही नौकरशाही और मज़दूरों का शोषण है और मैं तो यहां तक कहूंगा कि शायद कुछ ज्यादा है, क्योंकि वहां पर अपनी जाति और अपने कुटुम्ब के लोगों को भरने का काम चलता आ रहा है।

असल में यह मामला सम्पत्ति का है। सम्पत्ति का मोह और सम्पत्ति की संस्था, मैं समझता हूं कि संसार में अभी तक किसी व्यक्ति ने, किसी समाज ने, किसी देश में एक-साथ इन दोनों का हल नहीं निकाला है। मार्क्स साहब ने सम्पत्ति की संस्था का हल निकाला था। हमारे उपनिषदों ने सम्पत्ति के मोह का हल निकाला था। इसी तरह से हम कोई ऐसा रास्ता निकालें कि सम्पत्ति के मोह और सम्पत्ति की संस्था, इन दोनों का हल निकाल सकें, भोग की इच्छा और भोग की व्यवस्था, दोनों का हल निकाल सकें। मैंने यही बात यहां पर रखी है कि किसी तरह से भोग की व्यवस्था पर रुकावट लगाई जाये, भोग की इच्छा पर रुकावट लगाई जाये।

मैंने अपने मोटर का उदाहरण दिया है। मैं अब स्कूल का उदाहरण देता हूं। हमारे देश में पांच दस लाख बच्चे ऐसे हैं, जो बढ़िया स्कूलों में जाते हैं, जो बीस तीस पचास, अस्सी, सौ रुपये महीना की फीस देते हैं—खाली फीस, बस वाली फीस, स्कूल वाली फीस, कपड़े और खाना नहीं। अगर उस खर्च को रोक दिया जाये और ऐसे, स्कूल हो

जायें; जिनमें राष्ट्रपति का बच्चा और भंगी का बच्चा दोनों एकसाथ पढ़ने जायें, तो इससे भी कम से कम साठ करोड़ रुपये से एक अरब रुपये की बचत हो जायेगी।

अन्त में मैं यही निवेदन करूंगा कि जो बातें मैंने कही हैं, सभी माननीय सदस्य इस विषय पर बोलते हुए उन पर ध्यान दें। मैं सम्पत्ति के मोह, भोग की इच्छा, सम्पत्ति की संस्था और भोग की व्यवस्था दोनों के बारे में कह रहा हूं। मैं अपने देश के लिए एक ऐसा रास्ता निकाल रहा हूं जिस पर अभी तक लोगों ने नहीं सोचा है। माननीय सदस्य उस पर गम्भीरता से सोचें और देश का निर्माण करें।

*** *** ***

व्यवधान[क]

*** *** ***

मुझे खुशी है कि तीन हफ्ते में वित्त मंत्री जी पच्चीस करोड़ से पच्चास करोड़ तक पहुंचे। जब पहले बोले थे तब कहा था कि सिर्फ पच्चीस करोड़ बचेंगे। आज बोले तो कहते हैं कि पचास साठ करोड़ बचेंगे। इस रफ्तार से चलते रहे तो छः महीने में मेरी जगह पर पहुंच जायेंगे।

*** *** ***

व्यवधान[ख]

*** *** ***

अब कभी गर्दन आपकी पकड़ में आ जाए तो चिल्लाया कम करो। गर्दन पकड़ी गई है इस वक्त थोड़ी सी आपकी। इस लिए मैं बता रहा हूं कि पचास करोड़ पर आज आप पहुंचे हैं और सोमवार को जब आपकी और हमारी बात होगी तो शायद तीन सौ करोड़ तक पहुंच जाओगे मैं हजार डेढ़ हजार करोड़ कहना चाहता हूं। मैं सब आंकड़े दे चुका हूं। अब मैं ज्यादा वक्त खराब करना नहीं चाहता हूं।

मैं खाली एक बात कहना चाहता हूं। यह बात मैं राममूर्ति जी को और शर्मा जी को कहना चाहता हूं। मैंने जानबूझ कर खर्चा कम करने को कहा है। इसलिए कहा है कि बहुत से नौकरशाह और मंत्री लोग तनख्वाह पाते हैं तीन हजार चार हजार रुपया महीने

[क]उप प्रधान मंत्री तथा वित्त मंत्री श्री मोरारजी देसाई ने बहस में भाग लेते हुए कहा "डा० लोहिया ने जनरल बजट की सामान्य चर्चा के दौरान (7 जून, 1967) कहा था कि यदि सभी खर्चे 1500 रु० प्रति महीने तक किए जायें तो एक हजार करोड़ रुपए बचेंगे, तब मैंने कहा था "मुझे नहीं मालूम उन्हें ये आंकड़े कहां से मिले। यदि आप ये सब करें तो 25 करोड़ रुपये बचा सकेंगे।" 4 अगस्त, 1967 को इस प्रस्ताव पर बोलते हुए श्री मोरारजी देसाई ने कहा कि कुल मिलाकर 50 करोड़ भी पूरा नहीं निकलता।

[ख]श्री मोरारजी देसाई: मैंने कहा है कि ज्यादा से ज्यादा पचास करोड़। लेकिन आप उसको पकड़ न ले। यह सब कुछ किया जाए तो शायद हो सकता है।

की लेकिन सुविधायें उनकी होती हैं दस हजार, पचास हजार, अस्सी हजार और एक लाख रुपये की। आप अच्छी तरह से समझ लो कि जब मैं खर्चा कहता हूं तो मेरा मतलब तनख्वाह और सुविधाओं दोनों से है। हमारा भारत सुविधाओं का देश है। संसार में सर्वश्रेष्ठ सुविधाओं का देश है। मैंने अपनी सुविधायें खुद गिनाई हैं। मैं जानता हूं कि सुविधायें आसानी से नहीं छोड़ी जा सकती हैं। विधि और कानून पास हो जाएगा तो ये सुविधायें हम सब को छोड़नी पड़ेंगी। इसीलिए खर्चे के मामले में बात साफ हो जानी चाहिये। मेरा मतलब सुविधाओं से है तनख्वाह से है। और जिन लोगों ने यहां पर कहा है कि आमदनी के ऊपर अंकुश तो बिल्कुल साफ बात है कि जो पन्द्रह सौ रुपये मिलना है वह कुटुम्ब पीछे मिलेगा व्यक्ति के पीछे नहीं। यह राशि कुटुम्ब के पीछे खर्च करने को मिलेगी। इससे कोई तिजौरियां नहीं भरती जायेंगी। मैंने पहले ही भाषण में कह दिया था कि ज्यादा से ज्यादा सन्तान वगैरह की प्रेरणा के लिए एक आदमी को पांच सौ रुपया या हजार रुपया महीना दे दिया करो तो अलग बात है। इसका साफ मतलब होता है कि आमदनी करके अप्रत्यक्ष रूप से अपने पास रखने की इस प्रस्ताव में कोई गुंजाइश नहीं है।

हमारे कम्यूनिस्ट भाई समझने में गलती न करें? मैं एक बात साफ कह देना चाहता हूं कि मैं उस राष्ट्रीयकरण को नहीं चाहता हूं जिस के अन्दर अफसर लोग तीन हजार, दो हजार या एक हजार तनख्वाह लें लेकिन पचास हजार की सुविधायें लें। अब राष्ट्रीयकरण जिन कारखानों का हो गया है वे निजी कारखानों की तरह से ही चलते हैं। इसलिए मैंने यहां पर खर्च शब्द का प्रयोग किया है।

सोमानी जी ने अपने विचार यहां पर आज रखे हैं। आप जानते हैं कि मैं बहुत अपने ऊपर संयम रखता हूं। मिंक कोट और हीरों वगैरह की चर्चा हुई है। मैं बिल्कुल साफ बात आपके सामने रखना चाहता हूं। नौकरशाहों में और नगर सेठों में तो सदा सर्वदा का सदियों का शताब्दियों का सम्बन्ध चलता आया है। इसलिए उनको यह बात क्यों नहीं अखरेगी। बड़ी अखरेगी।

मैंने प्रेरणा की बात भी सुनी है। मुझ को गुस्सा साधारण तौर पर नहीं आता है। लेकिन मैं इसका उत्तर देना चाहता हूं। मोरारजी भाई ने अभी बताया है कि एक लाख आदमी। मान लो बीस लाख आदमी हैं, मेरे पंद्रह सौ के हिसाब से। मैं आज बहुत ही ठंडे दिल से कहना चाहता हूं कि अगर ये बीस लाख आदमी बिल्कुल खत्म हो जाएं, संसार में न रहें, उनकी प्रेरणा से भारत को कोई लाभ न मिले तो भारत कहीं ज्यादा अच्छा हो जाएगा। इन आदमियों की कोई जरूरत नहीं है। ये प्रेरणा की जो बात करते हैं, उनकी जरूरत नहीं है। बीस लाख आदमी अगर खाली पैसा खा कर और खर्च करके ही

प्रेरणा पाते हैं तो जितनी जल्दी दुनिया से इनका नामोनिशान मिटे अच्छा है। आखिर हैं तो बीस लाख ही। इस से ज्यादा नहीं है और इसीलिए मैं चाहता हूं कि कभी सोचें जो 50 करोड़ में से बाकी 20 लाख घटाने से बचते हैं 49 करोड़ 80 लाख, उन की प्रेरणा की बात भी तो सोचें। 50 करोड़ की या 49 करोड़ 80 लाख की प्रेरणाओं की बात नहीं सोचते। जो 15 सौ या चार सौ या दो सौ या आठ आने या चार आने या दो आने वाले हैं उन की प्रेरणाओं की बात भी तो सोचनी चाहिए। और इसलिए जब हीरों की चर्चा करते हैं, मैं नाम नहीं लूंगा, मेरे घर पर स्वतंत्रता वाले भी आये हैं और उन्होंने बताया है, बहुत बढ़िया बात बतायी है कि अपने देश में 8 हजार करोड़ रुपये की तो चांदी जमा है और 4 हजार करोड़ रुपये का सोना जमा है और हीरा कितने का है.. (व्यवधान)..मैं बताता हूं कि हीरे के साथ जो और चीजें हैं वह मिला कर 15 हजार करोड़ रुपये का माल जमा है। जरा सोचें उस की तरफ । बेमतलब माल जमा हुआ पड़ा है। मैं चाहता हूं कि भारत में विधि और कानून के जरिए ऐसी व्यवस्था और ऐसी संस्था कायम कर दें कि इस पन्द्रह हज़ार करोड़ रुपये को चांदी के रूप में, सोने के रूप में या हीरे के रूप में...

अब इसलिए क्योंकि कुछ बातें गलतफहमी पैदा कर सकती हैं, डाक्टर सुशीला नायर वाली बात खास तौर से और औरों ने भी उस को यहां दोहराया है, जैसे कि मैं कोई लोगों को बरखास्त कराना चाहता हूं 20 लाख सरकारी नौकरों को बरखास्त करा देना चाहता हूं। यह बात मैंने नहीं कही थी। मैंने कहा था कि इनको कलम घिस्सु कामों से हटा कर के उपजाऊ कामों में लगाओ चाहे वह खेती के हों, सिंचाई के हों, कारखाने के हों, कलम घिस्सू कामों से हटाओ तो मेहरबानी कर के.........

*** *** ***

लोगों ने कहा कि कुछ अपनी सरकारों में कुछ कर के दिखाओ । पहली बात तो यह है कि मेरी सरकार है नहीं। मेरी सरकार तो जब या तो श्री मोरारजी मेरे शिष्य बनें तब होंगी या यह लोग वहां पहुचें। इस के अलावा तो मेरी सरकार होने वाली नहीं है। और क्या तरीका कोई तीसरा बता रहे हो मोरारजी भाई? नहीं, सरकार तो मेरी है नहीं। लेकिन फिर भी मैं आप को बताऊं कि मेरे जितने भी मंत्री हैं जिन पर मेरा थोड़ा भी असर चलता है मैं उन से कहा करता हूं कि पुलिस वाले तुम्हारे साथ चलते हैं, पहरा देते हैं, किसी दूसरी जगह जब तुम जाते हो तो वह तुम को सलामी देते हैं, क्या तुम लंगुर बनाना चाहते हो? यह मैंने कई दफा भाषणों में कहा है और मुझे यह कहते हुए खुशी है कि हमारे यहां के कई मंत्रियों ने पुलिस का सम्पर्क छोड़ दिया है मैं कईयों को

मोटरों के सम्पर्क से भी थोड़ा बहुत अलग करवा पाया हूं और उस के साथ-साथ कुछ ऐसी चीजें भी करवायी हैं....

*** *** ***

एक गलती बड़ी भारी यह हो जाती है कि दो तरह के हिसाब एक साथ चलते रहते हैं। मोरारजी भाई समझते हैं कि एक लाख में से सिर्फ 8 हजार रुपया बचता है। एक लाख के बाद वाली सीढ़ी पर जब आमदनी कर लगता है लेकिन इधर दूसरी तरफ, मैं यहां वालों में से किसी का नाम नहीं लूंगा, वह लोग मुझ को बताते हैं कि कागज के ऊपर तो 8 हजार बचता है लेकिन असलियत में 50 हजार बचता है। आज यहां जितनी गलती हो रही है हिसाब लगाने में उस का कारण यह है कि कभी तो वह 8 हजार वाला हिसाब ले लेते हैं वित्त मंत्री महोदय जो कागज के ऊपर है और कभी वह 50 हजार रुपये वाला हिसाब दूसरे लोग ले लेते हैं जो कि असलियत में है। तो दोनों वस्तुओं से संबंध रखते हो। कागज वाले हिसाब को बिल्कुल खत्म कर दो।

इस के अलावा मुझे आप से यह कहना है कि कई दफा मुझे ताना मारते हैं स्वतंत्र वाले भी और कम्युनिस्ट वाले भी कि तुम्हारे विचार तो यह हैं लेकिन तुम स्वतंत्र से लेकर के कम्युनिस्ट तक को कैसे इकट्ठा कर रहे हो? क्यों नहीं इकट्ठा करूं? और जब कांग्रेस भी हमारे जितनी छोटी रह जायेगी तो कांग्रेस को भी उस के साथ ले लेंगे। मैं नहीं चाहता कि यह विराट विशाल राक्षस अपने साथ ले लूं। वह तो हम लोगों को खा जायेगा। अगर बराबरी की पार्टियां हो जायेंगी तो कांग्रेस से भी मुझ को कोई जाती दुश्मनी नहीं है और यह याद रखना मुझको गुस्सा भी आता है तो खाली एक दिन दो दिन के लिए आता है। उस से ज्यादा नहीं आया करता। तो यह जो सब को इकट्ठा करने वाली बात है आप अच्छी तरह से अध्यक्ष महोदय, समझ चुके हैं कि अगर कोई ऐसी चीज है कि जिस में किसी का साथ मिल सकता है जैसे नौकरशाहों की फिजुलखर्ची में स्वतंत्र का साथ मिल सकता है और जहां बड़े पैसे वाले पूंजीपतियों के संचय में और खर्चे में कम्युनिस्टों का साथ मिल सकता है तो मैं कोशिश क्यों न करूं कि उन दोनों का साथ जब तक हो सके चले। फिर आखिर को तो कहीं न कहीं फैसला हो ही जायेगा। मैदान में चलते चलते पल्टन में कहीं न कहीं लोग छुट जायेंगे कोई परवाह नहीं। लेकिन अगर पल्टन चलती रही तो आखिर को अपनी मंजिल पर पहुंच कर के नया हिन्दुस्तान बनाएगी।

24
भ्रष्टाचार*

*** *** ***

...दुराचार और करप्शन या भ्रष्टाचार, ये सब एक ही शब्द हैं और अब हम इस प्रश्न पर विचार करें, तो सोचें कि भ्रष्टाचार गंगोत्री पर हो रहा है, इसलिए गंगा के निचले मैदानों पर सफाई करना अब बिल्कुल व्यर्थ है। और जब गंगोत्री पर सोच-विचार करते हैं, तो मैं सभी माननीय सदस्यों से अर्ज करूंगा कि वे जरा नम्रता से बातें सुनें, गुस्सा मुझ पर न करें, गुस्सा करें उस हालत पर, जिस में आज हिन्दुस्तान सड़ता चला जा रहा है। मैं कोशिश करूंगा कि मेरा गुस्सा भी कुछ थमा हुआ रहे, लेकिन मैं चाहूंगा कि दूसरे माननीय सदस्य भी अपने गुस्से को कुछ थाम कर बैठें। अगर मेरे मुंह से कुछ शब्द निकल जायें, तो वे जरा इस बात पर ध्यान दें कि इस सड़ांध को दूर करना चाहिए...

*** *** ***

...खैर, मैं कह रहा था कि भ्रष्टाचार गंगोत्री पर है। कानून का राज्य हिन्दुस्तान में नहीं रह गया है, मनमानी का राज्य हो रहा है। नियम अच्छे नहीं हैं, या उन का पालन नहीं होता है। नतीजा होता है कि सरकार के कामों में पक्षपात भरा हुआ है। उस पक्षपात में लोगों को पैसे का फायदा होता है या नहीं, यह दूसरे नम्बर का सवाल है। पक्षपात, मनमानी, घूसखोरी और नियमों की अवहेलना, ये सब भ्रष्टाचार में समझे जाने चाहिए।

और भ्रष्टाचार है क्या? सिर्फ ईमान की कमी नहीं है, समझ की भी कमी है। मैं इस वक्त संसद् में भी इस बात की कमी पाता हूं कि लोग भ्रष्टाचार को केवल बेईमानी समझते हैं। मैं कहना चाहता हूं कि यह केवल बेईमानी नहीं है यह नासमझी भी है। आज हिन्दुस्तान और दुनिया का जो स्वरूप हो गया है, उस में जब तक हम समझ का इस्तेमाल नहीं करेंगे और यह जानने की कोशिश नहीं करेंगे कि क्या अवस्था है, जिस में भ्रष्टाचार निकलता है, क्या है भ्रष्टाचार, क्यों है, उस के कौन से कारण हैं, कहां कहां हैं, क्या उस के रूप हैं, आदि तब तक हम भ्रष्टाचार को दूर नहीं कर पायेंगे। इसी समझ के फेर को मैं अब भी सरकार में पूरी तरह से पाता हूं क्योंकि जो आखिरी तरीका सरकार ने भ्रष्टाचार को दूर करने का निकाला है, केन्द्रीय निगरानी कमीशन का, उस के क्या मानी

---

* *लोक सभा वाद-विवाद*, 21 दिसम्बर, 1963

होते हैं? यह कि जहां कहीं भ्रष्टाचार होगा, उस को केन्द्रीय निगरानी कमीशन पकड़ेगा। यह तो इलाज का तरीका है। जब कोई पाप हो जाये, तो उस पाप की सजा देने वाला तरीका है। यह तरीका अभी तक सरकार के सामने नहीं है कि भ्रष्टाचार का निरोध किया जाये, उस को रोका जाये।

भ्रष्टाचार की एक रोक की दृष्टि होती है और एक इलाज की दृष्टि होती है। मैं सब से पहली बात यह कहना चाहता हूं कि केन्द्रीय निगरानी कमीशन में रोक की दृष्टि बिल्कुल नहीं है, केवल इलाज की दृष्टि है। और यह फेल हो कर रहेगा, उस का एक बहुत बड़ा कारण मैं आप को बताये देता हूं कि जब कभी कोई बड़ा आदमी पकड़ा जायेगा, तो वह छूट जायेगा और सिर्फ छोटे-छोटे लोगों को सजा मिलेगी। तो इलाज की दृष्टि से भी यह तरीका बिल्कुल नाकामयाब साबित होगा और जहां तक रोक का सवाल है, गृह मंत्री के सामने उस का तो कोई तरीका ही नहीं है।

मैं आप को एक बात और बताऊं कि आज हिन्दुस्तान ने अच्छे-अच्छे तरीके निकाल लिये हैं— एवजी सजा तक के तरीके निकाल लिये हैं। जब शराबबन्दी के मामले को ले कर लोग गिरफ्तार हुआ करते थे तो अवैध शराब बनाने वालों ने अपने बीच में से कुछ लोगों को इसलिए निकाल दिया कि भई, पुलिस को खुश करने के लिए इतनी तादाद में तुम पकड़े जाया करो, इस से पुलिस भी खुश रहेगी, मंत्री भी खुश रहेंगे और हमारा धंधा चलता रहेगा। अगर बहुत जल्दी हुआ, तो उसी तरह की एवजी गिरफ्तारी करवा कर लोग केन्द्रीय निगरानी कमीशन को बिल्कुल थोथा और बांझ बना डालेंगे।

उस के अलावा मैं आप का ध्यान गृह मंत्री के उस बयान की तरफ दिलाना चाहता हूं, जिस में उन्होंने कहा कि साधुसन्त और जनमत तथा समाज के नेता लोग इस सवाल को ठीक कर सकते हैं और हमारे यहां जो भी भ्रष्टाचार है, उस को दूर कर सकते हैं। आखिर यह नैतिकता है क्या? क्या यह साधु-सन्तों की चीज है? आज राजनीति और आर्थिक जीवन दुनिया में इतने पेंच हो गए हैं कि यह साधुसन्तों वाला मामला नहीं रहा है कि जा कर लोगों को कहा जाय कि तुम सच्चे हो जाओ, ईमानदार हो जाओ, और उस से सब मामला सच्चा और ईमानदार हो जायेगा।

मैं तो यह कहना चाहता हूं कि जो मंत्री सब से ज्यादा सच्चाई की, ईमानदारी की, जात के खिलाफ बात करते हैं, वह सब से ज्यादा अपनी जात-बिरादरी के पक्षपात का काम किया करते हैं। और आप जानते हैं कि कौन मंत्री हिन्दुस्तान में सब से ज्यादा जात के खिलाफ बोलता है, वही मंत्री आज जात के मामले में सब से बड़ा दोषी है, यह मैं अच्छी तरह से कहना चाहता हूं।

इसलिए यह मामला समझ का है और मैं आप को समझ का एक और उदाहरण दिये

देता हूं। बहुत दिनों पहले मैं ने भी उस प्रस्ताव को माना था—तब मेरी समझ भी कुछ कम थी—कि पांच सौ रुपये महीने से ज्यादा न तो किसी मंत्री को, और न किसी सरकारी नौकर को, दिया जाये। लेकिन वकील, डाक्टर, व्यापारी और जागीरदार, इन सब की आमदनियों पर कोई रोक नहीं लगाई गई। यह कैसे हो सकता है कि चारों तरफ तो लालच का समुद्र बहता रहे और बीच में एक छोटा सा टापू मंत्रियों और सरकारी नौकरों के लिए बना दिया जाये—कर्तव्य का टापू। वह कर्तव्य का टापू बह कर रहेगा। लालच का समुद्र उस को बहा डालेगा। इसलिए यह बहुत बड़ा प्रमाण है कि यह मामला समझ का है।

इस के अलावा मैं आप का ध्यान इस तरफ भी दिलाऊं कि लोग कहने लग गए हैं कि भ्रष्टाचार तो जीवन का अंग बन गया है और मैं फिर बड़ी नरमी से—अभी मेरे मुंह से शब्द निकल रहे थे "मेरे पुराने कांग्रेसी साथियों से", लेकिन दिमाग नहीं कहता कि मैं उन शब्दों को कह दूं, दिमाग नहीं कहता, मन कभी कभी फिसल जाता है—यह अर्ज करूंगा कि जरा सोचो कि गांवों में जा कर क्या क्या प्रचार किया करते हो। यह कि हमारा पेट तो भर चुका है और अगर आप उन को वोट दोगे, जिन का पेट खाली है, तो वे आ कर पेट भरेंगे। गांव वाले सोचते हैं, "हां, भई, बात तो सही है, न कांग्रेस वालों ने खा खा कर अपना पेट भर लिया है। अगर किसी और पार्टी को लायेंगे, तो वह नये सिरे से खायेगी। इसलिए अच्छा है कि इन घूसखोरों को ही सरकार में रहने दो।" यह हंसने की बात नहीं है। यह इतनी लज्जा की बात है। मेरा मन भी व्याकुल हो जाता है कि सारे हिन्दुस्तान को आज भ्रष्टाचार का पाठ पढ़ाया जा रहा है निर्वाचनों के जरिये।

उस के अलावा एक बड़ा भारी सिद्धान्त निकाला गया। अर्थ-शास्त्रियों ने निकाला, हिन्दुस्तान के अर्थ-शास्त्रियों ने कि जब कभी कोई पिछड़ी आर्थिक व्यवस्था तरक्की करेगी, आगे बढ़ेगी, माल ज्यादा होगा नहीं, पैदावार के ढंग पुराने होंगे, तो उस में भ्रष्टाचार लाजिमी है। मैं समझता हूं कि बात तो मैंने बिल्कुल साफ कह दी, लेकिन चूंकि अंग्रेजी को कम जानने वाले लोग हिन्दुस्तान में बहुत ज्यादा हैं, इसलिए वे "डेवेलपिंग इकानोमी" कहा करते हैं—कहा करते हैं कि डेवेलपिंग इकानोमी में तो भ्रष्टाचार आवश्यक है। मैं कहना चाहता हूं कि यह बिल्कुल झूठा सिद्धान्त है। अगर कोई आर्थिक व्यवस्था सुधरनी है, जोकि कमजोर है, पिछड़ी है, तो उस में भ्रष्टाचार बिल्कुल नहीं रहना चाहिए और उस का एक नमूना मैं आप को दिये देता हूं। हालांकि महात्मा गांधी का देना चाहिए, लेकिन मैं रूस का देता हूं।

रूस ने लगातार चालीस, पचास बरस तक इस बात का ख्याल नहीं किया कि उस के यहां इस्तेमाल की चीजें कैसी बनती हैं। उस्तरा वे ऐसा बनाते थे कि जिस से दाढ़ी

बनाते हुए छिल जाये। विदेशी लोग वहां की यात्रा कर के आ कर कहते थे कि रूस में तो खपत की चीजें बहुत खराब है। लेकिन वे अपनी पैदावार की बुनियाद को बना रहे थे, खपत में अपने पैसे को बरबाद नहीं कर रहे थे। इस तरह से अगर हम भी अपने देश में खपत के ऊपर जोर न दे कर के पैदावार पर जोर दें तो यह भ्रष्टाचार का मामला इतना किसी भी सूरत में नहीं बढ़ सकता था।

सिंहासन और व्यापार के सम्बन्ध की तरफ भी मैं आप का ध्यान खींचूंगा। यह संबंध जितना हिन्दुस्तान में दूषित, भ्रष्ट, बेईमान हो गया है, उतना दुनिया के इतिहास में कभी नहीं हुआ है। व्यापार और सिंहासन का सम्बन्ध अमरीका इंग्लिस्तान, जर्मनी आदि किसी भी देश में इतना नहीं बिगड़ा जितना यहां बिगड़ा है। सिद्धान्त बतलाने के बजाय मैं आपको एक मिसाल देता हूं। नेशनल मोटर्ज पंजाब की एक कम्पनी है। उस कम्पनी को चलाने वाला मंत्री का बेटा है। उसे सरकार से लाइसेंस, सरकार से कोटा आदि मिल जाया करता है। वह पैसा बनाया करता है। जब सवाल उठता है तो कहा जाता है कि तुम इस उदाहरण को क्यों लाते हो, क्या पंजाब के मुख्य मंत्री ने कहीं किसी से सिफारिश की है कि तुम मेरे बेटे के लिए फलां फलां लाइसेंस दो, कागज़ दिखाओ कि उसने ऐसा किया है, दूसरी बातें बतलाओ। मैं एक विशेष बात कहना चाहता हूं। हमें केवल यह देखना है कि क्या किसी बेटे या बेटी या रिश्तेदार ने तथा मेरी तो यह राय है कि दो पीढ़ी तक के रिश्तेदारों ने, उनके सम्बन्धी के सिंहासन पर बैठने के कारण कोई लाभ उठाया है या नहीं। आज हिन्दुस्तान में यही कसौटी रहनी चाहिये कि सिंहासन पर बैठे हुए लोगों की मदद ले कर के क्या किसी ने लाभ उठाया है व्यापार में।

और कसौटी मैं आप के सामने रखना चाहता हूं। बहुत ज्यादा कहा जाता है कि क्या मंत्रियों के बेटे नहीं हैं? इस का पहला जवाब तो यह है कि क्या दूसरों के बेटे नहीं हैं, क्या खाली मंत्रियों के ही बेटे हैं जो हमेशा-हमेशा हर तरह से फायदा उठाते रहेंगे। लेकिन आज की स्थिति में हमारी आर्थिक व्यवस्था में, एक हिस्सा है होड़ वाला, खाली होड़ वाला और दूसरा हिस्सा है, परमिट, कोटा, लाइसेंस इत्यादि वाला। इन दोनों में हमें अन्तर करना सीखना चाहिये। स्वतंत्र देशों की बात कही जाती है, जर्मनी, इंग्लिस्तान वगैरह की बात कही जाती है, जो खाली होड़ वाले हैं, ज्यादातर खुला होड़ वहां होता है, सरकारें कोई दखल नहीं देती हैं। ज्यादातर वहां यही स्थिति है। अगर यहां पर मंत्रियों के बेटे ज्यादा अक्लमन्द हैं बेटियां ज्यादा अक्लमन्द हैं और इस में मैं उनके रिश्तेदारों को भी शामिल करता हूं तो उन्हें खुले व्यापार की होड़ में डाल दो और अगर तब कोई उस का लड़का तरक्की कर सके तो करे। लेकिन ऐसा कोई व्यापार जहां पर कि मंत्री को कोई कोटा या परमिट या लाइसेंस देना पड़ता हो, उस में मंत्री के दो पीढ़ी तक के रिश्तेदारों

को बिल्कुल नहीं आना चाहिये। जब तक यह सिद्धान्त आप नहीं अपनाते हैं, तब तक सिंहासन और व्यापार का सम्बन्ध बिगड़ा हुआ ही रहेगा।

अब मैं दूसरी चीज़ नौकरी के बारे में कहता हूं। कोई भी सिंहासन पर बैठा हुआ आदमी अपने रिश्तेदारों को ऊंची ऊंची नौकरियां न दिलवा सके, इस के बारे में भी कोई तरीका निकाला जाना चाहिए। आप इसका भी सबूत पूछेंगे। सबूत यह है कि उसको और तरीके से वह नौकरी नहीं मिलती है, पहले नहीं मिली थी, ज्यों ज्यों अब्बा जान तरक्की करते हैं, अपने मंत्री पद में, त्यों त्यों बेटा जान भी तरक्की करते हैं व्यापारी महकमे में। यह इतना बड़ा सबूत है कि इस को झुठलाया नहीं जा सकता है। इस सम्बन्ध में भी कोई नियम अच्छी तरह से बना दिया जाना चाहिये...

*** *** ***

मैं अर्ज़ करूं कि मैं पुराने हिन्दुस्तान की आखिरी राजधानी का नुमाइंदा हूं। पुराने हिन्दुस्तान की आखिरी राजधानी जिस को कन्नौज कहा जाता था, उस के नुमाइंदे की हैसियत से मैं इस नई राजधानी के मुताल्लिक कुछ साहित्यिक शब्द कहने वाला था लेकिन मुझे डर लग रहा है कि शायद ठीक समझें या न समझें।

*** *** ***

दिल्ली की राजधानी बहुत नई है, कुल सात आठ सौ बरस समय की सब से खूबसूरत कुलटा है। इस में कोई सन्देह नहीं है क्योंकि वह कभी भी विदेशी हमलावरों के सामने टिक नहीं पाई। सात आठ सौ बरस का इतिहास राजधानी का है, इसको मैं संदेश देना चाहता हूं। कन्नौज से अभी मैं आया हूं, उसको देख कर आया हूं। वहां नाला था। उससे पानी बहा करता था, गन्दगी हट जाती थी, बरसात या बाढ़ के मौके पर लोगों को तकलीफ नहीं होती थी, 1 नाला कोई छः सात सौ साल बरस पुराना है। वह अब नाला भर गया है, समय ने नुकसान किया है। मिट्टी आ गई है। साथ ही एक नुकसान यह भी हुआ है कि ५०-६० आदमियों ने वहां की जमीन पर अवैध कब्जा कर लिया है, खेती करने लग गए हैं, कुछ सब्जी वगैरह बोने लग गए हैं। इस लिये मैं निवेदन करूंगा कि मामला एक तरह से हजार डेढ़ हजार बरस के रोग का है और दूसरे पन्द्रह बरस के कोढ़ का है डेढ़ हजार बरस का जो रोग है, मैं चाहता हूं कि हमेशा उसी के बारे में ज्यादा बोलूं क्योंकि यह जो पन्द्रह बरस वाली चीज यह तो केवल वक्ती चीज़ है। वे सब मंत्री प्रधान मंत्री, मुख्य मंत्री आते जाते रहते हैं, करोड़ों की तादाद में आते जाते रहते हैं। मैं अपने मन को कभी कभी अच्छी तरह से रोक नहीं पाता हूं। उसका कारण यह है कि वक्त कम देते हैं वर्ना अभी तक डेढ़ हजार बरस के रोग का इलाज जोकि आज इस पन्द्रह बरस के कोढ़ में जा कर जमा हुआ है, उसको मैं विस्तार से बताता कि डेढ़ हजार बरस वाला रोग क्या है? हिन्दुस्तान एक घर नहीं है, एक हजार या दस हजार घर बन चुका है। जितनी जातियां है, उन में लूट मची हुई है, उन जातियों की अपनी अपनी

सोचने की दृष्टि हो गई है, उनका स्वार्थ, उनका न्याय, उनका सोचना, उनका विवेक आदि जो है, इन सब का मतलब बदल गया है। सोचने और बोलने की भी दीवाल, इंसाफ और नाइंसाफ के बीच की दीवाल, ईमानदारी और बेईमानी के बीच की दीवाल ऐसे वक्त में गिर जाया करती है, जहां अपने खुद के घर का सवाल उठता है। इन दस हजार घरों में यह हिन्दुस्तान लुटा हुआ है, पिछले डेढ़ हजार बरस से लुटा हुआ है। जब तक आप फर्क नहीं करेंगे तब तक भ्रष्टाचार बन्द नहीं हो सकता है क्योंकि हर आदमी सोचेगा कि मैंने अपनी जात, अपनी बिरादरी, अपने बेटों आदि के लिये कुछ किया तो इस में क्या बुरा किया, अच्छा ही किया। हमारे पुराने जो ग्रन्थ हैं, मैं उनका नाम नहीं लूंगा। उन से यह परम्परा चली आई है कि अगर कोई आदमी बड़ी जगह पर पहुंच जाए तो अपने लोगों को फायदा पहुंचाये। अभी तक वह चीज़ चली आ रही है।

उसी के साथ साथ मुझ पर लांछन लगाया जाता है। आपने देखा होगा कि मैंने प्रधान मंत्री के बारे में कुछ नहीं कहा है और बहुत कम मैं कहा करता हूं। लेकिन जब मुझ पर लांछन लगाया जाता है तो मैं वक्ती बात उठाता हूं। बड़े अदब के साथ मैं कहना चाहता हूं कि मैंने अपनी सारी जिन्दगी में माननीय प्रधान मंत्री के बारे में एक भी वैयक्तिक बात नहीं उठाई है। हमेशा वह बात उठाई है जो शासन से सम्बन्ध रखती है। अब अगर उनके शासन काल में उनके कुटुम्ब, उनकी बिरादरी के लोग हमेशा तरक्की पाते रहें तो यह वैयक्तिक चीज़ नहीं, यह सार्वजनिक चीज़ है। इसके जवाब में कह दिया जाता है कि क्या करें अगर उन में योग्यता है तो। अगर आप प्रधान मंत्री होते तो इस वक्त सब से ज्यादा योग्यता कहां होती। अगर वित्त मंत्री प्रधान मंत्री बन जायें, जैसे अभी भी कभी कभी सुना जाता है कि शायद हो जाएं तब आप देखेंगे कि हिन्दुस्तान के सब से ज्यादा योग्य आदमी तमिल, अयंगार हो जायेंगे, इस में कोई सन्देह नहीं है। इस तरह से योग्यता की कसौटी अपने देश में चलती रहती है। जब कोई बड़ा आदमी उससे भी बड़ी जगह पर पहुंच जाता है तो उसके कुंबे के सारे लोग, बिरादरी के सारे लोग इतने लायक बन जाते हैं कि उनके सामने कोई टिक नहीं पाता है, बाकी लोग कोई हैसियत ही नहीं रखते हैं। यह जो सिलसिला है इसको हमें बदलना पड़ेगा। जब तक हम चार हजार या दस हजार घरों की अलग अलग दीवालों को नहीं तोड़ेंगे तब तक भ्रष्टाचार खत्म होने वाला नहीं है।

एक तरफ तो जबर्दस्त भूख है। साढ़े ४३ करोड़ लोगों की भूख है और दूसरी तरफ पचास लाख लोग यूरोप और अमरीका की नकल करते हुए लगातार अपने जीवन स्तर को बढ़ाने की सोचते हैं, आज हिन्दुस्तान का क्या आदर्श बन गया है। कुर्सी बढ़िया लो, फर्नीचर बढ़िया लाओ। ये कह देते हैं कि फलां के यहां चूंकि बड़ा बढ़िया सोफा देखा

है, यहां क्यों नहीं आ जाता है। जब मंत्रियों और उनकी बीबियों के मन में ऐसे विचार बनते और पनपते रहेंगे तो कहां से सदाचार कायम रह सकता है। एक तरफ साढ़े ४३ करोड़ की भूख, इतनी जबर्दस्त भूख कि उस के सामने ईमानदारी और बेइमानी कुछ नहीं रह जाती। मै आप से कहना चाहता हूं कि दो पैसे और चार पैसे के लिये साढ़े ४३ करोड़ भी बेईमान हो सकते हैं लेकिन ५० लाख लोग लाखों करोड़ों लोगों के लिये बेईमान होते हैं। एक तरफ तो ऐसे लोग हैं जो अपनी तन्ख्वाह से सौ गुना, पांच सौ गुना ज्यादा खर्च किया करते हैं और दूसरी तरफ मैं समझता हूं कि प्रशासन में लगे हुए जितने भी आदमी हैं वे कम से कम चौगुना अपनी तन्ख्वाह का खर्च किया करते हैं। इस तरह से यह जरूरी हो गया है कि हम ने पन्द्रह वर्षों में जो कोढ़ इक्ट्ठा किया है उस को हम धोयें......

*** *** ***

...जरूरी हो जाता है कि हम इन दोनों अवस्थाओं का इलाज निकालें। एक तो महान गैरबराबरी, ऐसी भूख जो लोगों को बेईमान बनाती है और दूसरी जीवन स्तर को लगातार ऊंचा करते रहने की इच्छा जो लोगों को बेईमान बनाती है। मैं कहना चाहूंगा कि ज्यादा ध्यान देना। मैं सदन के सदस्यों से कह रहा हूं, आप तो ज्यादा ध्यान दीजियेगा ही। महात्मा गांधी का युग तो सादगी और कर्तव्य का युग था,. माननीय प्रधान मंत्री का युग फैशन और विलासिता का युग है। इन पचास लाख लोगों के लिये आप इस बात का ख्याल नहीं करते कि सारे देश की सामान्य अवस्था क्या है। जब केवल योरोप और अमरीका के जीवन स्तर की नकल किया करते हैं, जब इस बात को नहीं सोचते कि योरोप और अमरीका ने अपना जीवन स्तर, आज वाला, हासिल किया है ३०० वर्षों की लगातार मेहनत से, अपनी खेती और कारखानों को सुधार कर, अपनी पैदावार को बढ़ा कर, बिना पैदावार बढ़ाये हुए हम उस खपत की जब नकल करते हैं तो भ्रष्टाचार आवश्यक हो जाता है। इस लिये यह दो खास बातें मैं आप के सामने रखना चाहूंगा।

इसी तरह से इस सरकार ने सत्य का मुंह हिरण्य के पात्र से ढंक कर रक्खा है। मैं इस तरह दो या ढाई हजार वर्ष पुराना शब्द इस्तेमाल कर रहा हूं। सत्य का मुंह सोने के बरतन से ढक कर रखा गया है। आप देखेंगे कि जीवन की हर एक दिशा में चाहे वह सेवक हों, चाहे साधु हों, चाहे वह सुधारक हों और चाहे एकेडेमी वाले हों, चाहे और किसी पढ़ाई लिखाई के दायरे में हों, जो लोग मंत्री नहीं बन सकते या बनना नहीं चाहते, उन लोगों का मुंह आधा या पूरा बन्द रखने के लिये सरकार बहुत ज्यादा रुपया खर्च किया करती है। मेरा अनुमान है कि पंचवर्षीय योजना और सरकार से सम्पूर्ण खर्च में से जो कुल ५० अरब रुपया साल भर में है, यह सरकार कम से कम २ अरब रुपया केवल सत्य का मुंह सोने से ढकने के लिये खर्च किया करती है। अगर उन का मुंह बन्द न

किया गया होता, तो मेरी बातें जल्दी फैलतीं। उन के ऊपर विवाद होता, उन पर सोच विचार होता। लेकिन चारों तरफ से विचार का गला घोट दिया जाता है क्योंकि यह लोग खुश रह जाया करते हैं।

*** *** ***

...सच बोलना तो बहुत जरूरी होता है। उस के बिना सदाचार आ ही नहीं सकता। सच बोलना आज राजनीति में प्रायः खत्म हो रहा है। मान लीजिये मैं किसी चीज़ में फंस गया हूं और अगर मैं सच बोलूं तो मेरी गलती सामने आ जाये, तो अपनी गलती को छिपाने के लिये मैं झूठ बोल कर अलग हट जाना चाहता हूं। लेकिन झूठ बोलना एक फंसान हो जाता है। समझ लीजिए कि मुझे वाशिंगटन पहुंचना है सोमवार को सुबह, दस बजे। लेकिन मैं देखता हूं कि मैं वहां पहुंच नहीं सकता हूं, और यह कह कर एक फंसान निकाल सकता हूं, तो झट से कह देता हूं कि मेरी वहां जाने की इच्छा थी लेकिन जा नहीं सकता था क्योंकि मेरे पास कोई साधन नहीं थे। लेकिन आम तौर से जो झूठ बोला करता है वह ऐसी बात कहता है कि उसी में वह फंस जाया करता है, क्योंकि वाशिंगटन और लन्दन में कम से कम पांच घंटे का समय भेद है। जब मैं यह कह दूं कि मैं लन्दन तो सुबह पहुंच जाता तो उस के साथ मैंने यह भी कह दिया कि मैं वाशिंगटन भी उसी वक्त पर पहुंच जाता...

*** *** ***

......मैं प्रधान मंत्री जी के बारे में आप से बतलाना चाहूंगा। यह समझ का फेर नहीं। वह जरा मेरी बात पर ध्यान दें, मुझ पर गुस्सा न करें और मेहरबानी कर के अपनी तीन मदों के खर्च को वे अच्छी तरह से समझ लें। एक तो अनुदान की मद, दूसरी कोष की मद और तीसरी निधि की मद, जो अनुदान विभिन्न मंत्रालय दिया करते हैं। मैं खाली इतना कहना चाहूंगा कि अगर माननीय गृह मंत्री एक बार प्रधान मंत्री के घर में जा कर देख लें कि अनुदानों से क्या क्या मिला करता है तो उन्हें पता चलेगा कि जो दूसरे मंत्री और मुख्य मंत्री लोग और किसी जरिये से हासिल करते हैं वह प्रधान मंत्री कायदे के मुताबिक हासिल कर लेते हैं। इस के अलावा मैं आप से यह भी अर्ज करूं कि जो कोष हैं, जैसे कि प्रधान मंत्री का राहत कोष है, पिछले दस पन्द्रह वर्षों में उस में से डेढ़ करोड़ रुपया खर्च हुआ। उस के लिये कोई नियम नहीं है इस लिये खाली उन की स्वेच्छाचारिता चलती है। यह जवाब उन्होंने सदन में दिया था। ऐसे कोषों का इस्तेमाल कर के कोई भी आदमी अपनी राजकीय स्थिति को सुधार सकता है। अगर मेरे पास उस का सौवां हिस्सा भी हो जाए तो मैं आप से अदब से कहना चाहता हूं कि मेरे चारों तरफ भी न जाने कितने प्रकार के लोग होते और मेरी शक्ति भी कुछ बढ़ी हुई होती। राजनीतिक शक्ति को बढ़ाने का यह जरिया है....

......मैं आपको एक दिल का दर्द बता दूं, और वह यह कि लोक सभा में इस के

ऊपर विचार होना चाहिए था—यह आप देखें कि नियमों को किस तरह से इस्तेमाल करना है—कि हिन्दुस्तान के आगे आज एक भयंकर खतरा खड़ा हो गया है। यह संसदीय सदाचार है। हमारे दोनों मोर्चों पर तनाव बढ़ गया है। लेकिन लोक सभा के इस सत्र में खाली एक तनाव की बार-बार चर्चा हुई है। सरकार के हाथ में यह जरिया रहता है कि जो चाहे अखबारों को खबर देती रहे। वह उनको कत्लों की, डकैतियों की, लूट की, गोलीबारी की खबरें दे कर जनता को उत्तेजित करती है। पाकिस्तान की सरकार तो पाजी है ही, लेकिन अगर हिन्दुस्तान की सरकार भी इन सब बातों को नहीं सोचती और ऐसी संसदीय हालत पैदा कर देती है तो यह अच्छा नहीं हुआ करता । यह भी नियमों की बात है।

इसी तरह से मैं आप से अर्ज करूंगा। मुझे तो खैर कोई ताकत की जगह पसन्द नहीं है। लेकिन अगर सचमुच कोई केन्द्रीय निगरानी कमीशन—सच्चा कमीशन—बनाया जाए जिसको वह अधिकार मिले कि वह दो चेतावनियां देने के बाद उसी ढंग के भ्रष्टाचारी मामले में हर किसी को गिरफ्तार कर सके—अध्यक्ष महोदय मैं "हर किसी को" कह रहा हूं—चाहे वह मुख्य मंत्री हो या प्रधान मंत्री हो या कोई हो, और यह अख्तियार मिले कि हिन्दुस्तान की आर्थिक व्यवस्था को अज़सरेनों बदल सके, जो महान गैर-बराबरी इस देश को खाए जा रही है, उसको खत्म कर सके, खपत के ऊपर ध्यान न देकर पैदावार पर ध्यान दिया जाए, तो मैं आपसे निवेदन करता हूं कि दो वर्ष के अन्दर अन्दर मैं तो क्या माननीय महावीर त्यागी जी भी हिन्दुस्तान से भ्रष्टाचार को खत्म कर सकते हैं, लेकिन श्री नन्दा कभी भी नहीं खत्म कर सकेंगे यह बिल्कुल तै बात है।

मैं यह भी कह दूं कि पंचवर्षीय योजना, जिसके तहत २७ करोड़ आदमी सिर्फ तीन आने रोज पर रहते हैं और साढ़े १६ करोड़ आदमी एक रुपए औसत पर, तो मैं सात बरस के अन्दर अन्दर २७ करोड़ को तो आठ आने रोज पर ले आऊंगा और इन साढ़े १६ करोड़ को कम से कम डेढ़ या पौने दो रुपए रोज पर ले आऊंगा।

25
छात्र आंदोलन*

अध्यक्ष महोदय, दो दिन पहले दिल्ली विश्वविद्यालय के पांच विद्यार्थी जेल से रिहा कर दिए गए। उनका मुकदमा खत्म हुआ। उसका कारण था कि दिल्ली के कालेजों में हड़ताल होने की संभावना बढ़ने लगी थी। ठीक उसी जुर्म में पकड़े हुए उड़ीसा, बंगाल, उत्तर प्रदेश और गुजरात के विद्यार्थी अभी तक जेल में हैं...

***　　***　　***

उनका मुकदमा हो नहीं रहा है। पेशियां बढ़ती जा रही हैं। शायद सरकार कहेगी कि मैजिस्ट्रेट नहीं करें तो हम क्या करें लेकिन बात असल में यह नहीं है। सरकार खुद पेशियां उनके मामले में बढ़वाती है और दिल्ली के विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों की दनादन पेशी कर के उन को रिहा कर देती है। तो दिमाग पर क्या असर पड़ता है कि यह दुनिया ताकत, मनमानी और स्वेच्छाचारिता की दुनिया है, कानून की दुनिया नहीं। इसी तरह से जब हम लोग परसों जेल से छूटे रात के नौ बजे तो तीन आदमी हमारे साथ छूटे थे, जनेसर मिश्र, सत्यदेव त्रिपाठी और रामआसरे वर्मा, जो अपने अपने विश्वविद्यालय यूनियनों के सभापति रह चुके हैं उनको जेल के फाटक पर नजरबन्दी कानून के मातहत गिरफ्तार कर लिया गया। मैं समझता हूं कि ऐसा अट्टहास और खिलवाड़ करना नहीं चाहिए। कम से कम इतना तो हो कि जिसको नजरबन्दी में गिरफ्तार करना हो, उसको जेल में ही रखे रहे। एक तरफ कहें कि छूट गए, दूसरी तरफ नजरबन्दी का वारन्ट दे दें, जेल के फाटक पर ले आवें, हंसी करें, खेल करें आखिर क्या दिमाग पर असर पड़ता है इन जवान लोगों के और असल बात यह है कि आज समाज के बारे में लोगों के मन में कोई तसल्ली नहीं रह गई है। न्याय नहीं है। कैसे यह समाज टिका हुआ है, किस आधार के ऊपर, इसके बारे में किसी तरह की भी भावना नहीं है। अब अगर साधारण विद्यार्थी तीसरे दर्जे में पास होकर अथवा दूसरे दर्जे में पास होकर विश्वविद्यालय और कालेज में भर्ती नहीं हो सकता लेकिन मंत्रियों के लड़के, लड़कियां फेल होकर भी और मैं यहां श्रीमती रेणु चक्रवर्ती की बात में सुधार करना चाहूंगा, इसलिए नहीं कि वह ऊंचे पास करते हैं बल्कि फेल होकर भी यूरोप और अमरीका जाकर शिक्षा पा सकते हैं तो

*लोक सभा वाद विवाद, 24 नवम्बर, 1966

विद्यार्थियों के दिमाग पर क्या असर पड़ेगा। इस दुनिया में न्याय नहीं रह गया है। इस दुनिया में मनमानी और स्वेच्छाचारिता है और जब परीक्षाओं के परिणाम निकलते हैं, किसी भी सभ्य देश में दस प्रतिशत से ज्यादा परीक्षाओं के नतीजों में विद्यार्थी फेल नहीं किया करते। यही एक अभागा देश है, जहां पचास प्रतिशत और उस से भी अधिक विद्यार्थी फेल हुआ करते हैं, क्या होता है? नन्हें विद्यार्थियों के कोमल हृदयों के ऊपर किस तरह की छाप लगती है? इतनी मेहनत की, इतने बरस पढ़े और फिर भी फेल कर गये। अगर हम लोग उनकी जगह पर बैठे हों, तब समझ में आये कि जो कुछ आज हो रहा है, वह कुछ नहीं हो रहा है। उसी तरह से विद्यार्थियों के खाने पीने के, रहने के, और दूसरे कई मामले हैं।

काशी विश्वविद्यालय आज इस सरकार का अपना विश्वविद्यालय है। 18 वर्ष पहले 8 हजार विद्यार्थी वहां पर पढ़ते थे, सारे देश की आबादी बढ़ गई, ऊंची शिक्षा पाने की इच्छा बढ़ती जा रही है, लेकिन वहां आज भी विद्यार्थियों की संख्या 8 हजार है। और कहीं सरकार परिवार नियोजन कर पाई है या नहीं लेकिन कम से कम काशी विश्वविद्यालय में परिवार नियोजन बहुत ठाठ से किया हुआ है वहां पर लोग पढ़ नही पाते हैं । गरीब इलाका है। अगर यह सभ्य सरकार होती तो आज काशी विश्वविद्यालय में कम से कम 25 हजार संख्या विद्यार्थियों की होती। फिर ये कहते हैं कि हम वहां ऊंची शिक्षा रखे हुए हैं। क्या शिक्षा है? कहां हैं हमारे गणितज्ञ, हिसाब लगाने वाले वैज्ञानिक? मैं ज्यादा आंकड़े न देकर खाली इतना ही बताऊं कि रूस और अमरीका की आबादी में एक हजार के पीछे 20 से 25 विद्यार्थी कालिज और विश्वविद्यालय की शिक्षा पाते हैं। जब कि हमारे देश में 4 से 5 और जिन इलाकों में विद्यार्थियों की गड़बड़ ज्यादा हो रही है वहां 4 और उड़ीसा और आन्ध्र में हजार के पीछे मुश्किल से एक या डेढ़ विद्यार्थी कालिज और विश्वविद्यालय की शिक्षा पाते हैं। जो गरीब हैं उनको और रगड़ो, उनको और गरीब बनाओ, जो बेपढ़े हैं उनको और बेपढ़ा बनाओ। आखिर इस सबका मन पर क्या असर पड़ेगा, मन कुबलता चला जायेगा।

20 साल से विद्यार्थियों को थाम कर रखा, युवक-आयोजन या त्योहार मना कर, साल में एक या दो बार मनाते हैं। भरत नाट्य और कत्थक नृत्य कर के मैं इसके पक्ष में हूं, नाच और गाने खूब हों, नाच ज़रा जम कर हों और दोनों मिल कर नाचें, अलग-अलग क्यों नाचें, लेकिन अगर यह कार्यक्रम, सांस्कृतिक कार्यक्रम दिमागी कार्यक्रम को बदल कर, हटा कर होता है तो फिर नुकसान उठाना पड़ेगा और आज हम वह नुकसान उठा रहे हैं। यदि मार्क्सवाद, समाजवाद, राजनीतिक सिद्धान्तों के ऊपर चर्चा और विवेचन खूब खुल कर इन पिछले 20 वर्षों में हुआ होता, तो ऐसी बात नहीं होती, लेकिन ऐसा क्यों करते, घबराहट जो थी।

आज करोड़पति अरबपति हो रहे हैं जो सरकार से चिपके हुए हैं। उनके मामले आते हैं, खोले जाते हैं लेकिन उस के बाद भी कुछ नहीं होता। अभी इस दफा मैं कलकत्ता गया था, एक हजरत जिनका मामला यहां बहुत दफा खुला, उनका महल और बढ़ रहा है, होटल और बन रहा है, तब दिमाग में आया कि अगर कोई जवान आदमी इसको देखे तो क्या कहेगा—कहेगा कि भाई खूब बेइमानी करो, खूब पैसा बनाओ, खूब बड़े बनते चले जाओ, इस समाज का सार नहीं रह गया है, निस्सार संसार होता चला जा रहा है।

उसी तरह से आज मंत्री होते हैं—जरा इस बात को सोचो, अगर बस और मोटर जलती है, मैं इनका जलना पसन्द नहीं करता, लेकिन कभी सोचा इस बात पर कि ये मोटर चलाने वाले लोग, जब कहीं सड़क का एक कोना पार करते हैं तो मालूम पड़ता है कि जैसे कोई कवायद कर रहे हैं कि किस तरह से कीचड़ उछाली जाय, इस तरह तेजी से मोटर चलाते हैं, कि पैदल चलने वालों पर बरसात का जमा पानी और कीचड़ उछल कर गिरता है—तो सभापति महोदय, आखिर यह वैमनस्य होकर रहेगा या नहीं। आज यह वैमनस्य या अदावत थोड़ी बहुत सामने आ रही है, अभी ज्यादा नहीं आई है, अभी तो लड़कियां मैदान में नहीं आई हैं, वह भी आयेंगी, लड़कियां, पिछड़ी जाति वाले, हरिजन और आदिवासी ये सब मैदान में आयेंगे खास तौर से लड़कियां आयेंगी। क्यों आयेंगी? इस लिये आयेंगी कि उन के मां-बाप दिन रात उन को कहते हैं कि जरा सिकुड़ कर चलो, कितना ज़ोर से बोलती हो, दब के रहो, आज लड़कियों की आत्मा इतनी कुचली जा रही है कि कभी न कभी वह आत्मा फूटेगी और तब ये लोग बहुत ज्यादा घबरायेंगे कि कहीं ये औरतें भी क्रान्ति की सेना में ना आ जायें, जिस तरह से कि यूरोपीय देशों में हुआ था, तब तो मामला और ज्यादा बिगड़ जायगा।

18 नवम्बर को मुझे इतनी शर्म लगी अपने ऊपर, कि मिट्टी का सिपाही हमको इस तरह से दबा ले गया, कुछ भी नहीं हुआ, लेकिन इसके साथ ही यह भरोसा था कि अपना देश जाग रहा है और जिन जिन लोगों ने यहां पर नई पीढ़ी पर अपनी ताकत आजमाई है, मैं उनसे कहना चाहता हूं कि भारत का युवाजन जिस किसी चीज़ में गिरा हो, शायद झूठ ज्यादा बोलता हो, शायद पढ़ाई लिखाई कम करता है, शायद आपसी व्यवहार में बिगड़ गया है, लेकिन एक बात में इन पुरानी पीढ़ियों से आगे बढ़ गया है और वह है निडराई। निडर हो रहा है और मैं समझता हूं कि जब हमारा देश निडर होता चला जायगा, क्या विद्यार्थी, क्या किसान, क्या हरिजन, क्या आदिवासी और क्या औरतें, कोई ताकत इनको रोक नहीं सकती और उस वक्त इस मिट्टी के सिपाही के भी टुकड़े हो जायेंगे।

मैं आपके सामने खाली एक दिल्ली के स्कूल का परीक्षा फल (नतीजे) को रख देना चाहता हूं, जिसमें दो विद्यार्थी जो बुरी तरह से फेल हो गये थे, पास कर दिये गये थे। एक को नम्बर मिला था 223, उस का 274 बना दिया गया और वह पास हो गया...

***   ***   ***

व्यवधान[क]

***   ***   ***

इसको जाने दीजिए—बेमतलब बात है। मैं यह कागज* दिए देता हूं—हमारा वक्त क्या खराब करते हो

दूसरे का 241 से 279 कर दिया गया, जब कि...

***   ***   ***

किस तरह से आज स्कूलों और कालेजों की परीक्षाओं के नतीजे मास्टर अथवा स्कूलों और कालेजों के मैनेजर अपने मन से पैसे के लिए या रिश्तेदारी के लिए बदल दिया करते हैं—क्या असर पड़ेगा इसका नन्हे हृदयों पर। इसी तरह से आप को बतलाऊंगा कि आज जो अखबार कलकत्ते से आया है उस में यह खबर है कि कलकत्ता विश्वविद्यालय के अनिर्दिष्ट काल के लिए बन्द होने की आशंका है। एक तरफ तो "बसुमति" में यह निकला है कि:

विश्वविद्यालय अनिर्दिष्ट कालेर जन्य बन्ध होइ बार आशंका

दूसरी तरफ उसके पहले यह खबर है कि:

मातार सम्मुखे पिता कर्तृक हावड़ा ब्रिज होइले कन्या के गंगाय निक्षेप।

गंगा में मां के सामने पिता ने हावड़ा पुल से अपनी लड़की को फेंक दिया। यह अवस्था इस वक्त हो गई है। विद्यार्थी तो सताया हुआ है, लांछित है, अपमानित है। वह जानता नहीं है कि कहां अपना सिर ले जा कर रखे। वह जानता नहीं कि माता पिता से, अध्यापक से, नेताओं से और न जाने कहां-कहां से वह बिगाड़ा जा रहा है। फिर जब वह देखता है कि एक तरफ एक शंकराचार्य के यहां राष्ट्रपति जी प्रसाद लेने जाते हैं, आशीर्वाद लेने जाते हैं और दूसरे शंकराचार्य को बिना किसी अपराध के गिरफ्तार कर के पांडेचेरी भेज दिया जाता है उसका माथा भन्ना जाता है कि संसार में कोई न्याय, कोई तर्क रह गया है या नहीं।

***   ***   ***

[क]श्री विश्व नाथ पांडेय (सलेमपुर): स्कूल का नाम क्या था?

*बाद में, डा० लोहिया ने सभापति महोदय की अनुमति से कागज सदन के पटल पर रख दिया।

यह असंगति ऐसी हो गई है कि खोपड़ी के दो हिस्से हो गये हैं, और यह सरकार हर एक भारतीय की खोपड़ी को दो तीन हिस्सों में बांट कर ऐसा समाज बना देना चाहती है जिस का अब कोई सुधार संभव नहीं है इस रास्ते के अलावा कि विद्यार्थी आन्दोलन हो या दूसरा आन्दोलन हो, ताकत के साथ वह आगे बढ़ते चले जायें। अपने को आगे बढ़ायें और इस अन्यायी और असम, गैरबराबरी के समाज को तोड़ फोड़ कर ऐसा समाज बनायें जिसके अंग प्रत्यंग एक दूसरे के साथ सज सकें। आज सजे हुए नहीं हैं, अंग प्रत्यंग अलग हैं।

26

रिक्शा चालन*

सभापति महोदय, कल मुझे चार लाख के एक शहर से एक पार्षद ने टेलीफोन किया और बताया कि आज़ादी के एक वर्ष पहले वहां सन् 1945-46 से 1950 तक रिक्शा चालकों की संख्या 679 थी। इसके अलावा दूसरी तरह के रहे होंगे उनको भी आप दस बीस या सौ जोड़ सकते हैं। बाद में भी आपको जोड़ने होंगे। अब 1965-66 में 5898 रिक्शे हैं और 17,910 रिक्शा चालक हैं।

*** *** ***

जो गैर-कानूनी ढंग से, बिना लाइसेंस लिए हुए रिक्शा चलाते हैं या जो रिक्शायें बिना लाइसेंस चलाई जाती हैं, उन्हें मैं इस में शुमार नहीं करता हूं। खाली उनको मैं कर रहा हूं जिन के लाइसेंस हैं। करीब सात सौ रिक्शा थीं आजादी के पहले और अब करीब छः हज़ार हैं। उसी तरह से करीब दो हज़ार रिक्शा चालक थे आजादी के पहले और अब 18,000 हैं। इसका मतलब यह हुआ कि नौ गुना का फर्क पड़ा है। यह भी एक शहर के आंकड़े मिले हैं और श्री लक्ष्मी भूषण वार्षणेय, पार्षद, की मदद से इलाहाबाद शहर के जो कि चार लाख का शहर है। ये उतने पूरे न सही लेकिन जहां तक मिल सके हैं, ये हैं। लखनऊ और बनारस के जो आंकड़े मिले हैं वे भी यही हालत बताते हैं। लखनऊ में इस वक्त राम सागर मिश्र जी ने मुझे टेलीफोन से बताया है कि करीब करीब दस हजार रिक्शा के लाइसेंस हैं और आजादी के पहले के मुकाबले में आज उनकी तादाद नौ गुना, दस गुना बढ़ी है। हैदराबाद जैसे शहर में आपको सुन कर हैरत होगी कि कुल आबादी तो चौदह लाख की है और उसमें से रिक्शा चालकों की संख्या पचास साठ हजार है।

क्या बात हुई कि आजादी के सतरह अठारह वर्ष में रिक्शा चालकों की तादाद नौ दस गुना बढ़ गई है। इसका जवाब देने के पहले मैं थोड़ी सी बात आप से अर्ज करूं कि रिक्शा चालक हैं कौन? एक ज़माना था चाहे कम चलते थे लेकिन इक्के तांगे चलते थे। एक घोड़ा होता था, एक चलाने वाला आदमी। अब ज़माना कुछ ऐसा बदल गया है कि

---

*लोक सभा वाद विवाद, 12 अप्रैल 1966

जिस में घोड़े को खिलाने पिलाने का झंझट कौन करे, इसलिए आदमी ने फैसला किया है कि वह आधा आदमी और आधा घोड़ा बन कर रिक्शा चालक बन जाएगा। मैं समझता हूं कि आजाद हिन्दुस्तान की यह तस्वीर आपको अपनी आंखों के सामने रखनी चाहिये कि जिस पेशे में सब से ज्यादा बढ़ती हुई है, दस गुना बढ़ती हुई है वह पेशा है आधा आदमी, आधा घोड़ा। दूसरों का पेट कौन पाले चलो खुद ही आधा घोड़ा बन कर अपना पेट पालो।

जो एक और पेशा बढ़ा है, वह कहा जाता है कि वेश्याओं का बढ़ा है। मैं समझता हूं कि आजादी के जमाने में ये दो पेशे काफी ज्यादा बढ़े हैं। शायद वेश्याओं का उतना ज्यादा नहीं जितना रिक्शा चलाने वालों का।

***　　***　　***

माननीय मंत्री महोदय के जबाब की तरफ आप गौर करें तो आप देखेंगे कि जो समस्या है उससे इनको कोई दिलचस्पी नहीं है, उसके उपाय निकालने की नहीं है, उसकी जड़ों को समझने की नहीं है। खाली ऊपर की पत्ती पल्ले का जवाब दे देते हैं। इधर मुझे जो लोक सभा में अनुभव हुआ वह भी मैं आपको बता दूं। अगर किसी इक्के दुक्के सवाल की बात हुई तो शायद सवाल जवाब के जरिये सरकार से कोई बात हासिल हो जाती है लेकिन अगर कोई बुनियादी बात होती है जो शासन से, राज्य से अथवा पुनर्गठन से सम्बन्ध रखती है तो हमारी यह लोक सभा बिल्कुल बेकार हो जाती है। इसका कारण यह है कि मंत्रियों का रुझान ही नहीं है कि ऐसे सवालों को अच्छी तरह से समझा जाए। ये आखिर क्यों रिक्शा चलाते हैं? क्यों इस में इतनी बढ़ोतरी हुई है? क्यों इनकी संख्या दस गुना बढ़ी है पूरे देश में? मेरा अंदाज़ा है है कि तीस लाख रिक्शा चालक इस वक्त हमारे देश में हैं यानी कुल आबादी का एक प्रतिशत। आप कहोगे कि कैसे अंदाज़ा लगाया है? जिस तरह से मुझे अलग अलग शहरों का पता लगा उसको एक नमूना समझ कर सारे देश का अंदाज़ा मैंने लगाया है। आप अब देखें कि क्या चीज़ उन्हें इधर ले जाती है? ज़ाहिर है कि एक भूख है। गांवों में खेत मजूरी करके या कोई ऐसा और धंधा करके दस बारह आने या रुपया डेढ़ रुपया मजदूरी का उनको केवल मिल सकता है। लेकिन रिक्शा चालक की हैसियत से सब कुछ देने दवाने के बाद भी उनके पास इससे कहीं ज्यादा बच रहता है। उनको रिक्शा के मालिक को देना पड़ता है, पुलिस को देना पड़ता है, इधर उधर के अखराजात देने पड़ते हैं। ये सब करने के बाद उनके पास ढाई तीन से लगा कर

अगर कोई तेज तर्रार हुआ तो पांच छः रुपये रोज़ बच जाते हैं। इसलिए एक तो इस की जड़ भूख हुई। लेकिन भूख के साथ साथ एक और चीज़ रंग लाती है और वह है आधुनिकता। यह अपना देश अठारह वर्ष के पुराने ढर्रे से नए ढर्रे पर आ रहा है। लोग और खास तौर से युवक जन गांवों की जिन्दगी को बिल्कुल नापसन्द करते हैं, वहां जो जातपात का बोल बाला है उससे तंग आ चुके हैं। अगर मान लो मैं चमार हूं या भंगी हूं तो मैं कभी गांव में नहीं रहना चाहूंगा क्योंकि गांवों की आंखें हमेशा मेरे ऊपर लगी रहेंगी कि मैं क्या कर रहा हूं और क्या नहीं कर रहा हूं। अगर कोई चमार नहीं है और वह ऊंची जात का भी है तो भी न जाने किन किन मामलों में लोगों की आंखें उसकी तरफ लगी रहती हैं कि यह क्या कर रहा है। नतीजा यह होता है कि गांव एक कैद खाना बन गए हैं और उस कैद खाने से निकलने के लिए और शहरों की रंग रलियां देखने के लिए लोग वहां से निकल आना चाहते हैं। मान लो अगर कोई रिक्शा चालक है और वह बड़े लोगों की जिन्दगी में क्या होता है उसको नहीं देख सकता है तो कम से कम साल में एक आध बार कभी न कभी किसी होटल में जा कर या कहीं और जा कर बड़े लोगों की जिन्दगी में भी वह हिस्सा ले लेता है। जिस तरह से वातानुकूलित गाड़ियां, वातानुकूलित कमरे बड़े बड़े आदमियों की आधुनिकता की निशानियां हैं उसी तरह से यह रिक्शा, खेत मजदूर, दबी जात वाले के लिए एक बहुत गरीब ढंग का आधुनिकता का साधन हो गया है। छुटकारा पाओ, भागो गांव की जिन्दगी से, भागो जात पात से, भागो भूख से और किसी तरह से आ कर चाहे आधा पशु बन कर भी एक नई जिन्दगी के हिस्सेदार बनो।

इसलिए एक बड़ी बात मैं यह कहना चाहता हूं कि हमारा देश कितना कलंकित हो गया है कि इस नए युग का, इस नए ज़माने का, इस नई दुनिया का आगेवान कौन है, वह है आधा पशु, आधा आदमी। उसके वह इतना निकट आ गया है। अगर इस बात को सरकार और दूसरे लोग, सामाजिक या राजनीतिक प्रचारक पकड़ लेते हैं तो बाद में जा कर बात कुछ ठीक ठाक होती है।

यह सही है कि पुलिस भी उसे अपना शिकार बनाती है। आप जानते हैं कि दो चार आने से लगा कर रुपया दो रुपया जितना भी मौका मिल जाए वे ऐंठ लेते हैं। मालिक जो रिक्शा के हैं उनका भी मैंने पांच दस बीस आदमियों से तहकीकात करके अंदाज़ा लगाया है कि तीस सैंकड़ा से लगा कर पचास सैंकड़ा तक सालाना उनको मुनाफा होता है। मैं जानता हूं कि अगर मालिक कुछ गुंडे किस्म का न हो तो उसके लिए अपनी रिक्शा चलवाना मुश्किल हो जाता है। इस वास्ते उसको थोड़ा बहुत गुंडे किस्म का होना चाहिये। उसको अपनी पूंजी पर चालीस पचास सैंकड़ा का मुनाफा हो जाता है। इसी तरह से कभी कभी ऐसे होता है कि जितना ज्यादा मोटा वह होता है उतना ही ज्यादा वह उससे रिक्शा चलवाता है और कहता है कि चलाये जाओ और परवाह नहीं करता है कि आदमी

का क्या होगा। मंत्री महोदय ने जवाब देते हुए कहा था कि रिक्शा चलाने से तन्दरुस्ती पर कोई भी खराब असर नहीं पड़ता है। मैं चाहता हूं कि श्री शाहनवाज़ खां और उनके मंत्री श्री जगजीवन राम जो आधुनिक देश अमरीका है जैसे वहां से सब चीज़ें ली जाती हैं, वैसे ही देखें कि वहां क्या होता है। जज जा कर जेल में रहता है। मैं यह सलाह दूंगा कि वह लोग दोनों के दोनों एक महीना रिक्शा चला कर देखें कि उन की तन्दुरुस्ती पर क्या असर पड़ता है। मुझे हर एक डाक्टर ने बतलाया है कि अगर कोई 15, 20 वर्ष से कम उम्र वाला रिक्शा चालक है या 40 से ऊपर वाला रिक्शा चालक है तो उस का फेफड़ा इतना खराब हो जाता है कि दो या तीन साल के अन्दर या तो वह मर जाता है या किसी बहुत ही बुरे रोग का शिकार बन जाया करता है।

इसी के साथ साथ मैं यह बतला दूं कि आजकल जो गोलियां बहुत चला करती हैं उसमें भी रिक्शा वाला शिकार होता है। मुझे कई बार रिक्शे वालों को नमस्कार करना पड़ा है। वे बेमतलब शिकार हो जाया करते हैं क्योंकि रिक्शे वाले तो शहर में घूमते घामते रहते हैं और जब पुलिस दनादन गोलियां दागा करती है तो कोई न कोई गोली किसी न किसी रिक्शे वाले को लगती है।

इसके अलावा जब बन्द वगैरह चलते हैं, बम्बई बन्द, कलकत्ता बन्द, इलाहाबाद बन्द, उसमें भी जाने अनजाने, मैं यह कहना चाहूंगा, क्योंकि मैं नहीं मानता कि यह रिक्शे वाले कोई बड़े क्रान्तिकारी बन गये हैं, अभी उसके ऊपर तरह तरह के बड़े बोझ हैं पुलिस के मामलों में, पुरानी आदतों के अन्दर वह आगेवान वैसा नहीं बना, लेकिन अनजाने भी वह कई बार क्रान्तिकारी हो जाता है और नई क्रान्ति का आगेवान बन कर सामने आता है। जो 30, 40, या 50 लाख रिक्शे वाले हैं उनको मैं कहना चाहता हूं इस लोक सभा के जरिये कि थोड़ा बहुत नई दुनिया की बातों के ऊपर सोच विचार करो, समझो यह समाज कैसा है और कितना बढ़ गया है। उसको बदलने के लिये समाज जितनी अंगड़ाइयां लेता है उसमें आगेवान बन कर चले आते हो तो किसी जमाने में क्रान्ति की किताबों में लिखा जायेगा कि वह सचमुच कितने आगेवान थे।

रिक्शे वालों के बारे में मैं इतना बतला दूं कि एक रिक्शा वाला था चन्दन। उसे पिछले आठ दस वर्षों से मैं जानता हूं। वह खाली रिक्शा चलाते चलाते आज वकील हो गया है। यह एक किस्सा इस लिये सुनाता हूं कि रिक्शा चलाने वालों में कुछ अपनी आत्मोन्नति की भावना भी उठे। हालांकि यह कोई बहुत बड़ी समाजवादी चीज़ नहीं है और है भी कुछ। यह एक पूंजीवाद से मिली हुई चीज है। लेकिन आत्मोन्नति की भावना बने कि अगर एक चन्दन रिक्शा चालक से वकील बन सकता है, और वह मेरा अच्छा दोस्त है, तो सैकड़ों और हजारों रिक्शे वाले क्यों नहीं बन सकते। इसलिये मैं सरकार से

भी और रिक्शा चालकों की यूनियनों से भी कहना चाहूंगा कि वह इसमें मदद दें और लोगों को ऊंचे उठायें। आखिर यह जो भंगी, चमार और छोटी जाति के कहलाते हैं मुझ में और उनमें कोई फर्क नहीं है आपमें और उनमें कोई फर्क नहीं है क्योंकि खाली एक पुराने और सड़े हुए शास्त्र ने उन्हें नीचा बनाया हुआ है और उस शास्त्र को ठोकर मारना आवश्यक हो गया है। आधे पशु का रास्ता, रिक्शा चलाने वाला रास्ता जो है वह जंगल का रास्ता है।

मैं इस सम्बन्ध में कहना चाहूंगा कि इसका कोई भी जवाब सरकार के पास नहीं है। वह जवाब देंगे लेकिन बेमतलब जवाब आप सरकार से क्यों दिलवाते हैं। वह इधर उधर की सुना देंगे......

*** *** ***

आप जानते हैं कि क्या जवाब मिलेगा। जवाब तो कुछ होता ही नहीं, केवल वह रस्म अदा करेंगे। रस्म की अदायगी जरूर करेंगे शाहनवाज़ साहब। इसका जवाब एक ही हो सकता है और वह ठोस रूप में एक सिद्धान्त के रूप में ही हो सकता है कि पखाना और कूड़ा साफ करने वाला महीने में कम से कम 250 रु० पाये और राष्ट्रपति भी नौकरी और भत्ता समेत, निजी भत्ता में शामिल करके कहना चाहता हूं, 1000 रु० से ज्यादा न पाये। टाटा बिड़ला कोई भी हो वह भी एक हजार रुपया ज्यादा से ज्यादा पाये और कूड़ा साफ करने वाला, पखाना साफ करने वाला 250 रु० पाये। जब यह रास्ता अपनाया जायेगा तभी जा कर के इस आधे पशु जैसा आगेवान नये जमाने का आप खत्म कर सकेंगे।

27

भारतीय इतिहास की आलोचना*

अध्यक्ष महोदय, जिस चीज पर हमें चर्चा करनी है वह संयुक्त राष्ट्र (यूनाइटेड नेशंस) के तहत यूनेस्को ने जो मनुष्य का इतिहास लिखने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय आयोग बनाया था और जो उसने किताब छापी उस पर है। यह है मनुष्य जाति के इतिहास की पहली जिल्द जो प्राग इतिहास और सभ्यता की शुरुआत से संबंध रखती है। इसको छापा है इतिहास के अन्तर्राष्ट्रीय आयोग ने लेकिन इसकी जिम्मेदारी एक तो संयुक्त राष्ट्र, दूसरे संयुक्त राष्ट्र के द्वारा बनायी गयी संस्था यूनेस्को और तीसरे भारत सरकार पर पड़ती है। यहां तक कि इस अन्तर्राष्ट्रीय इतिहास आयोग के साथ पत्र-व्यवहार करने वालों में डाक्टर राधाकृष्णन तक का नाम है। यह मैंने जिम्मेदारी की बात की।

अब सबसे पहले यह बताऊं कि शायद किसी शास्त्र पर यह पहली बार बहस हो रही है इस लोक सभा में और इसलिए अगर कुछ बुनियादी बातों की तरफ ध्यान देकर मंत्री महोदय और यह सरकार आगे से कुछ दिशा परिवर्तन करे तो बड़ा अच्छा होगा। कोई छोटी इधर उधर की बातों का मुझको जवाब नहीं चाहिए।

आखिर को इतिहास में जब गलती हो जाती है लिखने में, समझने में, तो उसके कितने भंयकर परिणाम होते हैं? आखिर इतिहास है क्या? यह है अतीत का बोध। जो कुछ पहले हो चुका है उसको किस ढंग से समझते हैं—अधूरा, पूरा, गलत, सही, इतिहास है अतीत का बोध। और अतीत का बोध भविष्य और वर्तमान का निर्माता भी हुआ करता है। अगर गलत समझते हैं तो गलत ढंग से वर्तमान और भविष्य बनता है और खास तौर से मैं एक छोटी सी मिसाल देकर बताता हूं। मन्दिर टूटे मध्यकालीन युग में। अब उसको इतिहास में लिखा जाता है अगर सिर्फ इतना ही लिख दिया जाये कि मुसलमान विजेताओं ने आकर मन्दिर तोड़े तो यह बात सही जरूर है, लेकिन अधूरी सही है, सिर्फ एक पहलू है। तो इतिहास एक गुस्सा भर बनकर रह जाता है। लेकिन अगर उसके साथ-साथ यह भी रखा जाय जो आधे सच को थोड़ा बहुत पूरा बनाता है कि उस

---

* *लोक सभा वाद-विवाद,* 26 मार्च, 1966

वक्त के हमारे पुरखे कितने नालायक थे कि वह परदेशी आक्रमणकारियों को रोक नहीं पाये तो इतिहास किसी हद तक पूरा बन जाता है और फिर इतिहास एक दर्द के रूप में आ जाता है और वह दर्द ऐसा होता है कि हम फैसला करते हैं कि आगे कभी ऐसी बात होने नहीं देंगे और यह नहीं सोचते कि आज जो हमारे बीच में बसने वाले मुसलमान हैं, आखिर तो वह हमारे भूतपूर्व हिन्दू हैं, उनका कोई हाथ नहीं था उस वाक्ये में, उनसे बदला न निकालकर के जो कि एक बिल्कुल अहमक काम होगा हम यह कोशिश करते हैं कि इतिहास को गुस्से के रूप में न देखें बल्कि दर्द के रूप में देखें।

अब इस सिलसिले में किताब में जो भूल हुई है, देखने में मुमकिन है छोटी लगे पर मैं आपको बताऊं कि भारत के इतिहास की गैर-समझ अपने खुद के लेखकों और परदेशी लेखकों की कितनी होती है, कुछ मिसालें देकर बताता हूं, एक तो यहां पर जो कुछ होता है वह कहीं किसी की नक्ल है, चीन की नक्ल, मिश्र की नक्ल या उर और चाल्डी की नक्ल, नक्ल वह जरूर होनी चाहिए। नतीजा होता है कि इस संयुक्त राष्ट्र के छपे इतिहास के लेखक लेनर्ड वूली साहब कहते हैं कि जब हम सांची के महान स्तूप के उत्तरी दरवाजे जैसे ढांचे देखते हैं तो यह मुश्किल हो जाता है न सोचना कि इसकी प्रेरणा चीन के लकड़ी के स्थापत्य कला से आयी है। अब इस पर मैं आपको अध्यक्ष महोदय, एक बड़ी मजेदार बात बताऊं कि भारत के किसी इतिहास कमीशन के मेम्बर ने नहीं, सदस्य ने नहीं जिनकी जिम्मेदारी है ऐसी गलतियों को दूर करने की, डाक्टर राधाकृष्णन् या उनके जैसे किसी आदमी ने नहीं, बल्कि एक रूसी विद्वान प्रोफेसर डीयकनाफ आरईलिन ने इस गलती की तरफ ध्यान खींचा। और तब लेमर्ड वूली साहब एक छोटे से नोट में लिखते हैं कि जहां तक चीनी संबंध का तालुक है प्रोफेसर लिन ने यह बात दिखाई जरूर, पर फिर भी मुझे यह कहना पड़ता है कि मेरे दिमाग पर यह असर पड़ा है, इसके लिए सबूत कुछ नहीं लेकिन यह असर देखा है कि किताब में लिखने लायक है। अब यह है इनका इतिहास। सांची में स्तूप बनता है, उसकी प्रेरणा चीन से आती है, संयुक्त राष्ट्र के इस इतिहास में, उस पर रूसी विद्वान प्रोफेसर ईलन इस गलती को बताता है। उसके ऊपर यह विद्वान प्रोफेसर वूली लिखते हैं कि मेरे दिमाग पर असर है, लिखने लायक है चाहे उसके लिए सबूत न हों...... दिमाग खराब तो डाक्टर सिंह आप कहते हैं, लेकिन इतिहास लिखने वाले क्या विदेशी क्या देशी ऐसे ही खराब दिमाग के हैं। नतीजा यह होता है कि आज भारत के बच्चे-बच्चे के दिमाग में यह परिभाषा है कि भारत में जो कुछ हुआ उसका कहीं न कहीं असर या उसकी प्रेरणा किसी दूसरी जगह से आयी है। यहां तक कि ये लोग इतने आगे चले जाते हैं कि इस पुस्तक में एक और पुस्तक का नाम लिया गया है और जिस का कि नाम सुन कर ही आप हंसेंगे, अचरज करोगे और दर्द भी आयेगा। इस पुस्तक का नाम है "पाकिस्तान के 5000 वर्ष"।

*** ***

.....यह जितने पाश्चात् लेखक हैं वह चाहते हैं कि पाकिस्तान को पुरानेपने का एक मुलम्मा दे दिया जाय। वह इलाका हड़प्पा और मोहनजदारो का जो एक सभ्यता का पुराने सभ्यता के एक अंग का प्रकाश था उस को पाकिस्तान का नाम देकर के पाकिस्तान की जड़ें मजबूत की जायें यह है उनका मतलब। चाहे वह उस को कला कहें, इतिहास कहें चाहे और कुछ कहें। तो फिर ऐसे इंगलिस्तान की 20 लाख वर्ष का इतिहास ले लिया जाय। इंगलिस्तान का 20 लाख वर्ष का और हिन्दुस्तान का भी लिख दिया जाय 3 अरब वर्ष का क्योंकि वह पृथ्वी का इतिहास है। आखिर को यह भी पृथ्वी का एक अंश है। लेकिन आप जानते हैं उस के नतीजे कितने खतरनाक होंगे?

उस तरीके से इस किताब में एक और बात कही गई है जिस पर साम्प्रदायिक लोगों का ध्यान नहीं गया है। एक तरीके से अच्छा ही है और वह ऋगवेद के बारे में है। ऋगवेद कितना पुराना है इस तफसील में मैं नहीं पड़ता हालांकि मैं इस बात को जानता हूं कि आज से समझो 1900 और 1200 मसीह से पहले अर्थात आज से 3100 वर्ष पहले हिन्दुस्तान में कविता कोई खास नहीं थी यह बात मैं मानने के लिये तैयार नहीं हूं। इस में मिश्र की कविता का जिक्र है चीन की कविता का जिक्र है। जहां तक संगीत का सवाल है संगीत के मामले में मैं माने लेता हूं। इस किताब में सभी चीजों का मिलाजुला वर्णन है लेकिन कविता को ले कर के बिलकुल साफ इस किताब में लिख दिया गया कि 3100 वर्ष पहले की कविता को भारत के संबंध में हम लिख नहीं सकते क्योंकि उस के लिए कोई साधन उपलब्ध नहीं हैं और जहां तक ऋगवेद का सवाल है यह हजरत फरमाते हैं कि आज से ईसा मसीह के 1500 वर्ष पहले आर्य लोग यहां आये। एक तो यह आर्य, अनार्य, द्रविड़, मंगोल, बहुत हद तक गप्प है। चागला साहब मुझे जवाब मत देना शुरू कर देना बिना इस बात को समझे हुए। उन को भी दोष नहीं दूंगा। यह एक परम्परा चली आ रही है। यह समझना कि आज से कोई 3500 वर्ष पहले आर्य लोग यहां आये और उस के 500—700 वर्ष में यह सब कविता वगैरह बनाने में लगे तब जाकर ऋगवेद को यह शख्स कहते हैं कि ऋगवेद की जमी हुई, मंजी हुई कविता कोई आज से 2700 या 2800 वर्ष पहले कही जायेगी।

*** व्यवधान @ ***

*** *** ***

अब यह तो आपका कहना है, लेकिन आप मेहरबानी कर के चागला साहब को यह बतला दें कि उनकी जिम्मेदारी और डा० राधाकृष्णन् जिस इतिहास के साथ संबंद्ध रखते हैं उन की जिम्मेदारी से यह किताब छपी है जिस किताब में कि ऋगवेद की कविता को जगह नहीं दी गई योंकि उस कविता को वह मानते ही नहीं कि इतनी पुरानी है। वह नई है और उस के लिए उन्होंने बहुत तरह के तर्क भी दिये हैं। मैं खाली एक बात को लेना चाहता हूं

@ डा० मा० श्री उणे (नागपुर): आरोयन में सिद्ध किया है कि ऋगवेद के मंच रिमसत पूर्व 6000 वर्ष पुराने लिखे गये।

और बातों में मैं नहीं जाना चाहता। कविता पुरानी है उसी का प्रमाण अलग से है लेकिन इस संबंध में मैंने कौशाम्बी की खुदाई करने वाले अध्यापक गोवर्धन राय शर्मा को बहुत खोद खाद करके खोजखाज करके एक लेख लिखने के लिए कहा है। उन्होंने मेरे पास यह भेजा है। उस में कई हिस्से हैं। बहुत तो तकनीकी हैं। उनका एक वाक्य खाली पढ़ कर मैं आप को सुनाता हूं। एक तरीका निकला है रेडियो कारबन। रेडियो कारबन का तरीका ऐसा है जिससे पुरानी चीजों की उम्र पता चल जाया करती है। वह कहते हैं कि जब कौशाम्बी रपट छपी थी उस के बाद से रेडियो कारबन निकाला है और वह तरीका जब इन सब पर इस्तेमाल किया गया जो कि कुम्हारी के बर्तन वगैरह होते हैं, कौशाम्बी में मिले हैं तो दावे के साथ कहा जा सकता है कि यह बर्तन कुम्हारी के 2035 ईसा मसीह से पहले से लेकर 640 ईसा मसीह तक के हैं। अब कौशाम्बी या उसी की तरह और जितनी खुदाई और खोज हुई है उन के ऊपर विदेशी लोगों का तो कोई असर उन के दिमागों पर पड़ा नहीं। खुद अपने यहां के इतिहासकार उस को ज्यादा महत्व नहीं देते तो अगर आप चाहें तो यह नोट मैं आप को भेज देता हूं और इसको सदन पटल पर रख दिया जाय। शायद इस की मदद से भारत सरकार यूनाइटेड नेशंस से भी कोई बातचीत कर सके।

अब असल मामला यह है कि इस इतिहास वगैरह में वैसे भी एक चीज बहुत ज्यादा दिमाग में रहती है और वह यह कि जो कुछ भारत में हुआ वह किसी परदेशी समूह के आने से हुआ। यहां की जो बस्ती थी वह इस लायक नहीं थी कि कोई नई चीज हासिल कर ले। हमेशा कोई बाहर की बस्ती आई जिसने यह कहा। उस के लिए इस किताब में लिखा गया है कि. हरप्पा में जो बड़ा जबरदस्त किला है

*** ***

दो, चार मिनट दे दें तो यह बात पूरी हो जायेगी। मैं अब उसका मतलब बताने के बजाय अंग्रेजी में ही उसे पढ़े देता हूं। वे यह लिखते हैं।

"The elaborate fortification of the citadels would hardly have been necessary to protect the cities against raiding parties from the mountains of Baluchistan; more probably they were intended to overawe the countryside, the assumption being that the ruler and citizens were of an alien stock which had reduced their indigenous inhabitants to the status of serfs."

यह तो इतिहासकार लिखते हैं। मुझे ज्यादा कहने की जरूरत नहीं। इस संबंध में मैं रूस के इतिहासकारों की तारीफ करना चाहता हूं हालांकि वह अपने खुद के देश के जार

*सभापति महोदय के यह कहने पर कि आपका समय समाप्त हो गया है।

के बारे में बहुत खास अच्छे तरीके से नहीं करते हैं लेकिन मैं उन का नमस्कार करता हूं कि कम से कम पुराने इतिहास को लेकर भारत के संबंध में उन्होंने ज्यादा ज्ञान दिखाया है बनिस्बत अंग्रेजों के और उन के जैसे दूसरे पाश्चात्य इतिहासकारों के यह प्रोफेसर आई० एम० डाएकोनोर्फ और जी० एफ० इलयिन लिखते हैं:—

"Prof. I.M. Diakonoff and Prof. G.F. Ilyin note that no conclusive proof exists that the ruling class was of foreign origin. The citadels may have been similar to the baronial castles of Germany in the Middle Ages."

अब उस के ऊपर सर लैनर्ड वूली साहब लिखते हैं कि दो सबब हैं जिससे यह साबित हो जाता है कि यह किला परदेसियों ने बनाया। किले के अन्दर जो लोग रहते थे वह परदेशी थे। एक तो नई सभ्यता आई और दूसरे यह कि पुरानी सभ्यता के ध्वंसावशेष बहुत मिलते हैं। मैं यह कहना चाहता हूं कि अगर इसी तरीके से जर्मनी, रूस और इंगलिस्तान में खोज की जाये तो यह पता चलेगा कि एक ही सभ्यता कई अंशों में आपस् में लड़ाइयों के ध्वंसावशेष मिल जायेंगे उन के साथ ही अन्तःप्रेरणा से नई सभ्यता बनती है यह इतिहासकार कभी मानने को तैयार नहीं होते कि हिन्दुस्तान में कोई अन्तःकरण से प्रेरणा आती है जिससे नयापन हो जाता है। इस संबंध में मैं आप से कहना चाहता हूं कि इन्हीं जैसे इतिहासकारों ने भारत की सभी इतिहास विद्या को बिल्कुल नष्ट कर दिया है क्योंकि यहां का इतिहासकार बड़ा से बड़ा अब तक जो चल रहा है वह इस बात को मान कर चलता है कि अगर यहां पर पुनर्जीवन होता है तो कोई न कोई परदेशी के शारीरिक सम्पर्क से पुनर्जीवन होता है किसी अफगान से होता है किसी मुगल से होता है किसी अंग्रेज से होता है और नतीजा होता है कि आजकल वक्ताओं में यह भी देखा गया है बार बार कहने की प्रवत्ति आ गई है कि हमारा अनोखा देश है यह सब को खपा लिया करता है। सब के साथ समन्वय कर लिया करता है। हमारा तो विविधता में एकता वाला देश है। आज आप महानुभाव लोगों से मैं यह कहना चाहता हूं कि इस इतिहास की जहरीली धारा ने हमारे दिमाग को कुछ ऐसा बना डाला है कि वर्तमान राजनीति में लगा हुआ हिन्दुस्तान सोचता है कि हम तो प्रगतिशील हैं, आने दो किसी बाहर वाले को। जीत लेगा तो हमारा क्या बिगड़ेगा एक दफा जीत लेगा और बाद में हमारे अन्दर जो एक बहुत जबरदस्त सांस्कृतिक अमृत है उस के सबब से हम उसको सांस्कृतिक रूप से जीत लेंगे, अपने में खपा लेंगे। अपने में यह खपा लेने की बात के सम्बन्ध में मैं यह कहना चाहता हूं कि यह इतिहास की धारा बिलकुल खत्म होनी चाहिये। समन्वय दो तरह का होता है।

एक दास का समन्वय और एक स्वामी का समन्वय। पिछले हजार वर्ष के इतिहास से हिन्दुस्तान ने स्वामी का समन्वय नहीं सीखा वह एक दास का समन्वय रहा है।

इस सम्बन्ध में मैं खाली परदेशियों को ही दोष नहीं देता हूं। उन के सबब से जितने भी इतिहासकार हैं, वे उसी जहर में बिल्कुल घुल जाते हैं। आज भारत में दो इतिहास के स्कूल हैं, एक डा॰ तारा चंद का और एक डा॰ मजुमदार का और ये दोनों के दोनों इसी समन्वय धारा के हैं, विविधता धारा के हैं। भारत क्या है, उसको भूल कर भारत के जो विभिन्न अंग हैं, उन की तरफ निगाह चली जाती है।

जहां तक इस बात का ताल्लुक है कि नई सभ्यता कहां से आई, हमेशा हमारा पुनर्जीवन होता है। कभी राजा राममोहन राय पुनर्जीवन करते हैं, कभी मानसिंह और अबुल फ़ज़ल पुनर्जीवन करते हैं, कभी उसके पहले गज़नी और गौरी पुनर्जीवन करते हैं। लेकिन यह पुनर्जीवन अगले आने वाले परदेशियों के सामने कभी टिक नहीं पाता है। इसलिये मैं आप से निवेदन करूंगा कि इतिहास के इस विषय के ऊपर इस सरकार को गम्भीरता से सोच विचार करना चाहिए। इस बारे में लोक सभा में आधे घंटे की बहस हो रही है। यह तो ऐसा विषय है जिस पर दो तीन दिन की बहस होनी चाहिये, क्योंकि यह मिज़ो का मामला है, यह नागा का मामला है, यह काश्मीर का मामला है।

*** *** ***

.....आज जितनी भी बातें चल रही हैं—मिज़ो, नागा, काश्मीर, या और आदिवासियों के मामले उनके पीछे वही इतिहास का ज़हर है: संस्कृतियों को लड़ाना, आर्य, अनार्य, मंगोल, द्रविड़ की खिचड़ी पकाना, कहना कि पहले ये थे। इस के लिए कोई सबूत नहीं है। खाली एक छोटी सी भाषा की गवाही पर यह सब इमारत खड़ी की गई है। आप देख रहे हैं कि क्या क्या नतीजा निकलता है। सारी दुनिया की तरफ़ से खड़ी की गई जमात, युनाइटिड नेशन्ज, संयुक्त राष्ट्र की तरफ से यह इतिहास की किताब निकलती है। मैं चागला साहब से निवेदन करना चाहता हूं कि वह मुझे जवाब देने की कोशिश न करें।

*** *** ***

मैं पहले से उनको कह देता हूं ताकि उन को याद रहे। मुझे अपने लिए जवाब नहीं चाहिये। मैं चाहता हूं कि इतिहास और गणित, इन दो के मामले में वह कुछ करें। इन्हीं दो के ऊपर आज का भारत बनेगा या बिगड़ेगा। इतिहास अतीत का बोध है। अगर हमने अपने भूत को ठीक से जाना और पहचाना नहीं और अपने बच्चों को ठीक से सिखाया नहीं, तो यह देश कभी भी एक अच्छा और सुखी नहीं हो सकता है। गणित विज्ञान का आधार है, जो कि आज लोगों को—लोगों से मेरा मतलब रूस और अमरीका से है—चन्द्रमा पर ले जाता है। हमारे विश्वविद्यालयों में इतिहास और गणित, ये दोनों, बिल्कुल मरे हुए पड़े हैं। उनको सुधारने की कुछ कोशिश की जाये, इतना ही मुझे कहना है।

28

बजट-सामान्य बहस*

अध्यक्ष महोदय, 20 अरब रुपयों पर और एक मानी में 55 अरब रुपयों पर हम लोग बहस कर रहे हैं कि वह इकट्ठा होने चाहिएं और क्या कोई दूसरा जरिया उन के इकट्ठा करने का और अच्छा है और वह इतने खर्च होने चाहिए या किसी और अच्छे तरीके पर उन को खर्च किया जा सकता है? इसलिए यह बड़ा व्यापक सवाल है पूरे राज्य का।

सब से पहले मैं आप का ध्यान इस सम्बन्ध में खींचना चाहता हूं मंत्रियों और नौकरशाहों के सम्बन्ध में राजनीति और प्रशासन में। राजनीति करने वालों की संख्या करीब 4,000 है अगर विधायकों को देखें और करीब 400 हैं अगर मंत्रियों को देखें। प्रशासन में लगे हुए लोगों की संख्या करीब 1 करोड़ है। इन में से जो नौकरशाह हैं उन का मंत्रियों के साथ कैसा सम्बन्ध हो यह बड़ा गम्भीर सवाल है। इस सम्बन्ध में मैं कुछ माननीय गृह मंत्री के बारे में कहना चाहता हूं। ....

*   *   *   *

गृह मंत्री ने इसी साल फरवरी में, एक सज्जन, सज्जन मैं यही कह रहा हूं, उन को लोक सेवा आयोग का सदस्य बनाया। यह मार्च 1956 तक बिहार में चीफ इंजीनियर रहे....

*   *   *   *

व्यवधान@

*   *   *   *

वैसे मैं ने माननीय मंत्री को कहा था और उन को मैंने अपने खतों में लिख दिया था कि मैं अपने बजट भाषण में इस सवाल को उठाना चाहता हूं और उन्होंने इस पर मुझे खत वगैरह भी लिखे लेकिन वह तो मेरा और उनका सवाल है....

*लोक सभा वाद-विवाद, 5 मार्च, 1964

@ **अध्यक्ष महोदय:** अब फिर मैं आप से एक विनय करना चाहता हूं कि अगर एक खास किसी व्यक्ति का कोई केस लाना हो जिसके लिए कि मिनिस्टर्स से जवाब चाहिए तो पहले उसका नोटिस दिया जाता है ताकि वह उस पर सारी चीज दरियाफ्त कर के आये और जवाब दे सके। अब माननीय सदस्य जो एक इंडिविजूएल केस पर कहने जा रहे हैं तो उन्होंने इस के लिये प्रायर नोटिस तो दिया हुआ नहीं है।

* * * *

व्यवधान*

* * * *

मुझे पता नहीं था कि आप को लिखना जरूरी है वैसे मैं बतला दूं कि आप को मुझे खत लिखने में ज्यादा खुशी होती है और मैं आप को जरूर लिख देता। लेकिन यह सवाल ऐसा है कि....

* * * *

व्यवधान**

* * * *

तो इस की आप मुझे पूरा कर लेने दीजिये, योंकि उन को यह बात मालूम है।

यह 53 बरस के थे। इन की सेवा-निवृत्ति होने में दो बरस कम थे, लेकिन फिर भी बिहार की मंत्रि परिषद् ने अपनी एक बैठक में फैसला किया कि इन को वहां पर और ज्यादा काम नहीं दिया जायेगा। इस सम्बन्ध में बिहार की विधान सभा मे 6 मार्च, 1956 को बहस भी हुई। लोगों ने पूछा, बहुत लम्बे चौड़े सवाल हुए और मंत्री की तरफ से जवाब दिया गया कि मंत्रि परिषद् ने फैसला किया है कि इन की सेवाओं को खत्म किया जाये, इन को समय का और ज्यादा बढ़ावा न दिया जाये। 6 मार्च, 1956 को खुल कर—कोई सरकारी कागजों पर नहीं—विधान सभा में यह बात हुई।

फिर जुलाई, 1956 में— उस के दो तीन महीने बाद—आज के गृह मंत्री ने, जो उस समय सिंचाई के मंत्री थे, इन को दिल्ली सरकार में नौकरी दी, बाढ़ नियंत्रण के चीफ़ इंजीनियर की हैसियत से।

अब मैं इन दोनों बातों को आप के सामने रख देता हूं कि फ़रवरी, 1964 में जब माननीय गृह मंत्री आये, तब इस अफ़सर को लोक सेवा आयोग का सदस्य बनाया गया और जुलाई, 1956 में, जब वह सिंचाई मंत्री थे, तब, हालांकि बिहार सरकार फैसला कर चुकी थी कि इन को समय की बढ़ती न दी जाये, उन्होंने इन को अपने यहां चीफ़ इंजीनियर बनाया था।

अगर इस में यह कहा जाये कि श्री पाटिल अथवा श्री कानुनगो वग़ैरह ने इस के बारे में सिफ़ारिशें की हैं, तो मैं आप से कह सकता हूं कि ये सिफ़ारिशें बीच की हैं, वास्तव में

---

* **अध्यक्ष महोदय:** अगर आप मुझे भी लिख दिये होते तो मैं आप को बतला देता।

** **अध्यक्ष महोदय:** बिल्कुल वैसे ही आप का खत आने पर मुझे भी खुशी होती है।

इन का कोई ताल्लुक नहीं रहता है। और उस के अलावा जब सिफ़ारिशें की गई थीं, तो बीच में जितने और गृह मंत्री रहे, उन्होंने तीन, चार, पांच और सदस्यों को लोक सेवा आयोग में भर्ती किया, लेकिन इन अफ़सर को नहीं किया।

मैं एक छोटी सी चीज़ और बताए देता हूं कि माननीय गृह मंत्री की मौसी के लड़के के लड़के की शादी इस अफसर....

* * * *

व्यवधान*

* * * *

मुझे अफ़सर से मतलब नहीं है। मुझे मंत्री से मतलब है।....

* * * *

व्यवधान**

* * * *

यहां हम लोग प्रशासन और राजनीति के सम्बन्ध, नेता और नौकरशाह के संबंध पर बातचीत कर रहे हैं। अगर इन चार सौ मंत्रियों का सम्बन्ध एक करोड़ सरकारी नौकरों के साथ पक्षपात और मनमानी का हो गया, तो सारे राज्य का सत्यानाश हो जायेगा। और पक्षपात और मनमानी के बारे में रिश्ते बड़े जबर्दस्त हुआ करते हैं। घर के रिश्ते, चचा, बहनोई, साले वग़ैरह, ये जितने रिश्ते हैं, और मैंने जो रिश्ता बताया, वह बिल्कुल नजदीकी रिश्ते हैं। यह कोई मामूली रिश्ता नहीं है। अगर यह बात साबित हो जाती है कि....

* * * *

व्यवधान@

* * * *

माननीय मंत्री महोदय ने इस अफ़सर की पक्षपात, मनमानी कर के, कानूनों को तोड़ कर, नियमों का उल्लंघन कर के नियुक्ति दी है और दो बार दी है—एक बार 1956 में दी है और एक बार 1964 में दी है—तब मैं साबित

---

*अध्यक्ष महोदय: जरूर।

**अध्यक्ष महोदय: क्या जरूरत है?

@अध्यक्ष महोदय: क्या गम्भीरता का सवाल नहीं है। अगर नाम जुड़ा हुआ है किसी का तो कोई तहकीकात हो रही होगी किसी अदालत में केस होगा। सिर्फ नाम जुड़े हुए होने पर हम पार्लियामेंट में इस के बारे में क्या करेंगे? उस की कोई तहकीकात........

कर देता हूं कि हिन्दुस्तान का राज्य बिल्कुल घिस चुका है, यहां कायदे-कानून नहीं रह गए हैं। यह कोई व्यक्तिगत मामला नहीं है....

* * * *

मैं उस प्रश्न को छोड़ देता हूं, हालांकि मैं आप से अर्ज किये देता हूं कि जितने सवाल हम लोगों की तरफ से उठाए जाते हैं, उन के उत्तर आप मंत्री महोदय से दिलवाने की कृपा करें।....

* * * *

व्यवधान*

* * * *

उसके बिना इस लोक सभा का काम बिल्कुल मिथ्या हो जाता है।

मैं इस सिद्धान्त को उठा रहा हूं कि राजनीति और नौकरशाह का सम्बन्ध क्या रहना चाहिए, क्योंकि अगर ये तीन चार सौ मंत्री अपने नौकरशाहों का इस्तेमाल करते हैं या तो खुद धन बटोरने के लिए, या अपने रिश्तेदारों के लिए धन बटोरने के लिए, या अपनी पार्टी के लिए धन बटोरने के लिए, और या मान लें कि धन न भी बटोरें, तो शक्ति का संचय करने के लिए, ताकि अपने गुट को मजबूत बना कर राज्य पर कब्जा कर लें—ये चार चीजें मैंने गिनाई हैं—, तो मैं उस को बड़े व्यापक रूप का भ्रष्टाचार कहूंगा। एक पड़ोसी देश के प्रधान मंत्री की बात मैं करता हूं। वह बहुत अच्छे आदमी थे जहां तक मैं समझ पाया था। लेकिन उन की बीवी अनधिकृत व्यापार किया करती थी। अब वह उस देश के प्रधान मंत्री रह नहीं गए हैं।

माननीय गृह मंत्री जी यहां पर नहीं हैं। उप-गृह मंत्री जी यहां बनाये गये हैं कुछ दिन पहले, उनके बारे में मैं कह देता हूं। यह लोक सभा की चीज है। श्री मिश्र जो अब उप-गृह मंत्री बनाये गये हैं, कुछ दिन पहले तक एक राष्ट्रीय निर्माण संस्था के सदस्य थे। उस वक्त 110 रुपया हजार मन मिट्टी खोदने के लिए इस निगम को मिला करता था। लेकिन उसके नीचे जो ठेकेदार होते थे उनको 70 रुपये मिला करते थे, फिर नीचे 60 रुपये और मजदूरों को जा कर कभी कभी पन्द्रह और कभी कभी बीस रुपये ही मिला करते थे। उनको औसत जा कर 40 रुपया पड़ता था। कहां 110 रुपये और कहां 40 रुपये। इससे बढ़ कर ईमान की सच्चाई दुनिया में क्या हो सकती है? यह सारा काम

---

* **अध्यक्ष महोदय:** नाम जाने दीजिए।

दरभंगा हवाई अड्डा बनाते हुए हुआ था। किस के पास गया, इसको मैं नहीं उठाना चाहता, कौन-कौन ठेकेदार थे, किस किस के रिश्तेदार थे, इसको भी मैं उठाना नहीं चाहता हूं। लेकिन यह सारा कुछ होता है नौकरशाह और मंत्री के आपसी संबंध की वजह से और इस पर अगर निगरानी नहीं रखी गई तो हमारे देश का हिसाब बिल्कुल बिगड़ जाएगा।

मान लीजिये कोई मंत्री खुद पैसा नहीं इकट्ठा करता है, उसके रिश्तेदार करते हैं या वह पार्टी के लिये करता है या संचय करता है तो कभी कभी अपने को साधु समझने लग जाता है, हठी बन जाता है, उसके दिमाग पर पर्दा पड़ जाता है और वह समझने लग जाता है कि मैं तो कोई बुरा काम नहीं कर रहा हूं और धोती कुरते में रहता हूं, बहुत सादा रहता हूं, इसलिए उसके दिमाग में और ज्यादा जबर्दस्त भ्रष्टाचार घुस जाया करता है बनिसबत उस मंत्री के जो थोड़ा बहुत शौकीन हुआ करता है। इस पर अगर हम निगाह नहीं रखेंगे तो काम ठीक से नहीं चल सकेगा।

मैं व्यापार और राजनीति के संबंध की एक बात बतलाना चाहता हूं। मुझ पर कृपा की गई है यह कह कर कि मैं उन बातों को बताऊं जिन का मुझ को जवाब नहीं मिला है। ऐसी तो बीसियों बातें होंगी अगर मैं उन बातों को बतलाने लगूं तो बड़ा वक्त लग जाएगा। लेकिन एक किस्सा बताना चाहता हूं इस व्यापार और राजनीति के संबंध के बारे में। एक साहब हैं जिन का नाम है श्री चिरंजी लाल बाजूरिया। एक बड़ी कम्पनी के कानपुर में वह मैनेजिंग एजेंट हैं। वह कम्पनी है ब्रिटिश इंडिया कारपोरेशन जो कि सारे हिन्दुस्तान में बदनाम हो चुकी है। किस किस मंत्री का मैं नाम लूं उस कारपोरेशन के यह मैनेजिंग एजेंट बनाये गये और जब बनाये गये तब तो जीवन बीमा निगम जो सरकारी संस्था है, उसके वोट के सहारे बनाये गये। उसके पहले मेघना और मैक्लयोग कम्पनी में विनिमय के मामले को लेकर सरकार ने उस पर जुर्माना कर दिया था।

एक ऐसा आदमी जिस के ऊपर सरकार ने जुर्माना कर दिया था उसको वोट दे कर ब्रिटिश इंडिया कारपोरेशन की तरफ से मैनेजिंग एजेंट बनाया गया। यह व्यापार और राजनीति का संबंध है। इन हजरात के बारे में कत्ल वगैरह के भी मामले जुड़े हुए हैं और सारा कलकत्ता जानता है, कानपुर जानता है। ऐसे ऐसे लोगों को तरजीह दी जाती है क्या वजह है? पार्टी चन्दा? क्योंकि 26 लाख रुपये इसने कांग्रेस पार्टी को चुनाव में दे दिये.....

....अध्यक्ष महोदय, आपको याद होगा कि मैंने दो बार इसी सदन में कहा है कि आजकल मनुष्य के जीवन का मूल्य इतना गिर गया है कि इसी सदन के एक माननीय

सदस्या का नाम भी कत्ल के साथ जुड़ा हुआ है। मैंने बार बार कहा लेकिन नाम नहीं लिया। कुछ लोगों को गलतफहमी हुई। अब मैं नाम लिये देता हूं....

* * *

व्यवधान*

* * * *

तब उसमें गम्भीरता नहीं आती है....

* * * *

व्यवधान**

* * * *

कुछ नहीं हो रही है, सब दबा दिया गया है

* * * *

व्यवधान@

* * * *

मतलब यह होता है कि आखिर यह लोक सभा है किस लिए? अगर जीवन की सुरक्षा का कोई मूल्य नहीं रह गया, महत्व नहीं रह गया है, सरकारी मशीनरी के कल पुर्जे इतने ज्यादा घिस गए हैं कि वे मनुष्य की सुरक्षा तक नहीं कर पाते तो यह जो बजट है....

* * * *

व्यवधान%

* * * *

मैं उदाहरण दे रहा हूं सिद्धांत का। एक तरफ तो मैंने मंत्री और नौकरशाह के सिद्धान्त का उदाहरण दिया, दूसरा उदाहरण दिया व्यापार और राजनीति का। तीसरी बात मैं अर्ज कर रहा हूं कि आप इस सदन में फोरन एक लम्बी बहस करवायें कि हिन्दुस्तान के जीवन

---

* अध्यक्ष महोदय: क्या जरूरत है?

** अध्यक्ष महोदय: गम्भीरता का सवाल नहीं है। अगर नाम जुड़ा हुआ है किसी का तो कोई तहकीकात हो रही होगी, किसी अदालत में केस होगा। सिर्फ नाम जुड़े हुए होने पर हम पार्लियामेंट में इस के बारे में क्या करेंगे? उस की कोई तहकीकात

@ अध्यक्ष महोदय: नाम जाने दीजिये।

% अध्यक्ष महोदय: इस तरह के केस को ले कर कि यहां पर कत्ल हो गया है, यहां चोरी हो गई है, इधर डाका पड़ा है....

का मूल्य बिल्कुल नहीं रह गया है, वह मक्खी से भी बदतर हो गया है, लोग अपने आपसी संबंधों को कत्ल वगैरह से तय कर लिया करते है। कभी रायचूर में इस तरह की घटनायें हो जाती हैं, कभी शिलांग में। इस पर बहस पूरी होनी चाहिये। कभी तो हम जीवन के मूल्य को, जीवन के महत्व को समझें।

मंत्रियों की ओर से कई चीजों के मुझे उत्तर नहीं आये हैं। मैं नम्बर एक की बात बहुत कम उठाऊंगा। बहुत उठा चुका हूं उनके बारे में भी मुझे कोई उत्तर नहीं मिलता नम्बर दो की बात मैं कहूंगा। नम्बर एक, प्रधान मंत्री के बारे में एक चीज की तरफ मैं आपका ध्यान दिला देता हूं। कर-चोरी का हमेशा यहां पर जिक्र होता है और कहा जाता है कि 30 अरब या 80 अरब रुपये बाजार में बिना हिसाब के रखे हुए हैं, लोग कर-चोरी कर लिया करते हैं। प्रधान मंत्री का जो घर इलाहाबाद में है, उसके बारे में 1962 तक मुझे पता है क्योंकि मुझे सरकारी खत मिल चुका है, उस घर पर कम से कम 1800 या 2000 रुपया महीना के हिसाब से कर होना चाहिये जबकि उस पर 1800 साल के हिसाब से ही कर लग रहा है।....

* * * *

प्रधान मंत्री के पास यह सवाल जा चुका है। पांच साल पहले उन्होंने कहा था कि मैं इलाहाबाद के नगर निगम को कहूंगा कि वह मेरे ऊपर अधिक टैक्स लगाये लेकिन कहीं कुछ नहीं हो रहा है। कैसे हम हिन्दुस्तान के नागरिकों से उम्मीद कर सकते हैं।....

* * * *

व्यवधान*

* * * *

माननीय प्रधान मंत्री के लिए कह सकता हूं कि इसके पहले कि वह दूसरों को कुछ कहा करें, अपने चेहरे की तरफ भी देख लिया कि....

* * * *

व्यवधान**

* * * *

ये सब बातें उठाते हुए मुझे बहुत अच्छा नहीं लगता है। मेरा दिमाग तो बुनियादी बातों की तरफ ज्यादा जाता है। लेकिन जब कूड़ा इकट्ठा हो गया है अगर यह झुंड

---

*अध्यक्ष महोदय: अगर निगम नहीं लगाता है तो यहां पर बहस करके क्या हम उसको हुक्म देंगे कि तुम लगाओ?

**अध्यक्ष महोदय: इससे कोई संबंध नहीं है।

सोचता है कि चिल्ला कर मुझे बिठा देगा तो यह असम्भव बात है अपनी बात मैं कहूंगा चाहे मैं अकेला रहूं और केवल अध्यक्ष महोदय यहां पर हैं जिन का हुक्म मैं मानूंगा। झुंड का हुक्म मैं हर्गिज नहीं मानूंगा। यह बात मैं साफ कर देना चाहता हूं। इसलिए मैं बुनियादी बातों की तरफ जाना चाहता हूं।

* * * *

व्यवधान**

* * * *

मैंने सारे सदन को कुछ नहीं कहा है, कुछ लोगों को कहा है। मैं उनकी इज्जत तभी करूंगा जब वे मेरी इज्जत करेंगे।

* * * *

व्यवधान*

* * * *

अपनी बात मैं कह पाऊं यही इज्जत मैं चाहता हूं, दूसरी नहीं।

मैं बुनियादी कारणों पर जाना चाहता हूं। चूंकि वक्ती चीजों का बड़ा महत्व हो जाया करता है, इसलिये मैं कोई बुनियादी चीज इतने अधिक विस्तार से नहीं कह पाता हूं। कहीं कोई चीज हिन्दुओं में कम है। वह क्या चीज़ है, इसको आप देखें। हिन्दुस्तान में अधिक संख्या वाले हिन्दू हैं। लेकिन आप देखें कि कभी भी पिछले 1500 बरस में हमारा सुधार नहीं हो पाया है। अभी मैंने एक किस्सा सुना है। मुक्केबाजी में जो सब से बड़ा आदमी है कैशियस क्ले वह मुसलमान हो गया है। लोग कहेंगे कि अगर हो गया है तो इसका कोई खास महत्व नहीं है, मतलब नहीं है, इक्के दुक्के हो जाया करते हैं। लेकिन एक तर्क की बात मैं बतलाना चाहता हूं कि आज सारी दुनिया में लोग क्रिश्चियन होते हैं, मुसलमान

---

*अध्यक्ष महोदय: बात ठीक है अगर आपका मतलब उतना ही हो। लेकिन सारे हाउस को झुंड कहना और यह कहना की झुंड की बात नहीं मानूंगा, मुनासिब नहीं है (इंटरप्शंज़) मैं खुद जो कह रहा हूं, तो आपको दखल देने की क्या जरूरत है? कितना ही हम एक दूरे से नाराज क्यों न हो, नफरत भी क्यों न हो लेकिन हमें एक दूसरे की इज्जत करनी चाहिये कुछ बातों में। अगर हम यहां पर एक दूसरे के प्रति कुछ इज्जत रखेंगे तो हमारी भी लोग बाहर इज्जत करेंगे। अगर इस ज़बान से हम एक दूसरे को पुकारेंगे या ऐसा करेंगे कि किसी को नीचा दिखलाया जाए या किसी को ज़लील किया जाए तो सब ज़लील होंगे, एक नहीं। आप जो कुछ कहना चाहते हैं, कहें लेकिन ऐसे शब्दों में नहीं।

**अध्यक्ष महोदय: अगर वक्त आएगा जब आपकी इज्जत नहीं होगी तो मैं उसी वक्त आपकी इज्जत की भी रक्षा उसी तरह से करूंगा जैसे बाकियों की करता हूं।

होते हैं, कोई हिन्दू नहीं होता है। जितनी बड़ी तादाद उनकी है, उसको देखते हुए क्या इस पर गम्भीरता से विचार नहीं होना चाहिये? कहीं कोई बुनियादी खराबी है। अगर उस बुनियादी खराबी को हम देखें तो हमें पता चलेगा कि हम लोग फटे हुए हैं, टूटे हुए हैं। बीस अरब या पचास अरब रुपये तो हम खर्च कर दें लेकिन अगर हमने अपने आपको सुधारा नहीं, समाज को सुधारा नहीं तो क्या होगा? उसका क्या फायदा होगा? क्या हमारा समाज ऐसा बना दिया जाएगा। जो चौआलिस करोड़ आदमियों के दिमाग को लेकर चले? यह सारा मामला टूटा हुआ है, गिरोहों में बंटा हुआ है। इतना नकली हो चुका है कि मैं आपका ध्यान दिलाऊं, क्योंकि यह काम तो सरकार करती है, कि रेडियो वगैरह पर क्या गाना सुनने को मिलता है।

"ज़रा आंख में भर लो पानी"

चीन के आरमण से मरे हुए सिपाहियों को, जो कि चीन के हाथों से मरे हैं, लेकर कहा जाता है कि "आंख में भर लो पानी"। क्या नकली संस्कृति है। अगर आंख में पानी आये तो बांध बना कर उसको रोक लेना चाहिये और गुस्से को दिल में बांध कर दुश्मन से मुकाबला करना चाहिये, और यहां हिदायत दी जाती है कि "आंख में भर लो पानी"। यह नकली अश्रु लोचन है। मैं समझता हूं, आप जानते हैं कि सारी दुनिया में शायद औरतें पिटती हैं, लेकिन जितनी हिन्दुस्तान में पिटती हैं, उतनी और कहीं नहीं। पहले तो मुझे इस पर सिर्फ गुस्सा आया करता था, लेकिन जब मैंने सोचा तो पता चला कि हिन्दुस्तान का मर्द इतना ज्यादा दिन भर सड़क पर, खेत पर, दूकान पर जिल्लत उठाता है और तू तड़ाक सुनता है जिसकी सीमा नहीं है। उसका नतीजा होता है कि वह पलटा जवाब तो दे नहीं पाता, दिल में भरे रहता है और शाम को जब घर को लौटता है तो घर की औरतों पर सारा गुस्सा उतारता है। फिर जब औरतों को गुस्सा चढ़ता है तो वह किस पर उतारती हैं। औरतें बच्चों पर उतारती हैं। मुझे कई दफ़े लगता है कि बच्चों पर तो जुल्म ....

माननीय सदस्यों को देश से कोई मतलब नहीं, जिस तरह से उनका रूख है उसको देखते हुए इतना कहने का हक तो आप मुझे देंगे।

मुझे कई दफा लगता है कि जो जोर जुल्म शुरू से ही चलता रहता है आखिर उसका नतीजा क्या निकल पायेगा। 20, 50, 55 अरब रुपये खर्च करके भी कोई बुनियादी
रोग को खत्म करने की तरह का काम नहीं किया जाता, क्योंकि यह हिन्दुस्तान का समाज इतना ज्यादा बेमतलब हो गया है कि तर्क से आप इसे चलाने

को तैयार नहीं है। यहां विस्फोट होना चाहिये, यहां पर बिल्कुल उठान होनी चाहिये। हम लोग गिरोहों में बंट गये हैं पांच हजार, दस हज़ार और 15 हज़ार के, जाति के हिसाब से, आमदनी के हिसाब से। कहीं कोई राष्ट्र बन नहीं पा रहा है। दूसरी तरफ हर एक गिरोह मस्त है, अपने जीवन में अपने रीति रिवाज में, अपने पुराने धर्म, पूजा पाठ को लेकर मस्त पड़ा रहता है। आज रोग यह है कि सारा देश, समाज बिल्कुल बिखर चुका है। बेमतलब अभी बाकी है।

इसी संदर्भ में यहां मंत्रिपरिषद आ जाती है। मंत्रिपरिषद करती क्या है। मैं एक बार जापान के शहर कोबे में सुबह उठा तो मैंने सामने देखा कि हज़ारों की तादाद में बच्चे चले जा रहे हैं, लड़के लड़कियां। सफेद कमीज और नीला लहंगा या जांघिया, जो कुछ भी आप उसे कहिये, पहने हुए थे। मैंने लोगों से पूछा कि यह क्या चीज है तो पता चला कि सब के सब स्कूल जा रहे हैं आप जरा किसी हिन्दुस्तान के शहर में चले जाइये। आप देखेंगे कि बिल्कुल तितलियों की तरह लड़कियों और लड़कों को सजाया जाता है अलग अलग पोशाकों में। फिर मंत्री महोदय कहते हैं कि यह तो विविधता में एकता है। यह हमारे हिन्दुस्तान की संस्कृति है। इस तरह से कहीं देश को बनाया जाता है। इस बुनियादी रोग की तरफ आप जायें और इस टूटान को देखें।

मैं बार बार कोशिश कर रहा हूं कि इस सदन में हिसाब रखूं कि 27 करोड़ आदमी यहां तीन आने रोज में जिन्दगी बिताते हैं, साढ़े सोलह करोड़ आदमी 1 रु० रोज में जिन्दगी बिताते हैं और 50 लाख आदमी 35 रु० रोज पर अपनी जिंदगी बिताते हैं। इसको अगर दूसरे पहलू से कहूं तो उन्तालीस करोड़ आदमी हैं पिछड़ी जातियों के, और उसमें सिर्फ हिन्दू ही नहीं हैं, मुसलमान वगैरह भी हैं, सिर्फ हरिजन ही नहीं बल्कि और भी पिछड़ी जातियों के हैं। औरतों को तो मैं इसमें सभी को शामिल कर लेता हूं।

* * * *

....साढ़े चार करोड़ लाग हैं जो ऊंची जाति के गरीब मर्द हैं और 50 लाख बड़े लोग हैं जो ऊंचे लोग हैं। जब तक यह समाज इस तरह से टूटा हुआ रहेगा, अर्थ के हिसाब से और जाति के हिसाब से और देश का बजट इसके बारे में कुछ नहीं सोचेगा, तब तक.... क्या पूंजीवाद है, क्या समाजवाद है, क्या एकाधिपत्य है और उसके बारे में बड़ी रंगीन बातें करना कोई विशेष अर्थ नहीं रखता। इसमें पूंजी निर्माण नहीं हो सकता। इसका बुनियादी कारण मैं बतला देता हूं। आज 50 लाख लोग, मेरे हिसाब से करीब 50 अरब रुपया हज़म कर

जाते हैं सारे राष्ट्र की आमदनी है। सरकार के हिसाब से भी कम से कम वह 25 अरब रुपया होगा। नफे की दर हिन्दुस्तान में 30 से 40 प्रति सैंकड़ा तक है पूंजीपतियों की, जो कि व्यक्तिगत पूंजीपति हैं। यहां पर बार बार यह कहना ठीक नहीं है, मैं जानता हूं कि उधर से ही नहीं इधर से भी यह बात कही जाती है, कि पूंजीपतियों को बहुत ज्यादा प्रलोभन नहीं मिलता कि वह अपना व्यापार चलाये। मैं पूछना चाहता हूं कि 30 या 40 प्रति सैंकड़ा मुनाफा साल भर में क्या किसी पूंजीपति को कहीं हुआ करता है। पूंजीपतियों के मुनाफे के लिये यहां कहा जाता है कि काफी प्रलोभन होना चाहिये। लेकिन जब मैं यह बात कहता हूं तो उसके साथ दूसरी तरफ भी मेरा ध्यान खिंच जाता है।

जो नौकरशाही में लगे हुए लोग हैं, अगर उनमें से किसी की तनखवाह 1 हजार रुपया है तो उसके ऊपर सरकार की तरफ से कम से कम 5 हजार रुपया खर्च हो जाता है और सारे लवज़मात में जैसे कि मकान है, भत्ता है, यह है वह है। एक तरफ तो इस वक्त हिन्दुस्तान में ठाठ की दर बहुत ज्यादा है और दूसरी तरफ मुनाफे की दर भी बहुत ज्यादा है। जब तक इस पर नियंत्रण नहीं किया जाता तब तक न पूंजी का निर्माण होगा और न हम किसी तरह से करों का बोझ कम कर सकते हैं।

इसी तरह मैंने आप से मृत्यु कर, खर्च कर और उपहार की बातें कहीं। इसका जिक्र किया गया है कि उद्योग धंधे कमजोर पड़ जायेंगे। मैंने हिसाब लगाया है। राज्यों को जो मिलता है वह ज्यादा से ज्यादा 8 करोड़ रुपया होता है। इस बजट में कोई नया कर नहीं है। केन्द्र का मुश्किल से 5 करोड़ होता है। जहां पर 20 अरब या 25 अरब रुपये की बात हो, मान लो थोड़ी देर के लिये कि मेरा हिसाब बढ़ा हुआ है, अगर 10 या 15 अरब रुपये की बात हो, वहां 8 या 10 करोड़ रुपये को लेकर अगर हम इतनी लम्बी चौड़ी बहस बढ़ा लेंगे तो हिन्दुस्तान के किसी प्रश्न को तय नहीं कर पायेंगे। हमेशा हमने देखा है कि करों के बोझ के बारे में जब कभी चर्चा होती है तो बजाय इसके कि हम एक मकसद या लक्ष्य तय कर दें, तरह तरह के झगड़ों में पड़ जाते हैं। आज चुंगी है। चुंगी पड़ती है। मिट्टी के तेल पर, मोटे कपड़े पर, चीनी पर। चीनी के बारे में मैं थोड़ा सा अर्ज कर दूं कि 9 आने सेर में चीनी बनती है लेकिन उस पर 7 आने सेर की चुंगी और दूसरे टैक्स पड़ते हैं। चुंगी और दूसरे टैक्सों से सरकार इतना मुनाफा कमाती है। इसी के साथ-साथ करोड़पति लोग भी 3 आने सेर का नफा लेते हैं। जब तक इसका कोई इलाज नहीं निकलेगा और 50 अरब रुपया जो 50 लाख बड़े लोग हज़म कर लेते हैं नफे की दर बढ़ा कर के या ठाठ की रफ्तार तेज कर के, जब तक उसमें से बचाया नहीं जायेगा, और मैं

दावे से कहना चाहता हूं कि हिन्दुस्तान में कम से कम 15 या 20 अरब रुपया बचाया जा सकता है, तब तक करों का बोझ हलका नहीं होगा।

इसी तरह से आज मैं यहां श्री मान सिंह पटेल जी का शुक्रिया अदा करता हूं कि उन्होंने कहा कि लगान खत्म हो जाना चाहिये 5 एकड़ तक के किसानों का। मेरी तो खैर यह राय है कि कम से कम साढ़े छः एकड़ तक के किसानों की खत्म हो जानी चाहिये लेकिन 5 एकड़ ही मान लो। जब इस तरह की बात कही जाती है तो उसमें बहस पड़ जाया करती है। जब यह सवाल उठा तो प्रधान मंत्री ने जवाब दिया कि कैसे इसे खत्म करें। अगर लगान खत्म हो जायेगी तो सरकार का काम काज कैसे चलेगा। बहस चलाने का यह कोई बालिग तरीका नहीं है। अगर बालिग तरीके से यह बहस चलाई जाये तो कहा जायेगा कि 55 अरब रुपये में से मुश्किल से 60 या 70 करोड़ रुपया इस साढ़े छः एकड़ वाले किसानों से लगान में आया करता है। इसलिये इसे तो खत्म हो ही जाना चाहिये।

इसी तरह से और जो बातें यहां हुई उनमें से अनाज के दामों के बारे में मैं आपसे अर्ज करूं, और मैं बहुत ज़ोर दे रहा हूं कि अनाज के दाम दो फसलों के बीच में एक आने सेर से ज्यादा नहीं बढ़ने चाहियें। मंत्रियों की तरफ से कोई जवाब नहीं आ पाता। मंत्री लोग, यह मैं मानूंगा, इतने चालाक जरूर होते हैं कि हमें आपस में उलझा दिया करते हैं कि अनाज के दामों को बिगाड़ने न देने के लिए नियंत्रण हो या न हो, बैंकों का राष्ट्रीयकरण हो या न हो। लेकिन मैं कहना चाहता हूं कि 1 आने सेर से ज्यादा दामों का उतार चढ़ाव दो फसलों के बीच में न हो यह मकसद नहीं बन पाता। पहले मकसद बनाओ फिर इस पर बहस करो। लेकिन मकसद नहीं बनाया जाता।

इसी तरह से पूंजी निर्माण की बात यहां कही गई। इसको लेकर एक छोटी सी बात मैं यह बताए देता हूं कि हिन्दुस्तान का समाज इतना टूट गया है कि आपस में जलन है, ईर्ष्या है, गिरोह का स्वार्थ है। आपने देखा होगा कि लोक सभा के सामने हमेशा कोई न कोई जलूस आया करता है। कभी बीमा कम्पनी का जलूस, जो आज ही आने वाला है, पुलिस के सताए खोमचे वालों का जुलूस, कभी बैंक वालों का। हमेशा गिरोह आते हैं। हिन्दुस्तान की जनता का जुलूस बहुत कम आया करता है। इसका कारण क्या है। एक बड़ा कारण यह है कि वित्त मंत्रालय ने हिन्दुस्तान की सरकार के नौकरों के ग्रेड बना दिये हैं, कोई पांच, सात या दस हजार ग्रेड, थोड़ा थोड़ा फर्क कर के। कोई पाता है

105 रु० कोई पाता है 110 रु०। थोड़े से फर्क करके बहुत से ग्रेड बना दिये हैं। जैसे यहां जातियां हैं वैसे ही ग्रेड हैं। इन ग्रेड्स के कारण लोगों में आपस में जलन है। और गिरोही स्वार्थ बन जाते हैं। देश की सारी तस्वीर लोगों के सामने नहीं आ पाती। उनके मन में यह भावना जाग्रत नहीं हो पाती कि जब तक पूंजी निर्माण नहीं होगा उस वक्त तक देश की उन्नति नहीं हो सकती। हर एक सोचता है कि केन्द्र के भंडार में से अपना हिस्सा बढ़वा लो। यह भावना आज चारों तरफ फैल गयी है।

मैं आप से अर्ज करूंगा कि जब मैंने रेलवे के बारे में कहा कि सिर्फ तीसरे दर्जे को रखा जाए और बाकी दर्जे खत्म कर दिए जाएं, तो दासप्पा साहब ने रूस की नजीर दी। क्या रूस हमारे लिए एक नजीर है। मैं इंगलिस्तान की बात कहता हूं जो कि एक पूंजीवाद देश है....

*** *** ***

मैं एक बात श्री अशोक सेन के बारे में कहना चाहता हूं। कल मुझे बहुत तकलीफ हुई जब उन्होंने यहां कानून सचिव की राय को पढ़ कर सुनाया और उसकी आड़ में वह खड़े हो गए। ऐसा किसी मंत्री को नहीं करना चाहिए। मैं आप से बताना चाहता हूं कि जो कुछ मैंने बचपन में पढ़ा है, उसके हिसाब से इस लोक सभा में मंत्री ही फैसलों के लिए जिम्मेदार हैं, सचिव नहीं। अगर फैसले अच्छे हैं तो उनका श्रेय मंत्री को मिलता है, अगर फैसले खराब हैं तो बदनामी मंत्री की होती है।

*** *** ***

यहां पर श्री बनर्जी साहब ने दारा और शाहजहां का जिक्र किया। श्री बनर्जी ने और श्री इन्दुलाल याजनिक जी ने, जिनकी मैं बहुत इज्जत करता हूं यहां साबित किया कि चाहे किसी की कोई भी मातृभाषा हो वह हिन्दी में इतना अच्छा बोल सकता है जैसा बहुत हिन्दी वाले नहीं बोल सकते।

दारा और शाहजहां के बारे में मैं आपको औरंगजेब के इतिहास में से, जिसको कि यदुनाथ सरकार ने लिखा है, कुछ हिस्सा पढ़े देता हूं। वह इस प्रकार है:

"बीमारी बढ़ती गयी। उनके नीचे के अंग फूलते गए। उनकी जीभ सूख चली बादशाह ने अपना चेहरा जनता को झरोखे से दिखाना बन्द कर दिया था जैसा कि वह हर सुबह किया करते थे। दरबारी लोग उनकी बीमारी के बिस्तरे

तक नहीं जा पाते थे वहां सिर्फ दारा और कुछ उनके विश्वसनीय अफसर जा पाते थे। लेकिन राज्य की जरूरतें बहुत बड़ी हुआ करती हैं इसलिए 14 सितम्बर को बीमारी से शाहजहां झरोखे पर गए।"

*** *** ***

मैं सिर्फ इतना कह दूं कि दारा की नीतियों में ताकत नहीं रह गयी थी। अगर वह राज्य को अकेला चलाता होता तो उसकी नीतियों में ताकत आ पाती। क्योंकि शाहजहां में शरीरिक और मानसिक ताकत नहीं रह गयी थी, इस लिए नीतियां ठीक नहीं रह पायीं थीं। मैं खाली यह कहना चाहता हूं कि दिल्ली की गद्दी में कुछ ऐसी बात है कि यहां पर नीतियां बिगड़ जाती हैं। यहां का काम तब तक ठीक नहीं चल सकता जब तक कि देश के साढ़े तैतालीस करोड़ लोग बलवा या उठान नहीं करेंगे। मालवीय जी, बजट से समाजवाद नहीं आया करता। समाजवाद तो देश के साढ़े तैतालीस करोड़ लोगों की बगावत से और उनके तूफान से आएगा।

29

अनुपूरक अनुदान मांगें (रेलवे)*

उपाध्यक्ष महोदय, मैं इन अनुदानों का विरोध करता हूं और करता रहूंगा जब तक कि हिन्दुस्तान की रेलगाड़ियों में तीसरे दर्जे के अलावा बाकी सब दर्जे खत्म नहीं कर दिये जाते। इस सम्बन्ध में रेल मंत्री ने फरमाया कि रूस में चार दर्जे हैं। ऐसी कोई भी मिसाल यहां देना उचित नहीं होता लेकिन अगर मिसाल उन को देनी ही है तो इंग्लिस्तान की दें जहां पर सिर्फ दो दर्जे हैं, एक और तीन और बहुत सी गाड़ियां हैं जिन में सिर्फ तीसरा दर्जा रहता है। पहले और तीसरे दर्जे में सिर्फ यह फर्क है कि तीसरा दर्जा नकली मखमल का होता है और पहला दर्जा चमड़े का होता है, और किराये में सिर्फ डेढ़ गुने का फर्क होता है। लेकिन इन विदेशी उदाहरणों को छोड़ कर हमें खुद अपने देश की वर्तमान हालत को सोचना चाहिये कि क्या हम तीसरे दर्जे के अलावा बाकी दर्जों को खत्म कर सकते हैं। और मैं समझता हूं कि खत्म करना चाहिये ...

***   ***   ***

यह खर्च है प्रशासन का जिस के सम्बन्ध में अनुदान है इसलिये मैं उन सब बातों पर बोल सकता हूं क्योंकि उन का असर पड़ता है रेल गाड़ियों पर, रेलगाड़ियों के प्रशासन पर। यह विभाग पहले, दूसरे, तीसरे सभी दर्जों का प्रशासन करता है। इसलिये प्रशासन के लिये ही हमें पैसा नहीं देना चाहिये जब तक कि तीसरे दर्जे के अलावा सब दर्जे खत्म नहीं कर दिये जाते।... मैं तो चाहूंगा कि हमारा ध्यान हिन्दुस्तान के इस बुनियादी रोग की तरफ जाये क्योंकि कई दफे मेरी तबीयत होती है कि बड़ी बातों की तरफ जाऊं। लेकिन हमेशा छोटी बातों में हम लोग उलझ जाया करते हैं।

आज हमारा देश इतना टूट चुका है कि दुनिया का कोई देश उतना टूटा हुआ नहीं है। एक तरफ आमदनी और खर्च के हिसाब से हजारों सीढ़ियां हमारे यहां हैं। उतनी संसार के किसी देश में न तो थीं और न आज हैं। यह देश पैसे के हिसाब से बहुत टूटा हुआ है। दूसरी तरफ मन के हिसाब से भी उतना ही टूटा हुआ है। मैं आपका ध्यान खींचूं पिछले हजार पन्द्रह सौ वर्षों की तरफ। रामानुज से लेकर दयानन्द तक जितने भी लोग हुए, वसवन्ना हुए, महावीर हुए, गुरू नानक हुए, कबीर हुए, सब ने इस देश को जोड़ना

---

*लोक सभा वाद-विवाद, 10 मार्च, 1964

चाहा, सब ने इस देश से जातिपांति को खत्म करना चाहा, लेकिन अन्त में वे एक एक सम्प्रदाय को छोड़ते चले गये। इन सब का कोई इलाज हमें निकालना है। अर्थ के हिसाब से, मन के हिसाब से, हमारा देश टूटा हुआ है, गरीबी और अमीरी में इतना फर्क है, ऊंची और छोटी जाति का इतना फर्क है कि अब हम को बुनियादी तौर पर कोई न कोई रास्ता निकालना पड़ेगा। और इसीलिये मैंने कहा कि हिन्दुस्तान की रेलगाड़ियों में तीसरे दर्जे के अलावा सभी दर्जों को खत्म करो ताकि इस टूटे हुए देश में, गरीबी और अमीरी के इतने बड़े फर्क के देश में, कहीं कोई इलाज तो आ सके।

इस बात को उठाते हुए मैं आप का ध्यान इस तरफ भी ले जाना चाहता हूं कि आज जितने भी हमारे यहां इन्तजाम हैं, रेलगाड़ियों के सारे प्रशासन को ले लीजिये, उस में जो आमदनी का फर्क है, खर्च का फर्क है, महंगाई भत्ता वगैरह का जो फर्क आ जाया करता है, क्योंकि आखिर जितने भी अनुदान होंगे वे पुरानी शैली पर ही तो चलेंगे, वह बजाय इसके कि देश को जोड़ें, देश को तोड़ते चले जा रहे हैं, अर्थ और जाति के हिसाब से, तो अर्थ और जाति के इस फर्क को मिटाने के लिये जरूरी हो गया है कि हम कोई कदम उठायें। यहां कोई छोटी मोटी चीजों से काम चलने वाला नहीं है। इसलिये मैंने यह प्रस्ताव रखा था। आज इस प्रकार विदेशों के उदाहरण दे देना मतलब नहीं रखता क्योंकि दुनिया का कोई देश इतना टूटा हुआ नहीं है जितना कि हिन्दुस्तान टूटा हुआ है। अगर इन सब की कड़ी आप बनायेंगे तो देखेंगे हर एक दिशा में ऐसा ही है।

इस के साथ मैं कह देना चाहता हूं कि पांच वर्ष से लेकर 11 वर्ष तक के जितने बच्चे हैं, चाहे राष्ट्रपति का बच्चा हो चाहे भंगी का बच्चा हो, सब को एक ढंग के स्कूल में जाना चाहिये। अगर हम इस तरह के कुछ कदम उठायेंगे तब हम अपने देश को बना पायेंगे और इसी पृष्ठभूमि में मैंने आप के सामने हिन्दुस्तान का इतिहास रखा है हजार पन्द्रह सौ वर्षों का। और इसी पृष्ठभूमि में आप को भी देखना चाहिये मेरे सुझाव को।

मैं बहुत जोर से कहना चाहता हूं कि मेरे इस सुझाव को माननीय सदस्य ही न टाल दें और न रेल मंत्री इस को टाल दें। उन को मेरे इस सुझाव पर बहुत गौर से सोच विचार करना चाहिए। मैं नहीं कहता कि वे हमेशा के लिये ऐसा करें। हो सकता है कि दस, पन्द्रह या बीस वर्ष के बाद हिन्दुस्तान की माली हालत इतनी सुधर जाये कि गरीब आदमी के पेट में अन्न जाने लगे और उसका स्वाभिमान भी जग जाये और रेलगाड़ियों के नौकर लोग, जैसे कि समझ लीजिये की सफैये हैं, जैसे गार्ड हैं, कंडक्टर हैं, वे लोग आदमियों के कपड़े और चेहरे को देख कर नहीं बल्कि इन्सान को देख कर खिदमत किया करें।

जब ऐसी सूरत हो जाये पन्द्रह, बीस, तीस वर्षों बाद तब अगर आप और दर्जे ले आना चाहें तो ले आयें। इस सम्बन्ध में यह तर्क देना कि हमें विदेशी यात्रियों के लिये

सुविधायें करनी हैं, इसलिये हम एअर कंडिशन करते हैं या पहले दर्जे लगाते हैं, ठीक नहीं है। इसके लिये मैं साफ जवाब दिये देता हूं कि विदेशी यात्रियों के लिये अलग से दर्जे बना दिये जायें। चूंकि उन से आप को फारेन एक्स्चेन्ज उपार्जन करना है इसलिये अलग डब्बे लगा दिये जायें लेकिन नियम हो जाना चाहिये कि कोई भी देशी आदमी, हिन्दुस्तानी उन ऊंचे दर्जों में चल नहीं पायेगा। इस से मन के अन्दर और समाज के अन्दर एक जबर्दस्त मनोवृत्ति पैदा होगी। आज तो कुछ ऐसी मनोवृत्ति हो गई है कि पचास लाख बड़े लोगों के अलावा किसी को इस देश में सुविधायें मिल ही नहीं पाती हैं। रेलवे का इतना बड़ा महकमा है, इस में 12 या 14 लाख आदमी काम करते हैं यह सब किस के लिये हैं। 44 करोड़ आदमियों के लिये हैं। लेकिन मैं बड़े जोर से कहना चाहता हूं कि 12 या 14 लाख आदमी 44 करोड़ लोगों की सेवा तक सीमित रह जाते हैं। यह चीज कब बदलेगी, कहां बदलेगी, कैसे बदलेगी। मैं ने मिसाल दी, जैसे हम लोग हैं, मैं खुद अपने अनुभव से आप को बतलाता हूं कि रेलगाड़ियों में जितने नौकर होते हैं, गार्ड, कंडक्टर, सफैये, वे ध्यान देते हैं सिर्फ एअर कंडिशन या पहले दर्जे के यात्रियों की तरफ, और उन में भी जो मेरे जैसे लोग हैं, उन के लिये समझते हैं कि यह लोक सभा के सदस्य हैं, कहीं जा कर इन बातों की चर्चा न कर दें, इसलिये इनकी तरफ ध्यान देते हैं। साधारण जनता के डब्बों की सफाई नहीं होती। यह चीज़ आखिर कैसे बदलेगी। भाषणों से तो नहीं बदलेगी न और किसी तरीके से बदलेगी और न कोई इधर उधर छोटे मोटे दर्जों के यात्रियों को सुविधा देने से बदल जायेगी। यह तो तभी बदलेगी जब तीसरे दर्जे के अलावा बाकी सब दर्जे खत्म कर दिये जायें जिसमें अगले दस, पन्द्रह, बीस वर्ष तक के लिये बड़े और छोटे सभी लोगों को एक ही ढंग से चलना पड़े।

इस सम्बन्ध में यदि रेलवे मंत्री तीसरे दर्जे में चलना शुरू कर दें, या उपाध्यक्ष महोदय, आप चलना शुरू कर दें, या जो कुछ बड़े लोग हैं, बड़े साधू सन्त हैं, बड़े महात्मा हैं... वे चलना शुरु कर दें तो उस का नतीजा क्या निकलेगा। कबीर निकले थे समाज को जोड़ने, हजारों सम्प्रदायों को एक करने, लेकिन अन्त में परिणाम यह हुआ कि हजारों सम्प्रदायों की जगह कबीरपन्थी अपना एक सम्प्रदाय और जोड़ते चले गये। इसलिये मैं कहता हूं कि जाति की ऊंच नीच को खत्म करने के लिये,अर्थ और पैसे के खर्च की ऊंच नीच खत्म करने के लिये या कम करने के लिये। एक बात मैं जोड़ दूं। मैं कम करने के लिये कहता हूं। खत्म करने के लिये अब भी इतने जोर से नहीं कहता हूं। ऐसा हो जाये जैसा कि रूस में है, जैसा कि इंग्लैंड में है कि सीमा के अन्दर गैर-बराबरी आ जाये। इसलिये मैं कहता हूं कि कुछ अर्से के लिये तीसरे दर्जे के अलावा सब दर्जे खत्म कर दिये जायें।

30

सूचना व प्रसारण मंत्रालय के लिए अनुदान मांगें*

महोदय, मेरे एक दोस्त अभी रूस से लौट कर आए हैं और उन्होंने मुझे बताया है कि रूसी कह रहे हैं प्रावदा में इज़बेस्तिया नहीं है और इज़बेस्तिया में प्रावदा नहीं है। रूस के ये दो अखबार हैं। प्रावदा माने सच और इज़बेस्तिया माने समाचार। रूस के लिए जितनी यह बात सही है हिन्दुस्तान के लिए उससे ज्यादा सही है। यहां सच में समाचार नहीं है और समाचार में सच नहीं है। एक उदाहरण मैं आकाशवाणी से आपको देता हूं जिस का सिर्फ आधे घंटे का कार्यक्रम मुझे जंचता है। जब कभी कोई मीरा अपने सर्व सांवरिया के साथ नाचती है या कोई कबीर अपनी चदरिया को जतन से ओढ़ करके रख देता है तो मुझ जैसा पुराना आदमी इस सच्चाई पर थोड़ी देर के लिए खुश हो लेता है लेकिन इस सच में भी ताकत नहीं रह गई है देश को बदलने की, नए रास्ते पर ले जाने की। इसके अलावा जिस तरह का समाचारों में हमें सच मिलता है वह बिलकुल साफ है। अखबारों को देखते हुए मालूम होता है कि जैसे हिन्दुस्तान की दुनिया में बड़ी इज्जत है। बड़ा मुंह और छोटा हाथ। आज जितना दुनिया वाले हम पर हंस रहे हैं शायद ही और किसी देश पर उतना हंस रहे हों। जो सही समाचार हैं वे हमारे पास आते नहीं हैं। कश्मीर के मामले में सुरक्षा परिषद् में ऐसा लगा यहां के अखबारों को देख कर जैसे हमने फतह कर ली। लेकिन इधर दस दिन में मालूम हो रहा है कि नहीं, वह फतह नहीं थी वह तो हार थी। इस तरह के समाचारों से क्या मिलेगा। बहुत तरक्की हो रही थी देश में, लेकिन गुब्बारा जितना उड़ा था दस पन्द्रह बरस तक, तीन आने की सुई ने उसको पिचका कर छोड़ दिया। इस तरह के समाचारों से कोई भी देश को लाभ होने वाला नहीं है। सच्चे समाचार होने चाहिये।

गरीब देश में समाचारों का सब से बड़ा स्रोत सरकार हुआ करती है और सरकार का सब से बड़ा मकसद होता है किसी तरह से गद्दी पर बैठे रहना चाहे सच बोल कर या झूठ बोल कर। पहली सलाह तो मैं यह देना चाहता हूं कि जहां तक हो सके सच की तरफ भी समाचारों में ध्यान दिया जाये। अगर सरकार न दे सके तो जनता दे।

अखबारों का जो हाल है उसको भी आप देख लें। श्री गोयनका या उनके जैसे लोगों

*लोक सभा वाद-विवाद, 17 मार्च, 1964

के लिए तो मैं कानून बना दूं कि या तो वे अखबारों के मालिक रहें या मिलों के मालिक, दोनों के मालिक एक साथ न रहें।

तबीयत तो आती है कि इसके बारे में मैं और कुछ कहता। लेकिन सरकार इस लायक नहीं है कि आज गोयनका जी के अखबारों को सरकार को सौंप दिया जाये। इसलिए मैं सिर्फ इतना ही कहूंगा कि हिन्दुस्तान में अखबारों के मालिकों को, मिलों, चाहे वे चीनी की मिलें हों या जूटपाट की हों, उनको रखने का अखत्यार नहीं रहना चाहिये। दरअसल यह मामला बड़ा लंबा जाता है। छोटी मोटी चीज़ को करने से यह नहीं होगा। शायद मंत्री महोदय के बस का नहीं है, हमारे में से किसी के बस का नहीं है क्योंकि हिन्दुस्तान का सच बिगड़ चुका है। मेरी हमेशा यही तबीयत होती है कि इस सच पर कुछ बोलूं छोटी मोटी तफसील की बातों पर नहीं लेकिन क्या किया जाये। पिछले हज़ार डेढ हजार बरस से जो चित्र हमारे सामने है वह तो गज, ग्राह, विष्णु का है। कोई विष्णु आकर हमें बता दे। हम खाली उसकी पूजा करले, उसकी आरती उतार लें। हमारे सामने चित्र है जहांगीरी घंटे का, हम बजा दे और कोई जा कर हमें न्याय दिला दे। जब हमारा यह हाल है, जब हम नाम, जप, आरती पूजा, पाठ, यज्ञ इत्यादि से ही तरक्की करना चाहते हैं तो कहां से सच होगा, कहां से लगन होगी, कहां से पुरुषार्थ होगा। जब तक सूचना और प्रसारण विभाग इस मामले से नहीं लड़ता, जब तक वह हिन्दुस्तान की जनता को ऐसी ज़हनियत नहीं देता कि पूजा, पाठ, यज्ञ से कुछ नहीं होगा, तब तक क्या हो सकता है। शायद मैं ऐसे लोगों को यह सलाह दे रहा हूं जो खुद इस रोग में मुबतला हैं। लेकिन क्या करूं इस वक्त देश इस रोग से बड़ा बिगड़ा हुआ है। मैं एक मिसाल देता हूं और सफाई भी कर देना चाहता हूं। पिछली बार जब मैंने वैज्ञानिकों के बारे में कहा था कि वैज्ञानिक खोज ठीक तरह से नहीं हो पाती तो मैंने कहा था कि वैज्ञानिक तब अच्छा हिन्दुस्तान में पैदा होगा जब वह मनुष्य के दिमाग और पुरुषार्थ पर विश्वास करेगा, न कि जप के ऊपर। साथ साथ यह भी मैंने कहा था कि यदि वह एक अच्छी बीबी ढूंढ ले जिस का बाप असरदार हो तो वह अधिक तरक्की कर सकता है बनिस्बत वैज्ञानिक खोज करने के। उस वक्त लोगों ने समझा मैं किसी एक खास वैज्ञानिक के लिए कह रहा हूं। ऐसा मेरा मतलब नहीं था। हमारे देश में तबीयत हमेशा यही रहती है कि तरक्की कुछ ऐसे ढंग से कर लो, चापलूसी से, जप से, शब्द से, कीर्तन से, नाम से वगैरह। जब तक मंत्री महोदय इस चीज़ से नहीं लड़ेंगे हिन्दुस्तान में सूचना और प्रसारण का कोई काम हो नहीं सकता है।

*** *** ***

....एक और सलाह मैं दे दूं। आकाशवाणी के सब लोगों को तो मैं जानता नहीं, एक

औरत को जानता हूं बहुत बरसो से। वह बड़ी तेज हैं, बड़ी मेहनती हैं, बड़ी बुद्धिमान हैं। अगर वह थोड़ी चापलूस भी होतीं तो शायद आज आकाशवाणी की सब से बड़ी अफसर होतीं अभी वह कोई छोटी हैं सातवें, आठवें या नवें नम्बर पर होंगी। इस बात का बहुत ध्यान रखना है कि लोगों को चूंकि चापलूसी के ज़रिये तरक्की दे दिया जाया करती है, इसलिए हमारे बहुत से विभाग अच्छे नहीं हो पाते हैं, फिर चाहे वह आकाशवाणी हो, चाहे शिक्षा मंत्रालय हो चाहे और कोई मंत्रालय हो। इस बात को बढ़ाने के पहले मैं कुछ छोटी छोटी तफसीलों की बात बता देता हूं। हो सके तो मंत्री महोदय को एक आकाशवाणी का विश्वविद्यालय खोलना चाहिये। आकाशवाणी के जरिये घंटे, दो घंटे, तीन घंटे रोज का कार्यक्रम चले जिस से सुनने वालों को करीब करीब वही शिक्षा मिल जाये, बल्कि कुछ अच्छी हो, जैसेकि किसी को बी० ए० और एम० ए० में मिला करती है और यह सम्भव हो सकता है। लेकिन मैं एक चेतावनी दे देना चाहता हूं कि अगर यह अंग्रेजी में किया गया तो कूड़ा और ज्यादा इकट्ठा हो जायेगा। इसलिये मेहरबानी करके मेरी बात को तुम बिल्कुल भुला देना अगर इस को अंग्रेजी में करना चाहो। यह काम तो केवल देसी भाषाओं में हो सकता है। आकाशवाणी का एक विश्वविद्यालय।

इसी के साथ साथ मैं एक और भी सलाह देना चाहूंगा आकाशवाणी के या दूसरे मंत्रालयों के अन्दर काम करने वाले नौकरों के बारे में। जो मातृ भाषा के माध्यमों से काम करते हैं उनकी तन्ख्वाहें करीब करीब आधी हैं, बल्कि और भी कम पड़ जाती हैं अंग्रेजी के माध्यम से काम करने वालों की अपेक्षा। यह कोई तरीका नहीं है हिन्दुस्तान में अच्छी भाषा नीति चलने का और जब मैं नौकरों की बात करता हूं तो जो अस्थायी नौकर हैं, जिन को यह लोग स्टाफ आर्टिस्ट्स कहते हैं, उन की बड़ी बेबसी की हालत है। अगर आप उस पर ध्यान दें तो जरूर कुछ न कुछ तब्दीली आ सकती है। यह बात होनी चाहिये क्योंकि जो लोग स्थायी नौकर हैं उन की तुलना में उन की हालत बड़ी खराब है।

मातृ भाषा के जो अखबार हैं, इसी रपट से पता चलेगा कि पूरे हिन्दुस्तान भर के सभी अखबार जो हैं उन को 21 लाख रुपये के विज्ञापन मिले हैं, सब अखबारों को मातृ भाषाओं के, और केवल अंग्रेजी के अखबारों को 30 लाख रु० के विज्ञापन मिले हैं। इस पर मैं क्या कहूं। अगर इस पर मैं कोई कड़े शब्द बोलता हूं तो लोग मुझ पर नाराज़ होते हैं, हालांकि इस मौके पर तबिअत होती है कि सचमुच कुछ कड़े शब्द बोले जाये। इसी तरह से अगर मैं एक बात मंत्री महोदय को *बतलाऊं तो उन के प्रदेश से मेरे पास एक खत आया। बड़ा भावपूर्ण खत था। उस खत के लिखने वाले ने मुझ से कहा कि "माननीय सत्य नारायण सिंह को बतला देना कि बिहार में और मैं समझता हूं कि पूरे हिन्दुस्तान के बहुत से सूबों में अभी भी कन्याओं की हत्यायें हुआ करती हैं। कन्या हत्या।

---

*लोक सभा वाद-विवाद, 17 मार्च, 1964

बहुत से ऐसे कुटुम्ब हैं, बहुत सी ऐसी जातियां हैं जो कि कन्यायें पैदा हो जाने पर इतने दुखी होते हैं कि कन्याओं की हत्या कर देना ही बेहतर समझते हैं।" अगर कन्याओं की हत्यायें होती रहती हैं तो मैं नहीं समझता कि इस देश में कहां से न्याय और कहां से इन्साफ पनप सकता है। यह तो खत लिखने वाले ने मुझ से कहा था कि माननीय सत्य नारायण जी को सुना देना।

इस आकाशवाणी के जरिये और जहां तक मैं जानता हूं सूचना मंत्रालय की तरफ से ऐसा कोई रोचक और रसिक प्रोग्राम प्रसारित नहीं किया जाता जिस से यह दुर्गुण और बुरी आदतें दूर हों। खाली यह कहो कि सत्य बोलो, तो कोई नहीं सुनेगा, खाली कहो कि मिलावट मत करो, कोई नहीं सुनेगा, खाली कहो कि दबा दबा कर, चबा चबा कर खाओ। कोई नहीं सुनेगा, खाली यह कहो कि खाते वक्त मुंह मत खोलो, कोई नहीं सुनेगा। लेकिन अगर यह सब चीजें आप रोचक बना दें और हिन्दुस्तान की जनता की आदतों को बदलने की कोशिश करें तो सम्भव है कि अपना देश भी कुछ सभ्य बने।

सभ्य बनने की बात जब की जाती है तो कुछ थोड़ा सा सभ्यता के बारे में भी मुझे जरूर कहना है क्योंकि सूचना तथा प्रसारण मंत्रालय का तो इस से बहुत ज्यादा सम्बन्ध होना चाहिये। सभ्यता क्या है। क्या सभ्यता यह है कि शांति रखते हुए लोग अपनी बातों को कहने आयें, जुलूस बनायें और पचास घंटे बाद आप उन को गिरफ्तार करें, और ऐसे गिरफ्तार करें कि जिस में जमानत भी उन को न मिले। क्या सभ्यता इस बात में है कि कोई सदस्य संसद् का, जैसे कि बागड़ी जी, आ कर यहां पनाह लें। आखिर इस दिल्ली में एक जहांपनाह हुआ करता था। यह पनाह की जगह है, लेकिन बजाय इस के कि माननीय मंत्री उन को इस सदन में जो पचासों कमरे हैं उन में कहीं पड़े रहने दें, उन को एक पेड़ के नीचे रखें। क्या यह सभ्यता है।*

**** **** ****

....सभ्यता की यहां बड़ी चर्चा हुआ करती है। क्या सभ्यता सिर्फ इसी बात में है कि कोई परदेशी कौम हमारे ऊपर हमला करे, हमारी जमीन को हड़प ले और उस कौम का मंत्री अगर हमारी हवा का इस्तेमाल करे तो चुपचाप उस को इस बात की इजाजत दे दी जाये। क्या इसी को सभ्यता कहते हैं। तब तो इस के यह मतलब होंगे कि सभ्यता का मतलब है कि जो अपने से दुर्बल हो उस के ऊपर तो झपटा मारो, और जो अपने से सबल हो उस के सामने झुक जाओ। आकाशवाणी और समाचार वगैरह का या सूचना का जितना भी मंत्रालय है वह अगर इसी सभ्यता को फैलाता रह गया तो हिन्दुस्तान में

*इसके उत्तर में अध्यक्ष महोदय ने कहा, "मैं पार्लियामेंट हाउस को रेजिडेंशल क्वार्टर नहीं बना सकता"।

अब तक जो रोग रहा है वह सदा सर्वदा के लिये जारी रहेगा। सभ्यता का मतलब है कि अपने से सबल के सामने अड़ जाओ, डट जाओ, उस का मुकाबला करो, चाहे कुछ देर के लिये हार जाना पड़े, मार खानी पड़े, और जो अपने से दुर्बल हो उस के सामने झुक जाओ। यह सभ्यता अगर हिन्दुस्तान का सूचना और प्रसारण मंत्रालय आगे के लिये सिखाये तो ज्यादा अच्छा होगा।

मैंने यहां एक बार जिक्र किया था औरतों, मर्दों और बच्चों की बात का जिस को मैं पूरी नहीं कर पाया था। एक ऐसे दायरे में चला गया था जिस का वर्तमान राजनीति से कोई सम्बन्ध नहीं है इस स्थायी पन्द्रह सौ वर्ष वाली राजनीति का हमारे देश में औरतें जितनी मार खाती हैं अध्यक्ष महोदय वह आप जानते है ऐसा क्यों होता है।

*** *** ***

असल में पहले तो मुझे बहुत गुस्सा आता था इस बात पर। आठ, दस वर्ष तक गुस्सा आता रहा। मैं इस मसले को समझ नहीं पाया था। लेकिन जब मैंने इस मसले पर बहुत सोचा तो पता चला कि हिन्दुस्तान का मर्द बेकसी की हालत में अपने मालिक और अफसर की तू तड़ाक और टोकरों का मुकाबला नहीं कर पाता, पलटाकर जवाब नहीं दे पाता, अन्दर अन्दर उस के दिल में बात पकती रहती है और जब शाम को घर लौटता है तो दिन भर की खीझ और गुस्से की जलन अपने घर की औरतों के ऊपर निकाला करता है। इसी तरह से औरतों को भी गुस्सा आता है तब वह कहां पर अपने गुस्से को निकालती हैं। बच्चों पर।

*** *** ***

....कई बार तो मेरे मन में आता है कि सब राजनीति को छोड़ कर मैं हिन्दुस्तान में केवल बच्चों की एक पार्टी बनाऊं ताकि वे विद्रोह करें, और विद्रोह करे अपने मां बाप के सामने कि अकारण उन के ऊपर थप्पड़ क्यों लग जाया करते हैं। जब तक अकारण थप्पड़ लगते रहेंगे और यह सूचना और प्रसारण मंत्रालय उसके सम्बन्ध में कुछ नहीं करेगा, जब देश के मर्द अपना गुस्सा अपने सामने वाले बड़े के खिलाफ नहीं निकाल पाते और औरतों पर निकालते हैं और जब देश की दुर्बल औरतें अपने बच्चों पर गुस्सा निकालती हैं, तो ऐसे देश पर चीन जैसा कोई भी बलवान देश अपना गुस्सा निकालेगा, क्योंकि अत्याचार और जुल्म का एक चक्कर है और इस चक्कर को तोड़ना है। इस चक्कर को तोड़ने के लिये माननीय सूचना और प्रसारण मंत्री कोई लम्बी योजना बनायें ताकि वे अत्याचार के कीड़े जो हमारे दिमागों में घुस गए हैं, निकल सकें। लेकिन ऐसा करने के लिए उनको पहले अपने दिमाग से और अपने मंत्रालय के दिमाग से भी कीड़ों को निकालना होगा ताकि वह सभ्य बन सकें जब वह खुद सभ्य बनेंगे तो हिन्दुस्तान को सभ्यता सिखा सकेंगे। जो खुद असभ्य है वह दूसरों को क्या सभ्यता सिखाएगा।

31

रक्षा मंत्रालय के लिये अनुदान मांगे*

अध्यक्ष महोदय, फ्लैडर्स और अल-अमीन के मैदानों में जीतने वाली सेना और आज की सेना में कोई सम्बन्ध नहीं है। इन दोनों सेनाओं के बारे में एक स्वर में बातचीत करना और कहना कि तब की सेना बड़ी समर्थ थी और आज की कमजोर है कोई मतलब नहीं रखता। दोनों में कोई धारावाहिकता नहीं होनी चाहिये और न है कोई परम्परा। उस सेना के पीछे अंग्रेज राजा, रानी थी, अंग्रेजी कारखाने थे, अंग्रेज अफसर थे और गुलाम मुल्क का एक खास ढंग का अनुशासन था। आज की सेना में वह सब चीजें नहीं रह गयी हैं लेकिन उस का कंकाल पड़ा हुआ है और मुझे बहुत दर्द के साथ कहना पड़ता है कि जंजीर की एक कड़ी तो घिस गयी, अंग्रेजी राज्य तो गया लेकिन जिस तरह की पलटन को उन्होंने बनाया था उस एक कड़ी को छोड़ कर के बाकी जंजीर ज्यों की त्यों करीब करीब बनी पड़ी हुई है। उस का एक बड़ा भारी प्रमाण मुझ को २६ जनवरी के समापन समारोह में मिला जिस को कि यह लोग बीटिंग आफ रिट्रीट कहते है और भी ऐसे होते होंगे लेकिन मैं तो सिर्फ एक इसी समावर्तन समारोह में अब की मर्तबा चला गया। गिरजे के घंटे बजे और ईसाई धर्म का एक गाना गाया गया। यह मैं पलटन के समारोह का जिक्र कर रहा हूं। "ऐबाइड विद मी ओ लार्ड" का गाना गाया गया। कोई यह न समझे कि मैं चाहता हूं कि मंदिर, गुरुद्वारे या मस्जिद के घंटे बजाये जायें और गाने गाये जायें लेकिन इतना मैं जरूर कहना चाहता हूं कि इस से साफ साबित हो जाता है कि जो कोई दिमाग आज भारतीय पलटन के पीछे है उसमें शायद अफसर का कोई कसूर नहीं है पहले से मैं कहे देता हूं। जो भी दिमाग राजनीतिक ढंग से इस पटलन के पीछे है वह इन पुरानी चीजों को चलाते जा रहा है यहां तक कि ऐसी मामूली सी बात जिसको कि फौरन ही दूर कर देना चाहिए था उसको भी अभी तक दूर नहीं किया गया है।

उसी तरीके से अगर आप पुराने हिन्दुस्तान की उस सेना की तरफ देखें कि जहां से

*लोक सभा वाद-विवाद, 21 मार्च, 1964

हमारी हार शुरू होती है तो आज से हजार वर्ष पहले सन् १००८ में और अब में कोई विशेष अन्तर नहीं है। तब के बारे में कहा जाता है कि अनंगपाल का हाथी भाग गया इसलिए हमारी पलटन भाग गयी और इस लिए हमारी पलटन हार गयी वरना हम तो जीत चुके थे। अब भी करीब-करीब वैसी ही बातें कही जाती हैं कि उर्वसीअम में हमारी सेना तादाद में कम थी या हमारे हथियार ठीक नहीं थे या हम पर धोखा हो गया, या हम ऊंचाई पर लड़ रहे थे जैसे चीनी कोई नीचाई पर लड़ रहे थे और शायद कुछ दिनों के बाद यह भी कहा जायेगा कि जनरल कौल को जुकाम हो गया था। चाहे अनंगपाल का हाथी हो, चाहे किसी का जुकाम हो या हथियारों की कमी रही हो, लेकिन यह सब ऊपर की चीजें हैं, चिन्ह हैं। रोग कहीं और है। आखिर अनंगपाल के हाथी के फंस जाने से इतने बड़े देश की आज़ादी चली जाय तो वह केवल एक प्रतीक है।

असली कारण को ढूढंना चाहिये और दूसरा मामला बहुत ही गड़बड़ रहा होगा जबकि एक अपनी छोटी सी चीज से इतने बड़े मुल्क की आज़ादी छिन जाती है तो वह अंदर का रोग क्या है इसे देखना चाहिये। ऊपर के फोड़े से संतोष नहीं कर लेना चाहिये।

इस संबंध में मैं आप का ध्यान एक और बात की तरफ़ खींचूंगा। अभी मैं एक किताब पढ़ रहा था हज़ार वर्ष के ज़माने की। अरब इतिहासकारों ने एक बहुत बढ़िया बात लिखी है कि हिन्दुस्तान भर की औरतों ने अपने गहने देने शुरू कर दिये। मुझे तो ऐसा लगा कि यह तो शायद आज के ज़माने की बात है। फिर भी हारे। आखिर गहनों में क्या रक्खा है। यह जो सारा युद्ध कोष का पैसा इकट्ठा हुआ है वह, मैंने हिसाब लगाया है, मुश्किल से सेना का दस दिन का खर्च है। लेकिन उस पर तूल कितना मचा। यह ऊपर की बातों में उलझ जाने वाली चीज़ें होती हैं और असल में जो अन्दर का रोग होता है उस को ढूंढना एक और बात है। साफ है कि हम को दो चार दिन की बहादुरी की छटा तो आती है, लेकिन महीनों और सालों की पस्त हिम्मती की घटा सहनी पड़ती है।

इसी तरह से जो हमारे सोचने के तरीके हैं, उन को देखिये। पद्मिनी को अभी भी बहुत से लोग हिन्दुस्तान का आदर्श मानते हैं, जबकि आज के जमाने में अगर मुझ को कोई आदर्श बतलाना हो तो वह रूस की नटाली थी जोकि यूक्रे में जर्मन सेनाओं के केन्द्र में जा कर नौकरानी बन कर वहां की इतलायें भेज कर करीब ५० हजार जर्मन सेना को मार डालने में अकेले कामयाब हुई थी। तो आदर्श कुछ बदलने होंगे। इसी सम्बन्ध में मैं थोड़ी सी बात श्री सर्राफ कि कह दूं, जिन की मैं इज्जत करता हूं। उन्होंने मेरी बात कुछ इस ढंग से समझ ली, मुमकिन है कि मुझ से कोई गलती हुई हो, जैसेकि मैंने पूजा के खिलाफ कोई बात कह दी हो। ऐसी बात नहीं है। अगर कोई मोक्ष के लिए पूजा करे

तो मुझे कुछ नहीं कहना, लेकिन अगर लड़ाई जीतने के लिए, गद्दी पाने के लिये, खेती की पैदावार बढ़ाने के लिये, कोई यह समझे कि पूजा से सारा काम चल जायेगा तो इस के अलावा कि हमें उर्वसीअंम की हार जैसी चीज का समाना करना पड़ेगा और कुछ हो नहीं पायेगा।

इसी तरह से इतिहास की एक और घटना की तरफ मैं आप का ध्यान दिलाऊं जिस का बिल्कुल आज जैसा नमूना है। तैमूर यहां आया। तब तक राजा फीरोज शाह वगैरह बन चुके थे। तैमूर ने पहले से हिसाब लगा दिया था कि हिन्दुस्तान की पलटन में हाथी बड़ी खतरनाक चीज़ हुआ करती है। वर्षो पहले समरकन्द में हाथी नुमाइश में रहते थे। इस के अलावा उस के पास इंजीनिअरों की सेना थी, जासूसों की सेना थी जोकि हिन्दुस्तान की पलटन में घूम-घूम कर के पता लगा लेते थे कि कहां क्या हो रहा है। नतीजा हुआ कि सुबह पहले जब हिन्दुस्तान की सेना के हाथी लोग आगे बढ़ने लगे, उस के पहले ही हजारों की तादाद में उस ने लोहे के पंजे बिछा दिये थे। हाथी चिंघ्घाड़े और तैमूर की पलटन पर हमला करने के बजाय पीछे लौट आये। हिन्दुस्तान की सेना हार गई। उर्वसीअम में क्या हुआ। वह मैं खुद अपनी आंखों से देख कर आया हूं। जहां उर्वसीअम में हिल्स हैं, सब से नीचे की जमीन, जहां पर पहाड़ी शुरू होती है, उस से मुश्किल से दो या तीन हजार फीट की ऊंचाई पर, लड़ाई शुरू होने के कुछ ही दिन पहले तक एक रंगीली थी। कुछ लोग कहते थे कि नेपालिन थी, कुछ लोग कहते थे कि चीनी थी। शायद आधी नेपालिन थी और आधी चीनी थी जो चाय बेचा करती थी। बड़ी रंगीली थी। मुझ से कहा गया, मुझ में खुद मुलाकात करने की तरदीद इतनी अच्छी नहीं, कि कैसी थी। पता चला कि एक तरफ यह चीनी जासूसी कहां से कहां पहुंच गई और दूसरी तरफ हमारी जासूसी। हमारे जासूस का मुझ को घर बताया गया। जो उर्वसीअम में कुली लोग थे, ठीक उन्हीं के जैसा घर, शेरपा तिब्बती कुलियों का इस्तेमाल। जब मैंने दर्याफ्त किया कि कोई और जासूस भी है तो पता चला कि नहीं। सिर्फ वह जासूस जो माल ले जाया करते थे इधर-उधर, वही इत्तला लाया करते थे। इस के पीछे एक बात है। हिन्दुस्तानियों को पिछले हज़ारों वर्षों में बहुत घमंड हो गया है अपने बारे में, अपनी सभ्यता और अपनी संस्कृति के बारे में, जो कुछ है नहीं। और उस घमंड के सब से बाकी दुनिया को देखना नहीं चाहते कि कहां क्या क्या हो रहा है, क्या तरक्की हो रही है या कहां क्या नये नये हथियार हैं, क्या क्या बातें होती हैं, जिस का नतीजा बाद में हमें भुगतना पड़ता है। इस जासूसी के काम के बारे में शायद आप ने एक किस्सा सुना होगा कि जब किसी बड़े उमराव ने बादशाह को बतलाया कि उत्तर में सेनायें जमा हो रही हैं तो बादशाह ने कहा कि मालूम होता है तुम ने महल बड़ा ऊंचा कर लिया है जिस से कि

बड़ी दूर दूर की देख लेते हो। एक अजीब तरह का घमंड हिन्दुस्तान के दिमाग में रहा करता है और यह घमंड ही कारण रहा है हमारी हार का।

अब मैं आप से एक अर्ज करना चाहता हूं, पहले भी मैं ने चाहा कि कोई जांच बिठलाई जाये, और जांच महकमे वाली नहीं, सरकार की अपनी नहीं, बल्कि इस लोक सभा की तरफ से, जोकि सन् १९४७ से लेकर अब तक के सेना के संगठन के तरीकों का, उस के ढांचे का, उस के सांचे का पता लगाये और उस पर अपनी राय बतलाये कि क्या क्या चीज थी जो सन् १९४७ में पूरी जंज़ीर को तोड़ कर बननी चाहिये थी लेकिन ऐसा नहीं हुआ, खाली एक कड़ी घिस गई। इस सम्बन्ध में मैं आप को याद दिलाऊं कि मैं ने आसन्न परिपत्र का दो तीन दफे जिक्र किया, लेकिन सरकार की तरफ से उस का कोई जवाब नहीं दिया गया। मैंने उर्वसीअम की लड़ाई के तीन पात्रों का जिक्र किया कि वे कैसी चाल चलते रहे, लेकिन उस के बारे में भी कोई जवाब नहीं दिया गया। इन सब चीजों में जो बुनियादी खराब बात आ जाती है वह यह कि प्रतिरक्षा, विदेश नीति, पलटनी पैदावार या खेती कारखाने की पैदावार और मन, यह चीजें हैं तो अलग अलग लेकिन जब तक इन चीजों को जोड़ा नहीं जाता, उन में ताल मेल नहीं होता, तब तक काम नहीं चलता। मान लीजिये कि पलटनी नीति और विदेश नीति दोनों के अस्तित्व अलग अलग चलते रहें तब तो शायद सारा शरीर बिखर जायेगा और मेरा यह कहना है कि इस वक्त की हिन्दुस्तान की सरकार में, और उस के नतीजे के स्वरूप सारी जनता में, यही बात हो रही है। सब बिखरा हुआ है। पलटन, विदेश नीति, पैदावार और मन, मुमकिन नहीं है कि इन चीजों को आज जोड़ा जाये। जिस का नतीजा यह होता है कि कभी कोई खड़ा हो कर कहता है कि हम किसी हालत में लद्दाख में एक इंच भी पीछे नहीं हटेंगे, कोई खड़ा हो कर कहता है कि कश्मीर में एक इंच पीछे नहीं हटेंगे। कोई कहता है कि फीजों को मजा चखायेंगे। कोई कहता है कि उर्वसीअम में चीनियों को अब की बार मुंह की खानी पड़ेगी। इस के अलावा कभी कभी लंका के या पूर्वी अफ्रीका के भारतीयों के बारे में चर्चा हो जाती है। एक जबर्दस्त घमंड हमारे अन्दर घुसा हुआ है। जिस के लिये कोई यथार्थ की बुनियाद है नहीं। इस तरह की बहस से कभी कोई देश बना नहीं करता। हमारी विदेश नीति मायाजाल हो गई है, पलटन की नीति एक मायाजाल, हो गई है, उस में यथार्थवादिता बिल्कुल रह नहीं गई है। उस का नमूना, अध्यक्ष महोदय, आप को भी कई दफे मिला होगा। कई दफे क्या हमेशा ही मिलता रहता है। यह सारी बातें ऐसे कह दी जाती हैं जैसे कि उन को कभी करना नहीं है। कभी तो इतनी लम्बी बातें कही जाती हैं कि उस में से नतीजा क्या निकलता है कि चलो राष्ट्र पंचायत में

जा कर अपना हल निकाल लें। बात तो ऐसे कही जाती है मानो सारी दुनिया का सामना करना है, सारी दुनिया को बदलना है। लेकिन नतीजा हमेशा राष्ट्र पंचायत निकलता है।

जैसाकि मेरा इरादा है, मैं खाली आप को वाक्या बतलाऊं। कौन है उस का नाम मैं छोड़ देता हूं। हाल ही में पूंछ में विस्फोट हुआ। झट से कोई कह देता है कि इस में पाकिस्तान का हाथ रहा होगा। क्या नतीजा इस का होता है। लोग तो उकस गये न। लेकिन इस का परिणाम क्या निकला। इस का प्रतिकार क्या है। इस विस्फोट के अन्दर पाकिस्तान का हाथ है। लेकिन आखिर इस का प्रतिकार क्या है। यह कहीं कुछ नहीं है। इसी तरह से कोई साहब कह देते हैं कि गोलीबन्दी की रेखा के पास हम लोग जायेंगे। यह सब बातें कहीं नहीं जातीं, यह सब बातें की जाती हैं। कोई बुद्धिमान आदमी इस तरह की बात कहा नहीं करता है। इसी तरह से कोई साहब कह देते हैं कि टैलवोट इतना बड़ा आदमी नहीं कि उस से बात की जाती। वह सब बातें कहने की नहीं हुआ करतीं इसी तरह से कोई साहब कह देते हैं कि अब तो ज़माना आ गया है जब हमें अणु हथियार बनाने चाहिए और खरीदने चाहिये। किस दुनिया में यह लोग रहते हैं। अणु हथियार खरीदेंगे। जैसे अणु हथियार बाजार में बिकते रहते हैं, बनारस के चौक में या कचौरी गली में। अणु हथियार इस तरह से नहीं बना करते। इस के अलावा जहां तक बनाने की बात है, यह बनायेंगे अणु हथियार। अभी सूरज का चूल्हा तो पहले बना लें, उस के बाद अणु हथियार बनायेंगे। यह एक जबर्दस्त पलटन नीति है और विदेश नीति में मायाजाल अपने देश में चल रहा है। मैं तो आप से अर्ज करूंगा कि आप इस में यथार्थवादिता लाइये। किसी तरह से भी हो वर्ना विपत्ति के सामने हम खड़े हुए हैं। मैं दिन रात देखता हूं, मैं अपने मन का उभार कैसे आप के सामने रखूं, जैसे कि हम पूरे के पूरे एक विपत्ति की तरफ चलते चले जा रहे हैं, न जाने कब कोई चीज हो जायेगी और फिर कोई सम्भालने लायक चीज नहीं रहेगी।

उकस तो हम गए। और शायद मैं ने भी उकसाया है थोड़ा बहुत। एक दिन आप के ही सभापतित्व में पूर्वी बंगाल के हिन्दुओं की तकलीफ बता कर कि वहां दो हजार गांव जला दिये गये, शायद मैं ने भी आग में एक लकड़ी डाली थी, लेकिन मैं उस के साथ साथ नीति भी बता दिया करता हूं। लेकिन अगर यहां सिर्फ इन बातों की चर्चा ही होती रहेगी तो क्या नतीजा निकलेगा। हम सीमाओं की रक्षा क्या कर सकेंगे, जब कि हम अपने नागरिकों की सुरक्षा ही नहीं कर सकते चाहे वे हिन्दू हों, या मुसलमान हों या ईसाई हों, इस से मेरा कोई मतलब नहीं है। जब किसी देश की व्यवस्था और कानून घिस जाते हैं तो वह अपनी सीमाओं की रक्षा नहीं कर सकता।

रण नीति और विदेश नीति के बारे में आप ने देखा होगा कि इस में हम विदेशों का

सहारा ले लेते हैं, चाहे वह आंग्ल अमरीकी सहारा हो या सोवियत सहारा हो। कल की बहस में एक तीसरा सहारा हमारे सामने आया, अफ्रेशियाई सहारा। यह तो लूले की लकड़ी का सहारा लेने जैसा होगा। इस लकड़ी को तो हम जितनी जल्दी फैंक दें उतना अच्छा यह देश तो हमारी ही तरह लूले हैं। हम उन से बात चीत करें, दोस्ती करें, लेकिन उन के सहारे की तरफ न जायें। और इस के अलावा जब यह पाकिस्तान का सवाल आता है तो यह कह देते हैं कि हमारे लिए जैसा हिन्दुस्तान और वैसा पाकिस्तान। तो इन का सहारा हमारे काम नहीं आ सकता।

अब मैं आंग्ल अमरीकी और सोवियत सहारों के बारे में अर्ज करूंगा कि इन में से सदा किसी एक पर निर्भर रहना गलत है। और यह हमारे लिए बड़े दुर्भाग्य की बात हुई है कि देश की आत्मा टूट चुकी है। हम देखते हैं कि देश में कुछ लोग हैं जो केवल आंग्ल अमरीकी सहारे पर निर्भर रहना चाहते हैं, तो कुछ दूसरे लोग हैं जो कि केवल सोवियत सहारे पर निर्भर रहना चाहते हैं। मैं जोरदार शब्दों में कहना चाहूंगा कि हमारी रण नीति और विदेश नीति में इतना लोच होना चाहिये कि जरूरत पड़ने पर हम देश की सुरक्षा के लिए जहां से भी हम को सहायता मिल सकती है वहां से ले लें। हम को अपने दिमाग को किसी एक गुट से नहीं बांध देना चाहिए। और साथ साथ हमें अपनी खुद की ताकत भी बढ़ानी चाहिए। जो चाहिए वैसा हमारे अन्दर मन नहीं है। पिछले 17 बरस से चालाकी से काम चलाया जा रहा है, ऐसी चालाकी जो कि दुनिया के किसी राजनीतिज्ञ ने नहीं दिखायी। लेकिन उस के पीछे कोई ताकत नहीं थी, कोई सिद्धान्त नहीं था। अब वह चालाकी आगे नहीं चल सकेगी। मैं बड़े अदब से कहना चाहूंगा कि 17 बरस तक यह चालाकी चलायी गयी और किसी कदर दुनिया में हमें इज्जत भी मिली। लेकिन अब वह ज़माना खत्म हो गया है। अब तो वह ज़माना है कि सारी नीतियों का ताल मेल मिलाते हुए हिन्दुस्तान को एक दिशा में ले जाना होगा।

अब मैं सेना के संगठन के बारे में कुछ कहना चाहता हूं। मैं जानता नहीं कि सेना में ब्रिगेडियर के पद के कितने अफसर हैं। कई बार मैं ने पूछने की कोशिश की लेकिन जनहित का जवाब देकर नहीं बताया गया। लेकिन मेरा अन्दाजा है कि दो सौ के करीब होंगे। मैं जानना चाहता हूं कि इन में कितने सिपाही से ऊंचे हुए हैं और कितने लैफ्टिनेंट से ऊंचे हुए हैं। यह सवाल मैं माननीय रक्षा मंत्री से करना चाहता हूं। और वह अगर इन की तादाद न बताये तो कम से कम इन का अनुपात ही बता दें तो पता चल जाएगा कि सिपाही से कितने ब्रिगेडियर हुए हैं और लैफ्टिनेंट से कितने हुए हैं। मैं कहना चाहूंगा कि कम से कम 75 प्रतिशत ब्रिगेडियर सिपाहियों से होने

चाहिए और 25 प्रतिशत लैफ्टिनेंट से। लेकिन अगर आप इस को बहुत क्रान्तिकारी समझें तो कम से कम पचास पचास फी सदी दोनों में से कर दीजिये। तब भी अच्छा रहेगा।

इसी तरह से मैं एक और बात कहना चाहता हूं। यह है भरती के बारे में जहां भरती हो रही है वहां से मुझे हिन्दुस्तान के लोगों के शरीर के बारे में इत्तला मिली है। मुझे अन्तर्राष्ट्रीय मामलों के जानने वालों ने बताया कि यूरोप में बालिग लोगों में सौ में से पचास या 60 लोग ऐसे हैं जो बन्दूक सम्भाल सकते हैं। मैं चलाने की बात नहीं कहता। मेरा मतलब उन लोगों से है जो बन्दूक को संभाल सकते हैं। चीन में ऐसे लोग 20 फी सैकड़ा हैं लेकिन हमारे यहां सौ में तीन ही ऐसे हैं जो बन्दूक संभाल सकते हैं। अगर यह स्थिति है तो मैं हिन्दुस्तान की सरकार को कहना चाहता हूं कि हिन्दुस्तान के लोगों में शक्ति पैदा करें, उन को भोजन दें। भोजन के बिना पलटन क्या कर सकती है।

मेरे पास बहुत से आदमियों की चिट्ठियां आती रहती हैं; वे समझते हैं कि शायद मैं कुछ कर सकता हूं। लेकिन मैं क्या कर सकता हूं। न तो सरकार में मेरा जोर है और न सरकार से मेरा संबंध है। लेकिन लोग फिर भी मुझे चिट्ठियां भेज देते हैं। न जाने क्यों उन को यह गलतफहमी है कि मैं उन की बात को आप की अदालत में अर्ज कर दूंगा और उन का काम हो जाएगा। इसलिए मुझे उन की बातें यहां कहनी पड़ती हैं। पलटन में घायल हो जाने पर हरजाना दिया जाता है लेकिन बहुत से सिपाहियों को हरजाना नहीं देते और उन को मज़दूर बना कर हरजाना देते हैं।

इसी तरह से बड़े अफसर सिपाहियों से बेगार लिया करते हैं। इसी तरह से कुछ जगह भरती करने के लिए भी फीस लेने लगे हैं। यह फीस कानूनी और गैर कानूनी कहां तक है इस का अन्दाजा लगाना होगा। इसी तरह से सिपाहियों और अफसरों को कपड़ा भत्ता दिया जाता है, वह सिपाहियों को पांच रुपया और अफसरों को 50 रुपया दिया जाता है। इसी तरह से युद्ध क्षेत्र में अफसरों और सिपाहियों का राशन अलग अलग होता है। अफसरों को खास तरह का राशन मिलता है। उन को आस्ट्रेलिया से आया हुआ पिसा हुआ दूध दिया जाता है। इस दूध के मैंने वहां हजारों डिब्बे पड़े देखे। लेकिन सिपाही को केवल दाल रोटी मिलती है। इस में भी परिवर्तन करने की जरूरत है। मैं यह नहीं कहता कि इस में क्रान्तिकारी परिवर्तन कर दिया जाए और वह हमेशा के लिए हो। लेकिन कम से कम युद्ध के मैदान में तो सिपाही और अफसर के राशन में थोड़ी बहुत समानता होनी चाहिये। इस में परिवर्तन नहीं हो रहा है।

यहां पर जो मंत्रालय की रपट दी गयी है उस से मालूम होता है कि 350 विवाहित अफसरों के लिए डेढ़ करोड़ रुपये की लागत से मकान बनाए जाने वाले हैं, यानी एक एक पर करीब 50 हजार पड़ेगा। इतना रुपया इस वक्त मकानों पर खर्च न करके पलटन

के और कामों में लगाया जाए और इन लोगों के लिए सस्ते बेरक बना कर दिए जाएं। इस से लोगों के मन पर भी अच्छा प्रभाव पड़ेगा।

इस के बाद मैं यह कहना चाहता हूं कि जो लोग लड़ाई में मारे जा चुके हैं उन के बच्चों की पढ़ाई के बारे में बड़ी शिकायतें हैं। इन के बच्चों की अच्छी पढ़ाई लिखाई नहीं हो पाती। मेरा सुझाव है कि ऐसी व्यवस्था की जाये कि जो लोग लड़ाई के मैदान में लड़ते हुए काम आयें उन के बच्चों की पढ़ाई लिखाई की जिम्मेदारी सरकार अपने ऊपर ले ले।

एक रिसर्च डायरेक्टोरेट सेना के लिए बना हुआ है। मुझे इत्तिला मिली है कि पिछले काफी दिनों से डाइरेक्टर साहब ही नदारद हैं। जब उस केन्द्र का संचालक ही गायब होगा तो उस का काम कैसे चलेगा? जो आदमी खोज करने के लिए जिम्मेदार है जब वही गायब रहेगा तो सेना के लिए क्या खोज हो सकेगी।

यह भी मुझे इत्तिला मिली है कि स्कूलों और कालिजों में जो चन्दा फौज के लिए किया जाता है वह पूरी तरह जमा नहीं होता। एक साहब ने मुझे बताया कि एक कालिज का चन्दा इसलिए जमा नहीं किया गया कि वहां के लोगों ने सोचा कि आठ महीने बाद मंत्री जो आवेंगे उन को फिर पैसा देना पड़ेगा। और यह शिकायत किसी एक जगह की नहीं है। ऐसा कई जगहों पर हो रहा है।

नाटक और नाच वगैरह कर के जो पैसा जमा किया जाता है वह भी पूरी तरह जमा नहीं किया जाता।

एन०सी०सी० के बच्चों को जो भत्ता मिलता है रोज हाजिरी का उस को भी कुछ लोग दबा लेते हैं और हजम कर जाते हैं। यहां तक चीजें देश में हो रही हैं। ऐसे लोगों के खिलाफ सख्त कार्यवाही करनी चाहिए। मैं उन लोगों में तो नहीं हूं जो कि ऐसे लोगों के लिए फांसी की सजा मांगते हैं। मैं फांसी की सजा को निहायत खराब समझता हूं। और इस सिलसिले में मैं प्रधान मंत्री की थोड़ी सीमित तारीफ करना चाहता हूं, इस को पूरी तारीफ न समझा जाए। यहां अक्सर कहा जाता है कि फलां फलां आदमी को फांसी पर लटका दो। ऐसा कहने की आदत प्रधान मंत्री ही ने आज से 18 या 19 साल पहले डाली थी। लेकिन यहां लोक सभा में मैंने देखा है कि वह हिचकते हैं फांसी वाले मामले में। मैं फांसी की सजा के किसी कानून को पसन्द नहीं करता। कम से कम लोक सभा के किसी सदस्य को फांसी की सजा की बात नहीं करनी चाहिए।

*** ***

राष्ट्रपति के भाषण में कहा गया था पेंशन के बारे में। पलटन की हालत को सुधारने

के लिए पेंशन की बात कही गयी थी। मैंने चाहा था कि हमारी पलटन के अफसर और सिपाहियों का बलवा होता पेंशन वगैरह के लिए नहीं, बल्कि मन के लिए, क्योंकि सेना मन से चलती है।

एक बात और कह कर खत्म किए देता हूं। आज एक तरफ तो लोग हथियार एकत्र कर रहे हैं और दूसरी तरफ हथियार खत्म होने वाले हैं। क्योंकि अगर हथियार खत्म नहीं हुए तो बीस तीस साल में यह दुनिया खत्म हो जायेगी। तो रक्षा मंत्रालय से बात करते समय हम इस चीज को भी ध्यान में रखें। यह कैसे होगा? अब एक बात तो यह है कि हम को जीवन का अधिकार है। लेकिन वह जीवन के अधिकार का अंग बन गया है। कत्ल के कर्तव्य के बिना आज किसी राज्य की सुरक्षा नहीं रह सकती है और मैं यहां यह कहना चाहूंगा कि अगर हम अन्याय के प्रतिकार को भी जीवन का अंग बना लें तो शायद कत्ल करने के कर्तव्य को हमें छोड़ देने का अवसर मिले।

32

विधि मंत्रालय के लिए अनुदान मांगें*

उपाध्यक्ष महोदय, विधि मंत्रालय को खर्चा नहीं मिलना चाहिये क्योंकि देश में कानून का राज खत्म हो रहा है और मौज का राज बढ़ रहा है।

***   ***   ***

व्यवधान**

***   ***   ***

शुरू तो पहले हो गया था अब बढ़ गया है और तेजी से बढ़ रहा है। श्री केशव सिंह प्रतीक बन गए हैं उसी लघु मानव के छोटे आदमी के जो गरीबी की मार खाता हुआ अपने आत्म सम्मान को बचाता है .....

***   ***   ***

..... मैं कोई नाम नहीं लूंगा। कोई भी छोटा आदमी गरीबी की जब मार खाता है और फिर जब वह अपने आत्म-सम्मान को बचाता है तब कानून की भी मार खाने लगता है। एक मदमस्त बहुसंख्या और उस के चाकर विधान सभा में बैठ कर न सिर्फ कानून बनाते हैं बल्कि सजा भी देने लगते हैं। यह बड़ी महत्व की बात है कि हिन्दुस्तान का संविधान कानून बनाने के काम को और कानून को लागू करने के काम को बिल्कुल अलग कर देता है क्योंकि हमारे न्यायालय को सर्वोच्च न्यायालय कहा गया है जो इंगलिस्तान में नहीं है।

***   ***   ***

व्यवधान@

***   ***   ***

---

*लोक सभा वाद विवाद, 24 मार्च, 1964

**एक माननीय सदस्य: शुरु हो रहा है।

@उपाध्यक्ष महोदय: उत्तर प्रदेश विधान सभा में जो बात होती है, उसके बारे में आप नहीं कह सकते है।

.... मैं विधि मंत्रालय की बात कर रहा हूं। जो चाहता हूं कहूंगा। क्या यह भी कोई तमाशा है? क्या यहां बहुसंख्या मेरी जबान को बन्द करने की कोशिश करेगी? यहां पर भी आप देख रहे हैं ....

*** *** ***

मैं उत्तर प्रदेश को बिल्कुल छोड़े देता हूं। मैं एक सिद्धान्त की बात बता रहा हूं। अगर कहीं पर किसी सभा में, समझिये जर्मनी की या इंगलिस्तान की विधान सभा में—इंगलिस्तान को छोड़ दीजिये वह तो बहुत वाहियात मुल्क है जहां बहुत से लोग समझते हैं कि हाउस आफ कामंज है, लेकिन वहां पर हाउस आफ लार्डस् सब से बड़ा न्यायालय है, वहां पार्लियामेंट में कुछ घिचपिच हो जाती है न्यायपालिका की, लेकिन अमरीका में सुप्रीम कोर्ट सब से बड़ा न्यायालय है। अगर कोई आदमी कहे कि अमरीका के सीनेट और अमरीका के हाउस आफ रिप्रिजेन्टेटिव को अधिकार है किसी को सजा देने का, तो लोग उस पर हंसेंगे। आप छोड़ दें हिन्दुस्तान की लोक सभा और उत्तर प्रदेश की विधान सभा को।

*** *** ***

सब की अपनी अपनी जबान है, सब की जबान अलग अलग है। जबान के ऊपर आप इतनी रोक न लगायें। आप खाली देखिये कि कहीं किसी कानून का उल्लंघन कर रहा हूं या नहीं। मैं एक मिसाल देता हूं। हम चालीस करोड़ हैं। इन में से 39 करोड़ 99 लाख 99 हजार और 999 आदमी अगर एक राय हो जायें किसी मामले में और मैं अकेला पड़ जाऊं तो भी मेरी चाहे जो राय हो, सब कुछ हो लेकिन जब तक मैं अपनी राय पर दृढ़ हूं और किसी कानून का उल्लंघन नहीं करता हूं, तब तक इन 39 करोड़ 99 लाख 99 हजार और 999 आदमियों को कोई हक नहीं है कि वे मेरी जान की सुरक्षा को खतरे में डाल दें या मेरे सम्मान को, मेरी इज्जत का हनन करे और अगर वे ऐसा करेंगे तो मैं उन को पागल कहूंगा।

आज सोक्राटीज को पागल कहा गया है या उस समय की एथेन्स की जनता को जिस ने सोक्राटीज को फांसी लगाई थी। वह तो अकेला आदमी पड़ गया था। जब वक्ती तौर पर हम समसामयिक दुनिया में कोई चीज अपनी आंखों के सामने देखते हैं तो चिढ़ने लग जाते हैं। आज दो ढाई हजार वर्ष बाद सारी दुनिया कहती है कि समझदार, बुद्धिमान और बड़ा ज्ञानी आदमी था और उस वक्त की एथेन्स की जनता, जिस ने उस को फांसी की सजा सुनाई थी वह पागल थी। यह बहुत बड़ी बातें हैं, उपाध्यक्ष महोदय, यह कोई उत्तर

प्रदेश या दिल्ली से सम्बन्ध नहीं रखता हैं। यह चीज मैं आप के सामने रखना चाहता हूं कि विधि मंत्रालय का पहला काम है कि वह आदमी को, एक अकेले और छोटे, लघु मानव को हिन्दुस्तान में सुरक्षा दे। जान की सुरक्षा और दूसरे प्रकार की सुरक्षा जो कि हमारे संविधान की धारा 20 और धारा 21 में लिखी हुई है। जब यह सुरक्षायें किसी आदमी को नहीं मिलती तो मैं कहूंगा कि यह राज कानून का राज नहीं है, यह मौज का राज हो गया है और मौज में चलते हुए मैं विधि मंत्रालय को एक पैसा देना नहीं चाहता।

*** *** ***

यह हमेशा से दुनिया का नियम है कि जो आदमी सही होता है वह अपने जमाने के लिये पागल हुआ करता है लेकिन इतिहास तय करता है कि कौन पागल है।

विधि मंत्री जी को मैं याद दिलाऊंगा कि किसी वक्त बेकन ने कहा था कि जज लोग शेर होते हैं लेकिन शेर तख्त के नीचे। जब मैं कहीं भी किसी जगह किसी एक जज को देखता हूं जो कोशिश करता है कि वह तख्त के नीचे वाला शेर न रहे बल्कि तख्त के बगल में बैठा हुआ शेर रहे तो मेरी तबियत खुश होती है, और आज मैं अभिमान के साथ कहता हूं कि हमारे देश में इस तरह के जज होने लगे हैं।

इन सब चीजों पर जब मैं सोच विचार करता हूं कि इन्सान, अकेला इन्सान, आज चारों तरफ थपेड़े खाता है, उसकी कोई हैसियत नहीं है, तब मुझे यह भी कहना पड़ता है कि आज बड़े आदमियों की इज्जत अपने देश में इतनी बढ़ गई है कि अगर वह कत्ल भी कर देते हैं, और उनको लम्बी लम्बी सजायें भी मिल जाती हैं, तो भी सरकार उनकी सजाओं को आधी भुगत जाने पर भी, या कम भुगतने पर भी, माफ करती है और उनको छोड़ दिया करती है, किस तरह से हम कानून के प्रति लोगों के मन में इज्जत और प्रतिष्ठा बढ़ायेंगे अगर ऐसी सूरत चलती गई। बड़े आदमी की खराब से खराब अपराध करने पर भी, कोई बड़ा अफसर है, बड़ा आदमी है, उस की बड़े से अपराध करने पर भी, पहले तो गिरफ्तारी नहीं होती और अगर गिरफ्तारी भी होती है और सजा भी हो जाती है तो वह छूट जाया करता है जब कि छोटे आदमी के लिये कानून का सहारा नहीं रहता।

इस सम्बन्ध में जो देर वाली बात श्री सिंहासन सिंह जी ने उठायी थी मैं अपने अनुभव और वैसे भी बहुत जोर के साथ कहना चाहता हूं कि आज हिन्दुस्तान में केवल इसलिये कि न्याय देने वाले लोगों की, खास कर जो जिला स्तर के न्याय देने वाले लोग हैं, मुकदमों को आगे बढ़ा देने की आदत सी पड़ गई है। किसानों के अरबों रुपयों का नुकसान हो जाता है। उनसे कह दिया जाता है कि फलाने दिन

अदालत में आना। उनके आने का खर्च, उनके काम का नुकसान, अगर इन सब का हिसाब लगाया जाये तो अरबों का नुकसान हो जाया करता है। छोटे आदमी की इस देश में बहुत कम इज्जत रह गई है, उसके सुभीते का बहुत कम ध्यान रखा जाता है।

इसी तरह से आज अपने देश में कत्ल के बारे में हालत है, और मैं एक, दो, दस आदमियों की कत्ल की बात नहीं कहता हूं, आज देश में झुंडों का दिन दहाड़े कत्ल हो रहा है। विधि मंत्रालय कह सकता है कि इससे हमारा क्या मतलब। लेकिन आखिर संविधान की धारा 20 और 21 हिन्दुस्तान के हर आदमी के लिये है, और अगर ऐसी स्थिति पैदा हो जाये जिसमें सैकड़ों की तादाद में लोग मरने लग जायें, वे हिन्दू हैं या मुसलमान हैं इनको छोड़ दीजिये लेकिन सैकड़ों की तादाद में दिन दहाड़े सड़कों पर लोग मरने लग जायें तो कहां है संविधान की धारा 20 और 21। वे क्यों मरते हैं इसका सबब ढूंढना होगा। सब से पहले मैं यह कहना चाहूंगा कि कानून और व्यवस्था की जड़ें जो लोगों के दिमाग में हुआ करती हैं उन जड़ों को हिला दिया जाता है, और इस मामले में माननीय भारत सरकार कानून और व्यवस्था की जड़ें जो लोगों के दिमागों में हैं उनको हमेशा हिलाया करती हैं। आये दिन जो इस समय देश की जनता है उसको भड़का दिया जाता है, कभी सीमा उल्लंघन की बात कह कर, कभी पाकिस्तान के हिन्दुओं की बात कह कर। उन का मन भड़का दिया जाता है, धड़कन हो जाती है और कार्य सम्पन्न नहीं होता तब फिर लोगों की तबियत होती है कुछ करने की, धरने की। मैं विधि मंत्रालय को सलाह दूंगा कि वह इस मामले पर अच्छी तरह से सोच विचार करे कि किस तरह से कानून और व्यवस्था की जड़ों को फिर से लोगों के मन में हिन्दुओं के मन में, जमाया जाये नहीं तो नतीजा क्या होगा कि पाकिस्तान में हिन्दु मरेंगे, यहां की भारत सरकार कुछ करेगी नहीं, लोगों को खाली भड़का देगी, और तब हिन्दुस्तान के हिन्दू मुसलमानों को काटने लग जायेंगे। इसलिये मैं यह आरोप लगाना चाहता हूं कि अगर सच पूछिये तो विधि मंत्रालय की सब से बड़ी जिम्मेदारी है हिन्दुस्तान की सड़कों पर मुसलमानों के कटने की, और भारत सरकार की भी। इस तरह कानून और व्यवस्था के बारे में लोगों के दिमागों में जो जड़े हैं उन्हें मजबूत करना बहुत जरूरी हो गया है। जो हमारे कानून हैं, अगर आप उनकी धाराओं की तरफ ध्यान देंगे, खास तौर से एक कानून की धारा के बारे में मैंने बड़ी कोशिश की कि वह मिटाई जाये। वह फौजदारी की दफा 109 है जिसमें हर किसी को पकड़ कर बन्द कर दिया जाता है जेल में। मैं समझता हूं कि इस वक्त कम से कम 20 या 30 हजार आदमी इस दफा में जेलखानों में बन्द होंगे। मैं आपसे अर्ज करूं कि यहां पर ऐसा मामला है कि गरीब आदमी, लघु मानव के ऊपर यह सजायें आती हैं, बड़े आदमियों पर नहीं। लघु मानव होता है, शहर में काम ढूंढने जाता है, शहर में उसका कोई रिश्तेदार नहीं है और 10 या 11 बजे रात तक सड़कों पर घूमता है। मान

लीजिये कि उसकी पुलिस वाले से अदावत हो गई या उसके शान सम्मान में बट्टा लग गया, तो उसको पकड़ लिया जाता है। एक लोहे की छड़ होती है एक दियासलाई होती है और एक मोमबत्ती होती है।

*** *** ***

एक ब्लेड भी होता है। वह शायद आज जरूरी नहीं रह गया है। इन तीन-चार चीजों को लेकर उनको फौरन साल छः महीने के लिये बांध दिया जाता है। एक-एक लोहे की छड़ों से 50, 50, 60, 60, और 70, 70 आदमियों को जेल भेजा जा चुका है। सब लोग जानते हैं कि झूठ का बाजार खुला हुआ है, लेकिन फिर भी फौजदारी की दफा 109 को अब तक कानून में रक्खा गया है। वह पुराने जमाने से, जब कि हिन्दुस्तान में अंग्रेज का राज था, है । आज हिन्दुस्तान में जो अमन चैन है, कानून और व्यवस्था है, उसकी जड़ कहां है। विधि मंत्री साहब इस प्रश्न पर गौर करेंगे कि कौन सा हिन्दुस्तान में अमन चैन है, कौन सा अधिकार है और कौन सा तत्व है, उसका क्या कारण है। तीन-चार तत्व हैं जो हमारे देश में कानून और व्यवस्था को कायम रखते हैं, शायद अंग्रेज के जमाने से। एक तत्व हैं गुंडे। गुंडे कानून और व्यवस्था को कायम रखने के लिये आज भी हैं। दूसरा तत्व है पुलिस और तीसरा तत्व है बड़े आदमी। क्योंकि गुंडे और पुलिस मिल कर ऐसी कार्रवाइयां करते हैं जिससे कि बड़े आदमियों को कोई नुकसान न पहुंचे। इसलिये बड़े आदमी फिक्र नहीं करते, वे गुंडों के काम में दखल नहीं डालते। गुंडे और पुलिस वाले मिल कर साधारण आदमियों के और छोटे आदमियों के जीवन में दखल डालते हैं, उनको तंग करते हैं, उन को लूटते हैं और जो कुछ उनके मन में होता है उस तरह की कानून की व्यवस्था चलती है और बड़े आदमी मजे से अलग से अपने जीवन को सुरक्षित द्वीप जैसा बनाए हुए हैं, और उसमें अपनी जिन्दगी चलाया करते हैं। जब तक इस तरह की व्यवस्था को न तोड़ोगे, हो सकता है कि गड़बड़ी पैदा हो क्योंकि एकाएक गुंडों को, जो कि अपने कानून और अपने व्यवस्था का पाया बनाये हुए हैं, अगर हटाया जाता है तो गड़बड़ी जरूर पैदा होगी और जो पुलिस वाले उनके साथ रहने के आदी हो गये हैं वे भी गड़बड़ करेंगे। लेकिन जब तक इस गड़बड़ी का सामना करने के लिये सरकार तैयार नहीं हो जाती, जब तक पुलिस, गुंडों और बड़े आदमियों के इस त्रिकोण को तोड़ने के लिए सरकार तैयार नहीं हो जाती, तब तक हिन्दुस्तान में कानून और व्यवस्था किसी तरह से चल नहीं पायेगी।

अब मैं आपसे कुछ छोटी-मोटी बातें कह कर समाप्त करता हूं।

यहां दिल्ली में यह हालत है कि अगर किसी पढ़े लिखे आदमी से जमानत ली जाती है तो उससे अंगूठे का निशान करवाया जाता है। इस मामले में मेरा अपना खुद का

अनुभव है। इसी कांग्रेस सरकार के मातहत पांच आदमियों ने मुझे जबरदस्ती पकड़ कर—एक आदमी तो मुझे पकड़ नहीं सकता था—मेरे अंगूठे का निशान लिया क्योंकि मैंने दस्तखत करने से इन्कार कर दिया था। उन्होंने सोचा कि अंगूठे के निशान से काम चल जाएगा। इस तरह से इस विधि मंत्रालय का काम काज चल रहा है, इस पर आप ध्यान दें। जब तक आप देश में व्यक्ति की सुरक्षा नहीं कर सकते तब तक आपको सफल नहीं कहा जा सकता और हमारे विधि मंत्री इस मामले को जानते हैं, लेकिन अंग्रेजों के इलाके तक ही। मैं कहना चाहता हूं कि सिर्फ अंग्रेजों ने ही कानून नहीं बनाया रूसियों ने भी कानून बनाया है और जर्मन आदि ने भी कानून बनाया है। लेकिन हमारा दिमाग तो केवल अंग्रेजी में ही जकड़ा रहता है। और दुनिया में क्या हो रहा है यह देखते ही नहीं क्योंकि दूसरी खिड़कियां खुली नहीं हैं। मैं कहता हूं कि आप अध्ययन करें कि किस प्रकार रूस में न्याय किया जाता है, किस प्रकार जर्मनी में न्याय किया जाता है। आपको देखना चाहिए कि अमरीका में किस प्रकार न्याय किया जाता है। वहां के सर्वोच्च न्यायालय ने हाल में कुछ अच्छे फैसले किए हैं। यह तभी हो सकता है कि जब अंग्रेजी का खात्मा हो और हमारे दिमाग की खिड़की खुले। फिर भी मैं कहता हूं कि जितना हो सके न्याय और व्यवस्था को सुधारने का प्रयत्न किया जाना चाहिये।

और अन्त में तो मैं यह कहना चाहता हूं कि इस विभाग को एक पैसा नहीं देना चाहिए।

33

विदेश मंत्रालय के लिए अनुदान मांगें*

उपाध्यक्ष महोदय, एक ज़माना था, जब हिन्दुस्तान की विदेश नीति दुनिया के दरबारों और बाजारों में ज़रा अकड़ कर चला करती थी। आज न जाने किस बोझ से—कई तरह के कुकर्मों के बोझ से—दबी हुई वह दुनिया के दरबारों में—बाजारों से तो वह करीब करीब हट ही गई है—बहुत लजा कर चलती है। इस के पास महात्मा गांधी का नाम था, पुराने देश की याद, ४०, ४४ करोड़ की आबादी और एक सबल सेना थी। ये चारों शक्तियां क्षीण हो गयी हैं। ऐसा क्यों हुआ? मुझे सब से बड़ा कारण यह मालूम होता है कि जिन चार देशों को ले कर दुनिया की आधी आबादी है—अमरीका, रूस, चीन और हिन्दुस्तान, और जिन में दो देश तो आर्थिक और सामरिक शक्ति के हिसाब से दुनिया की करीब अस्सी सैंकड़ा शक्ति लिए हुए हैं, हिन्दुस्तान ने इन तीन देशों के प्रति अपना रुख ठीक तरह से अपनाया नहीं इन्हें समझा तक नहीं। अब यह चौका त्रिकोण भर रह गया है। चीन भी गलती कर रहा है। शायद अब दो ही रह जायेंगे। लेकिन हिन्दुस्तान ने चीन को समझने में शुरु से अब तक जो भूल की, मैं उस का ही ज्यादा ज़िक्र करूंगा।

चीन उस जीव की तरह है, जिस को एक बड़ी पीड़ा है, लेकिन उसे पता नहीं कि वह कौन सी पीड़ा है और वह छटपटा कर दुनिया में बहुत कुछ कुकर्म करता रहा है। उस पीड़ा का नाम है मार्क्सवाद। उसने इसे अपनाया था यह सोच कर कि देश के अन्दर विभिन्न देशों के आपसी रिश्तों की असमता को वह इसके जरिये दूर कर सकेगा। थोड़ी बहुत यह पीड़ा मुझको भी शुरु से रही है। दुनिया में दो अरब रंगीन लोग, दबे, पिसे, गरीब, दुखी और एक अरब शक्तिशाली और—सुखी तो मैं नहीं कहूंगा, लेकिन— खुश गोरे, यह दुनिया का हाल रहा है। इन में आपस में कितनी गैर-बराबरी है, इस का लम्बा हिस्सा न कह कर खाली मुख्य पांच गैर-बराबरियां गिनाए देता हूं। (१) उत्पादन की असमानता। जितना माल हिन्दुस्तान का आदमी एक घंटे में पैदा करता है, उतना रूस वाला पांच या छः मिनट में और अमरीका वाला दो तीन मिनट में पैदा कर लेता है।

---

*लोक सभा वाद-विवाद, 11 अप्रैल 1964

(२) दाम की असमानता। कच्चे माल के दाम बढ़ते नहीं हैं लेकिन पक्के माल के दाम धड़ाधड़ बढ़ते चले जाते हैं। (३) हथियारों की असमानता, जिस का ज़िक्र मैं कर चुका हूं। (४) हुनर और (५) ज़मीन की महान् असमानता क्योंकि कैलिफोर्निया, साइबेरिया और आस्ट्रेलिया में जहां एक वर्ग मील के ऊपर एक या पांच या सात आदमी बसते हैं तो हिन्दुस्तान के आधे हिस्से में और चीन के भी चौथाई हिस्से या जितनी रंगीन दुनिया है, इसके ऊपर एक वर्ग मील के ऊपर हजार आदमियों तक बसते हैं। यह है अन्तर्राष्ट्रीय जमींदारी। ये पांच असमानतायें इस दुनिया को खाये जा रही हैं, दामों की असमानता, जमीन की असमानता, उत्पत्ति की असमानता, हुनर की असमानता और हथियारों की असमानता।

चीन ने सोचा था कि मार्क्सवाद को अपनाने से यह कुछ दूर हो सकेगी। चीन और अमरीका की जो गैर-बराबरी है उससे चीन संतप्त नहीं है। लेकिन चीन संतप्त है क्योंकि रूस से अपनी गैर-बराबरी वह दूर नहीं कर पाया है। दोनों मार्क्सवादी देश हैं, फिर भी दोनों गैर-बराबर। इसका कारण यह है कि मार्क्सवाद के पास देश के अन्दर की असमानता का थोड़ा बहुत जवाब अपने ढंग से जरूर है लेकिन अन्तर्राष्ट्रीय असमानता का इसके पास कोई जवाब नहीं है। यह चीन की पीड़ा है। चीन ने क्या किया। उसने आस्ट्रेलिया का दरवाजा नहीं खटखटाया, साइबेरिया का नहीं, कैलिफोर्निया का नहीं लेकिन दक्षिण कोरिया, दक्षिण वियतनाम और हिमालय का खटखटाया। इसका कारण यह था कि ये कमजोर थे। क्यूमोय, मत्सू का भी दरवाजा नहीं खटखटाया। इससे साफ नतीजा यह निकालना चाहिये कि पशुबल, खास तौर से हथियारी पशुबल और उस पर भी खास तौर से कम्युनिस्टी हथियारी पशुबल अपने से कमजोर के ऊपर चढ़ बैठता है, अपने से शक्तिशाली के ऊपर नहीं। इसलिए मैं यह पहले कह देना चाहता हूं कि मुझ जैसे आदमी ने अपनी जवानी के दिनों में आशा लगाई थी कि कभी चीन और हिन्दुस्तान आजाद हो कर उन दरवाजों को खटखटायेंगे लेकिन आज मुझे यह कहना पड़ता है कि रंगीन लोगों, अपनी आंखें खोल लो, अगर कोई रंगीन ताकतवर बनता है, हथियारी ताकतवर और उस पर भी कम्युनिस्टी हथियारी ताकतवर तो दरवाजा गोरों का नहीं खटखटायेगा, वह तुम्हारा ही दरवाजा खटखटाने लग जायेगा।

यह है आज के युग का राक्षस, चीन, और इस पर कहीं किसी तरह का सन्देह नहीं होना चाहिये। लेकिन हम लोगों को यह भी जान लेना चाहिये कि राक्षस भी गुणी हुआ

करता है। यह रावण का देश है। रावण विद्वान था। चीन ताकतवर है, सिर्फ अपने हथियारों वगैरह की वजह से नहीं। सच पूछो तो गोरी दुनिया में कुछ है ही नहीं। लेकिन चीन की असली ताकत है कि आज वह दो अरब रंगीनों का प्रतीक और प्रवक्ता बन गया है चाहे ना-समझी में और चाहे भ्रम में क्योंकि दो अरब रंगीन समझते हैं कि इस देश के जरिये कहीं हम कुछ हासिल कर सकेंगे, आत्म-सम्मान, बराबरी वगैरह। इसलिए मैं अर्ज़ करना चाहता हूं कि हिन्दुस्तानी जनता और हिन्दुस्तानी सरकार कभी भूल न कर बैठे कि यह खाली प्रचार का मामला है। यह आत्मा का मामला है। रूस और अमरीका से भी मैं कहना चाहता हूं कि खाली यह कह कर मत टाल देना कि चीन वाले तो जाति प्रचार अपनाये हुए हैं। जब तक दुनिया की इन पांच असमानताओं का हल नहीं निकाला जायेगा, तब तक कुछ नहीं होगा। उस हल के बारे में मैं आज यह कहने को तैयार हूं—शायद इस पंद्रह बीस बरस पहले मुझ से भी गलती हो गई हो—कि वह हल केवल रंगीन नहीं निकालेंगे, उसमें गोरे लोगों को भी शामिल होना होगा, जो कोई उदारवादी गोरे लोग हैं उनको भी शामिल होना होगा और हल निकालना होगा। जब ऐसा होगा तब जा कर कहीं आज के युग के राक्षस का हम लोग सामना कर सकते हैं।

यह खाली हिन्दुस्तान के ऊपर हमले का या हिमालय के ऊपर हमले का सवाल नहीं है। हिन्दुस्तान की विदेश नीति ना-कामयाब रही है क्योंकि उसने हमलावर को उस सारी पृष्ठभूमि में नहीं डाला है कि यह गोरों और रंगीनों का मामला है।

मैंने शुरु से ही हिन्दुस्तान की विदेश नीति चलाने वाले वालों के सामने यह सवाल रखा है। जो कुछ भी हुआ, बहुत बुरा हुआ है। उसका आज नतीजा यह है कि चीन मुखिया बन बैठा है, उस गैर-बराबरी के सवाल को ले करके, गलत तरीके से, उस दुनिया का जो बराबरी चाहते हैं। वह मुखिया न रहे इसके लिए हिन्दुस्तान और दूसरी रंगीन दुनिया को कोशिश करनी है। मैं नहीं कहता कि कोई चीन पर हमला कर दे। लेकिन इतना जरूर कहना चाहता हूं कि अगर सिद्धान्त को समझ लेते हो तो फिर जिस राक्षसी चीन ने हमारे देश पर हमला किया है, उससे दौत्य सम्बन्ध रखना, मेरी समझ में कतई नहीं आता है। उसके साथ बैठ सकते हो, बैठना लाज़िमी होता है, जरूरी बैठना पड़ जाता है, क्योंकि दुनिया में राक्षस भी हैं और मनुष्य भी हैं। लेकिन उसके साथ सम्बन्ध रखना, इसका साफ मतलब होता है कि अभी तक हिन्दुस्तान की विदेश नीति ने इस बुनियादी मामले को समझा तक नहीं है।

यह क्यों हुआ है? इसका भी जो मुख्य कारण है वह मैं आपके सामने रखता हूं। यह दुनिया दो ध्रुवों की है शक्ति के हिसाब से, एक रूस की और एक अमरीका की। चाहे उसको आप अटलांटिकी और सोवियती कह लें। लेकिन अक्सर एक बहुध्रुवी दुनिया

बनाने की कोशिश की जाती है। खास तौर से उन लोगों की तरफ से जो अंग्रेजों की विदेश नीति का सबक सीखा करते हैं। इसका कारण यह है कि अंग्रेजों की कुछ आदतें रही हैं। उनको छोड़ दें तो जब से फ्रांस में डिगाल साहब तशरीफ लाये हैं तब से यह बहुध्रुवी दुनिया का प्रचार बहुत चल पड़ा है, अपने देश में तो बहुत चला है। दो ध्रुवों से काम नहीं चलता। बाकी ध्रुव हैं। अच्छा है, नई ताकत उभरेगी, इससे संसार में शान्ति हो सकेगी। मैं कहना चाहता हूं कि यह बहु-ध्रुवी दुनिया एक तो है ही नहीं। इंग्लिस्तान और फ्रांस की शक्ति बिल्कुल दिखाऊ है। उसमें कोई सार नहीं है और अगर है भी तो वह बसाने वाली नहीं है। अगर कभी दुनिया बहु-ध्रुवी बनेगी तो वह शक्ति के हिसाब से नहीं, मेरी जिन्दगी में तो कम से कम नहीं और ज्यादातर जो लोग यहां बैठे हुए हैं, उनकी जिन्दगियों में तो नहीं। यह दुनिया रूस और अमरीका की ही रहेगी। लेकिन आदर्श के हिसाब से बहु-ध्रुवी बन सकती है, जिस आदर्श की तलाश करना, हिन्दुस्तान के लोग भी, बहुत तकलीफ के साथ मुझे कहना पड़ता है, छोड़ चुके हैं और वे फ्रांस और इंग्लिस्तान की शक्ति की तरफ जा रहे हैं।

अंग्रेजों की आदत की तरफ मैं आपका ध्यान खींचूंगा क्योंकि हिन्दुस्तान ने भी उससे बहुत सीखना चाहा है। वह आदत है कम ताकत हो, फिर भी दुनिया पर अपना कब्जा जमाते रहो। कैसे? दुनिया को लड़ाते रहो, धीमे धीमे, चतुराई से और जोड़ते भी रहो। अमरीका के साथ प्रेम करते रहो, उसके मित्र बने रहो लेकिन रूस और चीन से भी आंख लड़ाते रहो। यह अंग्रेजी विदेश नीति का एक मुख्य पाया रहा है और आज से नहीं पिछले डेढ़ दो सौ बरस से रहा है। अंग्रेजों ने इससे बहुत कुछ अपने मुल्क के लिए हासिल भी किया है। लेकिन जब हिन्दुस्तान जैसा देश उसकी नकल करने लगता है तो क्या होता है, वह मैं कहना चाहता हूं। दुनिया के बाजारों में तो विदेश नीति दिखाई ही नहीं पड़ती हिन्दुस्तान की और दरबार में बहुत लजा लजा कर के चला करती है।

अंग्रेजी वामपंथ की एक और खास आदत रही है और ऐसा खयाल है कि हिन्दुस्तान की सरकार ने या विदेश मंत्रालय ने उसका सबक अंग्रेजी वामपंथ से सीखा है। वामपंथ का मतलब मजदूर पार्टी से नहीं, वामपंथ का मतलब उस जमाने से, स्टेफर्ड क्रिप्स और एलन विलकिंसन के जमाने से आज तक दोनों "क म" तक है। "क" "म" से मेरा मतलब एक तो किंग्जले मार्टिन साहब से और दूसरे कृष्ण मेनन साहब से है। यह अंग्रेज़ी वामपंथ हिन्दुस्तान को विदेश नीति का सबक सिखाता रहा है। कैसे? सोवियत संघ के साथ तो मौखिक संगति करो, मुंह से तो सोवियत संघ के साथ बनाये रखो लेकिन पदार्थों के हिसाब से अतलांतिक के साथ रिश्ता रखो। हवाई जहाज अंग्रेज़ों से लो, कल पुर्जे इंग्लिस्तान से लो, सारा व्यापार इंग्लिस्तान की तरफ रखो लेकिन सोवियत संघ के साथ हमदर्दी दिखाते रहो। इस तरह से आंख लड़ने वाली नहीं है। अंग्रेज़ी

वामपंथ ने हिन्दुस्तान को यह हरकत सिखाई है। इस वामपंथ के बारे में मैं खाली इतना याद दिला दूं कि स्टेफोर्ड क्रिप्स के ज़माने से जबकि इटली ने एबेसीनिया पर हमला किया था आज तक जबकि चीन ने हिन्दुस्तान पर हमला किया है, अंग्रेज़ी वामपंथ दबे दबे हमलावरों का साथी रहा है। क्यों रहा है, यह लम्बा किस्सा है। अब इसी तरह से अंग्रेज़ों की विदेश नीति में एक और खासियत रही है कि वह दुनिया भर में शान्ति का कोहरा या धुन्ध फैला दिया करते हैं, जिसके जरिये से वह अपने व्यापार वगैरह का भी काफी बड़ा हिस्सा हासिल कर लिया करते हैं। साफ बात है, चकमा देना जितना अंग्रेज़ी विदेश नीति को आता है उतना संसार में आज किसी को नहीं आता। कभी, किसी जमाने में आस्ट्रिया का मैटरनिक था। उसने यह कला बहुत निकाली थी, और जो जैसुइट कूटनीतिज्ञ हैं वह भी इस चकमे में अंग्रेज़ों के हिसाब से एक बुनियाद हैं। कितना भी कहें, वे थोड़े बहुत शक्तिशाली हैं और कूटनीति की कला उन की सैकड़ों वर्षों से चली आ रही है। जब हम हिन्दुस्तानी उसी चकमे को सीखते हैं तो न तो हमारे पास शक्ति है और न कला है। कला की जगह हम लोग फूहड़ हैं। और फिर नतीजे खराब हो जाया करते हैं। यही सबब है कि हम लोग पिछले 17 वर्षों में व्यवहारकुशलता की खोज में कोई चीज़ हासिल नहीं कर पाये। व्यवहारकुशल बनो, कोई ऐसी बात कहो जो तत्काल मतलब रखती हो, दूर की बात मत करो लम्बी बात मत करो। अरे इस से तो दुनिया न जाने कितने 100, 50 वर्ष में बदलेगी। जो आज की दुनिया है उस को ले कर बात करो जिस से दुनिया बदले। यह व्यवहारकुशलता की खोज माननीय विदेश मंत्री को बहुत रही है। व्यवहारकुशलता कैसी बात है, वह मैं साफ कर दूं। जो देश नये हैं, कमजोर हैं, अगर वह व्यवहारकुशलता की खोज करने लग जाते हैं तो वह बिल्कुल निकम्मे बन जाया करते हैं। व्यवहारकुशल होना है किन को, जिन के पास शक्ति है, जिन को दुनिया के फौरी मामले को हल करना है, जैसे कि रूस है, जैसे अमरीका है और शायद किसी कदर अंग्रेज़ भी। लेकिन जो देश नये हैं, जिन को नई दुनिया का निर्माण करना है, अगर वे भी इस व्यवहारकुशलता के दलदल में फंस जायेंगे तो नई दुनिया कभी बना नहीं पायेंगे। उन की कोई सुनेगा भी नहीं। कमज़ोर की व्यवहारकुशलता कौन सुना करता है। इसलिये शक्तिशाली देशों के साथ व्यवहारकुशलता की बात आज आप छोड़ दें। नतीजा क्या होता है।

आज हम दिन रात अखबारों में पढ़ा करते हैं कि चीन हार गया, फलाने सम्मेलन में हार गया, उस की बात किसी ने मानी नहीं। लेकिन इसके कुछ नतीजे तो साफ हैं न कि उस की बात कही तो गई, आई तो उस की बात मानी नहीं, लेकिन जब देखो चीन की बात आती है। चीन हारा लेकिन खेला तो सही। हिन्दुस्तान तो पिछले कई वर्षों से खेलना भी बन्द कर चुका है। इसलिये उसके हारने जीतने का सवाल ही पैदा नहीं होता है। आप

किसी भी अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन को देखिये बहुत से अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों का जिक्र यहां होता है। ज्यादा मैं पसन्द नहीं करता, जैसे कि अफ्रेशिया वगैरह वगैरह, लेकिन उन में हमेशा जिक्र आता है उन बातों का जिस को चीन ने करना चाहा। साथ साथ यह भी खबर आती है, और कभी कभी बिल्कुल झूठी, कि चीन नाकामयाब रहा है।

परन्तु उसका सबब है। जैसे सन्तरा सूख जाता है या आम सूख जाता है, वैसे ही हिन्दुस्तान की विदेश नीति भी सूख गई, क्योंकि उसके ऊपर जो थप्पड़ पड़े हैं, चाहे चीन के हों, चाहे पाकिस्तान के, या और सबब से, भले ही वह निजी हैं, उनको ले कर ही वह इतनी उलझ गई है कि अब लम्बा मामला, दुनिया को बदलने वाला उसकी आंखों के सामने रह नहीं गया है। जब तक हिन्दुस्तान की विदेश नीति संसार में गोरी और रंगीन की उन पांच असमानताओं को फिर से दुनिया के सामने नहीं लायेगी, जब तक मुझे डर लगता है कि हिन्दुस्तान की विदेश नीति कहीं कोई कदम आगे नहीं बढ़ा सकेगी। हम खाली अपना ही रोना रोते रहेंगे कि चीन ने हम को यह थप्पड़ मारा, पाकिस्तान ने वह थप्पड़ मारा, लेकिन उस में कोई विश्वव्यापकता नहीं रहेगी।

इसी तरह से मैं आप का ध्यान खींचू इस तरफ कि हिन्दुस्तान जब अन्न के लिये भीख मांगता फिरता है तो फिर उसकी विदेश नीति चल कहां सकेगी। आखिर एक हद्द होती है। एक हद्द तक ही हो सकता है कि कोई देश या राष्ट्र भीख भी मांगता रहे और साथ साथ बड़ी आदर्शवादिता की डींग भी हांकता रहे।

अब यह दो ध्रुव हैं अमरीका और रूस वाले। उनके बारे में मैं चाहूंगा कि हिन्दुस्तान की विदेश नीति साफ साफ बात रखे कि एक तो दाम का सन्तुलन, दूसरी गरीबी को मिटाना। इन दो को ले कर के इन दोनों के साथ रहने की कोशिश करो, वैसी चीजें वही जैसे कि अणु परीक्षण बन्द करो जैसे तनाव बन्द कर दो जैसे शिखर सम्मेलन कर लो, जो कि पिछले दस पन्द्रह वर्षों से हिन्दुस्तान ने किया। अब इस से काम नहीं चलेगा। ठोस बात ले कर आओ, जिस में दुनिया के रंगीन लोग देखे कि हां अब कोई हमें सुधारने वाली चीज आई है। इसी तरह से मैं अमरीका और रूस के बारे में यह कह दूं कि पूंजीउत्पादन, जीवन स्तर और आर्थिक बराबरी के मामले, इन तीनों दृष्टियों से यह दोनों देश एक दूसरे के बहुत नजदीक हैं। हिन्दुस्तान गलती कर बैठता है जो इन दोनों के बीच में बड़ा फर्क करता है। मुझे लगता है कि अगले बीस या पच्चीस वर्षों में यह दोनों एक दूसरे के बहुत नजदीक हो जायेंगे।

अमरीका का सातवां बेड़ा शायद आज भी इधर-उधर घूम रहा है। वह लम्बा किस्सा है। इस पर मुझे खाली इतना ही कहना है कि मैं खुद 17 वर्ष तक इस सातवें बेड़े के खिलाफ रहा हूं, आज भी खिलाफ हूं। लेकिन क्या करूं। हिन्दुस्तान की विदेश नीति इस

कदर नाकामयाब हुई है कि मुझे यहां आज यह कहना पड़ता है कि हिन्दुस्तान के माननीय विदेश मंत्री ने दबी जबान से सातवें बेड़े को अपने समुद्र में आने दिया। ऐसा हर्गिज नहीं होना चाहिये। खुली जबान से होना चाहिये। जो नीति अपनाओ खुल कर अपनाओ, हिम्मत के साथ अपनाओ। अगर सातवां बेड़ा आता है तो उस के एवज में दुनिया के लिये और हिन्दुस्तान के लिये कुछ हासिल करो। मेरा बस चलता तो मैं अमरीका से यह कहता कि ठीक है, सातवां बेड़ा आ रहा है, बताओ तुम क्या करते हो हिमालय के बारे में, क्या करते हो तिब्बत के बारे में, क्या कहते हो दामों के सन्तुलन के बारे में और इस तरह से व्यापक विदेश नीति को ले कर मैं मामला कुछ आगे बढ़ाता। रूस और अमरीका की सरकारों से मैं कहता हूं कि पांच साम्राज्यशाहियों के बारे में कुछ करो। वहां की जनता से भी कहता हूं कि संयुक्त राष्ट्र है न्यूयार्क में, वहां पर वह भी कुछ प्रदर्शन करे। दुनिया में प्रदर्शन हों, दुनिया के मसलों को ले कर, दाम बांधने के लिये हों, गरीबी मिटाने के लिये हों।

इसी तरह से सवाल उठ जाता है बिन लगाव की नीति का एक तरफ रूस की गोद है और दूसरी तरफ अमरीका की गोद है और तीसरी तरफ आप बिन गोद के कह लें बिन गोद वाले देशों में और हिन्दुस्तान में कुछ खिचाव रहता है जैसे हिन्दोमेया है, बर्मा वगैरह है। मुझे कहना है कि इन देशों को देख कर मुझे ऐसा लगता है कि बिन गोद वाले देश तो हरजाई देश है बिन लगाव की नीति पर हमें कुछ भयंकर रूप से सोचना पड़ेगा। मैं भी तीसरे खेमे की नीति वाला हूं लेकिन जिस तरह से तीसरे खेमे या तीसरी शक्ति की नीति को इस विदेश मंत्रालय ने बिगाड़ा है उसे देख कर मुझे यहां कहना पड़ता है कि यह निरपेक्ष नीति नहीं, यह एक हरजाई नीति है कि कभी इस की गोद में बैठे, कभी उसकी गोद में बैठे। इस नीति को छोड़ कर एक आदर्शवादिता को लेकर काम चलाना पड़ेगा। ब्रिटिश राष्ट्रमंडल, अफ्रेशियाई देश के ऊपर सहारा और बिन लगाव के ऐसा समझना यह तीन हमारे लिये बहुत खराब चीजें हैं।

*** ***

....हम शरीर और आत्मा की बात करते हैं। बहुत दफे बातें होती हैं प्रचार की। हिन्दुस्तान की विदेश नीति की आत्मा इतनी खोखली हो चुकी है जब तक वह आत्मा ठीक नहीं होती तब तक शरीर को सुधारने से कोई विशेष लाभ नहीं होता। लेकिन फिर भी शरीर थोड़ा सुधारना चाहिये। इस सिलसिले में मैं माननीय विदेश मंत्री का वह वाक्य दुहरा दूं, कि हिन्दुस्तान के राजदूत का एक विशेष गुण है उसकी बीवी। माननीय मोरारजी देसाई का कहना है कि मैं खूबसूरत चेहरों को पसन्द करता हूं। लेकिन मुझे मालूम होता है कि माननीय विदेश मंत्री भी खूबसूरत चेहरों को पसन्द करते हैं। लेकिन मैं यह कह

देना चाहता हूं कि जब तक हमारे राजदूतों का दिल और दिमाग एक तरफ साधारण जनता के साथ और दूसरी तरफ दुनिया के साथ जुड़ा न होगा....

*** ***

...एक बात तो मैं यह कहना चाहता हूं कि विदेश विभाग का प्रचार मंत्रालय रोज एक बुलेटिन भेजा करता है। मैं ने चिट्ठी लिखी और टेलीफोन करने की भी कोशिश की कि वह बुलेटिन मुझे भी मिला करे। आखिर मैं भी लोकसभा का सदस्य हूं, मेरे साथ यह भेदभाव क्यों किया जाता है।

इसी के साथ साथ मैं आप को भाषा के बारे में भी एक बात कहना चाहता हूं। अगर भाषा का मामला ठीक नहीं होगा तो विदेश नीति का मामला भी ठीक होना असम्भव है और इस संबन्ध में मैं आपके सामने महात्मा गांधी का एक वाक्य रखना चाहता हूं। गांधी जी ने सन् 1942 में कहा था—हिन्दुस्तान चाहे जहन्नुम में जाये, अंग्रेज़ों भारत छोड़ो। लेकिन आज जब मैं कहता हूं कि हिन्दी चाहे जहन्नुम में जाये अंग्रेज़ी को हटाओ तो हिन्दी के व्यापारी मुझसे नाराज हो जाया करते हैं।

*** ***

मैं अब खाली हबीबुल्ला खां का एक वाक्य आपके सामने रख कर खत्म कर देना चाहता हूं। वह पाकिस्तान के गृह मंत्री हैं। जो वाक्य उन्होंने कहा है उसका मैं आपको अनुवाद करके सुनाये देता हूं। सारी चीजें अंग्रेज़ी में छपती हैं। उसका तर्जुमा इस प्रकार है:

> "कि वह नहीं चाहते कि हिन्दुस्तान और पाकिस्तान दो विभिन्न देश विभिन्न लोगों के हिसाब से खड़े रहें, लेकिन एक ही देश और एक ही लोगों के दो हिस्सों की तरह रहें।"

मैं नहीं जानता कि उनके इस वाक्य का कितना मतलब है; लेकिन इसको पढ़ कर मुझे लगा कि वह कहना चाहते हैं कि हिन्दुस्तान और पाकिस्तान को इस तरह रहना चाहिए जैसे दो शरीर एक दिल या दो जीभ और एक दिमाग। क्या यह बात सही है? पाकिस्तान और हिन्दुस्तान की सरकारों के बारे में जो मेरी राय है उसको मैं आपके सामने रख कर आपको दुखाना नहीं चाहता। लेकिन मैं पाकिस्तान और हिन्दुस्तान की जनता से चाहता हूं वह हबीबुल्ला खां के इस वाक्य के रहस्य को जितनी जल्दी हो सके ढूढ़ने की कोशिश करे।

34

अंतर्राष्ट्रीय स्थिति सम्बंधी प्रस्ताव*

****

.... मुझे विदेश मंत्री पर अवश्य अचरज हुआ। उन को कमाल हासिल है, वह लोगों को उलझा दिया करते हैं। किसी को उलझा दिया रूस चीन के झगड़े में, किसी को काश्मीर में और किसी को वायेस आफ अमरीका में, और विदेश नीति पूरी तरह से हम लोग, चाहे इस पक्ष के चाहे उस पक्ष के, यहाँ अच्छी तरह देख नहीं पाये।

मैं कोशिश करूंगा कि विदेश नीति को पूरी तरह से देखूं, और मेरा पहला वाक्य है कि वह प्रायः पूरी तरह से असफल रही है। क्योंकि खुद विदेश मंत्री ने दो कसौटियां बतलाई। एक कसौटी देश की आजादी, जमीन और देश का हित और दूसरी कसौटी विश्व व्यवस्था।

पहली कसौटी के सम्बंध में हर एक को मालूम है कि 15 अगस्त, 1947 के मुकाबले में हम लोग कम से कम 17 या 18 हजार वर्ग मील खो चुके हैं। उसमें हमारी विदेश नीति असफल रही, और अगर कोई पुरानी रेखा देखी जाये, कैलाश मानसरोवर वाली, तो हम लोग 1 लाख वर्ग मील खो चुके हैं।

जहां तक विश्व व्यवस्था का सवाल है, मैं यह कहना चाहता हूं कि अकेले हिन्देशिया के सवाल को छोड़ कर, मुझे नहीं मालूम कि हिन्दुस्तान की विदेश नीति ने दुनिया में क्या नई चीज बनाई या किसी बड़ी बात को उकसाया है, कोई नई दिशा दी है। आखिर यह सब क्यों हुआ? मेरा ख्याल है कि पहले दो, चार वर्षों को छोड़ कर पिछले दस बारह वर्षों में हिन्दुस्तान आश्रित रहा है। काश्मीर के मामले में रूस के रोक वोट पर आश्रित रहा है और पंचवर्षीय योजना के मामले में अमरीका के डालर पर आश्रित रहा है। जो आश्रित है वह स्वतंत्रता की डींग हाँक सकता है, स्वतंत्र राय नहीं रख सकता है। इसलिये

---

*लोक सभा वाद-विवाद, 17 मार्च, 1964

मेरा पहला कहना है कि जब तक हिन्दुस्तान इस आश्रय से छुटकारा नहीं लेता, काश्मीर के मामले में रूस के रोक बोट से और पंचवर्षीय योजना के मामले अमरीका के डालर से, तब तक उस के लिये स्वतंत्र राय रखना प्रायः असम्भव है। उस का नतीजा यह हुआ कि हिन्दुस्तान की विदेशी नीति भय के हिसाब से चली। अल्जीरिया के बारे में डर कि अटलांटिक कैम्प नाराज हो जायेगा जिस का नतीजा यह हुआ कि अफ्रीका और एशिया के देशों ने अल्जीरिया की वक्ती सरकार को मान लिया, साल डेढ़ साल तक उसे बनाये रक्खे। चीन हमसे बहुत आगे निकल गया। लेकिन हिन्दुस्तान की सरकार डर के मारे अल्जीरिया की स्वीकारोक्ति नहीं कर पाई। इसी तरह से आज डर है अरब देशों का इजराइल के सम्बन्ध में। लेकिन में बतला देना चाहता हूं कि अरब देशों का सब से अच्छा दोस्त यूगोस्लाविया है। वह इजराइल को मानयता दिये हुए हैं। इसी तरह से कांगो में डर लगा हुआ था, और तभी उस बहादुर आदमी पैट्रिस लुमम्बा की हत्या के वक्त भी हिन्दुस्तानी अफसरों के रहते हुए भी हिन्दुस्तान की सरकार कुछ नहीं कर पाई। डर लगा हुआ था कि कांगों के बटवारे के खिलाफ जो कुछ कार्रवाई वहां हो रही है उस में अगर हिन्दुस्तान की थोड़ी बहुत भी मदद हो गई तो कहीं अटलांटिक कैम्प नाराज न हो जाये एक डर लगा हुआ था हंगरी का कि कहीं रूस नाराज न हो जाये अगर हम हंगरी के मामले में कोई बुनियादी राय बना लेंगे। हालांकि हमने स्वेज नहर के मामले में एक हद तक ठीक राय बनाई थी लेकिन डर लगा हुआ था। इसलिए हम हुगली नदी के पाइलट स्वेज नहर के ऊपर नहीं भेज पाये। और चीन के सम्बन्ध में पहले डर लगा हुआ था तिब्बत का और अब लगा हुआ है उर्वशीयम् का। नतीजा यह हो रहा है कि हमारी विदेश नीति किसी कदर ठीक नहीं चल पा रही है। मैं यह बात बतालऊंगा की जिसको विदेश मंत्री अब तक विदेशी भाषा में कहा करते हैं, लेकिन में मूल भाषा में बतलाऊंगाः

"चित्त जेथा भयशून्य, उच्च जेथा शिर"

हमारे हिन्दुस्तान की विदेशी नीति भयशून्य नहीं है इसलिये वह सफल नहीं हो सकती और देश का भला नहीं कर सकती। सिर्फ इसलिये नहीं कि हमारे पास धन नहीं, सिर्फ इसलिये नहीं कि हमारे पास सेना नहीं है, बल्कि इसलिये कि इस विदेशनीति का सिद्धांत नहीं, सोच नहीं सपना नहीं। हिन्दुस्तान आगे नहीं देख पाया। हमारे पास क्या नहीं था? 44 करोड़ आदमी, एक माने में कहा जाय तो साठ करोड़ आदमी, महात्मा गांधी, पुराना देश। यह सब हमारे हक में थे, जिन के द्वारा हम अपनी विदेश नीति को सफल बना

सकते थे, लेकिन इस सिद्धांतहीनता ने हमें खत्म कर डाला। इस सिद्धांतहीनता का एक ही उदाहरण में देता हूं। चीन। सन् 1949 से मैंने कहा कि उस सिद्धांत को लागू करो जिस के अनुसार जो कोई सरकार जिस किसी देश पर काबिज हो उसे मान्यता दी जाय, और जो सिद्धांत विदेश मंत्रालय हमेशा बतलाया करता है उस के अनुसार सन् 1949 से ही हमें एक तरफ तो माओत्से तुंग के चीन की सरकार को और दूसरी तरफ च्यांग काई शेक के फार्मोसा की सरकार को मान्यता दिलाने की कोशिश करनी चाहिये थी। लेकिन यह नहीं हुआ। नतीजा हुआ कि अफ्रीका और एशिया के देशों के सामने कम्यूनिस्ट चीन का असली स्वरूप आ नहीं पाया, और सारे अफ्रीका और एशिया में एक यह गलतफहमी फैल गई कि यह कम्यूनिस्ट चीन और समाजवादी एशिया तो कहीं है नहीं, लेकिन नकली समाजवादी एशिया और दूसरे इसी तरह के लोग करीब करीब एक ही थैली के चट्टे बट्टे बैठे हैं। थोड़े बहुत फर्क होगा तो होगा, नहीं तो बुनियादी तौर पर एक दिशा में यह लोग जाते हैं।

अभी भी रूस और चीन के झगड़े के ऊपर जिस तरह से यहां सोच विचार हुआ है, उस से मुझे खतरा लगता है कि आगे भी हिन्दुस्तान की विदेश नीति किसी न किसी रेगिस्तान की तरफ जाती रहेगी क्योंकि कल के विदेश मंत्री के भाषण में नीति के हिसाब से सिर्फ एक जुमला मुझे दिखलाई पड़ा। बाकी जो था वह था लेकिन वह जुमला यह था कि रूस और चीन का झगड़ा आज दुनिया की एक महत्वपूर्ण घटना है और उस का सहारा लेकर अब हम बच सकेंगे। नीति के हिसाब से रूस और चीन के झगड़े को सहारे के रूप में देखा जा रहा है। अन्धे और लंगड़े को कोई न कोई सहारा हमेशा चाहिये। जब और सहारे टूट जाते हैं तो एक सहारा यह बतलाया गया है। लेकिन मैं कहना चाहता हूं कि अभी भी हिन्दुस्तान के पास ऐसी ताकत है कि वह खुद अपने पैरों पर खड़े हो कर बिना सहारे के चल सकता है, लेकिन अगर ठीक नीति पर चला जाये। तो वह कैसे? चीन और रूस के असली झगड़े को समझा जाये।

सब से पहले मैं यह बता देना चाहता हूं कि रावण भी विद्वान था। चीन राक्षस है इससे कोई शक नहीं, लेकिन चीन की ताकत कहां से आयी? इतना कमजोर होते हुए धन में, पलटन में, उन दोनों बातों में जिनमें हम कमजोर हैं, वह आज रूस से मुकाबला कर रहा है, और न जाने कितनी गोरी दुनिया से मुकाबला कर रहा है। क्योंकि चीन के पास इतनी ताकत है कि वह रंगीन दुनिया का प्रतीक बन बैठा है। और अफ्रीका में, एशिया में, चाहे कितनी सरकारें इधर उधर जायें, लेकिन रंगीन आदमी का दिल चीन के साथ हिल जाता है, क्योंकि आस्ट्रेलिया में, साइबेरिया में, कैलीफोरनिया में, जहां आज एक अन्तर्राष्ट्रीय जमींदारी चल रही है, वहां वे गोरे मुंह वाले एक वर्ग मील पर एक एक, दो दो, पांच पांच और सात सात की आबादी में रह रहे हैं। चीन ने अफ्रीका की आज़ादी के

आन्दोलन में मुंह से भी और दूसरे तरीके से भी काफी मदद की है। लेकिन अब इसके यह मानी नहीं होंगे कि हम चीन की इस कार्यवाही से कुछ चीन की तारीफ करने लग जायें। मैंने कहा कि चीन राक्षस है। उसकी यह प्रतीक शक्ति होते हुए भी उसने दुनिया में बड़े पैमाने पर राक्षसी वृत्ति को अख्तियार किया है और वह बन्दूक और हथियारों के ज़रिये दुनिया में गोरे और रंगीन के अन्याय को बदल देना चाहता है। और उसको दूसरे रूप में देखा जाए तो ऐसा लगता है कि जैसे जब जंगली जानवर को हांगकांग, मकाऊ, फार्मोसा और क्युमाय का मांस तोड़ते हुए लगा कि दांत टूट जायेंगे तो उसने हिमालय के मुलायम मांस के ऊपर हमला किया। तो चीन की राक्षसी वृत्ति को पूरी तरह से पहचानते हुए मैं कह रहा हूं कि हमें अपनी नीति को ठीक बनाना चाहिये।

अगर हम रूस और चीन के झगड़े में सिर्फ सहारा ढूंढेंगे रूस का, तो फिर गलती कर जायेंगे, और मुझे कल से यह खतरा लग रहा है कि हिन्दुस्तान की विदेश नीति फिर एक नए रेगिस्तान में जा रही है। यह सहारा ढूंढना बिल्कुल बेमतलब है। हमें यह करना चाहिए कि जहां तक हो सके रंगीन दुनिया की मदद करें। लेकिन हो सकता है कि इससे भी हमारा विदेश मंत्रालय डरे और सोचे कि ऐसा करने से अमेरिका और रूस और दूसरे गोरे राष्ट्र और उनकी सरकारें नाराज हो जायेंगी। किसी हद तक शायद नाराज हों भी। लेकिन गोरी जनता है काफी तादाद में जो चाहती है कि जहां और अन्याय खत्म हों वहां गोरे और रंगीन का अन्याय भी खत्म हो।

और इसी के साथ साथ हमें यह भी सोचना चाहिए कि गोरे और रंगीन की लड़ाई हमसे जहां तक हो सके चलायें, वहां राक्षस के खिलाफ जो कुछ कार्रवाई हम से बन सके हम करें। और मुझे बहुत दुख होता है कि हिन्दुस्तान अभी भी राष्ट्र संघ में कम्युनिस्ट चीन को मान्यता दिलाने की कोशिश करता रहता है। हिन्दुस्तान ने पिछले 15 वर्ष में सारे एशिया में एक दल दल बना रखा है। एशिया वैसे भी दल दल है, गरीबी का दल दल, कुनबा परस्ती का दल दल, विचार का दल दल और सिद्धान्तहीनता का दल दल। इस दल दल में हिन्दुस्तान ने सिद्धान्त के खूंटे नहीं गाड़े। इसलिए मेरी पहली तजवीज यह होगी कि एशिया के इस दल दल में सिद्धान्त के खूंटों को गाढ़ो। और यह तभी हो सकता है जब हिन्दुस्तान की तरफ से चीन के बारे में साफ बताया जाये कि हम चीन को मान्यता देने को तैयार नहीं हैं, लेकिन उसूल के हिसाब से दोनों चीनों के लिए कोशिश करेंगे।

मैं आपसे एक अर्ज कर दूं कि जब हमने सन् 1949-50 में ये बातें कही थीं तो लोगों ने कहा था कि यह बका करता है। लेकिन अब पता चला है कि रूस ने भी उस ज़माने में ये बातें कही थीं और चाहा था कि दुनिया के तनाव को कुछ कम किया जाए।

लेकिन मुझे अफसोस है कि हिन्दुस्तान की सरकार इस दिशा में सोचते हुए घबराती है। इसका कारण क्या है? इसका कारण शायद यह है कि यह सरकार इंगलिस्तान के उस वाम पंथ की चेला है जो मजदूर दल और रूस के बीच में नाचता रहता है। यह वाम दल मजदूर पंथ वाला नहीं है, यह तो उसका एक टुकड़ा है जो दोनों के बीच नाचता रहता है। उसका नतीजा यह है कि जब हिन्दुस्तान की सरकार किसी चीज को लेकर आगे बढ़ती है तो उधर से एक उकसाव आता है। एक उकसाव आया कि रूस और चीन के नेताओं में शिखर सभा हो, तो हमारी सरकार भी यह कहने लगी कि ऐसा हो। वहां से उकसाव आया कि निःशस्त्रीकरण करो तो हिन्दुस्तान की सरकार भी कहने लगी कि निःशस्त्रीकरण करो। वहां से उकसाव आता है कि अणु बम का निःशस्त्रीकरण करो, तो हिन्दुस्तान की सरकार भी उसे दुहराने लगती है। फिर वहां से उकसाव आया कि आणविक परीक्षण बन्द करो तो यहां की सरकार भी वही दुहराने लगी। लेकिन यह कोशिश हमारी सरकार नहीं करती कि एशिया और अफ्रीका की हालत को देखते हुए, दुनिया की हालत को देखते हुए, हम नए ढंग से विचार करें। और मैं इस सम्बन्ध में आपके सामने एक विचार रखना चाहता हूं। जहां हिन्दुस्तान की सरकार ने राष्ट्रपति कैनेडी और श्री ख्रुश्चेव की मुलाकात की बात कही, निःशस्त्रीकरण वगैरह के बारे में और दुनिया में होने वाली और घटनाओं को लेकर, वहां अच्छा होता—होना तो यह दस पन्द्रह वर्ष पहले चाहिए था लेकिन अब भी हो जाये—कि हमारी सरकार इन दुनिया के दो सब से बड़े मालिकों को कहती है कि वे आपस में बैठें और दुनिया की गरीबी पर सोच विचार करें कि किस तरह दुनिया में गरीबी मिटायी जा सकती है। अगर मेरा वश होता और हिन्दुस्तान के विदेश मंत्री मेरी बात मानते, तो मैं कहता कि प्रेसीडेंट कनेडी और ख्रुश्चेव को कहा जाये कि वे तीन दिन के लिए, पांच दिन के लिए या सात दिन के लिए बैठें और गरीबी के बारे में सोचें और इस पर सोचें कि किस प्रकार खेतिहर दाम में और कारखाने के दाम में संतुलन कायम किया जाये।

यह अन्यथा हमेशा से चल रहा है और अभी भी जारी है। खेतिहर दाम तीन चौथाई बढ़ा है जब कि कारखाने का दाम बढ़ा है एक। इसका नतीजा यह है कि हिन्दुस्तान जो अमरीका और रूस से विदेशी सहायता के रूप में पाता है उससे ज्यादा वह इन दामों की लूट के कारण उनको दे देता है। तो मेरा कहना है कि इन दोनों विषयों को लेकर कनेडी और ख्रुश्चेव बैठें। लेकिन सवाल उठेगा कि वे ऐसा क्यों करने लगे। गोरे लोग रंगीनों की क्यों मदद करें, कारखानों से माल तैयार करने वाले खेतिहर चीजों को पैदा करने वालों की क्यों मदद करें? तो उसके लिए मेरा जवाब है कि सन् 1945 के बाद से एक नई शक्ल दुनिया में आ गयी है। अगले बीस तीस साल में या तो हथियार खत्म होंगे या दुनिया खत्म होगी। क्योंकि 1945 के पहले कोई जीसस, कोई महात्मा गांधी हथियारों को

बुरा कहते थे, अनुचित कहते थे, कहते थे कि उनका इस्तेमाल ठीक नहीं है, लेकिन फिर भी हथियारों का इस्तेमाल गैर जरूरी और बेकार हो गया है। मैं असली हथियारों की बात कर रहा हूं। फिट फिट बन्दूक की नहीं जो कि चीन और हिन्दुस्तान वाले आपस में इस्तेमाल करते हैं। मैं उन असली हथियारों की बात कर रहा हूं जो कि रूस और अमरीका के पास हैं। उनका इस्तेमाल नहीं हो रहा है। होगा भी नहीं क्योंकि अगर हुआ तो दुनिया के अन्दर जो तीन अरब आबादी है उस में से दो अरब मारी जायेगी। तो अगले बीस तीस वर्ष में इसका फैसला होने वाला है। जहां पहले जीसस और गांधी हथियारों को बुरा कहते थे वहां एक बिसमार्क भी आने वाला है जो हथियारों के निकम्मेपन को समझते हुए हथियारों को खत्म करके छोड़ेगा। बिसमार्क तो मैं ने यूं ही कह दिया। इतनी ताकत एक अकेले आदमी की कहां हो सकती है। वह आदमी तो दलों और समूहों का प्रतीक होगा क्योंकि दलों और समूहों से अलग व्यक्ति क्या कर सकता है। ऐसे व्यक्ति समूह के साथ नहीं रहते तो बेकार हो जाया करते हैं। तो ये हथियार या तो खत्म होंगे या दुनिया खत्म होगी। और हथियार कब खत्म होंगे जब अन्याय खत्म होगा। तो मेरा कहना है कि हिन्दुस्तान की विदेश नीति तभी कामयाब होगी जब कि दुनिया में जो सात क्रान्तियां इस वक्त चल रही हैं, और एक भला हो रहा है, उसके साथ वह दिल खोल कर एक हो जाये, उसके पहले नहीं।

इससे पहले मैं ने स्पर्श क्रान्तिकारिता का पहले जिक्र किया था और श्री अशोक सेन ने पूछा था कि वह क्या है, तो मुझे अच्छा लगा था। तो मैं बताना चाहता हूं कि यह स्पर्श क्रान्तिकारिता क्या चीज है। इस को समझने के लिए इंगलैंड के दो विश्वविद्यालयों को समझना जरूरी है। वहां जो स्नातक से नीचे लड़के पढ़ते हैं वे क्रान्तिकारी बन जाते हैं, लेकिन कैसे? अपने देश में जो कोई चीज न बनाओ और न बिगाड़ो, न हिलाओ और डुलाओ, लेकिन जो कोई बाहर से, विदेश से, कोई क्रान्तिकारी आये तो उस को छू लेने से अपने अन्दर भी कुछ थोड़ी क्रान्तिकारिता महसूस करने लग जाओ। जब तक यह स्पर्श क्रान्तिकारिता रहेगी तब तक हमारी विदेश नीति सपना नहीं देखेगी, और इस ने सपना नहीं देखा है। जब कभी मुझ जैसे आदमी ने इस तरह की तजवीज़ रखी तो यही कहा गया कि तुम तो व्यावहारिक नहीं हो, तुम्हारी बात का कोई मतलब नहीं है, इसका असर नहीं पड़ता, आज जो दुनिया की वस्तुस्थिति है उसको यह छूती नहीं आदि। लेकिन मैं पूछता हूं कि पिछले 15 वर्षों में हमारे देश की विदेश नीति ने क्या हासिल किया है, उसका कितना असर पड़ा है, उसका कितना असर हमारे पड़ोसियों पर पड़ा है? और जब तक यह ख्याल दिमाग में रहेगा तब तक हिन्दुस्तान कुछ भी नहीं कर पायेगा। 15 वर्ष बीत गये। लेकिन मैं यह कहना चाहता हूं कि हमें कोई सपना, कोई सिद्धान्त पकड़ कर उसके साथ चलना चाहिए। अगर हम ने ऐसा किया तो उसका असर दस बरस में नहीं

तो पन्द्रह बीस बरह में जरूर पड़ेगा। लेकिन अगर ऐसा नहीं किया गया तो विश्वशान्ति की एक थोथी पैगम्बरी चलती रहेगी और चालाकी की कूटनीति। पिछले 15 वर्ष की हिन्दुस्तान की विदेश नीति के लिए अगर मुझको कोई भी नारा देना पड़े तो मैं कहूंगा कि विश्वशान्ति की थोथी पैगम्बरी और चालाकी की कूटनीति। इस में सिद्धान्त नहीं, इस में सोच नहीं, इस में सपना नहीं, और उसका नतीजा हमारे देश हित के लिए खतरनाक हुआ है। आप पड़ोसियों से हमारे सम्बन्ध देखिए जो कि विदेश नीति की सब से बड़ी कसौटी है। हमारे पड़ोसी कौन देश हैं? अफगानिस्तान, पाकिस्तान, तिब्बत—तिब्बत बेचारे को तो मैं क्या गिनाऊं। नेपाल, बर्मा और श्रीलंका। एक देश का नाम भी मुझे इस सदन में बतलाया जाये कि वह हिन्दुस्तान का पड़ोसी देश है जोकि चीन के मुकाबले में हिन्दुस्तान का ज्यादा बड़ा दोस्त है। लेकिन इस के विपरीत हिन्दुतान के मुकाबले में चीन के बड़े दोस्त इन पड़ोसी देशों में मिल जायेंगे। इन पड़ोसी देशों में एक या दो, तीन देश ऐसे मिल जायेंगे लेकिन हमारा उन में से कोई भी ज्यादा बड़ा दोस्त नहीं है। मैं समझता हूं कि इस बात के बाद भी अगर कोई सदस्य खड़ा हो कर इस विदेशी नीति की सफलता की डींग हांकता है तो वह वस्तुस्थिति से सम्बन्ध नहीं रखता है। ऐसा क्यों हुआ? मैं समझता हूं कि जिस पार्टी की यह सरकार है, उसकी सब से पहले विदेशी नीति का जो प्रस्ताव हुआ था वह सन् 1918 या 1919 को हुआ था, उस को भुला दिया गया है। मुझे मालूम नहीं किस ने वह प्रस्ताव लिखा था? लेकिन लिखावट से ऐसा मालूम होता है कि उसे महात्मा जी ने लिखा था। वह एक छोटा प्रस्ताव था। बाद में बहुत लम्बे लम्बे प्रस्ताव होने लगे। उस छोटे से प्रस्ताव में यह लिखा हुआ था कि आज़ाद हिन्दुस्तान को सब से ज्यादा अपने पड़ोसी देशों की फिक्र करनी चाहिए और मेरा सब से बड़ा आरोप यह है कि हिन्दुस्तान की विदेशी नीति ने अपने पड़ोसी देसों की या तो उपेक्षा की या दम्भ किया या उन के सामने ग़लत उदाहरण रक्खा।

अब ग़लत उदाहरण रखने की मैं एक ही बात कहता हूं। जिस तरह से हिन्दुस्तान की हुकूमत टूट गयी दो खेमों में, उसी तरीक़े से पड़ोसी देश की सरकारों ने भी सोचा कि हम भी दो खेमों में टूट जाये तो शायद हमें भी कुछ हासिल हो जाये। नतीजा यह हुआ कि इस देश की सरकार कुछ थोड़ा सा सोवियट कैम्प या चीनी कैम्प की तरफ़ भी झुकने लग गयी।

यह भी एक सबब हो सकता है। हो क्या सकता है, यह भी एक सबब है। हम अंग्रेजी में अपनी विदेश नीति चला रहे हैं जिसके कि सबब से हिन्दुस्तान और दुनिया का कोई हित नहीं कर पाता। पिछले 15-20 दिन से सुन रहा हूं। विदेश मंत्री थोड़ी बहुत अंग्रेजी जानते भी हैं लेकिन जिस तरीके से वह चीनी हमले के लिए "नापसन्द" का शब्द इस्तेमाल करते हैं, मैं सोचने लग जाता हूं कि आखिर उन्हें हो क्या गया है? जैसे कि

उन्होंने अंग्रेजी में चीन के हमले के लिए इनवैजन का शब्द इस्तेमाल किया और फिर चीन के काम के बारे में "डिस्ऐप्रूव" का शब्द इस्तेमाल करते हैं, इतने हलके से शब्द जो वे चीन के लिए इस्तेमाल करते हैं मैं नहीं समझता कि यह वह जानबूझ कर करते हैं या इसलिए करते हैं कि उनका दिमाग़ टूटा हुआ है। एक तरफ़ तो वह समझते हैं कि चीन ने हिन्दुस्तान पर हमला किया और दूसरी तरफ कोई मामूली सी गड़बड़ी है, कहीं पर जरा कहा सुनी हो गयी इसलिए हम उस को नापसन्द करते हैं, यह शब्द प्रधान मंत्री इस्तेमाल करते हैं। मैं समझता हूं कि इसका एक कारण यह भी है कि हम लोग अंग्रेजी में कार्यवाही करते हैं। अंग्रेजी के शब्दों के ठीक मतलब को हम समझ नहीं पाते लेकिन उनको इस्तेमाल करने लग जाते हैं जिसका कि नतीजा यह होता है कि संयुक्त राष्ट्रसंघ में जब हिन्दुस्तान का कोई प्रतिनिधि बोलता है तो वह कभी कोई मार्के की बात कह नहीं पाता है। ख्रुश्चेव बोलते हैं तो अपने पेट से बोलते हैं और अपनी छाती से बोलते हैं लेकिन हिन्दुस्तान का प्रतिनिधि कंठ से बोलता है जिसे कि सुन कर अंग्रेज और अमरीकी कहते हैं कि तोता बड़ा अच्छा बोला लेकिन उस का कोई असर नहीं हो पाता है। अगर हिन्दुस्तान की विदेश नीति को बदलना चाहते हो तो सब से पहले उस का माध्यम बदलना पड़ेगा।

अब इसी के साथ-साथ हमें सोच विचार करना पड़ेगा अपने उन दो सवालों पर जिन पर कि मैंने शुरू किया था अर्थात् पाकिस्तान और विदेशी मदद क्योंकि जब तक इन दोनों मामलों में हम दुनिया के ऊपर आश्रित रहेंगे, रूस और अमरीका पर आश्रित रहेंगे, तब तक स्वतंत्र नीति अपना नहीं पायेंगे। पाकिस्तान के संबंध में सब से बड़ी बात मैं यह कहना चाहता हूं कि हम लोग अक्सर वहां की सरकार और वहां की जनता में फर्क नहीं करते जोकि बहुत बुरा है। पाकिस्तान की सरकार को मैं उतनी ही गंदी समझता हूं जितनी कि हिन्दुस्तान की सरकार को। लेकिन पाकिस्तान की जनता के साथ मैं चाहता हूं कि हिन्दुस्तान की जनता के अच्छे, गाढ़े और गहरे संबंध हों...

*** ***

इस संबंध में काश्मीर का अक्सर जिक्र आया करता है। मैं काश्मीर के मामले में बिल्कुल साफ कह देना चाहता हूं कि जिस तरीके से नहरी पानी की समस्या को ले कर या किसी और चीज को ले कर एक तरफा समझौता करने की कोशिश की गई, काश्मीर के मामले में, कुछ आने जाने वाला नहीं है क्योंकि आज अगर काश्मीर पाकिस्तान को दे भी देते हैं तो भी हिन्दुस्तान और पाकिस्तान का झगड़ा खत्म नहीं होता है। कोई न कोई मामला फिर शुरू हो जायेगा। किसी न किसी दूसरे तरीके से फिर यह झगड़ने लग जायेंगे। इसलिये इस सारे मामले का एक पूरा सुलझाव निकालना चाहिये और मेरी समझ में महा संघ के अलावा और कोई तरीका हो नहीं सकता है। हिन्दुस्तान और पाकिस्तान

की महा संघ को बनाने की कोशिश होनी चाहिये। अब सवाल यह उठता है कि मुझे यह कहा जायेगा कि तुम अजीब सपना देखते हो, तुम कितने पागल हो गये हो। आज हिन्दुस्तान और पाकिस्तान का मामला इतना बिगड़ा हुआ है कि पाकिस्तान चीन के साथ हर तरह का समझौता करने को तैयार है और तुम महा संघ बनाने की बात करते हो? तो मैं खाली एक ही बात कहूंगा...

*** *** ***

व्यवधान*

*** *** ***

जरा सपना देखना शुरू करो फिर देखना कि यह कैसे होता है? सपना देखना बन्द कर दिया है। जिस सरकारी पार्टी ने हिन्दुस्तान के बंटवारे का प्रस्ताव किया था उसी सरकारी पार्टी के सुझाव प्रस्ताव में यह चीज थी, क्योंकि उस समय और एक के साथ मैं भी बुला लिया गया था। हुजूर विदेश मंत्री ने जो प्रस्ताव उस वक्त रक्खा था उस में सिर्फ बंटवारे की स्वीकारोक्ति हुई थी, तो मैं ने कहा था, हालांकि वह मेरी कमजोरी थी, मानना बिल्कुल नहीं चाहिये था। उसमें एक जुमला यह भी रक्खा था जिस में हिन्दुस्तान के काश्मीर से लगा कर कन्याकुमारी तक और सुदूर पूर्व से ले कर पश्चिम तक, यह सारा एक हिन्दुस्तान का हम ने नक्शा देखा, उस की पूजा करना सीखा, उस को हम कभी भूलेंगे नहीं, तो मैं कांग्रेस पार्टी के सदस्यों को याद दिलाऊंगा कि जिस प्रस्ताव में उन्होंने बंटवारा माना, उसी प्रस्ताव में समूचे और संपूर्ण हिन्दुस्तान का भी जिक्र है और यह कि दिल में हमारे उस की तस्वीर नहीं रहेगी लेकिन अफसोस इस बात का है कि यह तस्वीर कांग्रेस हृदय से बिल्कुल मिट चुकी है। वह तस्वीर फिर से अपने देश के हृदय में आनी चाहिये...

*** *** ***

चूंकि यह सपना देखना बंद कर दिया है इसलिये हमें वह मुमकिन नहीं दिखाई देता है। आखिर पाकिस्तान किस तरह से बना? वह इसलिए बना कि कुछ लोगों ने इंगलिस्तान में हिन्दुस्तान से इतनी दूर पाकिस्तान का सपना देखा था। भले ही वह गलत सपना रहा हो लेकिन ऐसा सपना कुछ लोगों ने देखा था। फिर उस के बाद जिन्ना साहब ने और मुस्लिम लीग ने वह सपना देखा था और आगे चल कर उन का सपना साकार भी हुआ। लेकिन हम हिन्दुस्तानी इस वक्त कैसा रुख लेते जा रहे हैं? एक आदमी द्वारा सपना देखते हुए और वह चाहता भी है कि तुम लोग भी सपना देखना शुरू करो लेकिन बीच

*श्री श्यामलाल सर्राफ: यह कैसे होगा?

में रोड़ा अटकाते हैं और यह कह देते हैं कि नहीं हम हिन्दुस्तान और पाकिस्तान के एक होने की बात सोच ही नहीं सकते...

*** *** ***

यहां पर लोग सिखाए हुए बैठे रहते हैं, जो कि वस्तु स्थिति के मामले में फंस जाते हैं कि कोई भी सपना नहीं देख पाते। ऐसे लोग होते, तो अब तक हिन्दुस्तान आजाद भी न हो पाता और, अध्यक्ष महोदय, कोई न कोई अंग्रेज आप की जगह पर बैठा रहता, और कोई गुलाम सभा यहां पर चलती होती। हमने सपने देखे थे, तभी हम आजाद हुए। अब यह सपना देख रहा हूं और मैं कहना चाहता हूं कि अगले पांच, दस, बीस वर्ष में हिन्दुस्तान और पाकिस्तान एक होकर रहेंगे। उनका महासंघ बनेगा और वे एक होंगे। जिस तरह आज चीन घमंड के साथ कहता है कि हम लोग साठ करोड़ हैं, तब हम भी घमंड के साथ तो नहीं, थोड़ी विनय के साथ, अपने को साठ करोड़ कह सकेंगे। उस महासंघ के बारे में मैं यह कहना चाहता हूं कि तब काश्मीर कहां रहता है, कहां जाता है, हिन्दुस्तान में रहता है या पाकिस्तान में जाता है या अलग इकाई बनाता है और जो टूटा हुआ बंगाल है, वह फिर से एक होता है, इन सब सवालों पर तब हम एक नये सिरे से सोच सकते हैं।

मैं यह भी चाहूंगा कि यह सदन और खास तौर से प्रधान मंत्री बड़े संयम के साथ बोला करें। उस दिन मुझे हैरत हुई, जब मैंने सुना कि इस्लाम नामी जासूस का नाम तो प्रधान मंत्री ने ले लिया, लेकिन हिचक गये, जब कि दूसरे जासूस का नाम लेना था, और दूसरे दिन जा कर शर्मा का नाम हमारे सामने आया। ये छोटी छोटी बातें हमारे लिए बड़ी खतरनाक हो जाया करती हैं, क्योंकि आखिर जासूस कौन है? इसमें हिन्दू और मुसलमान का फर्क नहीं है। जो कोई भी पैसे के लिये अपने देश के खिलाफ जाता है, वह जासूस है और ऐसे लोग दोनों में मिलेंगे। इस लिए इस बारे में कहीं भी, किसी एक वाक्य से भी, ऐसी गलती नहीं करनी चाहिये।

विदेशी मदद के बारे में मैं कहना चाहता हूं कि आज हम क्या हो गये हैं। आज हम उस भिखमंगे की तरह हैं, जिसे जब भीख नहीं मिलती, तो गाली देने लगता है। और रूस या रूस नहीं तो अमरीका—जितने भी गोरे लोग हैं, वे उस दाता की तरह हैं, जो देने के बाद उम्मीद करते हैं कि लेने वाला....

*** *** ***

व्यवधान [क]

*** *** ***

[क] एक माननीय सदस्य : दुआ देगा।

सिर्फ दुआ नहीं देगा, नाक रगड़ेगा। इसलिए यह जरूरी हो गया है कि अब हिन्दुस्तान अपने दिल को कड़ा करके कदम उठाए और कहे कि इस तरह की विदेशी मदद हम नहीं लेते, ऐसी विदेशी मदद दुनिया में नहीं होनी चाहिए, जो एक देश दूसरे देश को दिया करता है। अब तो हमको विश्व विकास निगम बनाना चाहिए, जिसमें देश अपनी ताकत के अनुसार दें और अपनी ज़रूरत के मुताबिक लें।

अगर हम इन दो मामलों में अपनी विदेशी नीति को स्वतन्त्र बना सकें, तो सम्भव है कि अब भी—मामला बहुत बिगड़ चुका है, पन्द्रह बरस का रोग है और मरीज़ बहुत खतरनाक हालत में पहुंच चुका है—हिन्दुस्तान की विदेश नीति को सबल बनाया जा सकता है। अगर हम यह समझते रहे कि हिन्दुस्तान की सरकार, उसके विदेश मन्त्रालय और हमारे राजदूतों का यह काम है कि वे विदेशों में हमारे विदेश मन्त्री की मूर्ति की रक्षा करते रहें, तो भारत की मूर्ति कभी बन नहीं पायेगी। अगर हम भारत की मूर्ति बनाना चाहते हैं विदेशों में, अगर हम भारत की जमीन की रक्षा करना चाहते हैं, तो फिर यह जरूरी हो जाता है कि पिछले पन्द्रह बरस से विदेश मन्त्रालय का जो एक ही मकसद रहा है कि श्री प्रधान मंत्री साहब की मूर्ति की विदेशों में रक्षा करें, उस मकसद को छोड़ दिया जाये, उस मकसद को छोड़ देना पड़ेगा और अपने हितों, अपनी आज़ादी और अपनी जमीन की रक्षा करनी पड़ेगी।

अगर आप चाहें, तो मैं एक मिनट में इसकी एक मिसाल देकर खत्म कर देता हूं—अगर आपकी इजाज़त हो, नहीं तो मैं बैठ जाता हूं। 1951 में जब मैं अमरीका गया था, तो वहां पर कुछ अमरीकियों ने मुझ से सवाल उठाया कि हमारे राष्ट्रपति ट्रू मैन के बारे में तुम्हारी क्या राय है। मुझ में और सभा में कुछ एक कायम हो चुका था और राष्ट्रीयता की जो दीवारें हैं, वे कुछ गिर चुकी थीं। जब मैंने इसका जवाब दिया, तो वे अमरीकी लोग बड़े परेशान से होकर बोले कि तुम पूरी बात नहीं कर रहे हो—जब तुम वापस जाओ हिन्दुस्तान में, तो ट्रू मैन को साथ लेते जाना। तभी मुझे एक ही जवाब सूझा, जो भारत की मूर्ति बनाता था, लेकिन भारत की मूर्ति को बना कर जो प्रधान मन्त्री की मूर्ति को किसी कदर गड़बड़ कर देता था—ज्यादा गड़बड़ नहीं करता था, शायद उन को भी ऊंचा बनाता था—और मैंने कहा कि हां मैं एक शर्त पर ट्रू मैन को अपने साथ हिन्दुस्तान ले जाने को तैयार हूं और वह शर्त यह है कि आप हमारे प्रधान मन्त्री, नेहरू साहब, को अमरीका बुला लो और यहां पर उनको वास करने दो।

इससे अमरीकी जनता के मन में जो कि मुझे सुन रही थी, यह आया कि जिस

तरह से हम लोकतन्त्री हैं, उसी तरह से ये भी लोकतन्त्री हैं और हिन्दुस्तान में कई तरह के विचार हैं, जो आपस में टकरातें हैं और लोकतन्त्र के अनुसार उनको मौका मिलता है।

विदेश नीति में यह बहुत जरूरी है कि जनता का जनता से सम्बन्ध कायम हो। इस वक्त केवल सरकार का सरकार से सम्बन्ध हो रहा है। हम लोगों को तो जाने दीजिए। हमारे बारे में तो कह दिया जाता है कि ये लोग तो खाली हल्ला मचाया करते हैं। लेकिन इस वक्त कांग्रेस पार्टी की तरफ से भी हिन्दुस्तान को विदेश नीति का कोई बड़ा सवाल, नई दिशा की तरफ ले जाने वाला सवाल, नहीं उठाया जाता है। सब सरकार के मोहताज हो गए हैं। मैं मानता हूं कि उन्नसवीं सदी के मुकाबले बीसवीं सदी की यह कमज़ोरी रही है कि जनता का जनता से सम्बन्ध टूटा है और सरकार का सरकार से बढ़ा है, लेकिन कम से कम हम यह कोशिश करें कि सारे विश्व के पैमाने पर जनता का जनता से सम्बन्ध कायम हो।

पाकिस्तानी सेनाओं द्वारा कच्छ सीमा पर आक्रमण संबंधी प्रस्ताव*

सभापति महोदय, इस बहस में प्रधान, विदेश और रक्षा मंत्री, इन तीनों को रहना चाहिये था और इस वक्त सदन में एक भी नहीं है, इसका न सिर्फ़ मुझको अफसोस है, बल्कि इससे दुनिया को शक होगा कि यह मामला खाली नोक-झोंक का तो नहीं है।

*** ***

.......आधी रात का वक्त था। हिन्दुस्तान की फौजें हैदराबाद के लिए कूच कर चुकीं थीं। तब सर सेनापति प्रधान मंत्री के घर पहुंचे और उनको कहा कि पाकिस्तान ने भी अपनी सेनाओं का जमाव कर लिया है और वह हमला करने वाला है। तब प्रधान मंत्री ने आधी रात के बाद सरदार पटेल को टेलीफोन किया और कहा कि पाकिस्तान की सेनाओं का जमाव हो चुका है। सरदार ने कहा, "तो"— कुछ और नहीं, सिर्फ़ "तो"। फिर प्रधान मंत्री ने कहा कि पाकिस्तान की सेनायें सभी सीमाओं पर हिन्दुस्तान में घुसने वाली हैं। फिर सरदार पटेल ने कहा "तो"। मैंने सुना है कि इस तरह से और बातचीत हुई और फिर टेलीफोन बन्द हो गया।

आज मैं यह नहीं कहना चाहता कि सरदार पटेल की ज़रूरत है। वह बिल्कुल फिजूल बात होगी। लेकिन मैं यह ज़रूर कहना चाहता हूं कि उस दृढ़ता की ज़रुरत है, जो किसी एक फैसले को कर लेने के बाद उस पर कायम रहती है और उसके अनुसार काम किया करती है।

मैं इस वक्त जंग की बात नहीं करना चाहता—और इन लोगों ने भी कोई जंग की बातें नहीं की हैं। इस बहस में अगर सार लाना होता, तो यह बात फैसला हो जाता कि क्या यह नोक-झोंक है या युद्ध है। अभी तक यह बात बिल्कुल साफ़ नहीं है,

---

*लोक सभा वाद-विवाद, 28 अप्रैल, 1965

बिल्कुल एक धुंधला मामला है। कोई भी नतीजा निकाला जा सकता है कि नोक-झोंक है या युद्ध है।

दृढ़ता की जब मैं बात करता हूं तो मैं उसको भी साफ़ कर दूं। अब तक यह सरकार बहुत कुछ खो चुकी है—लांगजू, बाराहोती, लद्दाख, अक्साई चिन—काश्मीर के इलाके को छोड़ ही दें—और अब कच्छ। हिन्दुस्तान के लोगों को और पाकिस्तान के लोगों को ऐसा महसूस होने लग गया है कि हिन्दुस्तान की किसी भी ज़मीन को किसी भी वक्त छीना जा सकता है। इसलिए आपको दृढ़ता के साथ इस बात को सोचना चाहिये कि इस बार जो कंजरकोट छीना गया है उसको वापिस लिये बिना हिन्दुस्तान अब से चैन से बैठे रहने वाला नहीं है। पिछली जमीनों की बात मैं नहीं करता हूं। कोई गलत न समझ बैठे। बड़ा आसान होता है उन लोगों के लिए कह देना कि इधर तो सब युद्धवादी बैठे हुए हैं। मैं हथियार पसन्द नहीं करता हूं यह मैं साफ़ कह देना चाहता हूं लेकिन मेरे सामने कोई दूसरा रास्ता रह नहीं गया है। निकालने की कोशिश तो मैं कर रहा हूं। किन्तु जब तक यह राज्य हिन्दुस्तान का है हमें फैसला करना है कि अब कंजरकोट की जो ज़मीन है वह वापिस लेनी है और आगे भी अगर कहीं किसीने चाहे चीन हो या पाकिस्तान हो और चाहे और कोई भी देश क्यों न हो, हमारे देश की किसी भी ज़मीन पर, किसी भी भाग पर हमला किया तो हमें आखिरी फैसले तक जाना है। या तो राज्य खत्म हो जाना है या फिर अपनी ज़मीन को बचा कर रखना है। इस फैसले को करते वक्त दिमाग को हमें बिल्कुल साफ रखना चाहिये कि हम किस ओर बढ़ें।

जो व्यापक मसला है हिन्द पाक का उस पर कोई रोशनी नहीं डाली गई है, उसका कोई जिक्र नहीं हुआ है। हिन्द पाक का रिश्ता ऐसा है कि हम लोग साधारण दोस्ती की हालत में रह नहीं सकते हैं। या तो हिन्दुस्तान और पाकिस्तान की दुश्मनी होगी और या हिन्दुस्तान और पाकिस्तान दोनों एक देश बनेंगे। बीच की कोई स्थिति चल नहीं सकती है। यह चीज़ पिछले सतरह बरसों ने साबित कर दी है। मैं इसके लिए कोई तवारीख या दूसरा कारण नहीं बतलाना चाहता हूं। यह बिल्कुल साफ बात है कि थोड़े से समय के लिए, एक दो चार पांच सात साल के लिए यह सम्भव है कि दोस्ती हो लेकिन वह दोस्ती या तो बढ़ेगी एके की तरफ या फिर उसके दूसरे नतीजे निकलेंगे। एके की भी कई मंजिलें होती हैं। महासंघ होता है। फिर ऐक्य होता है। या फिर वह दोस्ती बिगड़ती चली जाएगी और दुश्मनी हो जाएगी। मैं आपको याद दिलाना चाहता हूं कि नहरी समझौता

जब हुआ था तो लोगों ने कहा था कि अब तो सारा मामला खत्म हो गया, अब दोनों बिल्कुल दोस्ती से रहेंगे। वह कहां हुई? एक दो साल तक मुहब्बत और इश्कबाजी चलती रही फिर मामला बिगड़ गया। यह होता ही रहेगा। या तो ये दोनों देश एक हो कर रहेंगे या फिर दुश्मनी में चलेंगे। इस बात का हमें फैसला कर लेना चाहिये। इस चीज़ को मैं पाकिस्तान की जनता को भी बतलाना चाहता हूं, न सिर्फ हिन्दुस्तान की जनता को ही फिर मैं इसका नतीजा निकालना चाहता हूं। अगर कंजरकोट को वापिस लेना चाहते हो तो पानी वगैरह की बात न किया करो, बरसात है, पानी इकट्ठा हो रहा है, इस तरह की बात मत किया करो। लांगजू है, वह पहाड़ी है, चीनी ऊपर से नीचे चले आ रहे हैं, इस तरह की बातें मत किया करो। ये सारी बातें फिजूल हैं। एक फैसला करो, फिर उसके बाद यह भी देखोगे कि पूर्वी बंगाल क्या है? जैसे जरा ने दो टुकड़ों को जोड़ करके उसे जरासंघ बना दिया था वैसे ही दो अप्राकृतिक नकली टुकड़ों को जोड़ करके पाकिस्तान बना है। मैं कहना चाहता हूं कि मामला आखिर तक अगर जाता है तो पूर्वी बंगाल सिर्फ चार पांच दिन की चीज़ है और पूर्वी बंगाल चौथे या पांचवें दिन हिन्दुस्तान के कब्जे में आ जाता है। किसी को यह नहीं समझना चाहिये कि यह मामला इतना आसान है कि पाकिस्तान इधर और उधर बढ़ जाएगा। जरासंघ को भी फाड़ने के लिए कृष्ण ने सिखाया था। लेकिन कौन है यहां सिखाने वाला आप लोगों को?

*** ***

...लेकिन ये जितने लोग हैं आज मैं इनकी अक्ल के बारे में कुछ कहना नहीं चाहता हूं। इनकी थोड़ी अक्ल है। ये और सीखें। मेरा कहना इनके काम आएगा। थोड़ा अक्लमन्द बनो तो काम आ जाएगा। इससे ज्यादा कड़ा शब्द मैं इस्तेमाल नहीं करना चाहता हूं। जिस तरह से जरासंघ वाला मामला था उसी तरह से पूर्वी बंगाल वाला मामला है। यह आप को भी जानना चाहिये और पाकिस्तान वाले तो जानते ही हैं। इसीलिए वे इतना घबराते हैं। इसीलिये वे हमेशा आपसे दुश्मनी की हालत में रहेंगे।

मैंने अपने आपको रोक कर रखा है। पूर्वी बंगाल से मुझ को न जाने कितनी चिट्ठियां और तार आते रहते हैं। मैं बोला नहीं करता हूं क्योंकि मेरे दिमाग में सब कुछ होते हुए भी अभी भी महासंघ का चित्त है। इतना बस कुछ कह देने के बाद भी एका तो आखिर कभी होना ही है।

कुछ लोगों ने मुझे बहुत बुरा भला सुनाया है और कहा है कि क्या महासंघ की बात करते हो। आज भी एक हज़रत ने सुना दिया और उसके साथ साथ यह भी जोड़ दिया "जब तक वहां वह हकूमत है"। अंसार साहब ने मुझे गालियां दीं, बहुत दे डालीं और बाद में जोड़ा "जब तक वहां वह हकूमत है"। उनको यह भी कहना चाहिये था कि

"जब तक यहां यह हकूमत है"। यह भी जोड़ दिया करो। जिस दिन हिन्दुस्तान की हकूमत जनता की ओर समाजवादी हो जाएगी उस दिन मुमकिन है कि पाकिस्तान में अयूब-शाही के खिलाफ भी पाकिस्तान की जनता बगावत करे और फिर दोनों देशों की जनता फिर से इस देश को एक कर दे। वह लम्बी बात हुई। लेकिन अभी मैं महासंघ की बात कर रहा हूं...

*** *** ***

...हमेशा पाकिस्तान के सम्बन्ध में सोचते वक्त पाकिस्तान की सरकार और पाकिस्तान की जनता में आपको फर्क करना चाहिये। जहां एक हाथ में दण्ड हो वहां दूसरे हाथ में अभय दान रहना चाहिये। पाकिस्तान की जनता और हिन्दुस्तान की जनता भाई थे, अब भी भाई हैं चाहे एक दूसरे का गला काटें। ये हमेशा भाई रहेंगे। एक देश बन कर रहेगा। इसलिए अभय दान की मुद्रा कभी हिन्दुस्तान को नहीं छोड़नी चाहिये चाहे जितना दण्ड हाथ में उठाना पड़े।

मैं बड़े अफसोस के साथ जो खबर आज छपी है, उसकी तरफ आपका ध्यान खीचना चाहता हूं और वह है अमरीकी अध्यापक की खबर जो यहां कुछ अर्से पहले राजदूत थे। मेरा मतलब प्रो० गालब्रेथ से है। उन्होंने कहा है कि जब वह यहां राजदूत थे तब उन्होंने हिन्दुस्तान की सरकार को मना किया था कि वह बढ़ती हुई चीनी फौजों के ऊपर हवाई हमला न करे। उन्होंने कहा था कि यह उनकी सलाह थी कि, चीनियों के ऊपर हवाई हमला मत करो। सबसे पहले मैं एक काम करना चाहता हूं। पंडित नेहरू इस वक्त यहां नहीं हैं। खैर, मैं तो ईश्वर को मानता नहीं हूं....

*** *** ***

आप मानते हो तो देखो देश की क्या हालत कर रखी है। कुछ बना ही नहीं। पंडित नेहरू के प्रति मैं एक बात कहना चाहता हूं। जो कुछ भी मैंने उनकी निन्दा की चीन के ऊपर हवाई हमला न करने के कारण आज मैं उसको यहां वापिस लेता हूं और मैं यह कहता हूं कि अमरीका विद्वान प्रोफेसर को यहां राजदूत बैठा करके जबकि हमारी बीस हजार वर्गमील ज़मीन चीन छीन चुका था। और अपनी पलटनें बढ़ा चुका था, क्या पड़ा था यह कहने को कि तुम हवाई हमला मत करो? क्या अमरीका की बीस हजार वर्ग मील ज़मीन चली जाए तो कोई अमरीकी यह कहेगा कि अपनी ज़मीन की रक्षा मत करो, हवाई हमला मत करो? यह प्रश्न बिल्कुल साफ है। यह हमारे सामने एक बात ले आता है। जहां तक रंगीन और कमजोर लोगों के देशों का सवाल है उनकी ज़मीनें चाहें इधर जायें चाहे उधर जायें इन शक्तिशाली देशों को उसकी कोई परवाह नहीं हुआ करती है। यह बात मैं बहुत अफसोस के साथ कहना चाहता हूं। मैं यह भी चाहता हूं कि अगर

कोई अमरीकी अमरीका में इन सभी विदेशी नीति के मामलों में ज्यादा सोच विचार करता है तो उसको इसके ऊपर कुछ राय देनी चाहिए।

मैं उन लोगों में से एक रहा हूं कि पिछले कई दिनों से दक्षिण एशिया में चाहते रहे हैं कि वियतनाम के ऊपर हिन्दुस्तान की सरकार कुछ न बोले क्योंकि दक्षिण एशिया में मैं कुछ ऐसा नहीं करना चाहता जिससे चीन की या उत्तरी वियतनाम की शक्ति बढ़े। लेकिन यह अमरीकी प्रोफेसर ऐसी बात कहते हैं जो यहां पर राजदूत रह चुके हैं, इसको आप देखें।

इसके साथ-साथ एक और बात मैं कहना चाहता हूं जो जोसेफ स्टालिन के बारे में है। मैं स्टालिन का भक्त नहीं हूं और न ही साम्यवाद का भक्त हूं, यह मैं साफ कर देना चाहता हूं। लेकिन मेनन साहब जो हिन्दुस्तान के राजदूत थे मास्को में उनकी स्टालिन के साथ जो बातचीत हुई उसका एक हवाला उन्होंने लिखा है। स्टैलिन साहब ने मेनन से कहा, अपने मेनन साहब से नहीं, दूसरे मेनन जो हैं, के॰ पी॰ एस॰ मेनन साहब, कि क्या तुम यहां पर कोरिया वगैरह की बात करने आये हो, बात करो मुझ से हिन्दुस्तान की और पाकिस्तान की। तुम्हारे देश को कृत्रिम रूप से तोड़ कर रखा गया है, उसे फिर से एक करने की बात मुझ से कहो, या महासंघ की बात कहो। खैर, वह स्टैलिन की बात थी। पता नहीं ख्रुश्चेव की क्या राय थी, पता नहीं ब्रेज़नेव या कोसिजिन की क्या राय है, लेकिन मैं आपको बतलाना चाहता हूं कि अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में जो कोई आदमी भी दूरदृष्टि रखता है और न्याय की बात सोचता है और शांति से काम करना चाहता है उसे किसी न किसी रूप में इस सिद्धान्त को अपनाना ही पड़ेगा कि जो कोई देश नकली रूप से दो हिस्सों में तोड़े गये हैं उनको फिर से जोड़ने के लिये महासंघ शुरू करना होगा। यही रूस को अपनाना होगा, यही अमरीका को अपनाना पड़ेगा। इसलिये रूस और पाकिस्तान दोनों को पाकिस्तान और हिन्दुस्तान सम्बन्धी मामले में जो भी झगड़ा चल पड़ा है उस पर बुनियादी तौर से कुछ सोचना और विचारना शुरू करना होगा।

यह सही है कि यहां पर अक्सर जिक्र किया जाता है कि अमरीका के हथियार पाकिस्तानियों के पास पाये गये। तो क्या यह सवाल नहीं पूछा जा सकता कि चीनियों के पास कितने रूसी हथियार थे। ऐसी छोटी छोटी तफसील की चीजों में देशों को नहीं लड़ाना चाहिये। आज दुनिया इतनी पेचीदा हो गई है कि रूस वाले चीन को न जाने कौन कौन सी मदद देते रहे हैं और दे भी रहे हैं लेकिन आज वह कहते हैं कि हमारा उन का झगड़ा है। इसी तरह से अमरीका वाले भी दे रहे हैं। तो छोटे सवालों में न फंस कर बड़े सवाल को हमें उठाना चाहिये कि क्या अमरीका और रूस सारे संसार में शांति को कायम रखने के लिये हिन्द पाक महासंघ और एकता के विचार को अपनाने के लिये तैयार हैं।

मैं कह चुका हूं कि यह सिद्धान्त पूर्वी जर्मनी और पश्चिमी जर्मनी पर भी लगता है, वियतनाम पर भी लगता है, कोरिया और दूसरी जगहों पर भी लगता है....

*** *** ***

उपाध्यक्ष महोदय....श्री चौहान पिछले दस पन्द्रह दिनों में अक्सर ऐसी बातें बोलते रहे हैं कि मुझे उन से हैरानी हुई। ऐसा मालूम पड़ता है कि एक आदमी जिसकी मसलियां बिल्कुल खत्म हो चुकी हैं, उन को मचकाता है, ऐसे जैसे कि पहलवान मचकाया करते हैं। जब देखो तब वह पहलवानी से मसलियां मसलियां करते हैं कि चीन से लड़ लेंगे, पाकिस्तान से लड़ लेंगे। यह पुराना तरीका हो गया है। इस वक्त हिन्दुस्तानी को गम्भीरता से बोलना चाहिये। ठीक है, हम कमजोर हैं, लेकिन अब हमने फैसला किया है कि अपनी और किसी जमीन को जाने नहीं देंगे। हम लड़ेंगे, चाहें जितनी मुसीबत हो, चाहे जितनी ताकत आये। मुमकिन है कि हमको शुरू में हारना पडे, लेकिन हम आखिर तक लड़ेंगे। तब तक जब तक या तो हमारा राज्य खत्म हो जायेगा या फिर हम अपनी सब जमीनें वापस ले लेंगे। इस तरह से बोलना चाहिये रक्षा मंत्री को न कि वह झूठी-मूठी फिजूल की गर्मी दिलाने वाली बात कहें कि इसका सामना कर लेंगे, उसका सामना कर लेंगे।

इस सम्बन्ध में आप थोड़ा सा पाकिस्तान की तरफ भी ध्यान दें। यह लोग अक्सर नाजंगी समझौता पाकिस्तान को दिया करते हैं। बार बार कहते हैं कि हमने समझौता दे रखा है कि जंग मत करो, आओ मिल जाओ। हमारी सरकार यह कहती है। लेकिन याद करो, सन् 1959 के आस पास, ठीक सन् मुझे याद नहीं, अय्यूब खां ने भी हिन्दुस्तान को एक संयुक्त सुरक्षा का न्यौता दिया था। उसको इस सरकार ने यों ही ठुकरा दिया था। यह दोनों ही सरकारें इस ढंग की हो गयी हैं। आप अगर मेरी सलाह मानते हैं तो चाहे जितनी लड़ाई करें, चाहे जितनी बरबादी करें, लेकिन एक और समझौते का न्यौता दें और वह है महासंघ का समझौता। उसके लिये आप किसी भी प्रकार का त्याग उठाने के लिये तैयार रहें। हो सकता है कि राष्ट्रपति पाकिस्तान का हो तब प्रधान मंत्री हिन्दुस्तान का हो। इस तरीके के पचासों तरीके निकाले जा सकते हैं। मनुष्य का दिमाग ऐसा है कि संवैधानिक तरीका निकाला ही जा सकता है। जहां पर प्रधान मंत्री साहब ने एकता वगैरह की अपील की हम लोगों से, उस की कोई जरूरत नहीं, आखिर, मैं यहां शेखी नहीं बघारता लेकिन जितना आप में से कोई भी आदमी इस देश की सुरक्षा के लिये उत्सुक है, कम से कम उतना तो हम भी हैं। कम से कम इतने। शायद इस से ज्यादा हों, लेकिन इतने तो हैं हीं। यह अपील फजूल मत किया करो क्योंकि सत्तरह वर्षों से इस देश को बरबाद करने के बाद इस देश की रक्षा करने के लिये आप कह रहे हैं। दूर की बात क्या कहूं, आज ही प्रधान मंत्री ने गरीबी और आजादी के बीच में मुकाबला

किया है। क्या मतलब है उस मुकाबले का? क्या गरीब रह कर आजाद रह पाओगे। असम्भव बात है। इसलिये अमीर बनने की कोशिश करो। जब मैं अमीर की बात करता हूं तो आप जैसे नहीं, सारे 48 करोड़ लोगों के जीवन स्तर को ऊंचा उठाने की कोशिश करो, तब मुकाबला कर पाओगे पाकिस्तान का और चीन का।

आजकल मेरा थोड़ा सा पत्र व्यवहार चल रहा है प्रधान मंत्री साहब से। मैंने उनको लिखा था कि यह मेरा उन को आखिरी खत है। इसलिये कि कोई असर नहीं पड़ा करता। और वह खत मैंने प्रधान मंत्री को नहीं लिखा था, वह खत मैंने लिखा था "प्रिय श्री नेता" को। "नेता" को क्योंकि वह इस सारे सदन के नेता हैं। इसलिये मेरे भी नेता हुए उस हद तक। तो मैंने "प्रिय श्री नेता" को लिखा था कि आपकी सरकार पिछले सतरह अट्ठारह सालों से "विवादग्रस्त" शब्द का इस्तेमाल कर के देशद्रोह करती रही है। इस शब्द का इस्तेमाल तुम बन्द करो।

*** ***

36

सुरक्षा परिषद के भारत व पाकिस्तान में युद्ध विराम सम्बन्धी संकल्प एवं भारत द्वारा राष्ट्रमंडल त्याग सम्बन्धित संकल्प पर चर्चा*

उपाध्यक्ष महोदय, चागला साहब ने एक बात सौ फीसदी सही कही और वह यह कि सुरक्षा परिषद का प्रस्ताव पाकिस्तान के लिए संतोषदायक नहीं था। इस हद तक यह सदन उनका—तथा और किसीका भी, जो इसके लिए जिम्मेदार है—शुक्रगुजार हो सकता है लेकिन जब उन्होंने यह बात साफ करने की कोशिश की कि सुरक्षा परिषद का प्रस्ताव भारत के लिए असंतोषकारक नहीं था, तब मेरे दिमाग में कई बातें आईं। पहली यह कि न्यूयार्क में तो चागला साहब भारत के वकील बन कर बोल रहे थे और यहां इस सदन में सुरक्षा परिषद के वकील बन कर बोल रहे थे। इस से ऊ थांट साहब को बहुत खुश होना चाहिए, लेकिन मैं अभी साबित कर दूंगा कि उनकी यह खुशी खत्म हो जायेगी, क्योंकि इस प्रस्ताव से सुरक्षा परिषद भी खत्म हो जायेगी।

इसी के साथ चागला साहब हम लोगों पर थोड़ा सा रहम करते और जज की तरह बोलते, वकील की तरह नहीं। अपने मामलों को साबित करने के लिए उन्होंने यहां पर अपने ही भाषणों से कई उद्धरण दिये लेकिन उन्हें बताना चाहिये था कि यहां पर गोल्डबर्ग ने क्या कहा, रूस ने क्या कहा, सुरक्षा परिषद के प्रस्ताव और टीकाकारो ने क्या कहा। चागला साहब ने खुद क्या कहा, इससे तो चीजे नहीं साबित हो जाया करतीं।

चागला साहब 31 मिनट तक तो बोले वकील की तरह और 4 मिनट बोले सिपाही की तरह। अगर उनके यही चार मिनट कभी 31 मिनट हो जायेंगे, तब तो भारत का

*लोक सभा वाद-विवाद, 24 सितम्बर, 1965

मामला जीत कर रहेगा, लेकिन उन्होंने 31 मिनट तक जो कुछ कहा, उसका भरोसा किया, तो हमारे लिए स्थिति बहुत खतरनाक जो जायेगी। मैं यह सलाह सिर्फ उनको ही नहीं, उनके सब साथियों को देना चाहता हूं कि अगर यह दुनिया सिर्फ वकील बनाते, तो बड़ा अच्छा होता, लेकिन यह दुनिया बनती है, मैं मानता हूं, कुछ वकीलों के हाथों, कुछ सिपाहियों के हाथों, लेकिन ज्यादातर ऐसे हाथों जो आधे वकील और आधे सिपाही होते हैं।

जिनीवा के राष्ट्र संघ के बारे में मेरा जो थोड़ा सा तजर्बा है, मैं ऊ थांट साहब को भी और अपनी सरकार के साथियों को भी बताना चाहता हूं। उस वक्त जिनीवा में राष्ट्र संघ था, जैसे कि आज न्यूयार्क में संयुक्त राष्ट्र है। नाम बदल गए हैं। चागला साहब को पहले वाले का पता नहीं है मैंने पहले वाले को आंखों से भी देखा और कानों से भी सुना। उस वक्त मैंने एक बात नोट की कि जब उसकी लम्बी-लम्बी तारीफ होती थीं, उस वक्त भी उसमें एक रोग लगा हुआ था। और वही रोग मैं आज न्यूयार्क की सुरक्षा परिषद में भी देख रहा हूं। और वह बिल्कुल साफ रोग है कि अमरीका वियतनाम में क्या करता है, उस पर यह सुरक्षा परिषद प्रस्ताव पास नहीं करती और न कर सकती है, रूस हंगरी में क्या करता है, उस पर यह सुरक्षा परिषद प्रस्ताव पास नहीं करती और नही कर सकती है। वह प्रस्ताव पास करती है, सिर्फ उन देशों के मामलों में, जो दुर्बल, हैं, असहाय हैं, कमजोर हैं, जिनकी पल्टनी ताकत इतनी नहीं है कि वे अपने मन-चाहे रास्ते पर जा सके।

ये बातें मैंने अपने विद्यार्थी जमाने में ही जिनीवा में अपनी आंखों से देखीं और कानों से सुनीं। इस से थोड़ा सा सबक यह सरकार भी सीख ले और ऊ थांट साहब भी सीख लें, तो दुनिया के लिए अच्छा होगा, क्योंकि मैं नहीं चाहता कि यह सुरक्षा परिषद खत्म हो जाये। मेरी इच्छा है कि यह बनी रहे और दुनिया का कुछ फायदा करे। लेकिन यह तभी हो सकता है, जब कोई चमत्कार, यानी एक बुनियादी तब्दीली, इसमें आए। नहीं तो क्या होगा कि यह सुरक्षा परिषद दो देशों के मामलों को छोड़ कर—और यह साफ है कि वे दो देश कौन से हैं: रूस और अमरीका, क्योंकि याद रखें कि अगले तीस चालीस बरसों में खाली यही दो देश हैं, कोई तीसरा देश नहीं है—जब कभी किसी देश के मामले को उठायेगी तो वह न्याय या नई दुनिया के बनाने के आधार पर अपने प्रस्ताव पास नहीं करेगी—वह करेगी समझौते और लेन-देन के आधार पर। जो प्रस्ताव अभी पास हुआ है या समझौता हुआ है वह लेन-देन वाला है और न्याय वाला नई दुनिया को बनाने वाला नहीं है। लेन-देन का है। उसमें क्या है नम्बर। पांच अगस्त तक की जगहों पर वापिस जाओ। नम्बर दो काश्मीर पर बातचीत करो। प्रस्ताव में ये दो चीजें बिल्कुल साफ हैं। मैं अभी तो नहीं कहना चाहता कि ये दोनों चीजें लाज़िमी तौर से आपके लिए

खतरनाक होंगी। लेकिन अगर आप 31 मिनट वाले रहे तो खतरनाक होंगी और अगर चार मिनट वाले रहेंगे तो जरूरी नहीं है अन्तिम रूप से खतरनाक साबित हों। लेकिन याद रखना ये दो चीजें जो उस प्रस्ताव में हैं हर हालत में खतरनाक होने वाली हैं। दुनिया के लिए भी और भारत और पाकिस्तान के रिश्तों के लिए भी। क्योंकि जो आपने काश्मीर पर बातचीत करने की राह को उस प्रस्ताव में रखा है तो साफ बात हो जाती है कि बातचीत करोगे। बातचीत अगर पाकिस्तान के हक में जाती है—जाएगी नहीं क्योंकि मैं नहीं समझता हूं कि कोई सरकार हिन्दुस्तान में आत्महत्या करने के लिए तैयार होगी—वैसे बहुत से लोग होते हैं क्या पता है क्या ठिकाना है कि कब कोई क्या कर बैठे—लेकिन अगर वह बातचीत ऐसे ही रह जाती है लटकी हुई तो नतीजा क्या होगा? कोई मामला हल नहीं होगा। भारत और पाकिस्तान के रिश्ते बिगड़ते चले जाते हैं कड़वाहट बढ़ती चली जाती है। फिर वकालत कोई काम नहीं करेगी।

इस वास्ते मेहरबानी करके ऊथांट साहब को मेरी तरफ से आप यह बात बता देना कि अगर सुरक्षा परिषद को बचाना चाहते हो तो पुराने जेनेवा के राष्ट्र संघ के रास्ते से उसको हटाओ। वर्ना उन दो बड़े देशों के मामलों में तो यह कुछ कर नहीं पाएगा और जब कभी वे दोनों देश फैसला कर लेंगे तो यह टकरा कर चकनाचूर हो जाएगा और बाकी जितने देश हैं उनके मामलों में दखल देता रहेगा न्याय के लिए नहीं बल्कि सौदे-बाजी के लिए लेनदेन के लिए। यह बुनियादी बात है।

अब सवाल उठता है कि अंग्रेजों ने क्या किया। बचपन से ही जो मेरे विचार हैं वे मैं आपको बतलाना चाहता हूं। हो सकता है कि कुछ मुझ पर गांधी जी का असर पड़ा हो कुछ अपने जमाने का असर पड़ा हो लेकिन चागला साहब आप उस से थोड़ा बहुत अछूते हैं इसलिए मैं बता देता हूं। मुझ जैसे आदमी ने शायद ही दुनिया में किसी भी सरकार को उतना ज्यादा गन्दा समझा हो जितना अंग्रेजी सरकार को समझा है। चाहे जो भी सरकार हो चाहे जिस पार्टी की हो अंग्रेज सरकार से ज्यादा गन्दी सरकार आप संसार में नहीं देखेंगे।

इसके साथ-साथ मैं यह भी कह देना चाहता हूं कि अंग्रेज जनता से ज्यादा अच्छी सियासी जनता भी मैंने दुनिया में नहीं देखी है। सवाल है कुछ नतीजा निकालो। सरकार से काम कराना है। और यह सरकार है कैसी? मुझे शक है कि इस सरकार ने जिन्ना साहब के साथ चाहे लिखा और चाहे बेलिखा एक समझौता किया। उससे कहा मत डरना बच्चे जब कभी खतरा आएगा तो हम रहेंगे। हम तुम्हें बनवाते हैं और तुम्हें बचायेंगे। इसका मैं आपको एक सबूत भी दे देना चाहता हूं। नाम तो मैं नहीं बताऊंगा। लेकिन एक बहुत बड़े अफगान नेता ने जिन्ना साहब से बातचीत की थी उन दिनों जब वह पाकिस्तान बनवाने की कोशिश कर रहे थे कि जिन्ना साहब आप हक मांग रहे हैं आत्मनिर्णय का तो

थोड़ा सा पख्तूनों को भी आत्मनिर्णय का हक दीजिये। जिन्ना साहब ने कहा कि मांगो तुम भी। उन्होंने कहा कि हम मांगेंगे तो अंग्रेज लोगों के हथियार तो अभी हैं सरहदों पर और हम पिट रहे हैं और अगर ये कहेंगे तो पीटपाट कर हमें किनारे कर देंगे। तब जिन्ना साहब ने जवाब दिया कि तुम समझते हो कि पाकिस्तान बन जाने के बाद अंग्रेजों के हथियार नहीं रहेंगे। वे हथियार तो तब भी रहेंगे और तब भी रक्षा करेंगे और तब भी तुम्हें पख्तूनिस्तान नहीं मिल पाएगा। यह बातचीत जिन्ना साहब की एक बहुत बड़े अफगान नेता के साथ हुई थी जिससे मुझको विश्वास होता है कि अंग्रेजों का इन पाकिस्तानियों के साथ कोई लिखा या बेलिखा समझौता हुआ है। आपके साथ भी हुआ था लेकिन उसका मैं जिक्र नहीं करूंगा। वह अलग बात है हालांकि बहुत खतरनाक समझौते हुए हैं। लेकिन उसको अभी आप छोड़ दीजिये।

एक चीज का आपको फैसला करना होगा। अभी तक जिस तरह से हिन्दुस्तान की विदेश नीति का विभाग, अगर दिमाग है तो, और शरीर किधर रहे हैं। जीभ यानी वचन वह तो रूसी रही है पिछले आठ दस बरसों में लेकिन शरीर रहा है अंग्रेजी। व्यापार अंग्रेजों के साथ मशीनें अंग्रेजों की जहाज आदि सब अंग्रेजों के, सामान सब अंग्रेजों के यहां से खरीदते रहे हैं और शरीर सब अंग्रज़ों के साथ रहा है। और दिमाग, अगर दिमाम है, तो वह रूसियों के साथ रहा है। यह चल नहीं पाएगा। कुछ थोड़ा सा सामंजस्य लाओ। जिधर दिमाग रखते हैं उधर शरीर को भी थोड़ा बहुत रखो। यह करोगे तो मामला ठीक हो जाएगा।

श्री भागवत झा आजाद की बात को तो मैं भूल ही गया। वह बहुत अच्छा बोले हैं। मुझे बहुत खुशी है कि वह भूल गए कि किस पार्टी में वह हैं। बहुत अच्छी बात उन्होंने कही आदमी को भूल जाना चाहिए जब वह सच्ची बात कहे सच्चाई के रास्ते पर चले। उस समय उसको तैयार रहना चाहिये कि अपनी पार्टी को ठुकरा कर खत्म कर दे। मैं चाहता हूं कि अंग्रेजों से रिश्ते को थोड़ा ढीला करो अगर खत्म न कर पाओ। मैं तो यही राय दूंगा कि खत्म करो लेकिन अगर खत्म न कर पाओ तो थोड़ा ढीला करो।

उसी तरह से फ्रांसीसी दिगाल साहब के बारे में जान लेना कि उनकी कोशिश क्या है, जरूरी है। उनकी कोशिश यह है कि एक रसिक कौम को पलटनी कौम बना डालें। उस कोशिश में वे छटपटा रहे हैं और ऐसी कार्रवाइयां कर रहे हैं कि जिसका नतीजा कुछ थोड़ा बहुत तो शायद आपने देखा होगा। आगे जाकर और कुछ भुगतना पड़ेगा। एक रसिक कौम को पलटनी कौम बनाने की वह कोशिश कर रहे हैं, रह गये आपके अफ्रेशियाई दोस्त। आपकी विदेश नीति की धज्जियां उड़ चुकी हैं। एक मलेशिया के आप जरूर शुक्रगुजार हैं। उसने आपकी मदद की और वह भी किन्हीं कारणों से। जार्डन को आप समझ नहीं पाते हैं। उसका सीधा सा सबब है। अरब राष्ट्रों को आपने ढूंढा। आप

देखें कि जार्डन को किस ने बनाया किसने रखा और कौन चला रहा है। अंग्रेज महाप्रभु ही तो चलाते हैं और चला रहे हैं।

एक बुनियादी बात मैं कहूंगा। आपने एक बहुत बढ़िया बात कही कि इस साल आपका तजुर्बा कुछ अच्छा रहा। पिछले साल उतना अच्छा नहीं था। मालूम है क्या फर्क है? इस साल कुछ परिवर्तन जो हुआ है। इस साल हिन्दुस्तान ने अपने सिपाहियों को लड़ाई इधर उधर बढ़ कर भी करने दी है। यह फर्क हुआ है इसलिये मैं आपकी सरकार से निवेदन करूंगा कि आप अपनी विदेश नीति को बुनियादी तौर से बदलें। एक तरफ तो आप अपने पड़ोसियों की तरफ ध्यान दें। अफगानिस्तान है, नेपाल है, मलेशिया है और अगर कोई और ऐसे देश मिल सकते हैं जो बिल्कुल पड़ोसी हों और वे भी दोस्त बन सकते हैं, थाई देश भी हो सकता है, उनको आप दोस्त बनाने की कोशिश करें। थोड़ा रूस और अमरीका भी हैं दोनों किसी हद तक—मैं शायद ज्यादा कह जाऊंगा,—मित्र रहे हैं। दोनों मित्र बनाये जा सकते हैं। जो कुछ कमियां आप की नीति की रही हैं, उनको आप दूर करने की कोशिश करें। ऐसे दायरे हैं। एक दायरा तो यही है भारत और पाकिस्तान का और दूसरा दायरा दुनिया की गरीबी का है। इन दो दायरों को आप अपनी विदेश नीति का मुख्य उद्देश्य बना कर कसौटी पर कसिये। रूस और अमरीका, एक या दोनों, जो हम को इन दोनों दायरों में मदद देता है वह हमारा बढ़िया दोस्त रहेगा। किसी तरह की सिद्धान्तहीनता वगैरह के चक्कर में फंस कर, मंत्र वगैरह के चक्कर में फंस कर आप अपनी नीति को खराब न करें।

सवाल उठता है कि मिला क्या? इन सब चीजों में एक चीज तो यह मिली कि पिछले अठारह बरस का चक्कर खत्म हुआ। हम वहीं लड़ते थे जहां दुश्मन आकर हम से लड़ता था। अब यह शुरूआत हो गई है कि दुश्मन की ताकत को खत्म करने के लिए हम वहां भी जाएंगे जहां हम मजबूत पड़ेंगें और उसको खत्म करने की कोशिश करेंगे। यह बात मिली है। और यह बात मैं हिन्दुस्तान की जनता को खास तौर पर बतलाना चाहता हूं कि सरकार भी मजबूरी में इस बात को पकड़े रहेगी, सरकार पर मुझे भरोसा नहीं, मजबूरी पर भरोसा है, मजबूरी में पकड़ रखेगी, कि दुश्मन से सिर्फ़ उस जमीन पर मत लड़ो जिस पर आकर वह तुम से लड़ता है, बल्कि जाओ, उसकी जमीन पर भी जाओ।

इसके साथ शायद एक बात और मिली है कि पाकिस्तान का पलटनी घमंड....

* * * * * *

व्यवधान*

* * * * * *

---

*एक माननीय सदस्यः चूर हो गया है।

चूर शब्द का इस्तेमाल तो नहीं कर सकता, हालांकि चाहता था कि कर सकता, लेकिन कम से कम उसे धक्का लगा है। नरम पड़ा है ऐसा लगता है। लेकिन किस हद तक नरम पड़ा है, नहीं जानता। अगर इस हद तक नरम पड़ा है, नहीं जानता। अगर इस हद तक नरम पड़ा है कि पाकिस्तान के मौजूदा नेता लोग या तो अपने पुराने ख्यालों को बदलते हैं या फिर उनको हटा कर कोई दूसरा बढ़िया नेतृत्व पाकिस्तान में आये, तब उसका बड़ा अच्छा नतीजा होगा, और तब मुझ जैसे लोगों की बात यहां और वहां थोड़ी बहुत सुनी जायेगी। यह दो चीजें तो मिलीं, और क्या नहीं मिला इस को भी याद रखना।

इस लड़ाई में एक ही वाक्य निकला जो याद रक्खा जा सकता है और याद रखा जायेगा, शायद एक वाक्य के हिसाब से, और वह है कि हिन्दुस्तान एक युद्धबन्दी से दूसरी युद्धबन्दी में हमेशा सफर नहीं करता रहेगा यह बढ़िया और ऊंचा वाक्य था। लेकिन मुझे अफसोस होता है कहते हुए कि यह लफ्फाजी निकला। हम एक युद्धबन्दी से दूसरी युद्धबन्दी तक सफर करते चले जा रहे हैं।

एक दूसरी चीज जो नहीं मिली, ऐसा लगता है सुरक्षा परिषद के प्रस्ताव को देखते हुए वह यह कि प्रधान मंत्री साहब ने इस उड़ी पूंछ के झोल को खत्म करने के लिये वचन दे रखा है। खैर, इसके बारे में मैं कुछ नहीं कहता हूं। खाली इतना याद दिलाता हूं कि देखो, वचन है तुम्हारा। मेरा नहीं, मेरा तो उससे बहुत आगे जाता है।

तीसरी चीज जो उनको नहीं मिली वह यह कि चाहे हजार वकालत करो कहीं भी, चाहे ताशकन्द में या कहीं और, पाकिस्तान के साथ बैठ कर बातचीत करनी पड़ेगी और यह बहुत खतरनाक होगा। मैं मान लेता हूं कि वह बहुत चालाक रहेंगे, मीठे आदमी हैं, चालाक रहेंगे, लेकिन बातचीत करने में बड़े खतरनाक नतीजे हुआ करते हैं, क्योंकि अगर पाकिस्तान असन्तुष्ट हुआ तो बिल्कुल साफ बात है। मैं समझता हूं कि इस वक्त मैं कुछ इस ढंग से बोल रहा हूं कि शायद सरकार के लिये भी फायदेमन्द बातें हों। तो नतीजा बड़ा खतरनाक हो सकता है। चाहे बातचीत किधर भी जाये, ऊंट किस करवट बैठे, चाहे ऊंट हिन्दुस्तान के करवट बैठे—हिन्दुस्तान नहीं, माफ कीजिएगा—भारत के करवट बैठे या पाकिस्तान के करवट बैठे, दोनों हालतों में बात खतरनाक है। क्योंकि अगर पाकिस्तान का नेतृत्व नहीं बदला, पाकिस्तान का पलटनी घमंड, जिसको मैं समझता हूं कि धक्का लगा है, चूर नहीं हुआ, तो पाकिस्तान फिर से हमला करने की कोशिश करेगा। और यह बात कही जा चुकी है, भुट्टो साहब वहां फरमा चुके हैं—युद्धबन्दी नहीं हो पाई थी, जिस समय युद्ध जारी था, उन्होंने फतवा दे डाला। इस बात को शास्त्री जी को याद रखना है जब वह अपनी बात कहेंगे कि फिर से हमला होने की बातचीत चल पड़ी है।

इस सम्बन्ध में बहुत धीरज के साथ मुझको सुनना। गुस्सा मत होना, आप लोगों के

भले की बात कह रहा हूं, और वह यह है कि लाहौर और स्यालकोट के इलाकों को ज्यादां से ज्यादा चार, पांच या छः दिन में भारत को ले लेना चाहिये था। लेकिन वह ले नहीं पाया। इसके क्या कारण थे। हो सकता है कि पलटनी अयोग्यता रही हो। इस पर मुझे इस वक्त कुछ नहीं कहना है।

* * * * * *

व्यवधान*

* * * * * *

देखो, रघुनाथ सिंह साहब, कुछ जानो तब बोलो। मैं "हो सकता है," कह रहा हूं। इसलिये इस पर मुझे कुछ नहीं कहना है। लेकिन यह भी हो सकता है कि विजय चौक के दिल जरा नाजुक थे और उन्हें डर लगा कि पहले धक्के में जब हम नहीं ले पाये तो अगर दूसरा या तीसरा धक्का देंगे तो आदमी और सामान का इतना नुकसान हो जायेगा कि फिर हम चीन का मुकाबला नहीं कर पायेंगे। ऐसा हो तो मैं इस सदन में बड़े जोर से कह देना चाहता हूं कि कोई भी पलटनी या विदेश नीति इस तरह से नहीं चला करती है। जब एक मकसद बना लेते हो तो उस मकसद को हासिल करने के लिये अपने आदमी और अपना सामान डाल दो और उस को हासिल कर लो। मकसद होना चाहिये था लाहौर और स्यालकोट वाला क्योंकि अगर आज लाहौर और स्यालकोट भारतीय पलटनों के हाथों में होते और फिर वहां से हटना पड़ता, मान लो युद्ध विराम के बाद हट कर आते, तब जरा नाक कुछ ऊंची होती। तब बात समझ में आती कि पाकिस्तान का पलटनी घमंड टूटा है। चीन वाली बात भारत सरकार को हमेशा के लिये अपने दिमाग से निकाल देनी चाहिये। अगर पाकिस्तान के मामले को हल करना है तो चीन बीच में टपक पड़ेगा, इस डर और संकोच को दिमाग से बिल्कुल निकाल देना चाहिये। चीन आयेगा तब देखेंगे उससे भी निपट लेंगे।

जो लड़ाई हुई उस में दो शब्दों का बड़ा इस्तेमाल हुआ, और होना चाहिये। एक अंग्रेजी शब्द ने हमारा बड़ा नुक्सान किया है और वह है सेकुलरिज्म। माफ करना सेकुलरिज्म का मतलब बहुत कम लोग जानते हैं। धर्म निरपेक्ष जिसे कहते हैं वह तो उसका एक छोटा सा अंग है। सेकुलरिज्म का मतलब है लोकवादी। जिस तरह से परलोक-वादी उसी तरह से लोकवादी। अगर वह करने जाते हो तो हिन्दू, मुसलमान के मामले में पहले साफ फैसला कर डालो। उस एकता को खत्म करो जो पिछले 18 वर्षों से चली आ रही है कि दोनों अलग रहते हुए एक हो जायें। मैं चाहता हूं कि दोनों के

*श्री रघुनाथ सिंह: (वाराणसी) नहीं नहीं।

अलगाव को घटाते हुए दोनों को एक करो, और उस रास्ते पर चलो तब जा कर पाकिस्तानी जनता और पाकिस्तानी पलटन में बगावत कर सकते हो।....

*** ***

तो इस तरह से एक चीज याद रखना कि चार करोड़ 99 लाख मुसलमानों को अब पकड़ने की कोशिश करना और 5 हजार खानदानी मुसलमानों को अपने से थोड़ा दूर रखना। यह सरकार की बड़ी भारी गलती रही है, न सिर्फ मुसलमानों के मामले में बल्कि हिन्दुओं के और सभी के मामले में भी, कि खानदानी लोगों को पकड़ कर दुनिया को बदलना चाहते हैं। अब ज्यादातार जनता को पकड़ कर दुनिया को बदलने की कोशिश करो।

इसी तरह से पाकिस्तान के मामले में यह याद रखना कि खान अब्दुल गफ्फार खां, सरहदी गांधी, जो पन्द्रह सोलह सालों से जेल में रहे, और खान अब्दुल समद खां, बलूची गांधी, ये मामूली आदमी नहीं हैं। मैं समझता हूं कि वह अपने यहां की आधी से ज्यादा जनता की नुमाइन्दगी करते हैं। वह भी जेल में रहे। फिर मैं ने एक खबर सुनी है, शायद आप लोगों को न मालूम हो कि खिजर हयात खां पंजाब के पिछले आठ या दस दिनों से नजरबन्दी या जेल में हैं।....

* * * * * *

व्यवधान*

* * * * * *

हां, वही खिजर हयात खां तिवाना। जरा अपनी सरकार को यह सुना दिया करो। चागला साहब तो यह बात याद रखना कि अगली दफे जब पाकिस्तान हमला करने आये तो मेरी जो यह राय कि पाकिस्तान छूते ही ढह जायेगा इस बुनियाद पर है कि यह पठान, यह बलूची, यह बंगाली, यह सारा भानुमती का पिटारा जोड़ कर वहां रखा गया है बशर्ते कि आप लोकशाही और लोकवाद इन दो चीजों को पकड़ कर रखें।

संसार में दो बड़े रोग हैं और हिन्दुस्तान में ये रोग सबसे ज्यादा हैं। ये रोग हैं गैर बराबरी और अलगाव और उनको दूर करने की एक दवाई तो है समता की और दूसरी दवाई है सामीप्य की। इन दोनों का सारी जनता के बीच इस्तेमाल होना चाहिए।

मेरा कहना है कि एक तरफ तो पाकिस्तान और चीन के सम्बन्ध में अपनी नीति सुधारो और दूसरी तरफ अन्न के सवाल को हल करो। लोगों को अनाज चाहिए। और यह याद

---

*कुछ माननीय सदस्य: तिवाना।

रखना कि जब मुझ जैसा आदमी भीड़ से कहता है कि देखो भूखों मत मरना, मरने के पहले मंत्रियों और अफसरों के घरों में चले जाना और उन्हें उस वक्त तक मत खाने देना जब तक कि तुम न खा पाओ, तो इस को धमकी मत समझना। यह हिन्दुस्तान और दुनिया के स्वास्थ्य की आवाज है। इसी तरह से जनतंत्र के बारे में मैं बता दूं कि जनतंत्र की खाल है, यह तो ऊपरी चमड़ी है, केवल इसको ओढ़ लेने से काम नहीं चलेगा। इसके अन्दर जनतंत्र की आत्मा होनी चाहिए।

और उपाध्यक्ष महोदय, मेरा आप से एक नम्र निवेदन है कि इस दफा तो हुआ, लेकिन अगली दफा ऐसा नहीं होना चाहिए कि बीस तीस दिन से लड़ाई चलती रही लेकिन उस लड़ाई के बारे में देश की लोक सभा में चर्चा नहीं हुई एकतंत्र की आत्मा है और जनतंत्र की खाल है। इस चीज को कुछ थोड़ा सा उन अंग्रेजों से, जिनको मैं सरकारी पैमाने पर बुरा कहता हूं, हम को सीख लेना चाहिए।

और रही मेरी अपनी बात, सो हम को तो सफर मना है। हम ने पहाड़ तोड़ कर सड़क बना दी। लेकिन अब आप हम को उस पर चलने भी नहीं देते, औरों को पहले चलने देते हो। दुनिया इसको देख रही है और समझ रही है, आप भी समझो और इस पर ध्यान दो।

अन्त में मैं फिर कहना चाहता हूं कि इस बात पर ध्यान दो कि जनतंत्र और लोकवाद के इन दो सिद्धान्तों को पकड़ कर भारत को मजबूत बनाते चले जाओ, और मुझे पक्का विश्वास है कि चाहे लड़ाई से हो या रजामंदी से हो, हम अपने और पाकिस्तान के बीच में ऐसी स्थिति पैदा कर देंगे कि पांच, दस या दो बरस में पाकिस्तान खत्म हो जायेगा और भारत भी खत्म हो जायेगा और फिर से हिन्दुस्तान बनेगा।

37

चीन व पाकिस्तान द्वारा भारतीय भूमि पर अवैध कब्जा तथा शिक्षा मंत्री के भारत के क्षेत्रफल संबंधी वक्तव्य पर चर्चा*

अध्यक्ष महोदय, भारत के क्षेत्रफल की बहस असल में भारत माता की बहस है और इस पर यह माननीय सदन कोई डेढ़ दो वर्ष से लगा हुआ है। असल में यह राष्ट्रीयता का मामला है और मुझसे अभी दो दिन पहले किसी ने सवाल पूछा कि राष्ट्रीयता अपने देश में कम हो रही है या बढ़ रही है? एकदम मुझको यह जवाब सूझा जो मैं समझता हूं कि सही है कि अगर अंदरूनी ढंग से देखा जाये तो राष्ट्रीयता घट रही है और प्रादेशिकता बढ़ रही है। लेकिन अगर परदेश के प्रति देखा जाय खास तौर से चीन के प्रति देखा जाये तो राष्ट्रीयता बढ़ रही है कुछ वर्गों को छोड़ कर के उनके बारे में तो मैं ज्यादा जिम्मेदारी नहीं ले सकता। और इसी तरह से पाकिस्तान के बारे में कुछ मेरी भी और मैं समझता हूं बहुत से लोगों की मिश्रित भावना है। साधारण तौर पर हमारी इच्छा है कि यदि ऐसी स्थिति आ जाये कि जब भारत और पाकिस्तान किसी संघ में जुड़ें और फिर से हिन्दुस्तान एक हो लेकिन अगर पाकिस्तान का आक्रमण हो जाता है तो फिर उसके प्रति भी वही राष्ट्रीयता जग जाती है जो चीन के प्रति। हां, एक बात अलबत्ता सही है कि अगर कभी विश्व लोक सभा बन गई—लोक-सभा लोगों के चुनाव के द्वारा लोक सभा; मैं आज के संयुक्त राष्ट्र को नहीं कह रहा हूं क्योंकि वह तो एक सरकारों की चुनी हुई संस्था है। विश्व लोक सभा बन गई और अगर उसने कभी ऐसे फैसले किये जो हमारे खिलाफ जाते हों, या किसी और के खिलाफ तो उसका कुछ प्रचार चाहे हो लेकिन मैं समझता हूं कि धीरे-धीरे जनता उसे मानने लग जायेगी। तो अब संयुक्त राष्ट्र की तरफ जब आप देखें तो एक मजेदार चीज मालूम होती है कि 1950-52 से लेकर 1960 तक यानी करीब करीब दस वर्ष तक हमारा क्षेत्रफल 32 लाख किलोमीटर दिखाया जाता रहा है कभी 32 लाख 60 हजार कभी 32 लाख 40 हजार। और सन 1961 में 30 लाख से कुछ ज्यादा एक दम दिखाया गया। मंत्री महोदय कहेंगे कि उस वक्त उन्होंने जम्मू और

*लोक सभा वाद विवाद, 8 अगस्त, 1967

काश्मीर का हिस्सा निकाल दिया। यह बात अधूरी है। पूरा सत्य नहीं है। मैं आपको पूरा सत्य बताता हूं। सन 1960 में जनगणना हुई थी और उस की गिनती की जा रही थी। जिस वक्त संयुक्त राष्ट्र को रपट भेजने का समय आया उस वक्त उस की गिनती पूरी नहीं हो पायी थी और यह ऐसी निकम्मी और नालायक सरकार है कि इन्होंने अधूरी गिनती को संयुक्त राष्ट्र के पास भेज दिया। यह कहते हैं कि हम ने उस पर एक नोट लगा दिया था कि देखो अभी हमारी गिनती पूरी नहीं हो पाई है हम गिनती पूरी कर लेंगे तब हमको पूरा पता चल जायेगा। तब हम भेजेंगे। वह नोट भेजा या नहीं भेजा मैं नहीं जानता। आप उन से उस वक्त की फाइल मंगा कर देख सकते हैं। लेकिन इतना बिल्कुल निश्चित है कि 1961 में उन्होंने कम आंकड़े भेजे और तब से संयुक्त राष्ट्र परिषद् ने वह आंकड़े कम दिखाने शुरु कर दिये जो मेरे हिसाब से करीब 5 लाख एकड़ पड़ता है। तो यह तो मैंने 61 वाली बात बतायी। और मैं चाहता हूं कि आप मंत्री महोदय से इसका निश्चित रूप से उत्तर दिलवाइये कि उन्होंने क्यों इतना निकम्मा काम किया कि अधूरी गणना के आंकड़ों को संयुक्त राष्ट्र के पास भेज दिया। फिर एक और तर्क यहां दिया गया है कि संयुक्त राष्ट्र कुछ भी कहे इस से हमें क्या मतलब? हमारी तो अपनी जमीन है जितनी हम मानते हैं। तो कोई यह रोशनारा क्लब है या जिमखाना क्लब है कि जो मन में आये कहा जाये और किया? यह तो एक दंड संस्था है। हो सकता है कि सार्वभौम न हो अभी लेकिन दंड संस्था के सदस्य होने के नाते हमको हमेशा अपनी बातों के बारे में बड़ा खबरदार होना चाहिए और जो बयान मंत्री महोदय ने पिछली बार रखा साल भर पहले तो उसमें एक विचित्र बात आई है। उन्होंने कहा है कि और देशों से भी ऐसी गलती होती है। यह बड़ा भ्रामक तर्क है। कई देशों के आंकड़े यहां पर हैं वक्त नहीं है इसलिए नहीं बता पाऊंगा। खाली आस्ट्रेलिया का अंक इन्होंने बताया। उसका कारण है कि आस्ट्रेलिया के कुछ ग्रीक छोड़ दिए गये थे तो वह कम बताए थे। अमेरिका के आंकड़े बिलकुल दस वर्ष तक स्थिर रहते हैं फिर एक बार जाकर 1958 में एकदम बढ़ते हैं दस एक लाख के करीब क्योंकि हवाई उसमें शामिल हो जाता है। उसी तरह से रूस के आंकड़े स्थिर रहते हैं। यह सब अंक स्थिर हैं और ऐसा भ्रामक धोखे का तर्क मंत्री महोदय को नहीं देना चाहिए और माननीय सदन को भी इस बारे में बड़ा सचेत रहना चाहिए कि मंत्री लोग किस तरह से अपनी बात को सही साबित करने के लिए इधर उधर की अनर्गल चीजें कह दिया करते हैं।

एक चीज मुझको बड़ी अजीब लगी है जो 31 जुलाई को इसी संबंध में मंत्री महोदय

ने बयान रखा है उस में आज़ाद काशमीर का कहीं जिक्र नहीं है। लांगजू का जिक्र है और उस के अलावा लद्दाख का जिक्र है। इन दोनों में जरा फर्क करिएगा। लांगजू के लिए कहा है कि वह ऐसा इलाका है जिस के बारे में भारत और चीन दोनों को संदेह है और विवादास्पद जगह है। लेकिन लद्दाख के मामले में वह जो अकसाई चीन वाला इलाका है उस के बारे में दोनों को विवाद नहीं है। चीन कहता है कि हमारा है, भारत कहता है कि उसका है। तो लद्दाख का यहां जिक्र किया गया, उस इलाके का भी जिस के बारे में विवाद है और उस इलाके का भी जिस के बारे में विवाद नहीं है। लेकिन आज़ाद काश्मीर का जिक्र नहीं है। बड़ी विचित्र बात मालूम होती है। अन्दर अन्दर कुछ हो रहा है क्या अध्यक्ष महोदय? यह 31 जुलाई का है यह बयान। और होता हो तो मुझे उस में ऐतराज नहीं होगा। यह मैं आप से कह दूं कि अगर भारत पाक का संघ बनता है, हिन्दुस्तान बनता है, तो मैं बहुत ताकत के साथ कहना चाहता हूं कि काश्मीर कहां जाता है कहां रहता है मुझ को इस मुतलक चिन्ता नहीं है। लेकिन जब तक वह संघ नहीं बनता है, तब तक आज़ाद काश्मीर के इलाके की गिनती इस में नहीं की गई यह बहुत बड़ा घिनौना काम है यह मैं जरूर कह देना चाहता हूं और उसी तरह से जब से इस में उन्होंने और कई एक जगह का जिक्र किया है लांगजू इस सदन में कई बार कहा गया कि वह तो एक दो मील का इलाका है।

मुझे वहां के अफसरों ने जब मैं दो तीन बार गिरफ्तार होने के बाद किसी तरह से पहुंचा था, लांगजू तो नहीं उस के आस पास, बताया कि वह इलाका कम से कम दो तीन सौ मील वर्ग का है। उसी तरह से बर्मा संधि का जिक्र नहीं है। उस में कितना इलाका हमारा गया, दो हजार, तीन हजार, चार हजार या कितने वर्गमील गया यह मैं पक्का नहीं जानता लेकिन गया। अच्छा इसी तरह बाराहोती का यहां जिक्र है। दो बाराहोती है, छोटी बाराहोती और बड़ी बाराहोती। उस में कौन सा है? और मंत्री महोदय ने सिक्किम के बारे में जिक्र जिस ढंग से कहा है मुझे तो शक होता है कि शायद सिक्किम के आंकड़े पहले गिने जाते थे; अब नहीं गिने जाते हैं। बहुत संदेह की चीज़ है। इतना ही नहीं आप समझ कर रखिए अध्यक्ष महोदय, कि सर्वे आफ इंडिया के मुताबिक मंत्री महोदय कहेंगे कि खाली दो हज़ार मील कम हुआ, मेरे हिसाब से दस पन्द्रह हज़ार वर्गमील कम हुआ क्योंकि यह एक बात मान लेते हैं कि गोआ और पुन्दूचेरी भारत में आने के पहले से ही उन्होंने गोआ और पुन्दूचेरी के क्षेत्रफल को भारत में गिनना शुरु कर दिया था। कैसे उस बात का विश्वास करें? आने के पहले ही से गिनना शुरु कर दिया था? जब आये तब गिनेंगे न? क्षेत्रफल तो बढ़ाना चाहिये। तो उस बढ़ाव को कम दिखाने के लिए यह मान लेते हैं कि पहले से गिनने लगे थे। असल में कोई चीज़ बड़ी जबर्दस्त हुई है। वह ऐसे तर्क देते हैं कि पहले अंग्रेज अच्छी तरह से देखभाल नहीं करते थे। अब हवाई

जहाज से सर्वे करते हैं। मैं समझता हूं कि हवाई जहाज से गड्ढों और पहाड़ों का, जमीन की सर्वांगीणता का परिचय मिल सकता है लेकिन हवाई जहाज से जमीन की नाप—यह सिर्फ इन्हीं मंत्रियों के दिमाग की उपज है और तो कहीं ऐसा नहीं होता कि हवाई जहाज से यह होता हो। उस के अलावा कई दफे यह कह दिया करते हैं कि हम अब ज्यादा वैज्ञानिक तरीके इस्तेमाल करने लग गए हैं। तो ज्यादा वैज्ञानिक तरीके के मामले में मैं आपसे एक छोटा सा जिक्र करूंगा कि मैंने सर्वेयर जनरल को एक खत लिखा था और आप जानते हो मैं अंग्रेजी का इस्तेमाल नहीं करता लेकिन यह मामला ऐसा था और क्योंकि खत लिखने का मामला था, फिर भी अपने सिद्धांतों को तोड़ कर के मैंने सर्वेयर जनरल को खत लिखा 2 जुलाई 1966 को। यह प्रश्न यहां पर आ चुका है मंत्री महोदय को मालूम है। लेकिन अभी तक मुझे कोई संतोषजनक उत्तर नहीं मिला है और अब मैं आप से संतोष चाहता हूं। जब किसी नौकरशाही को संसद का कोई सदस्य, अपने निजी मामले को छोड़ कर, सार्वजनिक मामलों के बारे में खत लिखे, तो उस का कर्तव्य हो जाता है कि वह उस का जवाब दे और अगर जवाब नहीं देता है तो अपना कर्तव्य बिलकुल निभाता नहीं है। अब यह खत मैं आपको देना चाहता हूं और चाहता हूं कि यह खत आप उसको भेजें और उस से जवाब मांगें। मैं इसे पढ़कर सुनाये देता हूं:

"I will thank you to answer my questions as fully as you can and at your earliest convenience.

* * * * * *

व्यवधान* (क)

* * * * * *

1. What is the total area of India at present or at the last tabulation.

2. What was the total area of India on 15th August, 1947. This must include areas which acceded to and were joined to India later. It must not exclude areas which have been usurped and are now in unlawful possession of foreigners.

3. If there is any difference between 1 and 2, how do you account for it?

---

*(क) श्री एम० ए० खां (कासगंज): डा० साहब ने अंग्रेजी में खत लिखा था।
डा० राम लोहिया: मैंने पहले ही कह दिया है, मैं कभी भी सार्वजनिक जगह पर अंग्रेजी का इस्तेमाल नहीं करता। ऐन मौके पर अथवा निजी बातचीत में कर लेता हूं तो वह भी बुरा काम करता हूं।

4. Is the current survey of India 190 years old? No matter how much survey methods have become more scientific, what is the outside margin of rectification of errors? Do better methods mean anything more than change in the scale of mapping for instance, from one inch to four miles earlier to two miles and in some cases of detail less now?

5. What is the area of Goa and other Portuguese possessions in India and Pondichery and other French Possessions and since when are they being counted with the Indian total?

I have written this letter as part of my parliamentary work and will thank you to give me an early answer. Accept my salutations Brigadier."

यह खत मैंने ब्रिगेडियर गम्भीर सिंह को लिखा था 2 जुलाई, 1966 को, उन का जवाब मुझको नहीं आया। अब मैं आपके दरबार में आया हूं और मैं चाहता हूं कि यह खत आप अपनी तरफ से उनको भेजें ताकि आपको पता चल सके और सदन को पता चल सके कि यह मामला कितना गंभीर है। मंत्रियों के कहने का क्या नतीजा निकलता है, वह मैंने आपको अभी जता दिया है और दरअसल मनसर एक गांव है, मानसरोवर के पास। मैं यह कहना चाहता हूं कि खाली वहां से मालगुजारी मिलती थी ऐसी ही बात नहीं है यहां ये उत्तर दे दिये गये कि क्या है मालगुजारी के कुछ पैसे छूट गये, लेकिन मैं आपको बतलाऊं कि मनसर के लोगों की गणना भारत के लोगों की गणना में होती थी, जनगणना, आदमियों की गणना और वह भी उस गांव की जो मानसरोवर के पास है, 1931 में हुई, शायद 1941 में भी हुई। वहां के अफसरों ने मुझे बताया कि यह मनसर भी हटा दिया गया है, सिक्किम भी हटा दिया गया है, वर्मा सन्धि के कितने हटा दिये गये हैं, मालूम होता है कि इस सरकार ने भारत को एक कुटम्बी सम्पति समझ लिया है, मन में आये जिसको छोड़ दो, दे दो, दे आओ, कोई किसी किस्म की जांच नहीं रह गई है।

अब मुझे डर लग रहा है कि कहीं रूस और अमरीका—इन दोनों में साझा है, एक तो अच्छा साझा कि दुनिया में युद्ध न होने दो—मैं उसको पसन्द करता हूं, दूसरा साझा कि दुनिया में कोई बड़ी क्रान्ति न होने दो—जिसको मैं बिलकुल नापसन्द करता हूं, कहीं कोई चीज बहुत ज्यादा हिल-हिला जाय उसको वे सम्भाल नहीं पायेंगे तो रूस और अमरीका वाले दोनों भाईबन्द हो गये हैं क्रांति को रोकने के लिये और युद्ध को रोकने के लिये ऐसी अवस्था में हो सकता है वह जीते या हारे लेकनि अगले महीने, दो महीनों में एक तरफ पश्चिमी एशिया और दूसरी तरफ भारत—कुछ हो जाय मामले खटक जाय, तलवार खनक चले तलवार के बोलने का ढंग तो आप जानते ही हैं जो कुछ होता है।

तब मैं आपको एक जगह का नाम सुनाता हूं असम के दोस्त लोग आपको बतायेंगे तनसूखिया में डिगबोई जाते हुए एक शहर आता है उसका नाम है माकूम छोटा गांव या एक छोटा कस्बा उसको समझ लीजिये। मैंने वहां पूछा कि भाई माकूम का मतलब क्या होता है? तब लोगों ने मुझे बतलाया कि थाईदेश से आक्रमण करने वाले जब यहां आये थे और जब उन्होंने कुछ जमीनें जीत ली थी, तब अपनी भाषा में कहा आओ, बैठो, आपस में बातचीत करें। तब से उस का नाम माकूम पड़ गया है। यह हमारे यहां की पुरानी परम्परा रही है कि कोई विदेशी आता है, हमला करता है, जमीन जीत लेता है और फिर कहता है आओ माकूम, आओ कोलम्बो प्रस्ताव, आओ समझौता और यहां भी बहुत से नादान लोग हैं जो कि ऐसे मौके पर, जब कि हमारी ज़मीन जीत ली जाती है, तब माकूम करना शुरू कर देते हैं। मैं चाहता हूं कि अगर हमारे ऊपर हमला न हो, जमीन न आये, तो दुनिया में पूरे फाख्ते की तरह रहना चाहिये—वह फाखता, कबूतर, शांतिवाला—लेकिन कोई हमारे ऊपर हमला करे, तो उस वक्त तो हमें बाज़ बनना चाहिये, जब तक बाज़ नहीं बनेंगे तब तक काम नहीं होगा और इस बार तो जब हमला होगा, चाहे वह सितम्बर में हो, अक्तूबर में हो या नवम्बर में हो, जब कभी भी हो, मैं निश्चित नहीं कहता कि कब हो लेकिन अब की बार हमला हुआ तो मुझे ऐसा लगता है कि यह सरकार तो एक हफ्ते भी ठहरने वाली नहीं है, यह तो चली जायेगी, क्योंकि दोनों के मिले हुए हमले पाकिस्तान और चीन के मिले हुए हमले के सामने इसकी पलटनें पीछे हटेंगी। आप जानते हैं पिछली बार के हमले में एक महीने में एक मंत्री की बली हुई थी और अगर चीन बढ़ता चला जाता तो 15 दिन बाद सरकार की बली हो गई होती। तब डेढ़ महीना लगा था, अब की बार जो अवस्था देश की हो गई है उस के अनुसार मैं समझता हूं कि एक हफ्ते से ज्यादा इस को आप वक्त मत दीजिये, यह सरकार गिर जायेगी। इस में संकल्प शक्ति नहीं है वह माकूम सरकार है इस में मनोबल नहीं है...

*** ***

... आप जैसे अपनी त्वचा को देखते हैं, वही बात मैं कहना चाहता हूं। जैसी शरीर की त्वचा होती है, वैसी ही देश की सीमा होती है, अगर त्वचा के ऊपर हमला होने के बाद कोई मनुष्य बिलकुल शांत योगी बन कर बैठा रह जाता है खास तौर से राष्ट्रीय मामलों में सीमा के ऊपर हमला होने पर—मैं जानना चाहता हूं कि अगर डोवर की पहाड़ियों पर हमला हो जाये अगर सिबेरिया के ऊपर हमला हो जाये अगर चेकवान के ऊपर हमला हो जाये तो यहां बहुत से माननीय सज्जन हमारी लोक सभा में हैं

---

* अध्यक्ष महोदय ने नक्शे को सदन पटल पर रखने की आवश्यक अनुमति नहीं दी इसलिए इसे सभा पटल पर नहीं रखा गया।

जो फौरन दुंदुभि बजाने लग जायेंगे, विश्व युद्ध की बात चिल्लाने लग जायेंगे लेकिन हमारी अपनी खुद की बचा अपने देश की सीमा के बारे में—यह जो मैं सीमा की बात कर रहा हूं और पूरे क्षेत्रफल की बात कर रहा हूं—85 लाख एकड़ जमीन हमारी सर्वे के अनुसार गई है और 5 करोड़ एकड़ जमीन संयुक्त राष्ट्र की किताबों के अनुसार गई है यहां अलग अलग आंकड़े हैं—ऐसी सूरत में माननीय अध्यक्ष महोदय इस लोक-सभा के अध्यक्ष के नाते मैं आपसे भी अपील करूंगा कि बहुत संकट का वक्त है, संकल्प शक्ति की जरूरत है, मनोबल की जरूरत है, ऐसे मौके पर कोई माकूम सरकार न रह पाये हमारा सत्यानाश हो जायगा। माकूम सरकार गिरेगी और उसकी जगह माननीय सदस्यों को अब तैयार रहना चाहिये—एक मनोबल और संकल्प शक्ति की ऐसी सरकार बनाओ जो रक्षा कर सके अपनी सीमा की, अपने क्षेत्रफल की, अपनी भारतमाता की।

*** ***

...एक बात भूल गया। एक नक्शा मुझे मिला है सिलहट का जिसमें 12 थाने कब्जे में चले गये हैं पाकिस्तानियों के। तो आप इस को देख लेंगे और अगर ठीक समझें तो आप इस को अपने सदन-पटल* पर रखिये।

---

* अध्यक्ष महोदय ने नक्शे को सदन पटल पर रखने की आवश्यक अनुमति नहीं दी इसलिए इसे सभा पटल पर नहीं रखा गया।

38

अनुच्छेद 124 और 217 में संशोधन सम्बन्धी (संविधान संशोधन) विधेयक*

सभापति महोदय, सब से पहले तो मैं अर्ज करूं कि औसत उम्र बढ़ने की बात कही जरूर जाती है लेकिन उस का आधार अभी तक नहीं बतलाया गया है। कैसे हम लोग इस नतीजे पर पहुंचे हैं यह नहीं बतलाया गया। तो मुझे तो अब तक शक है कि औसत उम्र बढ़ी है, और अगर बढ़ी भी है तो इतनी नहीं बढ़ी है जितनी कही जाती है। आधार जब तक सरकार नहीं बताती तब तक इस तरह के आंकड़े बेमतलब होते हैं। दूसरी बात यह कि जो बच्चे पैदा होते हैं वे कुछ वर्षों पहले तक छः महीने या साल भर की उम्र तक मर जाया करते थे ज्यादा संख्या में। अब वहां कम मरते हैं। इस का यह बतलब नहीं हो गया कि जो ज्यादा उम्र के लोग हैं, वयस्क है या अधेड़ हैं, उन की उम्र बढ़ी है। असल में बच्चों के न मरने के सबब से जो औसत उम्र है वह बढ़ी हुई प्रतीत होती है। वह खाली आभास है, वस्तुतः वह बढ़ी नहीं।

इतना कहने के बाद मैं श्री शर्मा के बिल की मुखालिफत इसलिये भी करता हूं कि हम जजों से जिस बात की अपेक्षा करते हैं उस पर इस बिल का ध्यान नहीं है। कुछ इधर उधर की लीपा पोती की बातें हैं जो कि अलग-थलग की हैं।

अब आप देखिये कि हम जज से क्या उम्मीद करते हैं। यह कि वह हमारी जान और माल की आजादी की रक्षा करेगा। मुझे गिरफ्तारी से बचायेगा, नाजायज और गैर कानूनी गिरफ्तारी से। अगर मैं कहीं पर किसी कारण वश, चाहे कार्यपालिका के कारण, चाहे विधायिका के कारण गैरकानूनी ढंग से गिरफ्तार कर लिया जाऊं और मुझ को सज़ा दी जाये तो उस वक्त मैं जज से यह अपेक्षा करूंगा कि जो संविधान की धारा 20 और

---

* (i) लोक सभा वाद-विवाद, 10 अप्रैल, 1964

(ii) गैर सरकारी सदस्य पंडित के० सी० शर्मा का विधेयक

21 हैं उन की वह मुझे पूरी तरह से मदद देंगे। लेकिन वस्तुतः यह बात हो जाती है कि संविधान की धारायें भी कभी कभी बेकार साबित हो जाती हैं, या तो कार्यपालिका के कारण या अगर कहीं कोई विधायिका अपने मन में यह ठान लेती है कि वे इन धाराओं को भी तोड़ लेंगे उस के कारण। वस्तुतः गिरफ्तारी का, सजा का, फांसी का जो कुछ भी कानून उन देशों में है जहां संविधान है, मैं इंगलिस्तान की बात नहीं कर रहा हूं, जहां कहीं भी संविधान है, जहां यह सब धारायें न्यायपालिका के अधीन हैं। वहां मुकदमा जाता है, मुकदमे के ऊपर सारी बातचीत होती है, जज को पूरा हक होता है कि वह कानून के मुताबिक किसी नाजायज तौर पर गिरफ्तार किए हुए आदमी को छोड़ दे। मैं चाहता था कि हिन्दुस्तान में कोई ऐसा मस्विदा पूरी तौर से आ जाये और पास हो जाये ताकि इस के बारे में, कहीं कोई शक की मुंजाइश न रहे। यह जो इधर उधर की बातें आ जाती हैं, उन से काम चल नहीं पाता।

दरअसल अगर आप देखें तो हमारा जो अपना संविधान है उस में बिल्कुल साफ बात है कि 20 और 21 जो धारायें हैं उनके साथ साथ जो जुड़ी हुई एक बात है वह यह है कि किसी भी हालत में न्यायपालिका के अख्तियार को कम नहीं किया जा सकता। अगर कोई भी मुकदमा उस के पास जाता है तो वह सुनती है। खाली एक अपवाद है कि जब कभी कोई ऐसी संकटकालीन स्थिति आ जाये जब कि राष्ट्रपति साधारण संविधान की धाराओं को हटा देते हैं, तब बात अलग है, वर्ना उसे संविधान की धाराओं का मान करना ही पड़ेगा।

ऐसी अवस्था में अगर कोई संविधान की धाराओं को तोड़ता है, जब तक संकटकालीन कानून का ऐलान नहीं हो जाता है जिस के अनुसार जजों का अख्यार छीन नहीं लिया जाता, तब तक अगर किसी भी नागरिक की आजादी का अपहरण होता है तब मैं यह उम्मीद करूंगा कि जज उस की पूरी तरह से रक्षा करेगा। लेकिन वस्तुतः ऐसा हो जाता है कि जज को यह ताकत रह नहीं जाती। तो सब से पहले चाहूंगा कि श्री शर्मा कोई ऐसा कानून लायें जिस से जज अपनी जजी की कार्रवाई में जो कुछ भी करें उस के खिलाफ कुछ न हो सके, वह गिरफ्तार न किया जा सके, उस को किसी तरह से रोका न जा सके। अगर कोई ऐसा मस्विदा आता तब अलबत्ता मैं समझता कि हां, कोई कानून आया जिससे हिन्दुस्तान के संविधान की रक्षा हो रही है।

आप अच्छी तरह से जानते हैं कि कभी-कभी कोई-कोई विधायिकायें भी अपने मन में

ठान लेती हैं कि जो कुछ नागरिकों के अधिकार हैं उन को दबाया जाय या रोका जाय। कई दफे तो वह अपने मान के ऐसे सवाल उठाती हैं कि हमारी मानहानि हो गई या किसी तरह से हमारे अधिकारों के ऊपर कुठाराघात हो गया और तब वह यह भी कह दिया करती हैं कि जो कुछ वह नियम बनाती हैं उन के अनुसार लोगों को चलना चाहिये। मैं सब से पहले तो फर्क करूंगा नियम में और कानून में। हमारा संविधान साफ कहता है कि वह मान, वह ताकत, वह अख्त्यार, जो कानून द्वारा माने गये हैं नियमों के द्वारा नहीं। नियम और कानून में बड़ा फर्क है। लेकिन अक्सर यह होता है कि नियमों के अधीन बहुत सी कार्रवाइयां कर दी जाती हैं, और जज जब नियम और कानून में फर्क करता है तो उस के काम में हस्तक्षेप होता है।

तो मैं चाहूंगा कि जज ऐसी अवस्था में सुरक्षित किया जाय, उस पर आंच न आवे, नहीं तो नतीजा यह होगा कि कोई विधायिका कभी किसी हालत में किसी को गिरफ्तार करके सजा दे देगी। विधायिका इस बारे में अपने नियम बना सकती है और चूंकि सजा के बारे में कुछ लिखा नहीं रहता है, इसलिये चाहे तो फांसी भी दे दे। बहु संख्या कभी-कभी ऐसी हो जाया करती है कि अपने मन में सब कुछ करने की ठान ले और वैसा कर दे। तो इस बिल के सम्बन्ध में मैं इतना जरूर कहना चाहूंगा कि जज और न्यायपालिका सुरक्षित रहें, ताकतवर रहें, संविधान की धाराओं को लागू करने की उनकी पूरी क्षमता रहे और किसी तरह भी संविधान की धाराएं तोड़ी न जा सकें। ऐसा कानून आवे तब हम उसका समर्थन कर सकते हैं।

बेकन ने जो कि अंग्रेजों का एक बड़ा भारी जज हुआ है, कहा था कि जज शेर हैं, लेकिन तख्त के नीचे। उस बेचारे ने यह अपने अनुभव से कहा था। उन दिनों इंगलैंड में भी जजों में और पार्लियामेंट में बड़ी लड़ाई चला करती थी। वह तेजस्वी और विद्वान था उस ने कहा था कि जज शेर होते हैं, लेकिन तख्त के नीचे। मैं यह कहना चाहता हूं कि हमें ऐसे जजों को देखने की इच्छा है जो शेर जरूर हों, लेकिन तख्त के नीचे नहीं, तख्त के बगल में, जिसमें कि हम हिन्दुस्तान के नागरिकों की आजादी की रक्षा हो सके।

* * * * * *

व्यवधान*

* * * * * *

तख्त के ऊपर मैं उनको नहीं रखना चाहूंगा। मैं नहीं चाहता कि जज पार्लियामेंट के ऊपर बैठे। जहां तक कानून बनाने का सवाल है वहां तक आप लोगों का सर्वोपरि स्थान है, पर जहां पर कानून पर निर्णय लेने का सवाल है वहां पर जज सर्वोपरि स्थान रखे। यह सिद्धांत आप लोग मान लें तो बहुत कुछ दिक्कतें हल हो जायें।

---

*एक माननीय सदस्य: तख्त के ऊपर क्यों नहीं।

39

संविधान संशोधन विधेयक (अनुच्छेद 370 का लोप)*

सभापति महोदय, काफी लोग चाहते हैं कि हिन्दुस्तान और पाकिस्तान के सम्बन्ध सुधरें और मैं भी उन में से हूं। लोगों का यह भी कहना है कि इन सम्बन्धों के बिगाड़ में काश्मीर एक बड़ा रोड़ा है। लेकिन इस रोड़े को अच्छी तरह समझना चाहिए। अगर कोई कहे कि खाली पाकिस्तान की जनता ही काश्मीर को चाहती है और यह एकतरफा रोड़ा है तो वह खतरनाक बात होगी। यह दोतरफा रोड़ा है, पाकितान की जनता जहां काश्मीर को चाहती है, वहां हिन्दुस्तान की जनता या उसका बहुत बड़ा हिस्सा काश्मीर के जाने पर गड़बड़ कर सकता है, शायद बगावत भी कर सकता है। तो यह दोतरफा रोड़ा है और इस बात को अच्छी तरह समझना चाहिए। मैं विनती करूंगा कि राष्ट्रपति अयूब भी इस बात को समझें, और जहां तक यह सरकार का सवाल है वह कुछ लुंज है, उसके एक ही पैर नहीं दोनों पैर गायब हैं और इसलिए वह कोई न कोई सहारा ढूंढती रहती है। और अभी उसको सर्वोदय का सहारा मिला लेकिन मैं चेतावनी दे देना चाहता हूं कि वह सर्वोदय भी टूटी लकड़ी है, इस से उसे सहारा नहीं मिल पाएगा, क्योंकि खाली किसी चीज़ को प्रचार कर देने से या एक तरफा बात कर देने से मामला हल नहीं हुआ करता। मैं याद दिला दूं श्री लाल बहादुर शास्त्री को कि डाकू-समस्या, ज़मीन समस्या, फिल्मी अश्लील पोस्टरों की समस्या, कोई भी सर्वोदय ने हल नहीं कर पायी, सिवाय इसके कि कुछ हल्ला मचा। कहीं काश्मीर के मामले में भी यही न हो कर के रहे क्योंकि शास्त्री जी पहले भी कमज़ोर थे और अब पहले से ज्यादा कमज़ोर हैं। वे भी इस बात का समर्थन न कर सकेंगे और अपनी किसी नीति को इतना अच्छा समझें कि उसको लागू करने के लिए हिन्दुस्तान में गड़बड़ या बगावत का सामना कर सकें। उन में इतनी ताकत होती तो हम दूसरी तरह से सोच सकते थे। इसलिए सब से बड़ी बात यह है कि काश्मीर को छोड़ देना जहां अवांछनीय है वहां यह भी समझ लो कि यह असम्भव है

*(i) लोक सभा वाद-विवाद, 11 सितम्बर, 1964
(ii) गैर-सरकारी सदस्य श्री प्रकाशवीर शास्त्री का विधेयक

जब तक कि कुछ बातें पूरी न हो जायें और इसीलिये मैं इस दोतरफा रोड़े के बारे में कहना चाहूंगा। मेरा खुद का दिमाग लचीला है। अगर जो दोष या पाप सत्तरह साल पहले हुआ था हिन्दुस्तान और पाकिस्तान का, दोनों जगह की जनता से, चाहे पूरा नहीं छोटा सा भी कदम उठाया जा सके तो मामला सोचा जा सकता है और दिमाग में लचीलापन आ सकता है। दिमाग लचीला बनाना चाहिए। मैं भी लचीले दिमाग के हक में हूं लेकिन लचीले दिमाग का मतलब यह नहीं होता कि एक जड़ता को छोड़ कर दूसरी जड़ता को पकड़ लिया जाय। एक तरफ जड़ बन जायें कि काश्मीर हम किसी हालत में छोड़ेंगे नहीं और दूसरी तरफ जड़ बन जायें कि हिन्दुस्तान और पाकिस्तान का रिश्ता सुधारने के लिए हम काश्मीर को छोड़ने को तैयार हैं। लचीला दिमाग बनाइये। लचीला दिमाग एक ही हो सकता है कि हिन्दुस्तान और पाकिस्तान का महासंघ बने तभी यह मसला हल किया जा सकता है और इसके ऊपर इधर, उधर बीच में कोई न कोई रास्ता निकाला जा सकता है। वह काम है संघ बने। तब कुछ लोग कहते हैं कि पहले काश्मीर दे दो पाकिस्तान को तब पाकिस्तान की सरकार राजी हो जायेगी महासंघ बनाने के लिये। मैं यह कहना चाहता हूं कि इस तरह से जो पहले और अबकी बात को करते हैं वे जानते नहीं कि अब यह मामला कितना बिगड़ा हुआ है। इस में तो बहुत कुछ गड़बड़ी की सम्भावना बढ़ जाती है।

* * * * * *

व्यवधान* (क)

* * * * * *

मैं महासंघ बनाना चाहता हूं क्योंकि मैं चाहता हूं कि जो 17 वर्ष पहले, शायद आप ने कम लेकिन आप के नेताओं ने पाप किया था और मैंने भी किसी हद तक उस पाप में हिस्सा लिया था, वह अपने जीवनकाल में खत्म हो सके तो बड़ा अच्छा होगा जो लोग यह कहते हैं कि राष्ट्रपति अयूब और पाकिस्तान की सरकार महासंघ के बारे में सोच विचार करने के लिए तैयार नहीं है तो मैं खाली यही कह देना चाहता हूं कि सरकारों के सोच विचार के बाद भी किसी भले आदमी को बहुत ज्यादा जड़ होकर खड़ा नहीं रहना

---

*(क) रेलवे मंत्रालय में राज्य-मंत्री (डा॰ राम सुभग सिंह): बिना महासंघ बनाये ही काश्मीर को अपने पास रखने की ताकत होनी चाहिए।

चाहिए। सरकारें बदलती रहती हैं सरकारों के विचार बदलते रहते हैं इस लिये महासंघ वाला विचार यह एक सही विचार है इस में एक बात मैं साफ कर दूं। किसी भी हालत में महासंघ बनाने का जब हम विचार करते हैं तो बहुत कुछ देने को तैयार नहीं है, यह मान लेना चाहिए। पाकिस्तान यह कहता है कि नये महासंघ के संविधान में, दो में से राष्ट्रपति और प्रधान मंत्री, दो में से एक जब तक पाकिस्तान खुद न कहे कि इस अवस्था को बदल दो, पाकिस्तान ही रहेगा तो—मैं इस बात को मानने के लिये तैयार हो जाऊंगा।

इसके अलावा मैं यह भी कहना चाहता हूं कि अगर पलटनी मामला, विदेशी नीति का मामला और आने जाने के मामले में सम्बन्ध रहे लेकिन नागरिकता के मामले में बिल्कुल पक्का सम्बन्ध रहना चाहिए, और महासंघ का विषय कम से कम ऐसा होना चाहिए नागरिकता का जैसे आज हिन्दुस्तान की नागरिकता और पाकिस्तान की नागरिकता अलग है तो यह एक नागरिकता हो जानी चाहिए। इस पर मैं जोर दूंगा और बाकी चीजों के ऊपर बहुत ही ढीला ढाला महासंघ बनाने को तैयार रहेंगे।

अब यही बात मैं अमरीका को और अमरीका के साथ बहुत हद तक रूस को भी कहना चाहता हूं। अमरीका को खास तौर से इसलिए क्योंकि अमरीका ने बहुत ज्यादा दबाव डाला कि यह मसला हल होना चाहिए। मैं भी मानता हूं कि यह मसला हल होना चाहिए। लेकिन किस तरीके से हल हो? खाली यों ही एक इच्छा व्यक्त कर देने से, किसी मामले को अच्छे तरीके से अध्ययन किये बिना, खाली एक रास्ता बता देने से तो यह हल नहीं होगा। अमरीका के लोगों को भी सोच विचार करना चाहिए कि यह दो टूटे हुए इलाकों को जोड़ने से ही इस जगह का मामला ठीक ठाक चल सकेगा। मुझ से अमरीका वाले लोगों ने कहा कि क्या अमरीका की सरकार इस तरह का प्रभाव पाकिस्तान सरकार पर डाल सकती है? पाकिस्तान वाले तो नाराज हो जायेंगे। अमरीका और पाकिस्तान का रिश्ता बिगड़ जायेगा। मैं मानता हूं कि सरकार ऐसा दबाव नहीं डाला करती लेकिन क्या अमरीका में न जाने कितने नये नये विचारों के ऊपर प्रचार नहीं हुआ करता और जनमत नहीं बनाया जाता। खाली अमरीका का नहीं बल्कि दुनिया भर का? इसलिए मैं अपील करूंगा ऐसे लोगों से, जैसे समझो राष्ट्रपति टूमन, अब वे सरकारी नहीं हैं, राष्ट्रपति आइजनहोवर, वह सरकारी नहीं हैं, वे लोग खुल कर बोल सकते हैं। उनके हाथ मुंह बंधे हुए नहीं हैं। टूमन और आइजनहोवर कभी इस महाद्वीप के एक होने की बात किसी न किसी रूप में सोचना शुरू करें और अगर उनके दिमाग में यह बात आये तो उस के बारे में बोलना भी शुरू करें।

इसके साथ साथ मैं ऐलसोप और एक दूसरे बड़े लेखक वाल्टर लिपमैन जो कि बड़े लेखक हैं, अखबारों में जिनके लेखों से बड़ा असर पड़ता है, उन से भी मैं यह कहूंगा

कि इस मसले पर सोच विचार करें। अगर सचमुच विश्व में शान्ति चाहते हो तो फिर जो 17 वर्ष पहले विश्व शान्ति के बिगाड़ का एक बड़ा भारी कारण बन चुका है उसको दूर करने की कोशिश करो।

इस महासंघ की बात को कहते हुए मैं यह भी बतला दूं कि मेरे पास कुछ चिट्ठियां आई हैं। आपको सुन कर आश्चर्य होगा, और पाकिस्तान से आई हैं मैंने तो सोचा था कि शायद पाकिस्तान के लोग अब हमारी बातें सुनने को हरगिज तैयार न हों, श्री श्यामलाल सर्राफ को मैं खास तौर पर सुनाना चाहता हूं कि वहां से भी महासंघ को लेकर चिट्ठियां आई हैं, पक्ष में आई हैं। यह सही है कि जो शर्त उन्होंने रखी है वह शर्त ऐसी है कि उसको सुन कर आप दहल जायेंगे, मैं खुद भी दहल गया था थोड़ी देर के लिये लेकिन एक बात मार्के की है और वह यह है कि पाकिस्तान के एक नागरिक को कम से कम यह बात पसन्द तो आई। उसने मुझसे कहा कि अगर तुम सच्चे आदमी हो तो मेरी यह राय भी मान लो तब मैं समझूंगा कि तुम महासंघ की बात ठीक समझते हो। इसलिए मैं श्री लाल बहादुर शास्त्री से अर्ज करूंगा कि अगर कुछ करना है तो उसके बारे में अच्छे तरीके से सोचो। तब और अब वाला मामला सोचो मत। टूटी लकड़ियों का सहारा मत ढूंढो। इतनी हिम्मत आप में है नहीं, लोगों को उकसा देंगे, पाकिस्तान के लोगों और सरकार के मन में अगर यह भावना उकस गयी कि काश्मीर हमको मिलना चाहिए तो इसके कारण तो जो कोई गड़बड़ी होगी उस गड़बड़ के लिए मैं जिम्मेदार इस सरकार को कहूंगा। उकसाओ मत लोगों को। अब अपने पैर तो आपके हैं नहीं इसलिए कैसे कहूं कि अपने पैरों पर खड़े हूजिये लेकिन ढूंढिये कोई ऐसी लकड़ी जो टूटी हुई न हो...

40

अनुच्छेद 352 में संशोधन किये जाने संबंधी (संविधान संशोधन) विधेयक*

अध्यक्ष महोदय, श्री कामत की आज मैं बहुत खुले दिल से तारीफ करता हूं इसलिए नहीं कि वह रोग को दूर करने का कोई मसविदा रख रहे हैं बल्कि इस लिए कि उस रोग के बारे में चर्चा करने का मौका इस सदन को हर छठे महीने मिलता रहेगा, रोग तो बड़ा भयंकर है। अपना देश दुनिया का सब से भूखा देश है और उसी के साथ इस समय मैं खाली आशा करता हूं थोड़े ही अरसे के लिए यह सब से झूठा और धोखेबाज देश भी बन चुका है और उस का एक मुख्य कारण संविधान की यह धारा 352 है। इस धारा में राष्ट्रपति को अधिकार दिया गया है कि वह चार हालतों में संकट का एलान कर सकते हैं। एक युद्ध, दूसरे बाहरी हमला, तीसरे अन्दरूनी गड़बड़ । अब इन तीनों के अलावा चौथी बात को मैं जोर से कहना चाहूंगा कि इन तीनों में से किसी एक का आसन्न खतरा है। इन चार चीजों पर संकट का एलान राष्ट्रपति जी यानी उनके सलाहकार कर सकते हैं और सलाहकार तो आप जानते ही हैं कि सामने लोग बैठे हुए हैं। आसन्न संकट, है क्या यह आसन्न संकट? पिछले तीन-चार साल से युद्ध नहीं हो रहा है और अगर मान लो यह सलाहकार कहें कि युद्ध नहीं हो रहा है बाहरी हमला हो रहा है, तो वह भी नहीं हो रहा है, तो अन्दरूनी गड़बड़ हो रही है? मैं भी कह सकता हूं कि क्योंकि मैं छपाई के बहुत से काम करता हूं और मेरे पास वक्त पर पैसा देने को नहीं रहता तो मेरे ऊपर भी संकट रहता है या समझ लो कि पानी बहुत जोरों से बरस रहा है, ऐसी घटना हो चुकी है और मुझको रेलगाड़ी पकड़नी है टैक्सी मिल नहीं पायी। अब भारी संकट आ गया था अध्यक्ष महोदय, मेरे ऊपर और न जाने कहां से पैसा इकट्ठा करके दूसरे दिन हवाई जहाज से जाना पड़ा। अब अगर इस तरह के संकटों को ऐसी परिभाषा में डाला जायगा

* (i) लोक सभा वाद-विवाद, 26 अगस्त, 1966
(ii) गैर सरकारी सदस्य, श्री हरि विष्णु कामथ का विधेयक।

तो शब्दों की घिसाई हो जायगी। कहां वह आसन्न संकट कि जिससे देश में अन्दरूनी गड़बड़ी या बाहरी हमले का खतरा है?

मैं बड़ी गंभीरता से कहना चाहता हूं कि यह धारा सरकार को अख्तियार देती है कि संसार का सब से बड़ा धोखा इस देश के ऊपर इस्तेमाल करने का धोखा, फरेब, जालसाजी मैं समझ सकता हूं कि बहुत सी परदेश की सरकारों ने परदेशियों को धोखा देने के लिए काम किये हों लेकिन ऐसा सारे इतिहास में मुझे कोई वर्णन नहीं मिलता कि जहां एक सरकार ने अपने देशी लोगों के ऊपर इतना बड़ा धोखा फरेब और जालसाजी का इस्तेमाल किया हो। और जब सरकार ऐसा उदाहरण जनता के सामने रख देती है तो फिर जनता वाले भी आपस में एक दूसरे से व्यवहार करते हुए छोटा मोटा धोखा और फरेब इस्तेमाल करने लग जाते हैं। यह धारा 352 सारे देश को झूठ, धोखा और फरेब सिखा रही है। आसन्न संकट है क्या? क्या करें, राष्ट्रपति जी से अगर कभी मिलता, एक जमाना था, अंग्रेजी जमाने में जब कभी मुलाकात हो जाया करती थी, तो मैं उन से पूछता था, कि राष्ट्रपति जी, क्या सचमुच आप अपने को संतोष दिला लेते हैं कि इस का आसन्न संकट होने वाला है? आसन्न संकट, मतलब जो फौरन अभी होने वाला है। कभी इस पर खुद भी आप सोचते हैं? लेकिन शायद कहा जाये कि उन को तो सोचने की जरूरत है नहीं, वह तो सलाहकार आ कर बता देते हैं कि यह संकट होने वाला है तो मान लिया तो वह आसन्न संकट है कहां? अगर कहा जाय अन्दरूनी गड़बड़ तो अन्दरूनी गड़बड़ में आसन्न संकट के मतलब होते हैं कि जब आदमी का रोजमर्रा का जीवन असम्भव हो जाये। खाली यह नहीं होता, जैसे कि मान लीजिए दिल्ली के चांदनी चौक में कहीं कोई पटाखा फूट गया, हो सकता है कि दस पांच इमारतें जल गई, गिर गई, हो सकता है कि कुछ लोग भी मर गए, लेकिन उस से पूरे दिल्ली के जीवन पर कोई असर न पड़े, लोग आते-जाते रहें, अपना धंधा चलाते रहें, दूसरे दिन भी कार्यवाही होती रह गई, तो उस को अन्दरूनी गड़बड़ नहीं कहा जायगा हर किसी घटना को अन्दरूनी गड़बड़ का नाम दे देना यह शब्दों की घिसाई, है, राजनीति के साथ फरेब है। अन्दरूनी गड़बड़ तभी होती है जब रोजमर्रा जीवन असम्भव हो जाया करता है, धन्धा रोजगार चलना मुश्किल है, सड़क पर चलना फिरना मुश्किल है, और भी जितने कुटुम्बीय जीवन वगैरह में लोगों में आतंक है, उत्पात है, जुल्म है, इधर उधर भाग ले जाना है, जीवन बिल्कुल असम्भव हो जाय तब अन्दरूनी गड़बड़ हुआ करती है। मैं कहना चाहता हूं कि पिछले चार वर्ष से जो चीजें

इस धारा में कही गई हैं वह बिल्कुल नहीं रही हैं। तो आप कह सकते हो, भाई धारा में क्या गड़बड़ है, यह तो उसका इस्तेमाल खराब हुआ है। तो मैं कहना चाहूंगा कि चार वर्ष तक जिस धारा का इतना गलत इस्तेमाल हुआ हो लगातार 48 करोड़ आदमियों के ऊपर और इन सलाहकारों के हाथों, तो मेरा तो यह कहना होगा कि इस धारा को खत्म किये बिना अब इस संविधान को सुन्दर बनाना असंभव है। यह धारा पूरी की पूरी खत्म होनी चाहिए और कामत साहब की तहजीब उतनी हद तक नहीं जाती। शायद यह डर गए कि इतनी बड़ी बात इस धोखे और फरेब के जमाने में यह कह नहीं पायेंगे, इसलिए उन्होंने छोटी सी बात कही है कि हर छठे महीने कम से कम इस सदन में बहस हो जाया करे और बहस होगी तो लोगों को पता चलेगा, लोगों से मतलब...

* * * * * *

व्यवधान*

* * * * * *

काहे का जवाब? मैं तो उन की बात कह रहा हूं।..अध्यक्ष महोदय, आप नाहक बोले, या इस धारा का कुछ असर आप के ऊपर भी पड़ा है? आप हम लोगों के बीच में लड़ाई करवाना चाहते हैं...

* * * * * *

व्यवधान**

* * * * * *

हमारी इनकी दोस्ती आज की नहीं है, बहुत पुरानी है। बीच में थोड़ी बहुत घिस-घिस हो जाया करे तो क्या पता आगे चल कर क्या जाने कैसे दोस्ती होने वाली है?

तो खैर, मैं यह कह रहा था, इस धारा की अब मैं मिसाल आप को एक बताऊं। एक संविधान इस दुनिया में बड़ा महीन संविधान था। आजादी के लिए वह प्रतीक और नमूना रखा जाता था और वह था वाईमार का संविधान। पहला जो युद्ध हुआ था 1914-18 वाला, उसी के बाद यह संविधान बना था। मैं सिर्फ दो संविधानों की इज्जत करता हूं—एक तो वह जिस में पहली दफा लिख कर आया था कि हम जनता अपने आप को यह संविधान प्रदत्त करते हैं—हम अमरीकी जनता, ये शब्द पहली दफा

*सभापति महोदय : डर का जवाब देना होगा इनको।
**श्री हरि विष्णु कामत : इन की बातों में न आइयेगा।

अमरीकी संविधान में आया, वह बहुत बढ़िया संविधान था। फिर उस के बाद यह वाईमार वाला जर्मनी का संविधान आया, यह भी बहुत अच्छा था, लेकिन इस में भी एक धारा थी, वह धारा थी 48 नम्बर की और यह जो है वह 352 नम्बर की है दोनों को देखें तो शायद एक दूसरे के नजदीक आ जायें। तो वह वाईमार का संविधान बहुत सुन्दर बना था। लेकिन उस को फिर इतना गन्दा बना दिया कि आज उसको आप खाली पुस्तकालय में जाकर पढ़ सकते हैं, जिसने जर्मनी को एक बार तहस-नहस कर डाला था।

अब मुझे खाली दो घटनायें बतानी हैं। एक तो छोटी सी चीज है लेकिन यदि उसको देखें तो कितनी जबरदस्त बात है। आज इस वक्त भी दिल्ली की जेल में एक श्री लखनपाल हैं। जब सितम्बर में भारत और पाकिस्तान की लड़ाई चल रही थी, वह बाहर थे, उन को जेल में रखने की, जरूरत नहीं पड़ी। जो आदमी अपराधी हो, दोषी हो, उससे मुझे मतलब नहीं है, लेकिन उस आदमी ने तो कोई अपराध नहीं किया, फिर उसको जेल में क्यों रखा है? इसलिये कि पुरानी अदाक्त है, क्योंकि वह किसी जमाने में काश्मीर में मत-गणना के पक्ष में था, हालांकि आज वह उस पक्ष में नहीं है, लेकिन फिर भी उस को जेल में रखा हुआ है।

* * * * * *

दूसरी घटना ऐसो-कम्पनी की है। ऐसो-कम्पनी ने सरकार के कहने पर डीजल में मिट्टी का तेल मिलाया और उसको अपने व्यापारियों को बेचने को दिया और जब उन व्यापारियों ने बेचा तो सैंकड़ों की तादाद में इस सरकार ने उन को गिरफ्तार किया। यह सरकार ऐसे आदमियों को गिरफ्तार करती है जो इसका खुद का काम करते हैं।

आखिर में एक घटना साधारण जनता की आपको बताना चाहता हूं। नजरबन्दी कानून के खिलाफ अक्सर बोला जाता है, भारत सुरक्षा कानून के खिलाफ अक्सर बोला जाता है, लेकिन मैं बोलना चाहता हूं कि धारा 109 के खिलाफ। पिछले 125 वर्षों से भारत के नागरिकों के लिये, साधारण गरीब नागरिकों के लिये, यह दफा एक खतरनाक दफा रही है। रात को चलते हैं, सड़क सड़क पर चलते हैं, तो कोई भी पुलिसवाला गिरफ्तार कर सकता है।

* * * * * *

*व्यवधान

* * * * * *

---

*एक माननीय सदस्यः पैसा देने पर नहीं करेगा।

ठीक है, नहीं करेगा, । तो गिरफ्तार कर लेगा और कहेगा कि यह बहुत शक की हालत में घूम रहा था। इसका इरादा कोई बुरा काम या अपराध करने का था और इसके पास अपनी जिन्दगी को चलाने का कोई जरिया नहीं था। इसका मतलब क्या है? इस सरकार को तो शर्म आयेगी नहीं। वह आदमी बेकार है, उसके पास खाने को नही है, वह भूखा है, गांव से आया है शहर में काम ढूंढने के लिए। रात के 10-11 बजे पुलिसवाला उसको गिरफ्तार कर लेगा और खाली एक मोमबत्ती, या दियासलाई या लोहे की एक छड़ी जाकर अदालत में पेश कर देंगे और कहेंगे कि जाइये जेल में। इतना बड़ा धोखा हो रहा है।

मैं, सभापति महोदय, कहना चाहता हूं कि यह देश दुनिया का सब से बड़ा भूखा देश है और दूसरी तरफ ज्यादा सबसे ज्यादा झूठा देश है और यह सरकार उस झूठ को बोल रही है। यह धारा 352 यदि खत्म हो जाती तो बहुत अच्छा था। सरकार को कामथ साहब की इस बात को मान लेना चाहिये।

41

अनुच्छेद 368 में संशोधन किये जाने सम्बन्धी संविधान (संशोधन) विधेयक*

सभापति महोदय, यह प्रश्न सर्वोच्च न्यायालय और संसद का मेरे लिए नहीं है। यह प्रश्न हमारे राज्य के रूप और रंग का है। अगर ऐसा मैं न समझता तो आज की बहस में काफी तकलीफ उठा कर भी हिस्सा लेने की कोशिश मैं नहीं करता। राज्य के रूप, रंग की जब श्री नाथपाई से बात हो रही थी, आज से 15 दिन पहले, तो मैंने उन से पूछा कि आप के विधेयक के पास हो जाने के बाद, क्योंकि यह जितनी बहस यहां चल रही है वह निरर्थक रहेगी, सार्थक केवल इन का एक वाक्य रहेगा। केवल एक वाक्य और वह है:

"Any provision of this Constitution may be amended in accordance with the procedure hereafter provided in this article."

इस के अलावा और कोई फर्क नहीं पड़ेगा और बाकी की जितनी धाराएं हैं उन से जहाँ समविध है वहां खाली फर्क हुआ है "इस संविधान का संशोधन" और अब लिख दिया जायेगा "इस संविधान की किसी भी धारा किसी भी बात का संशोधन"। जब यह पास हो जायेगा तब कोई भाषण सामने नहीं रहेगा कि यह सम्पत्ति के सम्बन्ध में है या यह स्वतन्त्रता के अधिकारों के सम्बन्ध में है या यह राज्य और केन्द्र के सम्बन्ध के सम्बन्धों में है। केवल यही बात रहेगी कि संविधान की कोई धारा बदली जा सकती है। मैंने इन से पूछा कि जब आप ने यह विधेयक रक्खा तो इस पर सोच लिया ना कि हमारी जो सब से पहली भूमिका है और जहां हमने यह कहा है:

"WE, THE PEOPLE OF INDIA, having solemnly resolved

---

* (i) लोक सभा वाद-विवाद, 21 जुलाई 1967

(ii) गैर सरकारी सदस्य श्री नाथ पाई का विधेयक

to constitute India into a SOVEREIGN DEMOCRATIC REPUBLIC and to secure to all its citizens...."

बाकी मैं नहीं पढ़ता हूं यह जो भूमिका है:

"हम, भारत के लोग, भारत को एक सम्पूर्ण प्रभुत्व-सम्पन्न लोकतंत्रात्मक गणराज्य" बनाने का फैसला करते हैं क्या यह हटाया जा सकता है या नहीं? इस के लिए इन को याद होगा कि इन्होंने कहा था कि हां, यह हटाया जा सकता है। अगर यह कानून जिस पर कि आज यहां पर हम बहस कर रहे हैं, पास हो जाता है तो यह हटाया जा सकता है।....

*** *** ***

व्यवधान@

*** *** ***

ठीक है आप भी उस की मुखालफत करोगे और मैं भी करूंगा बाकी हम दोनों की दुर्गति उस समय वही होगी जो जर्मनी में कम्युनिस्टों और समाजवादियों की हुई थी। ऐसी दुर्गति होगी सभापति महोदय, इन का अगर कहीं यह कानून पास हो गया कि कुछ कहना नहीं। मैं आप के सामने बिलकुल दर्द के साथ कह रहा हूं। हो सकता है मैं उक्त को देख रहा हूं। हो सकता है कि आजकल और पिछले 10-15 वर्ष में मैंने जो कुछ भारत का इतिहास देखा है, बार-बार यहां मंत्री जी से प्रश्न पूछा गया भविष्य के बारे में। मुझे भविष्य के बारे में प्रश्न पूछने की जरूरत नहीं है। मैं भूत को, अतीत को जो देख चुका हूं, कल देख चुका हूं, बस्तर में देख चुका, केरल में देख चुका और न जाने और कहां-कहां देख चुका, उसके बाद मेरे सामने यह भूत खड़ा रहता है कि इस विधेयक के पास हो जाने के बाद, इस के बिना पास हुए भी क्योंकि जिस तरीके के लोग हैं वह बहुत कुछ कर सकते हैं, लेकिन यह आप उन के हाथ में इतना बड़ा अस्त्र दे रहे हैं कि वह अपने देश के रूप और रंग को खत्म करेगा। मैं भविष्य के बारे में नहीं कह रहा हूं, अतीत काल में जो आप ने किया, आज मैं आप से पूछता हूं कि जो इस संविधान में धाराएं हैं 352 से 360 तक और फिर जो उस में विशेष करके 356 धारा है, यह आपतकालीन धाराएं सब हैं संविधान वाली, 352 से 360। वह जैसे कोई एक संविधान अगर मान लो उस की उपमा आदमी से दी जाये तो उस की आंखें हैं। ऐचा, ताना हो जाये या टेढ़ी हो जाये या कानी हो जाये, उसी तरीके से हमारे संविधान को काना बनाने,

*श्री नाथ पाई : अगर बुनियादी अधिकार पर आक्रमण किया गया, उन का हनन किया गया तो मैं उस की अवश्य मुखालफत करूंगा।

वाली, एक आंख का बनाने वाली यह 352 से 360 तक की धाराएं हैं। इस को तो भी सभी लोग स्वीकार करेंगे और उस में विशेष करके 356 धारा जोड़ सकते हैं। जितने भी राज्य हैं सब में राष्ट्रपति शासन कायम हो सकता है। अब मैं आप से केवल एक ही प्रश्न पूछता हूं कि अगर कोई राज्य यहां हो जो 356 धारा को सभी राज्यों में लागू कर दे तो सब राज्य खत्म, राज्यों की विधान सभाएं खत्म, विधान परिषदें खत्म और सरकारें खत्म, ऐसा आप मत समझना कि यह अद्भुत बात है। अभी मैं आप को बतलाऊंगा कि यह सब संसार के इतिहास में कितना हो चुका है। वह सब खत्म हो जायेंगे। फिर नाथ पाई जी के विधेयक में 308 का नम्बर 2 और नम्बर 3 रहता है जिसमें लिखा हुआ है प्रोवाइडेड डैट इफ, राज्य वगैरह सब खत्म हो जाते हैं। राज्य सब खत्म हो जाते हैं। उन से पूछने की कोई जरूरत नहीं है। विधान सभाएं रहती ही नहीं हैं। अब रह गयी यहां की बात। फिर भी यहां तो संसद है। तो संसद को कैसे लोग किया करते हैं? आप जानते हो कि केवल एक कानून है:

"Gesetz zur Behebung Der Not von Volk und Reich."

एक कानून ने, मैं बतलाऊंगा कि किस कारण से जर्मनी में हिटलर को वह ताकत दे दी थी जिसका कि मैंने अभी तक जिक्र किया है। "गैसेट्ज जूर" भी। वह कैसे? यह भी प्रो० रंगा से मैं अर्ज कर दूं कि जैसे अपने यहां 352 से लेकर 360 धाराऐं हैं, वैसे ही वाइमार संविधान, जो कि बड़े उदार संविधानों में से गिना जाता है, उस में भी एक धारा थी, जो कि उस की एक आंख फोड़ देती थी या शायद खेंचा ताना बना देती थी। वह धारा थी आर्टिकल 48। आर्टिकल 48 द्वारा यह कानून पास हो जाता था। श्री नाथ पाई जी अनजाने जो विधेयक ले आये हैं, मैं इतना ही कहूंगा कि वह इतना अधिकार दे देगा कि:

"Gesetz zur Behebung Der Not von Volk und Reich."

वह कानून जो जनता और राज्य की आफत हटाने के लिये है, और आप जानते हैं कि न जाने कितनी आफतें रहती हैं, मध्य प्रदेश में भी एक आफत हो गई है....

***   ***

व्यवधान*

***   ***

कोर्ट को छोड़ो। मैं उच्च न्यायालय या सर्वोच्च न्यायालय की चर्चा इस समय नहीं कर रहा हूं। केवल यह चर्चा कर रहा हूं। कि हो सकता है कि तब तक मेरे जैसे आदमी को

---

*श्री नाथपाई : कोई कोर्ट जनता की मदद नहीं कर सकता।

जो खत्म ही कर दिया जायेगा, लेकिन नाथपाई जी भी जेल में रख दिये जायेंगे। मैं केवल इस की चर्चा कर रहा हूं और इस पर आप ध्यान दें। वही एक कानून था जिसका मैंने जिक्र किया और जिससे हिटलर की डिक्टेटरी कायम हुई थी, और उस कानून को मैं खाली आप को, आप चाहें तो—अंग्रेजी में पढ़ना फिजूल होगा।

*** ***

उसे दि एनेबलिंग बिल कहा करते थे, लेकिन जर्मन में वैसा नहीं था। जर्मन में जैसा मैंने बतलाया, आफत को दूर करने वाला कानून था।

"The Enabling Bill which was laid before the House contained five clauses. The first and fifth gave the Government the power for four years to enact laws without the co-operation of the Reichstag."

यानि रजिस्ट्रेशन चार वर्ष के लिये खत्म। लोक सभा खत्म। लोक सभा भी खत्म और दूसरे भी खत्म।

"The second and fourth specifically stated that this power should include the right to deviate from the Constitution and to conclude treaties with foreign States the only subject reserved being the institutions of the Reichstag and Reichsrat."

वह भी कहने की जरूरत नहीं है। क्योंकि मैं पहले ही कह चुका हूं कि श्री नाथपाई जी के विधेयक को अब खाली एक चीज की जरूरत है:

We hereby resolve that this Constitution be suspended and in its place.

और जो कुछ भी करना हो वह कर दें। क्या करना होगा वह आप देखिये....

"The third provided that laws, to be enacted by the Government, should be drafted by the Chancellor, and should come into effect on the day after publication."

इस विधेयक के पास हो जाने के बाद, मैं समझता हूं कि बाकी चारों की जरूरत नहीं है खाली वह पांचवां कानून यह कहता है कि इस संविधान को खत्म करते हैं। हम यह कानून बनाते हैं कि जितने भी कानून होंगे, वह किसी का भी नाम ले लेंगे मैं नहीं जानता हूं कि इस वक्त कौन होने वाला है, कोई पलटन का अधिकारी होगा कोई राष्ट्रपति होगा, कोई प्रधान मंत्री होगा या होगी, कौन होगा मैं

नहीं जानता। लेकिन कोई एक हो कर वह इस ताकत को अपने हाथ में ले सकता है। और फिर क्या होगा? इस को भी जरा आप जानना।

2 अगस्त, 1934 को जो कसम जर्मन सेना के आगे लोगों को खानी पड़ी थी जर्मन नागरिकों को सिर्फ नहीं, जर्मन जनता को, जर्मन सेना को, जिस सेना ने सारे संसार में बड़ा उत्पात मचा रखा था।

यहां वाली सेना संसार में तो क्या उत्पात मचा सकती है, लेकिन अपने घर में तो बहुत ज्यादा उत्पात मचा ही सकती है। वह कसम क्या थी, इस को आप देखिये।

"Ich schwore bei Gott diesen heiligen Eid, dass ich dem Fithrer des Deutschen Reisches und Volkes, Adolf Hitler....

इस को जरा सुन लें। यह बहुत खतरनाक कसम है, यह मैं आप को बतलाऊंगा।

"Ich schwore bei Gott diesen heiligen Eid. dass ich dem Fiihrer des Deutschen Reiches und Volkes, Adolf Hitler, dem Oberbelshaber der Wehrmacht unbedingten Gohorsam leisten and tapferer Soldat bereit sein will, jederzeit fiir diesen Eid meien Leben einzusetzen."

यह खतरनाक कसम 2, अगस्त, 1934 को हिटलर की या जर्मनी की पूरी सेना को लेनी पड़ी थी, जो कभी जर्मनी में नहीं हुआ, शायद संसार में कभी नहीं हुआ, वह इस विधेयक के स्वीकृत होने के बाद हो सकता है। इस कसम का मतलब है कि "मैं ईश्वर का नाम ले कर इस पवित्र कसम को खाता हूं कि मैं जर्मन राष्ट्र की जनता के नेता एडोल्फ़ हिटलर, जो कि सेना के सब से बड़े सिपहसालार हैं, सर-सिपहसालार हैं, बिना किसी शर्त के उन की आज्ञा का पालन करूंगा, मतलब उन के अख्त्यार में रहूंगा और एक बहादुर सिपाही बनूंगा हमेशा इस कसम के लिये अपना जीवन खत्म करने के लिये।" यह कसम एडोल्फ हिटलर के नाम से खाई गई थी, और यह सारा काम जर्मनी में हुआ। इसलिये कि इसी तरह का विधेयक हुआ।

उपाध्यक्ष महोदय, हो सकता है कि मुझे खाली भूत दिखलाई पड़ता हो। मैं बहुत चोट खाया हुआ हूं, आप भी थोड़ी बहुत चोट खा चुके हैं, इस लिये मेरे साथ कुछ हमदर्दी कर सकते हैं। हम में से बहुतों ने बहुत चोटें खाई हुई हैं।

*** *** ***

लेकिन मैं उस वक्त की बात बतलाऊं। जब यह चीज हो रही थी, जर्मनी में चारों तरफ लोक सभा के नात्सी लोग हल्ला मचा रहे थे कि हम को विधेयक चाहिये, नहीं तो आग और खून। वह विधेयक चाहिये। तब उस वक्त

"It needed courage to stand up before the packed assembly—most of the communists and about a dozen of the Social Democratic Deputies had already been thrown into prison."

मैं श्री रंगा से कहूंगा कि वक्त आ गया है कि ज्यादा देर मत करो। कम्यूनिस्ट जब खत्म किये जाते हैं तो कभी-कभी—हमेशा नहीं—उन के साथ आप के और मेरे जैसे लोग भी खत्म किये जाते हैं....

लेकिन अब मैं बतलाऊंगा जो श्री नाथपाई को खुश करने वाली चीज़ होगी

".... and to tell Hitler and the Nazis to their faces that the Social Democrâtic Party would vote against the Bill."

उस आदमी का मैं आज यहां श्रद्धा के साथ नमस्कार कर के नाम लेना चाहता हूं। आटो वेल्स उस सभा में था। तो आप ने जो मुझ से सवाल पूछा शायद आप आटो वेल्स हों, और हो सकता है, मेरे जैसा आदमी तो क्या कर पायेगा, तब तक मेरी जिन्दगी रहे या न रहे लेकिन शायद् आप आटो वेल्स बनें:

"Otto Wells spoke with moderation: "To be defenceless," ho added, "was not be without honour."

हो सकता है कि नाथपाई जी इसको वापिस ले लें। मैं आपको कह रहा हूं। यह ना कहना पड़े।

"To be defenceless is not to be without honour." Becasuse such peoples are there.

मैं संविधान को पसन्द नहीं करता हूं। मैं चाहता हूं कि आप 132 और 133 धाराओं को देखें। ये बड़ी विचित्र धारायें हैं। ऐसी बात संसार में नहीं हुई होंगी। आप तो सम्पत्ति की बात कर रहे हो। अगर किसी आदमी को फांसी की सजा हो जाए उच्च न्यायालय से और उच्च न्यायालय किसी हालत में उसको अपील करने की इजाजत न दे तो सर्वोच्च न्यायालय के लिए बड़ा कठिन हो जाता है। लेकिन अगर मामला सिर्फ बीस हजार रुपये से ज्यादा का हो तो उसको तत्काल सर्वोच्च न्यायालय के पास चले जाने का मौका मिल जाता है। कोई तुक नहीं है यह संविधान तो न जाने किन लोगों का बनाया हुआ है। बीस हजार रुपये की ज्यादा कद्र इसमें की गई है बनिस्बत एक आदमी की जान के। एक आदमी का जीवन खत्म हो रहा है,फांसी की सज़ा उसको हो रही है उसको अदालत में जाने की, अपील करने की इजाजत नहीं मिलती है लेकिन बीस हजार रुपये का मामला होता है तो अदालत में चले जाओ। इसलिए यह जरूरी हो गया है कि इस संविधान को और थोड़ा सख्त बनाया जाए।

आप कह सकते हैं। मैं तो कहूंगा कि अपने हाथ से इसको छुएं नहीं, ऐसी चीज को छूने के लिए विधि मंत्री साहब को छोड़ दें, यह उन्हीं को जंचती है बात, उन्हीं को शोभा देती है। आप इससे हट जायें।

आज मैं अपने सच्चे मन से बोला हूं। मुझे खतरा है कि कहीं शायद अगले छः महीने या साल भर में यह चीज न हो जाए क्योंकि आप जानते हो, चीन और पाकिस्तान वाले तैयारी कर रहे हैं। उनको इज़राईल की छूत लग गई है। वे मौका ढूंढ रहे हैं। जब एक दफा भारत पर हमला हुआ, आप देखेंगे कि आपके इस विधेयक को लेकर न जाने कितनी-कितनी चीजें होने लग जाएंगी। इस बात की भी बेबसी है जब मैं इस तरफ देखता हूं कि कितनी कल हम लोगों में गर्मी थी। इतनी गर्मी थी कि सामने वालों को बिल्कुल खत्म कर दो।

लेकिन वह गर्मी सिर्फ जवान की गर्मी थी, दिल की गर्मी अगर हो तो यहां से लेकर वहां तक सब हम लोग इकट्ठा हो जायें और हटायें इस कलैक्टर को भी। खाली उन पटवारियों को हटाने से काम नहीं चलेगा, चाहे वे मध्य प्रदेश के पटवारी हों और चाहे वे लखनऊ के पटवारी हों। इस कलैक्टर को हटाओ। जब तक यह यहां से नहीं हटेगा तब तक खतरा बना रहेगा। कलैक्टर माने केन्द्रीय सरकार और पटवारी माने प्रदेशीय सरकार। जब तक यह कलैक्टर नहीं हटेगा तब तक यह खतरा बना रहेगा और इसलिए मैं अपील करता हूं कि आप अपने इस विधेयक को इस वक्त वापिस ले लें।

42

कम्पनी (संशोधन) विधेयक*

सभापति महोदय, त्यागी जी ने इस कानून के हिमायती लोगों की तरफ से कहा कि इस से एकाधिकार धीरे-धीरे कम होगा क्योंकि जनतंत्रीय तरीकों पर चलना है। अगर यह बात सही होती तो मुझे इस कानून के विरोध में शायद कुछ न कहना होता। अगर धीरे-धीरे भी हम एकाधिकार के खिलाफ चलते तो बात कुछ ठीक होती। लेकिन मुझे लगता है कि इस कानून से कम्पनियां सरकार की मातहती में भले ही आ जायें, जो हैं ही, लेकिन वह मातहती और भी बढ़ेगी। जो कम्पनियां या कम्पनियों को चलाने वाले जरा भी स्वतंत्रता दिखाते हैं उन पर सरकार का कब्जा बढ़ जायेगा लेकिन जनता के हित की कसौटी पर कोई फर्क नहीं पड़ेगा।

इसलिए सब से पहले मैं फर्क करता हूं सरकार की मातहती में और जनता के हित में। इस के लिए सब से पहला प्रमाण मैं यह देता हूं कि जब से श्री कृष्णमाचारी वित्त मंत्री बने है तब से हिन्दुस्तान के हिस्से बाज़ार दाम में बढ़ते ही चले जा रहे हैं। यह अदभुत समाजवादी वित्त मंत्री है कि जिसके आ जाने के बाद से पूंजीपतियों के हिस्से बाज़ार बढ़ते ही चले जा रहे हों ...

*　　*　　*　　*　　*　　*

व्यवधान**

*　　*　　*　　*　　*　　*

जो गिरने वाली बात है उस को मैं वक्त पर लूंगा और रहस्य खुलेंगे। लेकिन अभी तो बढ़ते हुए हिस्से बाज़ार रहे हैं। इस का कुछ न कुछ कृष्णमाचारी साहब स्वयं जवाब दें कि यह होता कैसे है। यों अभी हिन्दुस्तान का पूंजीवाद तीस से चालीस सैकड़ा मुनाफा किया करता है, बड़ा पूंजीवाद। मैं छोटे-छोटे दुकानदारों की बात नहीं कहता हूं। तीस से

---

*लोक सभा वाद-विवाद, 28 अक्टूबर 1963

**श्री क॰ रा॰ भगत : गिर रहे हैं।

चालीस सैकड़ा मुनाफा बड़ा पूंजीवाद किया करता है। मुझे ऐसा लगता है कि उस से भी ज्यादा बढ़ चढ़ कर मुनाफे की आशा हो तभी हिस्से बाज़ार के दाम बढ़ते हैं। अगर चालीस सैकड़ा से भी ज्यादा मुनाफा बढ़ता है तो इसमें कोई शक नहीं है कि हिन्दुस्तान जिस बात में सब से आगे है दुनिया में, उस से और भी आगे चला जाएगा, यानी यहां की आमदनी तो बहुत कम है और खाने की चीज़ों के दाम बहुत ज्यादा हैं। आमदनी और दामों का इतनी जबर्दस्त फर्क जितना हिन्दुस्तान में है, और जिन्दगी की जरूरी चीज़ों के दामों में है, चाहे मकान हो या दूध हो, वह मैं समझता हूं, शायद ही कहीं हो। इन चीज़ों के दामों में जो फर्क है वह मैं समझता हूं कि कृष्णमाचारी साहब जितना ज्यादा हिस्से बाज़ार को बढ़ाते हैं, उतने ज्यादा वे दाम भी बढ़ते चले जायेंगे, फर्क बढ़ता चला जायेगा।

मैं मानता हूं कि जो भी हिन्दुस्तान का वित्त मंत्री हो उसे जब तक यह पूंजीवादी रहते हैं तब तक पूंजीपतियों में कुछ थोड़ा बहुत भरोसा बढ़ाना ही पड़ेगा। लेकिन अब यहां गिरने वाली बात के सिलसिले में थोड़ा सा कह दूं कि सब पूंजीपति खुश नहीं रहते हैं, कुछ पूंजीपति खुश रहते हैं। मैं जानना चाहता हूं कि ऐसी कौन सी बात है कि वित्त मंत्री साहब जब बोलते हैं, भाषण देते हैं या कोई इस तरह का कानूनी मसविदा पेश करते हैं तब कुछ हिस्से बाज़ार पर असर पड़ जाया करता है। अगर सब पूंजीपतियों को मुनाफा या नुक्सान हो तो मुझे कोई बहुत ज्यादा नहीं कहना होता। लेकिन कुछ पूंजीपतियों को नुक्सान होता है, कुछ को फायदा होता है। तब सब से पहले मैं हुजूर की सेवा में यही बात रखूं कि इसी बात की जांच हो जाये कि क्या यह हिस्से बाज़ार पर असर पड़ा करता है। कभी कोई कानूनी मसविदा आया, कभी कोई भाषण हुआ कि हिस्से बाज़ार नीचे आने लग जाते हैं, ऊपर जाने लग जाते हैं, नाचने लग जाते हैं, कूदने लग जाते हैं, फादने लग जाते हैं। यह सही है कि हिन्दुस्तान का वित्त मंत्री जब तक पूंजीपति रहते हैं तब तक पूंजीपतियों को जरूर कुछ न कुछ देंगे, नहीं तो सारी व्यवस्था नष्ट हो जायेगी। लेकिन कुछ को दें, चाहे जानबूझ कर न सही, तो यह भी हो सकता है कि उन के भाषण से, कुछ का फायदा हो, तो भी ज़रा सोचने वाली बात हो जाती है ..

*** *** ***

व्यवधान@

*** *** ***

सिर्फ सट्टा नहीं। अगर सट्टा ही होता तो मैं और आप भी जा कर अपनी तक्दीर आजमा लेते। लेकिन श्री कृष्णमाचारी के ज़रिये दोस्ती हो तो शायद अपनी तक्दीर आज़माने में कुछ ज्यादा सुविधा हो जायेगी।

*** *** ***

अब यह जानना पड़ेगा कि आखिर इस कानून के पास हो जाने के बाद क्या बुनियादी फर्क आयेगा। बुनियादी फर्क तो कुछ नहीं, लेकिन वास्तव में फर्क आयेगा, इस माने में कि एक तो नीम अदालती जांच के लिये ट्राइब्यूनल बन जायेगा और एक प्रशासन को ठीक करने के लिये बोर्ड बन जायेगा। बुनियादी तौर पर सिर्फ दो चीजें हैं इस कानून में, ट्राइब्यूनल और बोर्ड। अब इस ट्राइब्यूनल और बोर्ड के बन जाने के बाद भी मैं कुछ चीज़े वित्त मंत्री के सामने और सदन के सामने रखना चाहता हूं कि क्या उनमें कोई फर्क पड़ेगा।

आखिर क्या बात है कि यह कम्पनियां बदइन्तज़ामी करती हैं और चीज़ों के दाम बढ़ते हैं। इस के दो बड़े कारण मैं आप के सामने रखूंगा। एक तो है चन्दा, कानूनी चन्दा, और एक वह जो ज़रा छिपा कर दिया जाता है। ऐसे सब चन्दे इस का कारण हैं, चाहे उसे जिस रूप में भी रखा जाए। मैं एक कम्पनी का जिक्र करूंगा जिस का वित्त मंत्री से पहले बहुत ताल्लुक रहा है। वह कम्पनी उन के लिये ज़रा कुछ दुर्भाग्यपूर्ण साबित हुई। वह कानपुर वाली ब्रिटिश इंडिया कारपोरेशन है, और अब भी उस में कुछ अजीब बातें हो रही हैं। इस वक्त जो उस के मैनेजमेंट एजेंट हैं उन्होंने कांग्रेस को अपने चुनाव में कानूनी तौर पर 20 या 25 लाख रुपया दिया, सिर्फ उसी कम्पनी ने नहीं, उस की जितनी कम्पनी है, और गैर-कानूनी तौर पर जो रुपया दिया गया वह मुझे मालूम नहीं है, हां, कुछ अन्दाज़ मुझे ज़रूर बतलाया गया। एक घटना यह हुई और दूसरी घटना हुई कि बाद में जिस के हाथ में उस कम्पनी के हिस्से थे उन्होंने हिस्से वालों की सभा में अपना वोट इस्तेमाल कर के वजोरिया साहब को उस कम्पनी का मालिक बनवा दिया, इन्तज़ाम करने के लिये खड़ा कर दिया। यह दो घटनायें हैं। अब आप चाहे जितनी ट्राइब्यूनल बना दें, बोर्ड बना दें, मैं आप से पूछना चाहता हूं कि इन दो घटनाओं को आप कैसे बदलेंगे। बदलेंगे भी नहीं, इच्छा भी नहीं होगी और बदल सकेंगे भी नहीं, क्योंकि पहले के लिये

@श्री त्यागी जब तक स्पेकुलेशन रहेगा तब तक वह जरूर होगा।

आप कह देंगे कि वह तो चन्दा है। कम्पनी कानून है और कानून के मुताबिक कम्पनी चन्दा दे ही सकती है, इसलिये उसने बिल्कुल संगत या कानूनी काम किया। दूसरी तरफ कह देंगे कि जीवन बीमा निगम को पूरा अधिकार है कि वह मामले की जांच कर के जिस को वोट देना चाहें दे दें। यह दोनों घटनायें जब अलग-अलग जांचेंगे तो कानून संगत हो जायेंगी, न उसमें बोर्ड आयेगा न ट्राइब्यूनल आयेगा। लेकिन वास्तविकता यह है कि यह दोनों घटनायें एक दूसरे से जुड़ी हुई हैं।

मैं खुद मानता हूं कि जब तक पूंजीवाद है, पूंजीपतियों को अधिकार है कि वे अपने मन के दल को चन्दा दिया करें, और इसलिये अगर वे सरकारी पार्टी को चन्दा देते हैं तो इसमें किसी के लिये रोने गाने की कोई बात नहीं है। वह समझते हैं कि उससे हमारा पूंजीवाद पनपता है, पनप रहा है। मैं त्यागी जी से कहना चाहता हूं कि एक तरफ तो इतने अच्छे-अच्छे चन्दे ले लेते हो और दूसरी तरफ अपनी पार्टी को समाजवादी पार्टी कहते हो... *** *** ***

...मैं कह रहा था कि पूंजीपतियों को अधिकार है कि वह अपने मन के दल को चन्दा दिया करें। पश्चिमी यूरोप के देशों में होता भी है ऐसा। लेकिन पश्चिमी यूरोप की राजनीति इतनी ईमानदार है कि वहां के पूंजीपतियों की पार्टियां अपने चरित्र को छिपाने के लिये समाजवाद की ओढ़नी नहीं ओढ़ लिया करती।

इसी के साथ मैं एक बात और कहना चाहूंगा कि पूंजीपतियों से आप चन्दा ले सकते हैं, सब पूंजीपतियों से, लेकिन कुछ पूंजीपतियों से ऐन मौके पर चन्दा लेना, जब कि वे फंस जायें और कुछ ऐवजी की बात हो, यह बड़ी खराब बात हुआ करती है। इसलिये मैं बुनियादी तौर पर कहना चाहता हूं कि जहां कहीं चन्दे में कोई ऐवजी चीज आती हो, यानी इस हाथ लिया और उस हाथ पाया, वह चन्दा बड़ा खतरनाक हुआ करता है।

मैं इस बात को छोड़ता हूं और एक किस्सा सुनाता हूं उसी कानपुर शहर का। वहां एक कपड़ा कमेटी है। वह छोटे पूंजीपतियों की है और मध्यम पूंजीपतियों की है। वहां एक बहुत बड़े मंत्री साहब गये थे। उस कम्पनी को कम्पनी कानून के मुताबिक ज्यादा चन्दा देने का अधिकार नहीं था, लेकिन उसने 50 हजार रुपये का चैक जाते ही दे दिया। उस का नाम है कपड़ा कमेटी।

* * * *

व्यवधान*

* * * * * *

---

*श्री स० मो० बनर्जी: 51 हजार।

51 हजार में एक आध हज़ार कम कर के बतलाता हूं बनर्जी साहब, ताकि पकड़ा न जाऊं। कहिये तो मैं उस मंत्री का नाम बतला दूं।

* * * * * *

व्यवधान*

* * * * * *

बतलाना अच्छा है, क्योंकि वित्त मंत्री साहब तो बेचारे फंस. जाते हैं और वह बच जाते हैं।

* * * * * *

व्यवधान**

* * * * * *

इसलिये कि वे प्रधान मंत्री स्वयम् हैं, प्रधान मंत्री गलत ढंग से रुपया लेते हैं।

* * * * * *

व्यवधान@

* * * * * *

प्रधान मंत्री साहब गैर कानूनी ढंग से रुपया लेते हैं चन्दे में और कम्पनी के कानून को तोड़ते हैं। कानपुर से शिकायतें आती हैं वित्त मंत्री के पास, लेकिन किसकी हिम्मत है कि प्रधान मंत्री की पूंछ जा कर उमेठे। कौन-सा ट्राइब्यूनल यह काम करेगा, कौन बोर्ड यह काम करेगा। तो सब से पहले मुझे यह कहना है कि चन्दे के मामले में इस कानून के पास हो जाने के बाद भी कोई फर्क नहीं आयेगा, और अगर ऐसी बात रही तब तो हमको जरूरी चीज़ों के दाम बढ़ा कर देने ही पड़ेंगे। इस तरह के सैकड़ों मामले बतला सकता हूं कि और कम्पनियों के साथ प्रधान मंत्री किस तरह से जुड़े हुए हैं, अपनी निधियों में, अपने चन्दों में और अपने ट्रस्ट्स में। यहां ट्रस्ट्स का भी बड़ा जिक्र हुआ। तो सिर्फ पूंजीपतियों के ही ट्रस्ट्स नहीं हुआ करते, समाजवादी राजनीतिज्ञों के भी

---

*एक माननीय सदस्य: नहीं, नाम मत बतलाइये।

**Mr. Chairman: It would not be proper to mention names here.

@श्री स० मो० बनर्जी: ठीक है, प्रधान मंत्री हैं।

Mr. Chairman: Order, Order. He has got to preserve decorum.

ट्रस्ट्स हुआ करते हैं अपनी राजनीति को चलाने के लिए और देश के लोगों को अपने साथ करने के लिये, पैसे का इस्तेमाल कर के। उन सब का असर पड़ा करता है चीज़ों के दाम पर।

इसी तरह से मैं दूसरी तरफ आप का ध्यान खींचना चाहूंगा। हो सकता है कि सेलेक्ट कमेटी इस को देखे। वित्त मंत्री खुद इस को देखें। वह है रिश्तेदारों का मामला। सबसे पहले पूंजीपति खुद अपने रिश्तेदारों को कानून तोड़ कर कम्पनियों का एजेन्ट बनाते हैं अथवा बड़ी-बड़ी नौकरियों पर रखते हैं। इसका कोई उपाय अब तक नहीं निकल पाया। मैं कया, सभी लोग जानते है कि आज हिन्दुस्तान में ऐसा कोई पूंजीपति नहीं है, बड़ा पूंजीपति, जो अपने रिश्तेदारों को, दो-दो, चार-चार, पांच-पांच पीढ़ियों के रिश्तेदारों को इन कम्पनियों की मार्फत जीविका नहीं दिलाता। अगर जीविका जाने दो तो काफी दौलत नहीं दिलाया करता, और वह भी जो कम्पनी कानून है उसके खिलाफ लेकिन वह चीज़ रुक नहीं पा रही है, क्योंकि रोके कौन। मंत्रियों के भी रिश्तेदार होते हैं कि नहीं। वह भी उसी के साथ गुथे होते हैं। बहुत से मंत्रियों के रिश्तेदार ऐसे हैं। मैं जानना चाहूंगा कि इस वक्त केन्द्रीय मंत्रालय में कौन ऐसा मंत्री है जिस के दो पीढ़ी तक के रिश्तेदारों में कोई किसी कम्पनी के साथ जुड़ा हुआ न हो। यह जुड़ान इतनी खतरनाक हो गई है कि आज हिन्दुस्तान की हर एक कम्पनी की, जो कि सरकार के साथ मिल जुल कर चलना चाहती है, कसौटी यह है कि वह सरकार के मंत्रियों और उन के दो पीढ़ी तक के रिश्तेदारों को खुश कर के चलना चाहती है या नहीं, उसके ख़िलाफ कोई कार्रवाई नहीं की जा सकती। रिश्तेदार वाला मामला एक सिद्धान्त के पीछे छिपा दिया जाता है और कह दिया जाता है कि आखिर मंत्रियों के ऊपर ही क्यों वार किया जाये। जिस तरह से सब नागरिक हैं उसी तरह से मंत्रियों के रिश्तेदारों और लड़कों को भी मौका होना चाहिये कि वे अपनी तकदीर जगह-जगह आज़मायें। बात सुनने में किसी हद तक ठीक लगती है, लेकिन यह बात वहां ठीक हो सकती है जहां आर्थिक व्यवस्था से कमी दूर हो गई हो। जहां कमी है, जहां साधन कम हैं, पैदावार कम है व्यापार के ऊपर एकाधिकार है और मंत्री और सरकार अपने प्रशासन, कानून और हुक्म से इधर या उधर चीज़ों को झुका सकते हैं, वहां पर मंत्रियों की दो पीढ़ियों तक के रिश्तेदारों को कभी किसी कम्पनी के पास फटकने नहीं देना चाहिये।

जब तक कोई कम्पनी कानून ऐसा नहीं बनता जिसमें मंत्रियों के रिश्तेदारों को कम्पनी के नज़दीक नहीं फटकने दिया जाता, तब तक मैं कहूंगा कि इस कम्पनी कानून का कोई मतलब नहीं रह जाता है, और यह कहना कि सब को बराबर के नागरिक अधिकार होने चाहियें कोई मतलब ही नहीं रखता है, क्योंकि यह मामला बराबर से नहीं चलता। इससे असल में विशेषाधिकार मिल जाया करते हैं। साधारण आदमी को,जो कम्पनियां हैं उनमें

कहां-कहां वे साधन मिल पायें या अधिकार मिल पायें, जो मंत्रियों और उनके रिश्तेदारों को मिल जाया करते हैं?

और इसी तरह से मैं आप के सामने एक और विचार रखना चाहूंगा कि आज की दुनियां में संगठन, अनुभव और साधन का बड़ा जबरदस्त हाथ है। सारी दुनियां में कम्पनियां बड़ी से बड़ी होती चली जा रही हैं, चाहे वह रूस हो और चाहे वह अमरीका हो। खाली फर्क यह है कि रूस में अधिकार रहता है जनता का सरकार द्वारा और अमरीका में अधिकार रहता है कुछ बड़े-बड़े लोगों का, और यह बात हिन्दुस्तान में भी होना बिल्कुल प्राकृतिक है, इसे कोई रोक नहीं सकता चाहे जो भी कानून लाइए। मुझे बताया गया कि शायद उमानाथजी ने कहा, और बिल्कुल सही भी कहा, कि आप चाहे जितने भी कानून बनाते चले जाइए इनका कोई असर नहीं पड़ सकता क्योंकि इसमें गुथे हैं बड़े-बड़े संगठन। अनुभव, संगठन और साधन के द्वारा ये सब अपने संगठनों को बढ़ाते चले जा रहे हैं।

क्या बात है कि बिड़ला साहब को सब चीजें मिलती चली जाती हैं? उसका कारण है कि इनके पास संगठन है, ये बड़े-बड़े लोगों को नौकर रख लेते हैं। सब अनुभव और साधन इनके पास हैं। इसलिए सब चीजें उनके कब्जे में चली जाती हैं। इसको आप रोक नहीं सकते।

और इसके अलावा, दूसरी बात मैंने बताई, सरकार के साथ नजदीकी रिश्तों का मामला। जितना वह चला सकते हैं उतना कोई छोटा-मोटा पूंजीपति नहीं चला सकता।

जितनी संगठनों और साधनों के कारण सुविधाएं मिलती जाती हैं, वैसे-वैसे बड़े-बड़े निगम, बड़े-बड़े कारपोरेशन और निजी व्यापार बनते जा रहे हैं। और मैं कहना चाहता हूं कि इनको भी आप रोक नहीं सकते, इनको आप खत्म नहीं कर सकते। अमरीका ने तो न जाने कितने ट्रस्ट विरोधी कानून बनाए, लेकिन ट्रस्ट मिटते नहीं, ट्रस्ट बढ़ते ही चले गए केवल कागज पर उनका रूप कुछ इधर-उधर हो गया, जैसे कुछ कम्पनियों के नाम इस तरह के रख दिए गए जैसे स्टेनवाक, स्टेंडर्ड आइल कम्पनी, स्टेंडर्ड वेक्युम आयल कम्पनी आदि। तो कागज पर कुछ बदलाव हो गया लेकिन वह ट्रस्ट चलते ही रहे। इसलिए मैं यह सुझाव देना चाहता हूं, और इस सुझाव के पीछे सारी सरकार का बदलाव जरूरी है। मैं भी कुछ थोड़ा सा नादान आदमी हूं। इस सरकार से मैं बोल रहा हूं। वह तो क्या बदलेगी, लेकिन जनता को कहना चाहता हूं कि जब तक यह सरकार नहीं बदलती और वह जनता के हितों का प्रतिनिधित्व नहीं करती, तब तक यह नामुमकिन होगा कि बड़े-बड़े संगठनों को जनता के नियंत्रण में या जनतंत्रीय मातहती में लाया जा सके। ये संगठन बढ़ते चले जाएंगे। कागज पर जो कुछ भी हो, ये अपना काम करते चले जाएंगे, उनको

कोई रोक नहीं सकता। इनको रोकने का एक मात्र उपाय यही है कि हिन्दुस्तान में ऐसी सरकार बने जो एक दृढ़ निश्चय कर ले और एक मर्यादा बना ले और उस मर्यादा के बाद जीवन स्तर या आमदनी को न बढ़ने दे। जब तक आप अपनी आमदनी और जीवन स्तर को बनाए रखेंगे और बढ़ने देंगे तब तक कम्पनी और सरकार की एक बढ़िया गुत्थी चलती रहेगी और बहुत सुदृढ़ होगी क्योंकि वह स्वार्थ की और दल के परमार्थ की गुत्थी होगी।

आप कानून बहुत बनाते चले जा रहे हैं लेकिन उनका परिणाम कुछ नहीं होता इसलिए मैं आप से निवेदन करूंगा कि इस पर जो कमेटी विचार करे वह पूरे बुनियादी तौर से सोचे।

निवारक नजरबन्दी (जारी रखना) विधेयक*

सभापति महोदय, आजादी के पन्द्रह वर्षों में मुझे कांग्रेसी नेताओं और मंत्रियों को नजदीक से देखने का मौका नहीं मिला। इधर तीन-चार महीनों से थोड़ा सा उन्हें देख रहा हूं। खास तौर से दो गृह मंत्रियों को मैंने देखा और मेरा मन कुछ घबरा रहा है। डंडा जिस के हाथ में है और जो डंडा चलाता है उसे मन का और वाणी का नम्र होना चाहिये। मैं नहीं जानता कि श्री लाल बहादुर शास्त्री मन के नम्र थे या नहीं लेकिन वाणी के नम्र थे। श्री नन्दा मन और वाणी दोनों के बड़े तेज हैं। हम को, जिन पर डंडा चलाया जाता है, अधिकार है कि हम गुस्सा करें, हमारे लिये यह स्वाभाविक है, चिल्लाएं, लेकिन जिनके हाथ में डंडा है उनका कर्तव्य है कि वे नम्र रहें। उनके हाथ में राज दंड है। मैं नहीं कह सकता कि दोनों में कौन अच्छा है कौन बुरा है। शायद नन्दा जी ज्यादा अच्छे हैं, क्योंकि मन और वाणी जब दोनों ही क्रूर हैं, तो बगावत जल्दी हो जाया करती है। लेकिन मैं इस बहस में न पड़ कर भी इतना ही कहना चाहूंगा कि गृह मंत्री को बहुत सावधान रहना चाहिये, कोशिश करनी चाहिए हमेशा कि अपने मन में और वाणी दोनों से नम्र रहें। और इसीलिये मैं इतना कहूंगा कि नजरबन्दी का कानून बहुत जरूरी है कि सरकार अपनी पुलिस को, अपनी दंड शक्ति को, अपने गृह मंत्री को, कुछ थोड़ा सा काबू में रखे। यह नजरबन्दी कानून मुझे घबरा देता है, खास तौर से उन हालात को देख कर जो मैंने यहां पिछले तीन महीनों में देखे हैं। वैसे मैं अहिंसा वाला आदमी हूं। मैं आप को बता दूं कि सन् 1942 में अंग्रेजों की गाड़ियां उलटते वक्त मैं एक दुविधा में फंस जाता था कि गाड़ियां उलटी जाए तो कौन सी उलटी जाएं, मालगाड़ियां या सिपाहियों वाली गाड़ियां। मैं सिपाहियों वाली गाड़ियों को उलटने के खिलाफ रहता था, लेकिन मुझे अफसोस के साथ कहना पड़ता है कि मेरे अहिंसात्मक दिमाग पर इधर कुछ परछाइयां, चाहे दो चार क्षण के लिए हों, पड़ने लगी हैं।

यह नजरबन्दी कानून जो बार-बार सरकार यहाँ लाती है यह वास्तव में ताजीरात हिन्द की एक दफा बन गया है, चाहे वह एलानियां यह कहें या न कहें। इस का सम्बन्ध संविधान की धारा 22 और 21 से है लेकिन गृह मंत्री ने अपने भाषण में कुछ ऐसी बातें कहीं कि अगर मुझे ताकत होती तो मैं उन को संविधान भंग करने के अपराध में जेल देता और उन के ऊपर मुकदमा चलाता। मैं तो नजरबन्दी का कानून ही नहीं रखता, इसलिये वह सवाल नहीं उठता, लेकिन मैं उन पर मुकदमा चलाता क्योंकि उन्होंने कहा कि संविधान के नागरिक अधिकारों की कुल धाराओं को देखो तो मालूम होगा कि एक धारा दूसरी धारा को काटती है। अगर संविधान का इस तरह से मतलब निकाला जायेगा तब तो संविधान बिल्कुल खत्म हो जायेगा। नागरिक अधिकारों की धाराएं एक दूसरे को

*लोक सभा वाद-विवाद, 18 दिसम्बर, 1963

काटा नहीं करतीं वे तो एक दूसरे की पूरक बना करती है। 21 और 22वीं धाराएं किसी और धारा से सम्बन्धित नहीं हैं किसी और धारा की कोई ताकत नहीं है कि 21 और 22वीं धाराओं में दिये गये अधिकारों को थोड़ा सा भी कम कर सके 22वीं धारा खुद उसको थोड़ा बहुत कम करती है

*** *** ***

.....वह* 19वीं धारा के बारे में कह रहे थे। उसका सम्बन्ध तो सुरक्षा से, दूसरे देशों के सम्बन्धों आदि से है। उनका कोई सम्बन्ध नजरबन्दी से नहीं है। नजरबन्दी का कानून तो अपनी जगह अलग है। हम को पूरा अधिकार है स्वतंत्र रहने का, 24 घंटे के अन्दर मजिरेट के साम्ने जने का। तो सिर्फ इसी धारा में जो शर्त लगी हुई है उसे हम को लेना चाहिए।

फिर उन्होंने कहा कि जनतंत्र का शिशु पेड़ है। इस को घेर कर रखना है। लेकिन जो घेरा वह लगा रहे हैं वह उन को बचाता नहीं वह तो अमर बेल है जो उस पेड़ को खा जायेगी। अगर उस पड़े को वह बनाना चाहते हैं तो उसमें खाद दें उसको सूरज की रोशनी दिखलावें। उसको स्वतंत्रता की पूरी-पूरी ताकतें दें तब यह पेड़ पनपेगा। और आज जो नजरबन्दी कानून लाया जा रहा है उसके हिसाब से तो यह पेड़ मुरझा गया है और जो बचा है वह भी पता नहीं कितने दिन चलेगा।

*** *** ***

.....यहां तक तर्क दिया गया कि इतिहास को देखो, इंगलैंड और यूरोप के इतिहास को देखो, तीन सौ बरस में उन्होंने नागरिक अधिकार हासिल किये थे। अगर आप इतिहास की चर्चा करोगे तो आपको इस बात में भी जाना होगा कि इंगलैंड ने कितने राजा, रानियों, मंत्रियों और प्रधान मंत्रियों को फांसी पर लटका कर अपने अधिकार हासिल किये थे। अगर आप उस इतिहास की पुनरावृत्ति करना चाहेंगे तो उनके बहुत बुरे नतीजे निकलेंगे। हमें तो अपना इतिहास अलग से बनाना है। हमने यह राज्य सत्याग्रह, सिविल नाफरमानी, के जरिये बनाया है। सिविल नाफरमानी से बने हुए राज्य के अलग नियम होते हैं, अलग कानून होते हैं, वे कानून वैसे नहीं हो सकते जैसे कि अमरीका में और इंगलैंड में हैं। इस तरफ भी श्री नन्दा को गौर करना चाहिए।

नागरिक अधिकारों और कानून का लगातार कटान हिन्दुस्तान में होता जा रहा है। जिस तरह से बाढ़ का पानी, नदियों का पानी मिट्टी को काटता चला जाता है, उसी तरह से ये सब कानून हिन्दुस्तान के लोगों के नागरिक अधिकारों को लगातार काटते चले जाते हैं। एक तो यह नजरबन्दी का कानून है, दूसरा भारतीय सुरक्षा कानून है, उसमें कोई ताकत ही नहीं रह जाती नागरिकों की। फिर उसी के साथ-साथ जब यह लगातार सिलसिला चलता है, फिसलन और कटान का, तो प्रायः हर मामले में लोग, और खास तौर से आप के जो अफसर हैं वे आलसी बन जाते हैं। प्रशासनिक और मानसिक आलस उन में आ जाता

---

*श्री गुलजारी लाल नन्दा

है। किसी मामले को वह तैयार नहीं करते, किसी का अध्ययन नहीं करते क्योंकि उनको किसी बात का डर नहीं रहता है। उनको इस बात का डर नहीं रहता है कि हम अदालत में फंस जायेंगे या मुकदमा हार जायेंगे। जब यह डर होता है तो आदमी सचेतनता से काम काज करता है। लेकिन जब यह डर हट जाता है तो वह यह सोचता है कि हम किसी आदमी को गिरफ्तार कर लें, किसी को नजरबन्द कर दें, हम को कोई मुकदमा तो साबित करना नहीं है। तो ऐसे कानूनों से अफसर मानसिक और प्रशासनिक ढंग से आलसी बन जाया करते हैं, और कई बार तो ऐसा हुआ है, अक्सर हुआ है कि शासन चलाने वाले लोग बदले की भावना से इस कानून का इस्तेमाल करते हैं। मुझ पर यह चीज हो चुकी है। मुकदमे में जब कलक्टर हार गया तो झट से उसने मुझे नज़रबन्दी कानून के अन्तर्गत गिरफ्तार कर लिया, हालांकि वह नजरबन्दी थोड़े ही समय रही, क्योंकि उसके बाद सज़ा भी हुई और भी वाक्यात हुए।

जहां तक कानून का कटान हो रहा है कि मैं गृह मंत्री को बताना चाहता हूं कि आजकल अपने देश में खून और कत्ल न केवल राजकीय मामलों को हल करने के लिए इस्तेमाल हो रहे हैं, बल्कि निजी मामलों में भी यह अधिकार बन गये हैं। खून बहुत हो रहे हैं निजी मामलों के लिए....

*** *** ***

....अभी इतना ही जान लीजिये कि बड़े लोग अपने निजी सम्बन्धों को चलाने के लिए खून तक का इस्तेमाल करने लग गये हैं।

और एक जगह तो दो विद्यार्थियों को, जिन्होंने अपनी जाति से अलग कुछ थोड़ा बहुत प्रेम किया था, जोकि बहुत अच्छी बात थी, खत्म कर दिया गया, क्योंकि उन लड़कियों के बाप जो उनके मास्टर भी थे, उनको यह पसन्द नहीं था। तो जब कानून की इस तरह कटान हो तो यह बात नागरिकों के मन में खास तौर से जो बड़े लोग हैं उनके मन में जम जाती है कि हम जो चाहें सो कर सकते हैं...

*** *** ***

कानून का लगातार कटान हो रहा है। और अराजकता केवल जनता की नहीं हुआ करती। अराजकता सरकार की हुआ करती है। और इस समय सरकार की तरफ से इतनी अराजकता है कि जो कायदे कानून हैं उनका बिना पक्षपात के इस्तेमाल तक नहीं हो पाता। यह भ्रष्टाचार आखिर क्या चीज़ है, यह नजरबन्दी का जो कानून है यह कानून को काट रहा है।

*** *** ***

यह जो नजरबन्दी का कानून है, मैंने बताया कि किस तरीके से अफसर लोग दिमागी आलसी बन जाते हैं। हमें गिरफ्तारी के खिलाफ अधिकार मिला हुआ है, जब उस अधिकार को आप खत्म कर देते हैं और गिरफ्तार हम कर लिये जाते हैं तो जितने

कलक्टर, कमिश्नर और दूसरे अफ़सर हैं वे आलसी बन जाते हैं। खुद गृह मंत्री आलसी बन जाते हैं, प्रधान मंत्री आलसी बन जाते हैं और उस आलस के कारण फिर समाज़ में ऐसी व्यवस्था छा जाती है कि कानून का राज्य नहीं रह जाता है। यह नजरबन्दी कानून आप खत्म कीजिये उसके बाद जितने लोग हैं सब चंट होंगे। जिस तरह सितार के ढीले तार कसने से वह अच्छा बजा करता है उसी तरह से यह सरकार नजरबन्दी कानून खत्म कर देने से अच्छा बजने लगेगी। अभी सितार ढीला पड़ गया है और यह नजरबन्दी कानून उस सितार को ढीला बनाता जा चला रहा है। यह सिद्धान्त है जिस पर कि इस सरकार को बहुत अचछे तरीके से गौर करना चाहिए।

खास तौर से सरकारी अराजकता की मैं बात करूंगा क्योंकि यहां पर बहुत ज्यादा जिक्र किया गया है लोगों की अराजकता का, गुंडों का, कम्यूनिस्टों का और अहिंसकों का। मैं कम्यूनिस्टों का तरफदार नहीं हूं। कम्यूनिज्म और साम्यवाद को मैं नापसन्द करता हूं हालांकि कम्यूनिस्टों के बारे में जो व्यक्ति हैं थोड़ा बहुत, मैं कुछ और ढंग से सोचने लगा हूं जितना कि मैं समझो 10—15 वर्ष पहले सोचा करता था। एक जमाना था जब कि मसानी साहब और मैं दोनों एक दूसरे की बात को सुना करते थे। अब मैं उनकी बात थोड़ी बहुत तो ज़रूर सुनने लगा हूं और अगर वह मेरी भी बात सुनें तो ठीक होगा। वह कम्यूनिज्म या साम्यवाद से तो चाहे नफ़रत करें लेकिन व्यक्तिगत कम्यूनिस्टों से नफ़रत न करें। इस तरीके से कहना कि यह नजरबन्दी इसलिए जरूरी है कि कम्यूनिस्टों को गिरफ्तार करके रखा जाये, ठीक नहीं है। अगर आप चाहो तो कम्युनिज्म को, साम्यवाद को नजरबन्द करो लेकिन कम्यूनिस्टों को नज़रबन्द मत करो। यह बहुत बड़ा फर्क होता है।

मुझे यहां पर श्री त्रिवेदी जी की तारीफ़ कर देनी है हालांकि जो कम्यूनिस्टों का सिलसिला है उसको देखते हुए तो यह कहना पड़ता है कि आज उनका रवैया बहुत कुछ सरकार के साथ चला जा रहा है। मुझे कल यह देख कर हैरत हुई कि श्रीमती रेणु चक्रवर्ती बजाय इसके कि हम सदस्यों के अधिकारों को बढ़ाये इस तरह के व्यवस्था के प्रश्न उठाया करती हैं जिन से सदस्यों के अधिकार कुछ कम हो जायें। मान लीजिये कि अगर कल मुझे अपना मौखिक बयान देने दिया गया होता तो कुछ सदस्यों के अधिकार बढ़ जाते। और उनके भी कुछ अधिकार बढ़ जाते। जब वह स्कूल, कालिज में पढ़ायेंगी तब तो इंगलिस्तान का उदाहरण देंगी कि किस तरीके से सदस्यों ने अधिकार बढ़ाये लेकिन यहां नहीं चाहतीं कि सदस्यों के अधिकार बढ़ें।

*** *** ***

मैं इसलिए इस अराजकता के बारे में बहुत जोर से कहना चाहता हूं कि सरकार में अराजकता और प्रशासन में बहुत ज्यादा अराजकता फैल गई है। कायदे कानून का बहुत

कम खयाल रखा जाता है। उसका इस्तेमाल नहीं करते। वह वृत्ति नहीं रह गयी और नतीजा यह होता है कि वह सारे देश में यह भावना फैल गई है कि स्थिरता जिस तरीके से भी हो बना कर रखो। यह स्थिरता क्या है? इसके लिए कुछ थोड़ा सा आपको 1000—1500 वर्ष के इतिहास की तरफ ध्यान देना होगा। हिन्दुस्तान बहुत स्थिर हो गया है इतना स्थिर हो गया है कि आधा मुर्दा बन गया है। आधा तो मैं यूं ही कहे दे रहा हूं पूरे का पूरा करीब मुर्दा हो चुका है। यह देश पिछले 1000-1500 वर्ष में एक बार भी अन्दरूनी ज़ालिम के खिलाफ़ विद्रोह नहीं कर पाया है। जब कभी उसने थोड़ा बहुत विद्रोह किया है तो विदेशी आक्रमण या विदेशी राजाओं के खिलाफ किया है लेकिन अन्दरूनी अत्याचारों के खिलाफ देश ने विद्रोह नहीं किया है। इसलिए बहुत ज्यादा इसको स्थिर मत बनाओ। मैं तो यहां यह भी कहना चाहूंगा कि थोड़ी बहुत स्थिरता जनता में आये तो यह अच्छा होगा। हमारी जनता मुर्दा बन चुकी है। उसको अस्थिर बनाओ, उसे चंचल बनाओ। उसमें कुछ क्रियाशीलता लाओ। अगर कुछ गड़बड़ करना चाहे तो गड़बड़ भी वह करे क्योंकि इस गड़बड़ से उसमें कुछ तो जान आयेगी। खाली सवाल उठता है कि यह गड़बड़ कैसी हो यह गड़बड़ हिंसक हो या अहिंसक हो, तो मैं अपनी राय साफ बता दूं कि वह गड़बड़ अहिंसक हो तो अच्छा होगा क्योंकि हिंसक गड़बड़ी में मामले और ज्यादा बिगड़ जाया करते हैं। इसलिए मैं गृह मंत्री जी से एक निवेदन करना चाहूंगा और वह यह कि वह ताव में न रहा करें और ताव में रहने की बजाय वह थोड़ा बहुत नम्र होकर बोला करें.......

*** *** ***

कुछ तरीके ऐसे हैं जिन पर अगर आप ध्यान रखें तो अच्छा होगा। सिर्फ अपनी वाणी पर ही नहीं बल्कि अपने मन के ऊपर भी आप अगर ध्यान रखें तो बेहतर होगा। खैर वह एक अलग बात है। अभी मैं एक दूसरी चीज कह रहा था और वह यह कि अराजकता से मत घबराईये। अपने घर के अन्दर अपनी सरकार के अन्दर अराजकता आती है तो उसे देख कर मत घबड़ा जाईये। अगर मान लीजिये जनता के अन्दर कुछ पत्थर फैंकने, कुछ गोली चलाने, कुछ गुंडई करने की भावना आती है और वह उसका इस्तेमाल करती है तो ठीक है आप अपने डंडे का इस्तेमाल करो लेकिन मेरा जैसा आदमी जो कानून तोड़ता है, सत्याग्रह करता है, इस समाज को बदलना चाहता हो और देश को जानदार बनाना चाहता हो क्योंकि हम समझते हैं कि अगर देश के अन्दर के जालिमों के खिलाफ हम लड़ते रहेंगे तब हम बाहरी आक्रमण के खिलाफ भी अपनी कोई कार्यवाही कर सकेंगे, हमारे सम्बन्ध में जरा बात दूसरे ढंग से देखना।

सभापति महोदय, अब मैं खाली एक बात साफ कर देना चाहता हूं क्योंकि मेरे बारे गलतफहमी फैल गयी है जैसे कि मैं कोई बहुत निराश हूं। मैंने यहां पर कई बार कहा है

कि यह सरकार इतनी जालिम है और हम इतने निकम्मे हैं कि हम इसे खत्म नहीं कर पा रहे हैं। वह तो मेरे विश्वास को बतलाता है कि आखिर इतना होते हुए भी में इस बात में लगा हूं कि यह सरकार पलटी जाय। यह मेरा विश्वास है और मेरी आशा है कि यह सरकार खत्म हो। आज का नजरबन्दी जैसा कानून जो कि 22 वीं धारा को खत्म करने वाला है उस नजरबन्दी कानून को बार बार हर दफे हम ताजी रात हिन्द जैसी किताब पर ला रहे हैं तो यह मेरा विश्वास है कि हिन्दुस्तान की जनता जरूर उठेगी, बलवा करेगी क्यों कि उसके बिना इस देश का पुनर्जीवन नहीं है। सवाल खाली इतना है कि वह हिंसा से होगा या अहिंसा से होगा। परछाई हमारे बहुत ज्यादा दिमागों पर मत आने दो क्योंकि उसका नतीजा कुछ खराब हो जाता करता है.....

*** *** ***

....मैंने आपसे कहा डंडा हम पर चलता है। डंडा चलाने वाले आप है इसलिए आप शान्त रहो। हमको चिल्लाने का हक है। हमको गुस्सा करने का हक है। शान्त रह कर अपना डंडा चलाते चलो, अलबत्ता चलाते वक्त जरा यह देखना कि कायदे कानून से चलाओ कायदा इसमें नहीं है। नजरबन्दी का कायदा खत्म करो। उसके बाद आप देखेंगे कि खुद आप का आचरण, आपका दिमाग आपकी बातें और आपका सोचना शुद्ध होने लगेंगे क्योंकि आपके सामने एक कटान आ जावेगी कि भाई यह हमारी मर्यादा है इसके ऊपर नहीं जा सकते। दिन रात मर्यादा पुरुषोत्तम का नाम लिया करते हो, 21वीं और 22वीं धारा की मर्यादा है। हिन्दुस्तान के नागरिकों को न केवल स्वतन्त्र रहना है बल्कि हमेशा अपने मन में विश्वास रहना चाहिए कि मैं सुरक्षित हूं। जब हिन्दुस्तान आजाद हुआ था तब मुझे यह भावना हो गई थी कि अंग्रेज जिस तरीके से मुझे बार बार पकड़ लिया करते थे कम से कम अब पकड़ा नहीं जाऊंगा लेकिन अब वह भावना नहीं है। अभी दो, तीन दिन की बात है कि जार्ज फरनाडेंस जो कि नजरबन्दी कानून के मातहत गिरफ्तारी में थे, वह छूट गये। तबियत तो मेरी थी कि उसके लिए आपको धन्यवाद देता लेकिन जिस ढंग से वे छूटे हैं उसका मैं यहां पर जिक्र नहीं करूंगा। घबड़ाना मत। 25-30 हजार आदमी उनको स्टेशन पर लेने आये। यह चीज़ किसी देशभक्त के साथ ही होती है। इसी तरह का एक केस मैं और बतलाऊं कि दरभंगा के कफ़ील अहमद कैफी जेल में पड़े हुए हैं। वे किस लिए नजरबन्द हैं? उनको इसलिए जेल में डाला गया है कि सरकार 110 रुपया मिट्टी काटने के लिए एक कम्पनी को देती है जिस कम्पनी के चेयरमैन यहीं के एक सदस्य हैं, फिर से आने की बड़ी जबरदस्त कोशिश कर रहे हैं। मजदूरों को मुश्किल से 40—50 रुपया उस मिट्टी का मिलता है। इन सब कामों के लिए यह सुरक्षा कानून और नजरबन्दी कानून का इस्तेमाल हो रहा है। थोड़ा आप इस पर गम्भीरतापूर्वक सोच लीजिये और इस सुरक्षा कानून व नजरबन्दी कानून को अब खत्म कीजिये।

44

प्रेस परिषद् विधेयक*

अध्यक्ष महोदय, विद्यालंकार जी और वारियर साहब को सुनते वक्त मेरे दिमाग में सवाल उठा कि जो यह अखबारों के एकाधिकार की बात कहते हैं और उसके साथ-साथ अखबारों और सरकार में एक संघर्ष की बात कहते हैं तो आखिर इसका क्या मतलब है। जहां तक मैं समझ पाता हूं हिन्दुस्तान के अखबार ज्यादातर कहिये, प्रायः हमेशा ही सरकार के चपरासी और संदेशवाहक हैं। इसलिए इस बात को ध्यान से समझ लिया जाना चाहिये। इसमें कोई शक नहीं है कि अखबार आर्थिक दृष्टि से करोड़पतियों के एकाधिकार में हैं चाहे इंडियन एक्सप्रेस हो, चाहे टाइम्ज़ आफ इंडिया हो, चाहे हिन्दुस्तान टाइम्ज़ हो। आर्थिक दृष्टि से ये अपने मालिक के एकाधिकार में हैं, मालिक लोग इनसे नफा उठाते हैं, लेकिन नीति, विचार और ताकत की दृष्टि से ये सब के सब अखबार सरकार के चपरासी हैं, जैसा मैंने कहा है। उसका एक विशेष कारण यह है कि ये करोड़पति लोग हिन्दुस्तान में अपनी कमाई, प्रायः हर एक अनुचित ढंग से करते हैं, इनको डर लगा रहता है कि कब सरकार इनके ऊपर ऐसे कदम उठा ले, इनके खिलाफ कार्रवाई कर ले, इसलिये ये सरकार के खिलाफ जा नहीं सकते हैं। हो सकता है कभी किसी प्रधान मंत्री की सारी जिन्दगी में एक दिन तकरीर न छपी हो लेकिन मुझ जैसे आदमी की तो कोई पंद्रह दिन में एक दफा छप जाये तो समझो बहुत हो गया और वह भी तोड़-मरोड़ करके। इसको आप लोग बखूबी देख लिया करते हैं कि हिन्दुस्तान के अखबार मेरी बात तो नहीं छापते हैं लेकिन दूसरे मेरे बारे में क्या कहते हैं यह अकसर छापा करते हैं...

***　　　***

...वैचारिक एकाधिकार सरकार का है और मिल्कियत का या नफे का अधिकार करोड़पति का है। अगर इस बात को हम न समझेंगे तो अखबार की कोई भी आगे की नीति ठीक तरह से नहीं चल पायेगी।

एक चीज़ की तरफ मैं आपका ध्यान खींचना चाहता हूं। आज हिन्दुस्तान में खबरों का

*लोक सभा वाद-विवाद, 30 सितम्बर, 1964

सब से बड़ा स्रोत सरकार बन गई है। सरकार न सिर्फ केन्द्र और प्रान्तों वाली बल्कि एक माने में जिले वाली भी। और मैं जिले के संवाददाताओं की तरफ से कहना चाहता हूं कि उनको इतनी ज्यादा मातहती रहती है सुपरिन्टेंडेंट पुलिस की या कलैक्टर की कि जिले का संवाददाता बेचारा बिल्कुल ही गुलाम जैसा हो जाया करता है। सरकार ही खबरों की स्रोत है और खबरों का स्रोत इतना अधिक हो जाता है कि चाहे लालच के ज़रिये, विज्ञापन के ज़रिये या डर दिखला करके, जिस तरह से भी हो साधन बहुत सारे हैं सरकार अपनी बातों को छपवा लिया करती है। सरकार कोई दो देशों के बीच झगड़ा भी पैदा कर सकती है अगर चाहे तो अपनी इच्छा से और कई दफा न जाने कितनी चीजों को भी चढ़ा करके और आंखों में हंसी ला करके लोगों के मन बना दिया करती है।

ऐसी हालत में बुनियादी बात को सोचते हुए मैं दो छोटे से सुझाव आप को दे देना चाहता हूं कानून और प्रशासन के। पहला सुझाव जो मैं दे रहा हूं उससे कोई अधिक फर्क नहीं पड़ेगा, मात्रा का ही फर्क पड़ सकता है। जो अखबारों के मालिक हैं, करोड़पति लोग हैं, वे उद्योग के मालिक न रहें। थोड़ा ही फर्क पड़ेगा। फिर भी वे अपना पैसा इधर उधर लगाते रहेंगे लेकिन सीधे मिल्कियत दोनों की बिल्कुल अलग कर दी जाये। और तब जो करोड़पति लोग स्वयम् अखबारों के मालिक हैं वह इस बात की कोशिश करेंगे कि सच्चाई और ताजगी के साथ अपने अखबारों को चलायें और शायद ज्यादा नफा कमाने की दृष्टि से हम जैसे आदमियों के साथ थोड़ा बहुत न्याय इधर उधर कर जायें।

दूसरा सुझाव मुझे इस बात का देना है कि जो कुछ भी यहां कम्पनी कानून के बारे में तब्दीलियां हुई हैं और सरकार को ट्राइब्यूनल के सामने जा कर के अधिकार मिल गया है कि अगर कोई कम्पनी अपने काम को खराब तरह से चला रही है वहां प्रशासक नियुक्त कर दिया जाये, यह किसी कम्पनी के लिये तो हो सकता है लेकिन अखबार वाली कम्पनी के लिये सरकार को प्रशासक नियुक्त करने का अधिकार अभी नहीं देना चाहिये। कम से कम विरोधी लोगों को इसके लिये सावधान हो जाना चाहिये और तैयार रहना चाहिये पूरी तरह से विरोध करने के लिये। वैसे यह अखबार बुनियादी तौर से सरकार के ही हैं, कोई ज्यादा फर्क नहीं पड़ेगा, लेकिन जो थोड़ा बहुत इधर उधर का छप जाया करता है वह भी प्रशासक के आ जाने से बन्द हो जाया करेगा। अगर मान लीजिये कि किसी अखबारी कम्पनी को सरकार को छेड़ना छाड़ना है, खत्म करना है, पहली बात तो मुझे इस सम्बन्ध में यह कहनी है कि आपसी झगड़े की दृष्टि से जैसे एक करोड़पति का

और दूसरे करोड़पति का किसी न किसी मंत्री से सम्बन्ध होता है उसी तरह से एक न एक अखबार से हर करोड़पति का सम्बन्ध रहता है, यह जो हेर फेर रहता है वह भी खराब बात है लेकिन साथ-साथ मुझे यह कहना है कि अगर प्रशासक नियुक्त करने की ही बात हो तो मैं समझता हूं कि विरोधी दलों में से कोई प्रशासक हो जाये तो ज्यादा अच्छा रहेगा, या यह कि प्रेस कौंसिल को वह अधिकार दिया जाये। यह मैंने दो सुझाव रखे।

इस के साथ-साथ जहां मैं सच्चाई की बात करता हूं वहां एक ताजा-ताजा उदाहरण आप को दिये देता हूं। कलकत्ते में अभी हड़ताल हुई 25 तारीख को। अखबारों में छपा कि वह 12 प्रतिशत हड़ताल हुई। बिल्कुल झूठ बात है। मैं आपसे कह देना चाहता हूं कि हड़ताल कम से कम 80 से 90 प्रतिशत थी। दफ्तरों की हड़ताल। मैंने कलकत्ते का उदाहरण इसलिये दिया कि वह हिन्दुतान का सब से बड़ा शहर है। यह बात सब जगह लागू होती है। किसका एकाधिकार है। करोड़पतियों का एकाधिकार है या फिर शायद सरकार का एकाधिकार है। सरकार नहीं चाहती थी कि उस की अन्न नीति के खिलाफ किसी भी प्रदर्शन या आन्दोलन की ताकत बढ़ाई जाये और इसलिये उसने यह झूठ बोला हड़ताल के बारे में। वैसे मैं कोई इस "भारतबन्द" आन्दोलन से खुश नहीं हूं। मैं चाहता था कि यह आन्दोलन चलता रहे, पांच सात दिन लगातार, ताकि इधर या उधर फैसला हो जाता। मैं चाहता था कि रेल भी इस में शामिल होती, लेकिन चाहने की बात अलग छोड़िये, मैं तो आप के सामने खाली सच्चाई की और झूठ की बात रख रहा हूं कि किस तरह से अखबार वाले जिस चीज को नहीं चाहते उसे दबा दिया करते हैं। इन्सानों की कितनी मौतें हुई इस को तोड़-तोड़ कर छापते हैं। मैं आप को एक और उदाहरण देता हूं जब यहां पर मसविदा आया था कि सदस्यों की तनख्वाहें और भत्ते बढ़ाये जायें। अभी कुछ लोगों को इससे शिकायत थी कि मेरे बारे में छपता जरूर है, लेकिन क्या छपता है, कि मैं कहीं टहल रहा था, जैसे मुझे इस बात से खुशी हो रही थी कि भत्ते बढ़ाये जा रहे हैं। आप इस बात को अच्छी तरह जानते है कि सारे दिन यहां बैठा रहना करीब-करीब नामुमकिन है, और कोई भी सदस्य नहीं जानता कि किस वक्त सदन में क्या हो रहा है जब तक वह खुद यहां नहीं बैठा रहता है। इसलिये यह इशारा कर दिया गया कि भत्ता बढ़ाते वक्त मैं चला गया। यह कितनी झूठ बात है, खासतौर से तब जब भत्ता और तनख्वाह को बढ़ाने वाले कानून के आते वक्त मैंने सब से ज्यादा हल्ला मचाया था कि यह काम हर्गिज नहीं होना चाहिये। हम को दामों को घटवाने की कोशिश करनी चाहिये, अपना भत्ता नहीं बढ़वाना चाहिये। मैं आप को नमूना बतला रहा हूं कि किस तरह से किसी आदमी को गिराने के लिये उसके बारे में कितनी मनगढ़न्त बातें चलती हैं।

मैं आपको एक और उदाहरण देता हूं, जो कि शायद आपके सामने से न गुजरा हो।

मेरे बारे में एक या डेढ़ महीने पहले कुछ अखबारों ने छाप डाला था कि इसको अब की जिन्दा नहीं लौटने देंगे बिहार से, और पूरी सुर्खी के साथ छापा था कि जिन्दा नहीं लौटने देंगे। मेरा क्या कुसूर हुआ था। 28 तारीख को मैंने जैक्सन में कहा था जो कि भूतपूर्व प्रधान मंत्री के लिये था। अगर देखा जाये तो शायद यह इतना मार्मिक और बढ़िया था जैसा कि किसी और ने नहीं कहा था। लेकिन वह प्रधान मंत्री के लिये नहीं बल्कि सन् 1946 के पहले के श्री जवाहरलाल नेहरू के बारे में था। यह मैंने जैक्सन, मिसीसिपी के एसोसिएटड प्रेस के सामने कहा था। कुछ दबाव डाल कर वह मुझसे लिया गया था, लेकिन वह बन्द कर दिया गया, छपा नहीं। और 30 मई को जो चीज हर्गिज छपनी नहीं चाहिये थी, जो कि अमरीका में नहीं छपी कहीं, वह आधी तोड़-मरोड़ कर, आधी सही रख कर, आधी झूठ मिला कर हिन्दुस्तान में छापी गई। नतीजा इस का हुआ कि मेरे खिलाफ लोगों को भड़का दिया गया सच और झूठ मिला कर। इसका नतीजा हुआ कि बिहार वाले लोगों ने अखबार में बड़ी सुर्खी के साथ छापा कि जब अबकी दफे यह आये तो जिन्दा नहीं लौटने देंगे, और जूता, ईंट, पत्थर वगैरह भी इसके साथ होता है। जब कभी मैं कोई जुमला इस्तेमाल करता हूं तो याद रखना कि मैं किसी ऐसे सन्दर्भ में ही कहा करता हूं। वैसे मैंने कहा था कि मैं माननीय भूतपूर्व प्रधान मंत्री के बारे में कुछ नहीं बोलूंगा, अगर मुझे उकसाया नहीं गया। लेकिन मुझे इतना जबर्दस्त उकसाया गया जिसका ठिकाना नहीं। लेकिन मैं यह बात नहीं बतलाऊंगा कि मैं क्या बोला था और क्या नहीं।

लेकिन मैं बहुत अदब के साथ एक बात प्रधान मंत्री साहब से कह देना चाहता हूं, एक बात जो शायद छपे नहीं, हांलाकि सिक्कों की बात दिन रात छपती है, कसम की बात दिन रात छपती है। बड़ा भारी पाप हो रहा है आज देश में। लेकिन एक बात मैं सिद्धान्त की कहना चाहता हूं कि जब कोई आदमी मरे तो तीन सौ बरस तक उस का कोई सिक्का या स्मारक वगैरह मत बनाओ क्योंकि तब फैसला हो जायगा कि वह आदमी वक्ती था या इतिहास का था, उसकी ख्याति किस ढंग की थी। यह सिद्धान्त की चीज़ है। विवेक आना चाहिये देश में। आखिर हम अखबारों को किसलिये पढ़ते हैं। विवेक के लिये। लेकिन विवेक आ नहीं पाता है। मैं आप को एक ताजी मिसाल दिये देता हूं। बिल्कुल साफ बात है कि पाप हो रहा है और मैं कोई बड़ी खुशी से यह बात नहीं कह रहा हूं। ऐसा समय आ सकता है तीस या चालीस वर्ष के बाद जब कि भावी पीढ़ियां उन कामों को उखारेंगी जिन को यह पीढ़ी कर रही है, क्योंकि इतिहास में और वक्ती ख्याति में बड़ा फर्क होता है। इसी तरह से मैं आप को अभी की एक ताजी मिसाल दिये देता हूं। माननीय प्रधान मंत्री ने फरमाया था कि सामुदायिक विकास संगठनों से जीपें हटा ली जायेंगी। मुझे यह बात पसन्द आई, खाली इच्छा के लिये नहीं, मैंने सोचा कि इस से नया

युग शुरू होता है। सत्तरह वर्षों का फैशन और विलासिता का युग खत्म हो रहा है और नया सादगी का युग शुरू हो रहा है, लेकिन फिर उसके बाद क्या हुआ। यहां पर किसी माननीय मंत्री साहब ने फरमाया कि यह काम तो नहीं हो पायेगा क्योंकि सामुदायिक विकास संगठन का काफी बड़ा हिस्सा पंचायत परिषदों के अख्त्यार में होता है। ऐसी स्थिति में हम इस काम को कैसे कर सकते हैं। अब जीप की बात तो छाप दी गई अखबारों में मोटे-मोटे शब्दों में, सुर्खी से, जैसे कि अखबारों के लिये इस दुनिया की सब से बड़ी खबर थी, लेकिन जब इसी सरकार के एक मंत्री स्वीकार करते हैं कि यह काम हो नहीं सकता क्योंकि पंचायत परिषदों के हाथ में वह जीप हैं, तो वह खबर किसी एक कोने में इधर-उधर छपी जिस से कि पता न चले कि क्या हुआ। यह ढपोरसंखी चल रही है। हमारे देश का चरित्र इस ढंग का बन गया है कि खाली इरादा बतलाते रहो, लेकिन अमल उस पर कुछ मत करो। मैं समझता हूं कि राजपुरुषों का कार्यक्रम इस ढंग का बनता चला जा रहा है कि हमेशा नित नये-नये इरादे बताते चलो ताकि जनता खुश हो जाये कि हां, भाई बहुत अच्छा इरादा है भले ही वह अमल में न आये। नतीजा क्या होगा कि फिर जनता में विवेक नहीं रह जायेगा। विवेक खत्म हो जायेगा और राष्ट्र कभी आगे नहीं बढ़ पायेगा। इसी तरह से जो ताजगी आनी चाहिये खबरों में वह नहीं आ पाती, और इसका मुख्य कारण यह अंग्रेजी है। मैं समझता हूं कि जहां कहीं अंग्रेजी भाषा का इस्तेमाल होता है वहां विचार और विश्लेषण अच्छी तरह आ नहीं सकता। क्योंकि एक देशी आदमी के लिये अपनी भाषा का इस्तेमाल भी बड़ा कठिन होता है, एक परदेश की भाषा वह चाहे जितनी अच्छी सीख ले, उसके इस्तेमाल में करीब-करीब शब्दों का जोड़-सा हो जाया करता है। जिस भाषा में केवल शब्दों का जोड़ हो, कुछ मुहावरों का जोड़ हो तो वह सिर्फ मुहावरेबाजी, लफ्फाजी और लच्छेदारी हो जाया करती है। कोई विचार और विश्लेषण उस में नहीं आ पाता है। मैं समझता हूं कि हमारे जो विधायक हैं हिन्दुस्तान में वे अपना काम अच्छी तरह कर नहीं पा रहे है। जो विधायक होते हैं वह बजाय विचार की ताजगी रखने के शब्द और व्याकरण की पुरानी रूढ़ियों और परम्परा में फंसे रह जाया करते हैं। आज जो प्रेस कौंसिल बनेगी, वह शायद ही कुछ कर पाये क्योंकि जितनी कौंसिलें बना करती हैं किसी भी देश में वह परम्पराएं और सनातनवादी रूढ़ियां लिये होती हैं। आखिर इसमें कौन लोग चुने जायेंगे। असरदार लोग, नामी लोग। और नामी लोगों में, मैं समझता हूं, पुराने रास्ते पर चलने वाले ही हुआ करते हैं। इसलिये मैं इस बारे में साफ कह देना चाहता हूं कि यह प्रेस कौंसिल की जिम्मेदारी नहीं है, खुद सरकार की जिम्मेदारी है। अगर सरकार तार सेवा, दूरमुद्रक सेवा, अंग्रेजी में चलाती है तो निश्चित रूप से हिन्दुस्तान के अखबारों में ताजगी और सच्चाई कभी आ नहीं सकती। इसलिए मेरी सब से बड़ी मांग यह है कि तार सेवा और दूरमुद्रक

सेवा में अंग्रेजी भाषा का इस्तेमाल जल्दी से जल्दी खत्म हो जाये, न सिर्फ इसलिए कि जो जासूस लोग हैं वे हमारे देश का बड़ी जल्दी इस्तेमाल कर लिया करते हैं, बल्कि इसलिए कि हमारे अखबार आदि इस कारण झूठ का भंडार बनते चले जा रहे हैं। मैं यह छोटी मांग नहीं कर रहा हूं कि तार सेवा और दूरमुद्रक सेवा में अंग्रेजी के इस्तेमाल को हटाया जाये। इसके बदले में मैंने हिन्दी का नाम नहीं लिया। ये बंगला या किसी भी देश की भाषा में हों। लेकिन इन संचार सेवाओं से अंग्रेजी को खत्म किया जाये। मैं किसी न्यूज एजेंसी का नाम नहीं लेना चाहता, लेकिन आप जानते हैं कि किस तरह उसने गड़बड़ मचायी थी और मेरे ऊपर करीब-करीब हमला करा दिया था। और यह वह संचार सेवा है जिसे सरकार तरह-तरह से बहुत पैसा दिया करती है। वह अर्ध सरकारी संस्था है।

45

पेटेन्ट्स विधेयक*

अध्यक्ष महोदय, हमारे देश में हर बहस एक दोष से बाहर हो जाती है कि यह पूंजीपतियों का मामला है या नौकरशाही का मामला है, इससे फायदा कुछ पैसे वालों का हो सकता है या नहीं या इससे फायदा राज्य को या राज्य के उन लोगों को हो सकता है जिन को सार्वजनिक कहा जाता है। इसलिये मैं समझता हूं कि यह बहस कुछ बेमौजूं हो जाती है इसलिये कि घोड़े का मालिक कौन है। इसका फैसला तो तभी हो सकता है जब कि घोड़ा हो। मुझे इस पेटेंट के मामले में पहली शिकायत तो यह करनी है कि हिन्दुस्तान पिछले अट्ठारह वर्षों में आविष्कारों और वैज्ञानिक खोज के मामले में बहुत ही कमजोर रहा है, शायद दुनिया में सब से ज्यादा कमजोर। इसलिये इसको तीन दृष्टियों से देखना है। एक तो आविष्कार की दृष्टि से, दूसरे आविष्कारक की दृष्टि से या खोज करने वाले की दृष्टि से और तीसरे विदेशियों की दृष्टि से। मैं तीसरी दृष्टि अर्थात् विदेशियों को सब से पहले लेता हूं।

मैं पक्का तो नहीं कह सकता हूं लेकिन इस वक्त जो चीजें हम देश में पैदा कर रहे हैं, तैयार कर रहे हैं कारखानों में, उन में शायद 10 से 15 सैकड़ा जो कुछ भी दाम हमें देना पड़ता है उस का, यह पेटेंट अधिकार के रूप में ही विदेशों को चला जाता है। तो पहली कसौटी तो मेरी यह है कि जिस किसी भी कानून से परदेशियों को इतना ज्यादा पैसा जाता है उसे यह कानून खत्म करता है या नहीं। इस सम्बन्ध में फर्क करने के लिये एक तो नाम के पेटेंट के बारे में और दूसरे तरीके के पेटेंट के बारे में मैं कहना चाहता हूं। नाम का पेटेंट तो बेमतलब चीज है। क्या रक्खा है उसमें। नाम के लिये इतना पैसा क्यों दिया जाता है। वैसे मैं निजी अनुभव आपको बतलाऊं। एक बार हिन्दुस्तान के एक करोड़पति बाइसिकिल बनाने वाले थे। उन्होंने सोचा कि वह उसका नाम इंडिया रक्खेंगे। तब गांधी जी जिन्दा थे। वहां उन से मेरी मुलाकात हो जाया करती थी। मैंने उन से कहा

*लोक सभा वाद-विवाद, 23 नवम्बर, 1965

कि "इंडिया" नाम न रखना। "हिन्द" रखना। उसका नाम "हिन्द" रक्खा गया। लेकिन अभी तक मुझे उन्होंने इसके लिये कोई पैसा नहीं दिया। कम से कम 50 या 60 हजार रुपया मुझे मिलना चाहिए था क्योंकि मैंने "हिन्द" नाम बतलाया था। उनके नाम से कोई मतलब नहीं है लेकिन साइकिल का नाम बतलाने पर भी उन्होंने मुझे पेटेंट का पैसा नहीं दिया। यह मैं मंत्री महोदय को बतलाना चाहता हूं। उनके यह बहुत बड़े दोस्त हैं।

जो पेटेंट के तरीके हैं उनके बारे में मुझे सब से बड़ी बात यह कहनी है कि हम खोज के मामले में इतने ज्यादा गरीब हैं जिसका कोई ठिकाना नहीं है। मैं एक मिश्री की मिसाल दिये देता हूं। अभी तक हम लोग चीनी से मिश्री भी ठीक तरह से तैयार नहीं कर पाए। परदेश में मैंने सुना है कि चीनी से मिश्री बनाने में मुश्किल से 5 या 6 सैकड़े का नुकसान होता है। यहां पर अभी हम यह सिलसिला भी नहीं ढूंढ पाए जिस से 10 सैकड़े से कम हम नुकसान कर सकें। 10 से 15 सैकड़ा क्या चीज़ है। कहां गड़बड़ हो जाती है, क्यों हम इसकी खोज नहीं कर पाए हैं। मैं आपको एक किताब का वाक्य पढ़ कर सुना देता हूं। वह किताब संसार के वैज्ञानिक मामलों की खोज के लिए मशहूर किताब है पामर पुटनम की लिखी हुई और उसका नाम है "एनर्जी इन दि फ्यूचर"। जो मंत्री विज्ञान से सम्बन्ध रखते हैं वे इस किताब को जरूर पढ़ लें। उस में एक वाक्य है:

"A 5,000 a month production rate of low cost of solar cookers was inaugurated at Bombay on May 27, 1953 by Shri K.D. Malaria......".

इस में श्री के० डी० मलेरिया लिखा है।

"by Shri K.D. Malaria, Deputy Minister for Natural Resources and Scientific Research."

मैं जानता नहीं, लेकिन मलेरिया साहब शायद मालवीय साहब होंगे। तो मई 27, 1953 में सूरज के चूल्हों का उद्घाटन हो गया था। अब इस बात को बारह वर्ष हो गये। सारे संसार में उस वक्त इस की डुग्गी पीटी गई थी और वह 5,000 प्रति मास के हिसाब से तैयार होने वाला था। मैं समझता हूं कि उसका भी कोई पेटेंट तो रहा होगा न, मंत्री महोदय।

*** *** ***

व्यवधान(क)

*** *** ***

यह सही है। मैंने हर मंत्री को यह कहते सुना है कि दूसरे लोग ज्यादा जानते हैं। लेकिन कभी आप खुद भी तो जाना करो।

तो 5,000 एक महीने में तैयार होने वाले थे। इस का पेटेंट रहा होगा। लेकिन यह नहीं हो पाया। मैं चाहता हूं कि कानून के अन्दर कोई ऐसा हिस्सा भी हो जिससे कि सरकार के मंत्री और अभी शर्मा साहब बोल रहे थे तो नाम ले रहे थे कंट्रोलर वगैरह या नौकरशाहों का, जो पेटेंट के मामले में वैज्ञानिक खोज के मामले में इतना खर्च करते हैं और ऐसी चीजों का ऐलान करते हैं, अगर वह चीजें पूरी न हों तो उन्हें सजा मिले। जहां प्रलोभन की बात कही जाती है वहां मैं समझाता हूं कि मलेरिया साहब को सजा भी मिलनी चाहिए और मलेरिया साहब से जो बड़े लोग हैं उन को सजा मिले या फिर उनकी जगह जो साहब आयें उनको सजा मिलनी चाहिये। क्योंकि आखिर यह तो गद्दी है। इसलिए सजा जरूर मिलनी चाहिये।

*** *** ***

व्यवधान(ख)

*** *** ***

कहां मिल चुकी है। देखो, मैं गद्दी की बात कर रहा हूं शर्मा साहब गद्दी को सजा मिलनी चाहिये क्योंकि जो पैसा खर्च होता है एक माने में तो वह कुछ नहीं है लेकिन हमारे अपने देश के हिसाब से हम एक अरब रुपये वैज्ञानिक खोजों के लिए सरकार की तरफ से खर्च कर रहे हैं। पूंजीपतियों की बात छोड़ दीजिये। मैंने सुना है कि कल स्वतन्त्र पार्टी के श्री डांडेकर ने कुछ चर्चा यहां पर पूंजीपतियों की खोज की की थी। अरे पूंजीपति क्या खाक पत्थर खर्च करता होगा। ज्यादा से ज्यादा दस बीस करोड़ रुपया खर्च करता होगा। लेकिन सरकार 1 अरब 60 करोड़ तक खर्च कर रही है अणु खोज में और 40 करोड़ खर्च कर रही है और साधारण खोज में। यह एक अरब रुपये की खोज का क्या परिणाम निकला करता है वह भी एक कसौटी है और इस कसौटी का इस्तेमाल मैं जहां तक समझता हूं इस कानून के होते हुए भी, इस कानून के बनाते हुए भी कहीं कुछ नहीं हुआ है और मैं इस कसौटी का इस्तेमाल कराना चाहता हूं। कहीं कोई तरीका निकालें।

(क) **श्री त्रि० ना० सिंह**: आप ज्यादा जानते होंगे।

(ख) ***श्री दी० चं० शर्मा**: उनको काफी सजा मिल चुकी है।

खुद मंत्री महोदय सोचें, नौकरशाह लोग सोचें, किसको सजा मिले, कहां क्या हो, यह अपना ढूंढ ढांढ लें। लेकिन हिन्दुस्तान में क्यों खोज नहीं हो पा रही है, चीनी से मिश्री तक नहीं बन पा रही है, सूरज से चूल्हा नहीं बन पा रहा है, साधारण से साधारण बातों के बारे में मैंने तलाश किया तो फिर एक अन्तर्राष्ट्रीय वैज्ञानिक ने बताया कि एक साधारण चीज में तुम्हारे यहां के वैज्ञानिक भूल कर गये कि सूरज की गरमी से सूरज का चूल्हा अगर बनाने जाओगे तो निहायत निकम्मी चीज होगी, कोई मतलब नहीं रखेगी क्योंकि सूरज में इतनी गरमी नहीं है। लेकिन सूरज का जो रासायनिक पदार्थ है, अब क्या जानें पौधों में जो क्लोरोफिल होता है, उसमें जो उसका अंश है वह अगर ले सकें तो यह बहुत जबरदस्त शक्ति हो सकेगी। यह बहुत साधारण बात थी। लेकिन इस साधारण बात में भी वैज्ञानिक लोग फिसल जाया करते हैं। उसका एक कारण यह भी रहता है कि यहां जो मंत्री वगैरह हैं, वह सच्ची बातें कुछ जानते नहीं, कुछ मेहनत नहीं करते, कोशिश नहीं करते जानने की। अगर वह जानें तो कम से कम कुछ दिशाओं को तो बता सकें वैज्ञानिकों को।

इसलिये आविष्कार और वैज्ञानिक खोज के सम्बन्ध में मैं जोर से कहना चाहता हूं कि एक नये सिरे से सोच यहां पर होना चाहिये। 18 वर्ष बहुत खराब बीते हैं। दुनिया कहां चली गई है वैज्ञानिक खोज के मामले में। अभी, खैर अणु बम वगैरह की तो मैं बात नहीं करता, अणु विस्फोट के बारे में बहुत सी चर्चा चल रही है। हो सकता है कि जिसको अमरीकी लोग कहते हैं प्रोजैक्ट प्लाऊ सेयर या प्रोजैक्ट.....इसका एक और नाम भी रखा है...

*** *** ***

व्यवधान @

*** *** ***

बस, यही कहोगे कि आगे बढ़िये। तुम तो पीछे बढ़ोगे और हम आगे बढ़ेंगे।

तो खैर, देखो, याद आ गया, प्रोजैक्ट नोम भी कहते हैं। नोम और प्रोजैक्ट प्लाऊ शेयर। उसमें अणु का विस्फोट शान्तिपूर्ण कामों के लिए हुआ करता है, ऐसा कहते हैं। यह बात अलग है कि वह विस्फोट कभी भी किसी और काम के लिए इस्तेमाल हो सकता है। ऐसा लगाता है कि प्रोजैक्ट प्लाऊ शेयर या प्रोजेक्ट नोम किसी न किसी रूप में हमारे देश में आ रहा होगा। लेकिन वहां पर भी गड़बड़ यह हो जाया करती है, जो अभी शर्मा जी ने बताया कि एक कोई कंट्रोलर हो जाया करता है, महाराजा बन जाता है।

@श्री त्रि० ना० सिंह: आगे बढ़िये।

तो वहां इतनी सब खराबी आ गई है, कि कोई मंत्री बन जाता है, कोई चेयरमैन बन जाता है। मैंने अणु शक्ति में तो यह सुना है कि जो चेयरमैन है वही उस महकमे का सचिव भी है।

नतीजा यह होता है कि खोज करने का काम और प्रशासन का काम दोनों एक ही आदमी में जुड़ जाने के कारण कहीं किसी तरह की निगरानी नहीं हो पाती और जो सारा मामला आज हिन्दुस्तान के प्रशासन का हो गया है—हुनर को रखने वाले, काम को जानने वाले, उनकी तो कोई कदर है नहीं, कदर किसकी है? जो आई० ए० एस० वगैरह हो गया हो, किसी प्रशासन में चला गया हो। यह सारी दृष्टि बदलनी चाहिये। कदर उसकी हो जो हुनर वाला हो, जो किसी काम को करना जानता हो और यह तभी हो सकता है जब हमारे देश में कुछ थोड़ा सा अनादर सीखें। आदर आदर सीखते सीखते सब मामला खराब हो गया। हिन्दुस्तान के विश्वविद्यालयों में भी आदर, पुरानी विद्या का आदर, जो कुछ पुरानी चीज है उसकी इज्जत इतनी जबर्दस्त करो कि पुरानी चीज भी अच्छी तरह से नहीं आ पावे, मुझे यह जोर से कहना है कि जब तक हिन्दुस्तान का वैज्ञानिक पुरानी विद्या को पढ़कर के उसका अनादर करना नहीं सीखेगा तब तक वह नयी विद्या का आविष्कार कर नहीं सकता। इसलिये आदर की इतनी जर्बदस्त बातें करते रहना और उसी की नकल करते रहना, इसमें कहीं खोज खाज हो नहीं पायेगी और जब मैं अनादर की बात कहता हूं और विश्वविद्यालयों को लेकर के तो घुमाफिरा करके सवाल आ जाता है हमारी सारी व्यवस्था के ऊपर। यह व्यवस्था कैसी है। चापलूसी की व्यवस्था है, चुगलखोरी की व्यवस्था है। इसमें खोज कैसे हो पायेगी, मुझे कई एक वैज्ञानिक मिले। उन्होंने बताया कि हम कौन सी वैज्ञानिक खोज करके निकालें जब कि हमारी तरक्की इस आधार पर हो सकती है कि कौन किसका रिश्तेदार है, किसने किस की लड़की से शादी की है, कहां पर किस तरह से कैसा इन्तजाम है, जब ऐसी चीजों को लेकर के खोज के मामलों में तरक्की सोचते हैं तो सारा आधार ही बिगड़ जाया करता है।

इसलिये वह जितने पेटेंट वगैरह के नियम और कानून हैं उन पर जब बहस चले तो हमें बुनियादी बात का ध्यान रखना चाहिये—यह बात सही है कि जो आविष्कारक हैं, या कोई बढ़िया बात कहते हैं, निकालते हैं, तो हालांकि मैं कोई बहुत ज्यादा पैसे का उपहार देने का समर्थक नहीं हूं, लेकिन फिर भी अगर उसी चीज से लोगों को प्रसन्नता होती है तो ठीक है, पैसा उसको दो।

यह एक हद तक स्वीकार तो करना पड़ सकता है कि आविष्कारक को अपने आविष्कार के लिए उपहार दो। लेकिन मेरा अगर बस चले तो मैं पैसे की इज्जत इतनी सारी समाज में नहीं होने दूं और उसकी जगह रुतबा उसको दिलाऊं और रुतबे की इज्जत

कराऊं। लेकिन वह तभी सम्भव हो सकता है जब यह सारे समाज का आधार रिश्तेदारी वगैरह से हटा दिया जाये। इसलिये इस कानून पर बहस करते वक्त और इसको बाद में लागू करते वक्त मंत्री महोदय को इन चीजों के ऊपर ध्यान रखना है।

पहली बात यह है कि परदेशियों के अधिकारों और मुनाफों के ऊपर नियंत्रण करके हिन्दुस्तान में बनी चीजों का दाम घटाना चाहिये और नाम के लिए किसी तरह का पेटेंट नहीं होना चाहिये। केवल तरीकों के ऊपर और तरीकों के सम्बन्ध में मैं कह देना चाहता हूं कि वास्तव में कुछ तरीके तो ऐसे अन्तर्राष्ट्रीय हो चुके हैं कि उनके पेंटट की कोई जरूरत नहीं रहा करती है। उनको तो खुद ब खुद हम अपने यहां निकाल करके लागू कर सकते हैं। उनके लिए किसी पेंटट प्राइस की जरूरत नहीं है और अगर मान लो,. कुछ कम्पनियां ऐसी हैं, मैंने सुना है कुछ परदेशी कपनियां ऐसी हैं, जो अपने गन्दे पुराने विश्व-विख्यात प्रचलित पेटेंट अधिकारों के लिए भी पैसा ले लिया करती हैं यह धमकी दे कर कि तुम अगर पुराने के लिए नहीं दोगे तो हम नयी चीज नहीं भेजेंगे, तो मैं चाहूंगा कि ऐसी कम्पनियों को यहां से धता बताओ और नयी कम्पनियों के लिये नये आविष्कारों के लिए नयी खोज और तरीकों के लिए, हो सकता है कि और मुल्कों की तरफ जाओ। मैं नहीं जानता कौन से मुल्क इस समय ज्यादा अच्छे होंगे। इस सम्बन्ध में मैं यह भी बता दूं कि शायद एक बड़ी जबर्दस्त गलती यह हो गई थी कि जर्मनी और जापान ये दो देश जब बिलकुल धूल में पड़े हुए थे सन् 45 और 46 में, अगर तब उनसे दोस्ती दिखाई गई होती तो शायद आज हम पेटेंट वगैरह के मामलों में कहीं और अच्छी जगह पर रहे होते। लेकिन जहां तक रूस और अमेरिका का मामला है मैं इतना जरूर कह देना चाहता हूं कि मैंने सुना है कि रूस वाले पेटेंट के मामलों में कुछ ज्यादा उदार हैं कहना बहुत एक मजबूती का वाक्य हो जायगा—कुछ ज्यादा उदार लगते हैं, वास्तव में हैं या नहीं यह मैं नहीं कह सकता, तो अमरीका वालों को भी अब इस बारे में कुछ फैसला करना चाहिये कि वह किस तरह की दुनिया बनाना चाहते हैं? क्या हिन्दुस्तान जैसे गरीब मुल्क से पेटेंट के आविष्कारों और खोज के लिए रुपया लूट कर के वह अपनी दुनिया को बसाना चाहते हैं? तब तो वह दुनिया किसी न किसी दिन अणु विस्फोट से खत्म हो कर रहेगी। एक जमाना था जब अमेरिका वाले उदार दिल से अपने तरीकों और पेटेंटों को गरीब दुनिया में दिया करते थे। अब अमरीका वालों से अपील करना चाहता हूं कि तुम फिर उसी दुनिया की तरफ आओ, हो सकता है कि रूस में नयी विचारधारा के कारण यह बात कुछ ज्यादा मौजूद है। एक बात तो है ही कि रूस का आदमी, चाहे उसको यह सिखाया जिस ढंग से भी गया हो, वह हिन्दुस्तान के आदमी या और किसी रंगीन आदमी के साथ ज्यादा मानवता का—अब मैं नहीं जानता कि वह असली मानवता है या दिखाऊ मानवता है—लेकिन ज्यादा मानवता का वर्ताव करता है। उसी तरह से अमरीका वालों को भी खोज के मामलों में अपनी नीतियों को बदलना पड़ेगा।

46

केरल में राष्ट्रपति शासन की उद्घोषणा सम्बंधी संकल्प*

सभापति महोदय, मौजूदा प्रस्ताव को ठुकराया जाना चाहिये। केरल में रास्ता बिल्कुल साफ है अगर जनतंत्र और समाजवाद को सही मानो में अपना लें। केरल के भूतपूर्व मुख्य मंत्री ने एक बात कही है। उन्होंने सवाल तो नहीं पूछा है लेकिन मैं उसको सवाल बना देता हूं। केरल में क्या तो दर्पण है और कौन सी छवि है। यों तो केरल की छवि खराब दीखती है और उन्होंने दर्पण बताया है केरल के राज्यपाल को। यही बुनियादी गलती हो जाती है। उसी के सबब से रास्ता साफ दिखाई नहीं पड़ता है। केरल की छवि का दर्पण केरल की विधान सभा है न कि वहां के राज्यपाल। वहां कि विधान सभा को छः महीने पहले खत्म करके जो कुकर्म इस सरकार ने किया, उसका अन्त होना चाहिये। उस विधान सभा को वापिस बुला करके उस दर्पण को ठीक किया जाना चाहिये। इसके बाद छवि भी ठीक हो जायेगी।

मैं श्री रंगा की उस बात पर आप का ध्यान दिलाऊंगा जब उन्होंने कहा कि यह प्रच्छन्न कांग्रेसी शासन है। प्रच्छन्न नहीं है। वह तो खुला हुआ है। खुला हुआ भी नहीं यह कठोर कांग्रेसी शासन है। जहां विधान सभा या लोक सभा रहती है वहां कम से कम हमारे जैसे आदमी तब तब कुछ कह लेते हैं लेकिन केरल में वह भी साफ हो गया है। वहां तो केवल कांग्रेसी कठोर शासन है। कोई कुछ कह भी नहीं सकता है। विधान सभा बिल्कुल खत्म हो गई है। इसलिए जब कभी विरोधियों की तरफ से राज्यपाल के ऊपर छींटाकसी होती है तो मैं अपने मन में सोचता हूं कि उस बेचारे पर क्यों करते हो वह तो खाली एक हथियार ही नहीं, आप अंग्रेजी ज्यादा समझते हैं, जिस को उसमें क्रीचर बोलते हैं उसको हिन्दी में क्या कहते हैं।

*लोक सभा वाद-विवाद, 5 नवम्बर 1965

*   *   *   *   *   *

व्यवधान*

*   *   *   *   *   *

हां जन्तु, इसलिये राज्यपाल के ऊपर कोई किसी तरह का यहां प्रहार नहीं होना चाहिये। किसका जन्तु है वह? सरकार का है। इसलिये मैं.....

*   *   *   *   *   *

व्यवधान**

*   *   *   *   *   *

क्रीचर का हिन्दी में शब्द कहा है न, आप कोई मराठी शब्द बता दीजिये, मैं उसी का प्रयोग कर लेता हूं। अभी तो करीचर कहा है और आगे कुछ न कहता तो सब मामला ठीक हो जाता लेकिन खैर आप मेरा मतलब तो समझ ही गए हैं।

वह किस का है। वहां डेढ़ आदमियों की सरकार है। केरल में वस्तुतः कांग्रेस सरकार भी नहीं चल रही है। डेढ़ आदमियों की सरकार चल रही है। डेढ़ कौन से आदमी हैं। हाथी साहब आप अपने को न गिन ले जो गृह मंत्री हैं, वह तो हैं आधे और उनके जो ऊंचें हैं प्रधान मंत्री हैं वह हैं एक। इस तरह से इस समय डेढ़ आदमियों की सरकार केरल में चल रही है।

अगर आप जनतंत्र और समाजवाद का सही मतलब समझें तो मैं एक बात बतलाना चाहता हूं। मेरे लिये थोड़ा सा झंझट का मामला यह हो जाता है कि केरल की जो विधान सभा है, जो छः महीने पहले बनी थी उसमें मुख्य पार्टी वामपंथी साम्यवादी थी। वामपंथी साम्यवादियों के एक चरित्र को मैं बिल्कुल ठुकराता हूं।

वह कौनसा है? ये अपने सोचने और अपने तर्क का केन्द्र भारत वर्ष नहीं, दुनिया नहीं बल्कि एक कोई बीच का बीच बचाव करने वाला देश बना लेते हैं। इनके सोचने और इनके तर्क का केन्द्र है अमरीका—निन्दा और चीन—स्तुति। अगर ये दुनिया को अपने सोचने का केन्द्र बनाते तो ठीक होता। और सच पूछें तो भारतवर्ष को केन्द्र बनाना चाहिये और तब सोचना चाहिये। लेकिन जब मैं वामपंथी साम्यवादियों के इस रोग को बताता हूं तो उनके साथ-साथ यह भी आपसे अर्ज कर दूं कि यह रोग कांग्रेस पार्टी के अन्दर भी घुसा हुआ है और यहां जो विरोधी लोग बैठे हुए हैं उनमें भी थोड़ा बहुत घुसा हुआ है और वे भी अपने सोचने के केन्द्र को दुनिया और हिन्दुस्तान न बताकर कोई बीच का

---

*श्री दी० च० शर्मा: कौन?

**सभापति महोदय: प्रतिनिधि शब्द इस्तेमाल करना उचित होगा।

पुजारी बना लिया करते हैं। फिर भी मैं कहता हूं कि विधान सभा को बुलाओ, उसको मौका दो कि वह फैसला करे कि सरकार केरल में बन सकती है या नहीं। हो सकता है कि वामपंथी साम्यवादियों की सरकार बन जाए और न भी बन पाए तथा कोई और बना ले। यह काम राज्यपाल का नहीं है, यह काम इन डेढ़ आदमियों का नहीं है।

यहां पर बहुत कुछ कहा गया है कि रपट बहुत अच्छी है, वस्तुनिष्ठ है, उसके अन्दर सत्य है। इनको कोई हक ही नहीं है फैसला करने का। जनतंत्र में फैसला करने का एक मात्र हक वहां की विधान सभा को है। लेकिन उसको एक घंटे के लिए भी नहीं बुलाया गया है। मैं तो कहना चाहता हूं कि जो छः महीने पहले पाप और कुकर्म किया था, उसका अन्त करो। बुलाओ उस विधान सभा को। मौका दो। एक को दो, वह न मंत्रिमण्डल बना पाये तो दूसरे को दो। वह भी न बना पाये तो तीसरे को दो। हो सकता है कि इसमें शायद आपके कांग्रेस दल को भी मौका मिल जाये। जब कोई न बना पाये तो आप ही बना लेना। लेकिन विधान सभा फैसला करने वाली है, वह है दर्पण। वह जो कुछ कहती है उसे देखो। तब जनतन्त्र चला पाओगे। मैं इसलिये भी कहना चाहता हूं कि जब किसी देश के अन्दर या दल के अन्दर एक रोग घुस आता है, जैसे कि मैंने बतलाया कि वामपंथी साम्यवादियों के अन्दर रोग घुस आया है, तो उस रोग को निकालो। जनतन्त्र में एक ही जुलाब है, और वह जुलाब यह है कि जो जनता वोट दे करके लोगों को भेजे उस की सरकार बन जाने दो। फिर अगर वह बिगाड़ करेगी तो जनता जान जायेगी और उसे पटक कर निकाल बाहर करेगी।

यहां पर कई आदमी कई दफे झंझट मचा दिया करते हैं। मैं आपसे एक अर्ज करना चाहता हूं कि यहां डेढ़ आदमी जो हैं उनमें बदले की भावना है। ऐसा नहीं होना चाहिये। तुम बड़ी जगह पर बैठे हुए हो, चाहे मन जैसा हो, बड़ी जगह के उपयुक्त मन बनाओ। पिछली लड़ाई में अंग्रेजों के यहां विस्टन चर्चिल जैसे आदमी ने जिस को मैं करीब-करीब हर मामले में गलत समझता हूं, मोसले जैसे एक फासिस्ट कैदी के बारे में अपने गृह मंत्री को जो लिखा था वह मैं आपको सुनाता हूं। मोसले को जेल में रखा गया लड़ाई के दिनों में, तो चर्चिल ने गृह मंत्री को लिखा जैसे कि यहां शास्त्री जी, नन्दा जी को लिखे, कि देखो गृह मंत्री, मोसले को तुम जेल में रखे हुए हो, मोसले की बीबी भी जेल में है। तुम उनको अलग-अलग क्यों रखे हुए हो। यह बदले की भावना निकाल रहे हो, उन्हें एक साथ रक्खो। अगर राजनीति के कारण जेल में रक्खे हुये हो तो उनको एक साथ रक्खो। यह चर्चिल का खत है। जो कुछ मुझे वामपंथी साम्यवादियों के खिलाफ कहना था वह कह दिया, अब एक बात जरूर और कहना चाहता हूं कि गोपालन साहब और उनकी पत्नी को अलग-अलग क्यों रखे हुए हो। मैं समझता हूं कि यह आपका बड़ा अमानविक काम है। आप यह बदले की

भावना से काम कर रहे हैं दोनों को एक साथ रखना चाहिए। अगर आप और कुछ नहीं कर सकते।

यह जो तर्क है कि किस तरह से जनतन्त्र और समाजवाद की बात लाई जाये, तो उसके लिये विधान सभा को मौका दो और विधान सभा को मौका देने के बाद तुम एक चीज देखोगे कि यहां जितनी कार्रवाइयां हो रही हैं वह अपने आप पलट जायेंगीं। मैं इसी लोक सभा की बात कहता हूं। यहां एक कमेटी बनी हुई है जिसे केरल सलाहकार समिति कहते हैं। उसमें लोक सभा के केरल के जो लोग रक्खे गए हैं उनके बारे में मुझे कुछ नहीं कहना है, लेकिन विरोधी दलों के अन्दर से इस समिति में दो व्यक्ति ऐसे रक्खे गये हैं जिन का केरल विधान सभा में खाली एक सदस्य है। लेकिन संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी के बारे में देखिये। मैं खाली बतलाने के लिये ऐसा कह रहा हूं, मैं नहीं कहता कि तुम हमारे दल को अच्छा मानो, क्योंकि सरकार की निगाह में तो हमारा दल बागी दल है, वस्तुस्थिति आप को बतलाता हूं कि जिस दल के चौदह सदस्य हैं, जिनमें से तेरह तो इस दल के सदस्य हैं और एक स्वतंत्र है, उसका कोई प्रतिनिधि इस समिति में नहीं है। जब कि जिस दल का सिर्फ एक आदमी है उस के दो प्रतिनिधि हैं। इस तरह से जनतन्त्र के ऊपर आंच आ जाया करती है। इसका मुख्य कारण यह है कि इस सरकार ने कभी जनतन्त्र को समझा नहीं। हो सकता है कि हम लोगों ने भी न समझा हो। लेकिन यदि खाली रूप के ऊपर चर्चा होती रहेगी, आत्मा के ऊपर चर्चा नहीं होगी तो मामला बिगड़ता जायेगा।

अभी प्रोफेसर रंगा ने बार-बार कहा कि संयुक्त मंत्रिमंडल किस देश के अनुरूप बने। खैर इस के बारे में वह जाने, और जाने वह जो उन के दोस्त हैं, एक दूसरे के नजदीक है, उनमें कोई बहुत फर्क है नहीं। अब मैं क्या करूं, यह जो बहुत से लोग हैं उनमें फर्क नहीं। असल में मामला रूप का नहीं है कि हम किस तरह से जनतन्त्र में किन-किन को इकट्ठा कर दें। अगर ऐसी सहमति हो जायेगी और एक राय बन जायेगी तो वह बेबुनियाद चीज हो जायेगी। इसमें कोई नीति नहीं रह पायेगी। नीति तो तभी बन सकती है जब विचारों और विवादों का अच्छी तरह से संघर्ष हो। मेरी राय में यह सरकार प्रायः सब मामले में गलत रास्ते पर रही है। इसका तो सवाल ही नहीं उठता कि उसके साथ संयुक्त मंत्रिमण्डल बने, लेकिन इसके साथ साथ एक बात कह सकता हूं कि लोक-सभा में नहीं तो बाहर तो इसको कर के देखो। मैं एक बात कहता हूं कि मौका दो जनता को फैसला करने का वह मौका कब आयेगा जब वाद विवाद होगा।

जो बातें मैंने यहां कहीं हैं अगर गृह मंत्रालय की तरफ या प्रधान मंत्री की तरफ से उनका कोई जवाब आए तब तो आप समझना कि वाद विवाद से राज्य चल रहा है और

अगर कोई जवाब न आये तब आप समझना कि यह कोई और ढंग की सरकार है। जनतन्त्र का मतलब क्या है। जनतन्त्र का मतलब होता है वाद विवाद के द्वारा जो सरकार चलती है। लेकिन यहां वाद विवाद का कोई जवाब कभी आयेगा नहीं। अभी मैंने जो बातें कहीं हैं उनका कोई जवाब नहीं है क्योंकि उनके यहां 390 आदमी हैं, वह अपनी बात कह कर खत्म कर देंगे। यह सरकार ऐसे चल रही है।

* * * * * *

व्यवधान*

* * * * * *

यह पचासों दफे हो चुका है। एक बार प्रधान मंत्री जी ने मेरी बात का जवाब दिया तो वह उसमें इतना फंसे कि उनकी सरकार वालों ने फैसला कर लिया कि वह किसी बात का जवाब न दें, नहीं तो फंस जायेंगे। यह तो हो चुका। अब मैं आपको बतलाना चाहता हूं कि यह सरकार आखिर है क्या। यह जनतन्त्र की सरकार नहीं है और समाजवादी सरकार तो बिल्कुल है ही नहीं। यह चापलूसी और चुगलखोरी की सरकार है। आप जानते हैं कि चापलूसी के इस्तेमाल से हर एक की इस सरकार में ऊंची से ऊंची जगह बन जाती है। इसमें कोई सन्देह रह नहीं गया है कि जहां चापलूसी होगी वहां चुगलखोरी जरूर होगी। यह दोनों साथ साथ चलती हैं और यह जो यह डेढ़ आदमियों की सरकार है यह चापलूसों और चुगलखोरी से चलती है। आप को मैं क्या बतलाऊं, एक दिन सुबह यह देख कर मैं दंग रह गया कि आखिर इस देश को हो क्या गया है। मेरी सुबह के समय एक आदत है। आपको आश्चर्य होगा, मैं कभी कभी रेडियो पर मीरा, कबीर और तुलसी का भजन सुन लिया करता हूं। मैंने देखा कि कोई बहुत बड़े गायक आ गये हैं, गाने लिखने वाले। मैंने सोचा कि ललिता देवी शायद कृष्ण महाराज की राधा की सखी होंगी कोई। लेकिन बाद में पता चला कि यह देश इतना पतित हो चला है कि मीरा वगैरह के साथ ही आकर वर्तमान प्रधान मंत्री की पत्नी जो गाने लिखने लगी हैं उनको जोड़ दिया जाता है। यह सरकार केरल में विधान सभा को खत्म करती है, हिन्दुस्तान में बाद में विवाद की समस्याओं को खत्म करती है, लोक सभा में वाद विवाद नहीं चलने देती है। नतीजा यह होता है कि किसी चीज के ऊपर आज हम इस देश में अच्छी तरह से बातचीत भी नहीं कर सकते हैं।

मैं पाकिस्तान के मामले में कह सकता हूं कि क्या हो रहा है। केरल में जनतन्त्र को खत्म करने का नतीजा क्या हो रहा है। मैंने कई बड़ी बातें कहीं इस लोक सभा में दो

---

*Mr. Chairman: Why anticipated that?

दिन के अन्दर। प्रधान मंत्री साहब जाने वाले थे लाहौर। बीच में पैर में कहीं मोच आ गई। कोई और स्वतन्त्र देश होता तो अखबारों के लिये उस दिन की सबसे बड़ी खबर यह होती कि मोच कहां आ गई कि वह बीच में रुक गये। आखिर जो लड़ाई चल रही है उसमें जो जो गलतियां हुई हैं उन पर कोई सोच विचार तो होना चाहिये न। लेकिन सोच विचार नहीं होगा लोक सभा में। अगर ऐसा नहीं होगा तो आखिर जनतन्त्र में वाद विवाद का मतलब ही क्या रह जाता है। मैं आप से निवेदन करना चाहता हूं कि अगर वाद विवाद और जनतन्त्र के हिसाब से यह लोक सभा चले तो वह बात पूर्ण रूप से साफ हो जायेगी जो मैंने कोरम के न रहने पर कहा था कि पाकिस्तान के अयूब खां जालिम तो हैं ही, मुझे लगता है कि हजरत कुछ नादान भी हैं। बहुत नादान आदमी मालूम पड़ते हैं।

* * * * * *

व्यवधान*

* * * * * *

वही अयूब खां वही भुट्टो। मैं उनके लिये नादान शब्द का इस्तेमाल कर रहा हूं। अगर आप के शब्दों में कहता तो कहता कि बेवकूफ नहीं जाहिल आदमी हैं। अगस्त महीने में जो चीजें भारतवर्ष में हो रही थीं वह चीजें सितम्बर, अक्तूबर और नवम्बर में बढ़ते बढ़ते इतनी हो जाती जिन के बारे में आप लोगों ने सवाल उठाया था कि भारत की स्थिति ऐसी हो जाती कि आप हजरात शहर और गांव में निकल नहीं पाते सड़कों के ऊपर। आप के ऊपर लोग इस तरह से छींटाकसी करते। आज देश में आप ने खाने-पीने के मामले में ऐसा कर रखा है कि 9 अगस्त से 16 अगस्त तक बिहार में और दूसरी जगह जिस तरह से सैकड़ों आदमियों को इस सरकार ने गोली घाट उतारा और हजारों को जेलों में डाला कि अगर बीच में अयूब खां बचाने न चले आते तो मामला अब तक न जाने कहां पहुंच गया होता। लेकिन याद रखना कि यह कुछ ही दिनों की बात है क्योंकि लोग सवाल पूछने लगे हैं कि क्यों लाहौर नहीं गये क्यों हाजी पीर से वापस आने की बातें हो रही हैं, क्यों 5 अगस्त की बातें हो रही हैं। यह सब चर्चा देश के अंदर होने लग गई है। कभी कभी भीड़ इक्ठा हो जाती है इस पर लट्टू न हो जाना। भीड़ तो बहुत इक्ट्ठी हो जाती है। अगर अकेले-अकेले में भीड़ का सामना करो तो पता चल जायेगा कि किस की भीड़ ज्यादा होती है।

तो एक बात इसी के साथ-साथ मैं यह भी कह देना चाहता हूं कि इस बहस में

---

*Mr. Chairman: Why anticipated that?

संविधान की दफा 352 को, जो कि आपातकाल से संबंधित है और दफा 356 को जो कि प्रान्त में सरकार के टूट जाने से संबंधित है दोनों को बहुत ज्यादा मिला जुला दिया गया है। जब विदेशी आक्रमण का संकट हो और आसन्न संकट हो उसके लिये दफा 352 है और दफा 356 जब कही किसी सूबे की सरकार चलना असम्भव हो उसके लिये है। गवर्नर की रपट महत्व की चीज नहीं है। मैं डाक्टर महिषि का बहुत शुक्रगुजार हूं कि उन्होंने इन दफाओं को पढ़ कर सुना दिया। इसमें साफ लिखा है। केवल गवर्नर की रपट की ही बात नहीं है किसी और तरीके से भी अगर राष्ट्रपति को सूचना हो जाये तो वह ऐसा कदम उठा सकते हैं। तो यह सारा मामला राष्ट्रपति का है। मुझे राष्ट्रपति के बारे में कुछ कहना नहीं है। असल में तो यह इन डेढ़ आदमियों का मामला है जिन्होंने फैसला किया कि केरल में एक कठोर और बिल्कुल खुला और जिसमें वाद-विवाद न हो सके ऐसा कांग्रेस का शासन चले।

अब आपत्ति काल और संवैधानिक शासन का टूटा जाना, जहां दोनों को एक साथ मिला दिया जाता है, तो इसके बड़े खतरनाक नतीजे निकला करते हैं। अब यहां श्री गोविन्द मैनन ने मेरी पार्टी के बारे में कहा कि श्री चंद्र शेखरन् ने कहा कि पालघाट के चुनाव न हों। मुझे मालूम नहीं कि उन्होंने ऐसा कहा या नहीं कहा। अगर मुझे मालूम होता तो मैं आज सवेरे तिरुवांकुर को टेलीफोन करके पता लगा लेता कि उन्होंने कहा है या नहीं....

*   *   *   *   *   *

व्यवधान*

*   *   *   *   *   *

वह तो गवर्नर की रपट है। मैं अपने आदमी से पूछता। लेकिन थोड़ी देर के लिये मान लो कि यह सही है।

जिस दल के श्री गोविन्द मैनन सदस्य हैं उस दल के सभापति ने भूल में, यह सोचा कि जनता का मन बदल रहा है, इसलिये उन्होंने सन् 1967 के चुनाव को सन् 1966 में करवाना चाहा था या नहीं? जरा इस पर बोलिये श्री गोविन्द मेनन साहब।

*   *   *   *   *   *

व्यवधान**

*   *   *   *   *   *

---

*Shri P. G. Menon: It is in the Report.

**Shri P. G. Menon: On a proper occasion.

ठीक है उनको जरा सोचने का मौका मिल जाये किसी वकील से पूछ लें कि क्या जवाब दिया जाये।

तो इस पार्टी के सभापति ने खुल्लम-खुल्ला कहा, गलती से हो, कि भारत की जनता का मन बदल रहा है कांग्रेस की तरफ, इसलिये उन्होंने कहा कि चुनाव जल्दी करा दो। तो मैं अपने चंद्रशेखरन् की बात का जवाब श्री कामराज और श्री कृष्णमाचारी की बात से देता हूं। जब यह कहा गया कि चुनाव जल्दी करा दो, तो मैं कुछ तैयार हो गया कि करा दो जल्दी। हो सकता है कि जितनी ऊपरी वाहवाही मिली है वह दूर हो जाये, और जो आज नकली सोने का मुलम्मा है वह ऊपर से उतर जाये और जो नीचे पीतल और गिलट है वह निकल कर सामने आ जाये।

और उसके साथ-साथ यह भी कहूंगा और इस पर बड़े साहब सोचें। उन्होंने कह दिया कि संकट-काल में चुनाव नहीं होना चाहिये। तो यह संकट-काल कब तक चलेगा? पहला सवाल तो मैं यह पूछ लेना चाहता हूं आपने जन संघ के लोगों से क्योंकि आजकल उनकी इस सरकार पर अजीब कृपा है। तो वे पूछ लें कि यह संकट-काल कब तक चलेगा। या हाथी जी अगर उनकी तरफ से जवाब दे सकते हैं तो दे दें। क्या जवाब नहीं है?

* * * * * *

व्यवधान*

* * * * * *

अगर अभी दे देते तो मुझे बोलने में मदद मिल जाती। मैं ऐसा आदमी नहीं हूं कि अपने तर्क को सामने वाले की बात सुन कर न बदल दूं। अगर आप बता दें कि यह संकट-काल दो महीने, चार महीने, 6 महीने चलेगा तब तो मेरा तर्क दूसरे ढंग का हो जायेगा। लेकिन अगर आप यह कहना चाहते हो जैसा कि मैं ने सुना है कि यह एक पीढ़ी या दो पीढ़ी चलेगा तब तो मामला बिगड़ जाता है।

* * * * * *

व्यवधान**

* * * * * *

---

*श्री हाथीः देंगे।

**एक माननीय सदस्यः एक हजार साल चलेगा।

Shri Mohammed Koya (KozhiKode): Even during this Emergency. Municipal elections are going to be held in Palghat.

बहुत बढ़िया बात बोले कोया साहब, पहले क्यों नहीं बोले जब वह बोल रहे थे। अगर ये पाकिस्तान को खत्म करने में हमारा साथ दे दें तब तो फिर हम एक साथ ही हैं। मैं इन की बात की कद्र करता हूं।

* * * * * *

व्यवधान*

* * * * *

त्यागी जी ने क्या कहा?

* * * * * *

व्यवधान**

* * * * * *

तब तो त्यागी जी से हमारा इस पर फैसला हो जाये—पहले वे मेरे बताये रास्ते पर दो चार बरस चल लें और फिर सात दिन के लिये गद्दी छोड़ दें और देखें कि मैं पाकिस्तान को सात दिन में बरफ की तरह पिघला देता हूं या नहीं, पाकिस्तान खत्म हो जायेगा जैसे बरसात में हिमालय की बरफ पिघल जाया करती है।

* * * * * *

व्यवधान@

* * * * * *

मैंने बता दिया है। मैंने 17-18 बरस से कसम खा रखी थी कि किसी प्रधान मंत्री से नहीं मिलूंगा। लेकिन मिलने गया, इसीलिए तो गया था। मैंने वह नुस्खा बता दिया लेकिन उन बेचारे का नाजुक दिल है उस नुस्खे पर थोड़े चल पाए, ज्यादा कहां से चल पाएंगे।

तो मैं यह जानना चाहता हूं कि यह संकट-काल कब तक चलेगा। आप जानते हो कि दफा 352 में कहा गया है, बाहर का हमला हो गया हो या होने वाला हो, "आसन्न संकट" ये शब्द हैं। ये शब्द इतने भयंकर हैं कि इनकी मातहती में यह सरकार जो कुछ चाहे सो कर सकती है। अगर इनकी लोक-सभा में बहुसंख्या बनी रहती है तो जिस तरह से केरल में विधान सभा को खत्म किया उसी तरह सारे देश की विधान सभाओं को

---

*श्री त्यागीः जब तक पाकिस्तान है।

**एक माननीय सदस्यः जब तक पाकिस्तान है।

@श्री त्यागीः ऐसा नुस्खा आप के पास था तो आपने हम को पहले क्यों नहीं बताया?

खत्म कर सकती है, कोई कायदा कानून ऐसा नहीं है जो इसको ऐसा करने से रोक सके। सिर्फ इतना कहना काफी है कि वैधानिक सरकार नहीं चल सकती है, हम सारी विधान सभाओं को खत्म करते हैं। सिद्धान्तरूप से आप यह कर सकते हो।

तो मैं चाहता हूं कि इस "आसन्न संकट" का अर्थ हो जाए। मैंने कोशिश की थी कि सर्वोच्च न्यायालय इसका अर्थ कर दे। लेकिन उस न्यायालय के जज कुछ दूर तक तो गए, इसके लिए मैं उनकी सराहना करता हूं, लेकिन ज्यादा दूर जाने की उनकी हिम्मत नहीं हुई तो अगर इस "आसन्न संकट" का अर्थ हो जाता तो कहा जा सकता था कि हमला हुआ। वरना यह 48 करोड़ का देश भारत और कहां दस करोड़ का पाकिस्तान। यह तो हाथी और भैंस की लड़ाई है, मैंने भैंसा नहीं कहा। इस लड़ाई को खत्म करने में क्या देर लगनी चाहिए। यह लड़ाई तो बिल्कुल मामूली लड़ाई है, लेकिन इसको चलाते रहो। मुझे कभी-कभी एक शक होता है कि कहीं अयूब खां साहब या भुट्टो साहब, जो भी कोई हों, और जो ये डेढ़ आदमी हैं इनमें बेलिखा, बेबोला हुआ समझौता तो नहीं है कि भाई थोड़ी देर के लिए लड़ लिया करो और फिर देश में तनाव रखो और तनाव की हालत में अपनी अपनी पार्टी की हुकूमत को बनाये रखो।

इसलिए आपका यह जवाब ठीक नहीं है, आप जवाब यह दो कि हम पाकिस्तान के मसले को जल्दी खत्म कर देंगे, 6 महीने में, साल भर में। यह जवाब तो माकूल जवाब होता। ऐसा न होने से मामला खराब होता है।

अब मैं केरल की एक बात आपके सामने रखना चाहता हूं। कहा गया कि वहां मछलियां मारने का बड़ा काम हो रहा है और उसके लिए लोगों ने सरकार की और अपनी भी पीठ ठोकी। लेकिन जो मछली मारने का काम वहां चल रहा है उसके बारे में मैं आपके सामने, श्री मुहम्मद का पत्र जो मुझे मिला है उसमें से, कुछ बातें रखना चाहता हूं। वह पत्र मलयाली भाषा में है, जिससे आपको मालूम हो कि हमारे यहां का काम अपनी-अपनी भाषाओं में चलता है। उन्होंने लिखा है कि केरल में एक ग्वालियर रेयन नाम का कारखाना है। उसमें से बहुत गन्दा पानी निकलता है, वह चालियार नदी में डाल दिया जाता है। इससे मछलियां मर जाती हैं और वहां खेती को भी बहुत नुकसान होता है। जब इस कारखाने के लिए लाइसेंस दिया गया था तो मालिकों से समझौता हो गया था कि यह पानी अरब के समुद्र में गिराया जाएगा। अरब का समुद्र इस स्थान से मुश्किल से दस बारह मील दूर है। वहां इस पानी को न गिरा कर नदी में गिराया जाता है जिससे मछलियां भी मरती हैं और खेती भी खराब होती है।

केरल में एक कुटुम्ब को महीने में दो लिटर यानी तीन बोतल मिट्टी का तेल दिया जाता है। इससे आप यह न समझें कि केरल के ऊपर इस सरकार की विशेष नाराजगी

है। मैं अभी उत्तर प्रदेश में गया था। वहां मैंने एक विचित्र बात देखी। वहां शहर वालों को, जहां बिजली है, ज्यादा मिट्टी का तेल दिया जाता है और गांवों में रहने वालों को कम दिया जाता है। यह औंधी खोपड़ी की सरकार आप कब तक चला पाओगे। बिल्कुल उल्टा मामला कर रखा है। गांव वालों को कम तेल दिया जाता है और शहर वालों को ज्यादा जहां बिजली भी है। यह डेढ़ आदमी की खोपड़ी वालों की बात है। खैर अब मैं खाली आखिर में अपनी पार्टी की बात कह कर खत्म किये देता हूं। यहां उस पार्टी का जिक्र किया गया। मैं अपनी पार्टी की कभी तारीफ नहीं करता, करना नहीं चाहता क्योंकि जब तक हम कुछ करके दिखा दें कहने से क्या फायदा लेकिन केवल सिद्धान्तरूप से कुछ कहना चाहूंगा। खास कर जब रंगा साहब ने समाजवाद का नाम लिया, कुछ और लोगों ने लिया और उधर वाले लेते हैं तो मैं एक बात कह लेना चाहता हूं कि इधर हम लोग विरोधी दल के हैं, कोशिश करते हैं एक दूसरे के साथ ऊपरी प्रेम रखने के लिए। मैं चाहता हूं कि वह ऊपरी प्रेम और जरा कुछ मजबूत बन जाये। उसमें सफलता नहीं मिल रही है। लोग चाहे कुछ भी समझते हों हम लोग आपस में कम से कम जो चुनाव की सीटें होती हैं जगहें होती हैं उनके बारे में बंटवारा कर लें अब क्या होता और क्या नहीं होता उसमें मैं नहीं जाऊंगा लेकिन सिद्धान्ततः एक बात बतलाना चाहता हूं और वह यह कि कांग्रेसी सरकार को एक बात का घमण्ड है कि वह हार नहीं सकती तो यह बात किसी हद तक सही है। स्वतंत्र पार्टी उसको कभी हरा नहीं सकती है। जनसंघ उसको कभी हरा नहीं सकता है। कम्युनिस्ट पार्टी उसको हरा नहीं सकती केवल एक दल उसको हरा सकता है जिसमें आर्थिक क्रान्तिकारिता और राष्ट्रीयता दोनों एक साथ समान मात्रा में जुड़ी हुई हों। वह दल अभी बन पाया है या नहीं बन पाया है इस पर मैं कोई राय नहीं देना चाहता लेकिन इतना जरूर याद रखना कि चाहे वह कृष्ण छोटा सा ही क्यों न दिखाई पड़ता हो लेकिन किसी वक्त वह कंस के सिर पर और छाती पर चढ़ कर ऐसा मारेगा कि उसको ठीक कर देगा। यह काम आर्थिक क्रान्तिकारिता और राष्ट्रीयता की जुड़ाव वाली पार्टी ही कर सकती है। मैं चाहता हूं कि केरल में मौका दो। जो विधान सभा चुनी गई थी उस को वापिस बुलाओ। अब अगर कहा जाये कि उसको एक दफा बर्खास्त कर दिया तो जो दो तिहाई बहुमत आप लोगों का है उसमें जरूरी हो तो संविधान में तबदीली करके भी उस विधान सभा को वापिस बुलाइये। वही एक दर्पण है, वही एक जनतन्त्र है और अगर उसको आप खत्म करते हो तो फिर याद रखना कि कभी-कभी मामला खतरनाक हो जाया करता है और ऐसा खतरनाक हो जाता है कि मेरे जैसे आदमी जो कुछ करना नहीं चाहते उन को भी कुछ करना पड़ता है। बस इतना ही मुझे कहना है।

47

देश में खाद्य स्थिति संबंधी प्रस्ताव*

अध्यक्ष महोदय, चारों तरफ आज एक ही आवाज है कि यह दुर्दशा दुनिया के और किसी देश में हुई होती तो अब तक निकाल दिये गये होते और हुकूमत का तख्ता पलट गया होता।

***   ***

इसका एक कारण है कि हमारे देश की जनता आधा मुर्दा हो चुकी है और दूसरा कारण यह है कि हमारे विरोधी लोग नौटंकी खेलते हैं। इनकिलाब करना चाहते नहीं या जानते नहीं। कभी 24 घंटे का उपवास, कभी एक दिन की शान्त हड़ताल और कभी सात दिन का दिखाऊ सत्याग्रह। अब जरूरत इस बात की हो गयी है कि हिन्दुसतान की जनता अच्छे तरीके से एक फैसला करे क्योंकि इस देश में अनाज का सवाल शासकीय हो चुका है, सरकारी हो चुका है और यह कोई सीधा आर्थिक सवाल ही नहीं है। इस के लिए मैं प्रमाण देता हूं देश से बाहर खाने पीने की चीजें भेजे जाने के बारे में। चीनी यह सरकार अपने देशवासियों को डेढ़ रुपये किलो के हिसाब से बेच रही है और दुनिया को परदेशियों को साढ़े सात आने किलो के हिसाब से बेच रही है। पिछले अगस्त के महीने में यह सब काम हुआ। यह मैं श्री स्वतंत्र पार्टी को कहना चाहता हूं जोकि इस सरकार के कुछ आदमियों के खिलाफ तो कभी पहले रहते थे लेकिन क्योंकि वह आदमी बदल गये हैं इसलिए आप जरा ठंडे पड़ गये हैं। मेरा उन से कहना है कि वे जरा आदमियों पर न जाकर नीतियों के ऊपर विचार किया करें। जब तक नीतियों पर विचार नहीं होगा और केवल आदमियों को देखा जायेगा तब तक यह गलतियां होती रहेंगी।

निर्यात के बारे में मैं आप को और मिसाल दूं। आज दालों के दाम बढ़े हुए हैं। एक रुपये, सवा रुपये और डेढ़ रुपये सेर दाल का भाव है, यह तो ठीक है कि चने का निर्यात बन्द है लेकिन फोड़े हुए चने की दाल का तो निर्यात बदस्तूर जारी है। इस तरह का कानून आज अपने देश में चल रहा है।

*लोक सभा वाद-विवाद, 9 सितम्बर, 1964।

फिर केला है, आम है, मैं चेतावनी देना चाहता हूं कि कुछ अर्से के बाद इस देश में अच्छा केला और अच्छा आम देशवासियों को नहीं मिलेगा क्योंकि सरकार की निर्यात नीति बिलकुल वाहियात हो चुकी है। जब विदेशी मुद्रा किसी कारखाने की वस्तुओं से नहीं मिल सकती तो आखिर को उसे जनता के भोजन पर हमला करना पड़ता है ताकि वह विदेशी मुद्रा कमा सके....

*** *** ***

निर्यात नीति के बारे में मैं यह साफ कह दूं कि इतनी ज्यादा ऐय्याशी और फिजूल खर्ची का सामान बाहर से आता है कि हम को उसके लिए मुद्रा ढूंढनी पड़ती है और मुद्रा ढूंढने के लिए सामान मिल नहीं पाता तो आखिर को भोजन पर हमला करना पड़ता है।

इस तरीके से मैं आप को पैदावार के बारे में बतलाना चाहता हूं यहां बहुत कहा गया है कि पिछले 15 वर्ष में 35 सैकड़ा अनाज की पैदावार बढ़ी है लेकिन साथ ही यह क्यों नहीं कहा गया कि पिछले 15 वर्ष में आबादी भी 33 सैकड़ा बढ़ गयी है। इसलिए मैं यह कहना चाहता हूं कि यह 30-35 का कोई फर्क नहीं है। आंकड़े इस तरह के देश में हैं कि पैदावार और आबादी साथ साथ बराबर बढ़ी है इसलिए दरअसल कुछ भी नहीं हुआ है। कुछ खराबी आई है। एक बात में जबरदस्त खराबी आई है और वह यह कि जितना भी अनाज हमारे देश में है अगर प्रति व्यक्ति उसे बांटें तो साढ़े चौदह आउंस पड़ेगा यानी सवा सात छटांक पड़ेगा। यह मैं औसत बतला रहा हूं केवल बीज वगैरह निकाल कर। अब सवा सात छटांक अनाज भी हर व्यक्ति को नहीं मिल पाता है क्योंकि पहले से गड़बड़ है। इतना मैं कहना चाहता हूं कि 27 करोड़ आदमियों को 4 छटांक अन्न से अधिक प्रतिदिन नहीं मिलता रहा है। अब मैं एक खतरनाक बात बतलाना चाहता हूं, ऐसी खतरनाक बात जो हमेशा चालू रहेगी। जब तक यह सरकार रहेगी तब तक वह चालू रहेगी। क्योंकि इस सरकार की योजना का आधार यह है कि पांच करोड़, साढ़े पांच करोड़ की हालत तो थोड़ी बहुत सुधारो और 42 करोड़ की हालत बिगाड़ दो। आज इस योजना का आधार है कि कुछ की जिन्दगी जुड़ी हुई है बहुतों की मौत के साथ। यह बात बिल्कुल साफ होती चली जा रही है कि इस योजना से या तो पचास लाख बड़े लोग, और या उन के पिछलग्गू कुछ छोटे बाबू लोग, पनपते हैं। मैं जानता हूं कि छोटे बाबू लोगों का बहुत सुधार नहीं हो पाता है। उन को कोई मक्खन या संतरा नहीं मिलता है, लेकिन अनाज की मिकदार कुछ बढ़ जाती है। चूंकि अनाज की पैदावार नहीं बढ़ रही है,

इसलिए जब योजना कुछ वर्गों की स्थिति को सुधारती है और उनकी खपत बढ़ती है, तो बढ़ी हुई खपत आखिर साधारण जनता के अनाज से ही निकलती है। अभी मैंने 27 करोड़ आदमियों के लिए चार छटांक अनाज बताया। मैं कहना चाहता हूं कि अगले पांच वर्षों में वह चार छटांक भी घट कर तीन, साढ़े तीन छटांक रह जायेगा, क्योंकि इस सरकार की योजना का आधार ही ऐसा है। यह राजकीय सवाल है और राजकीय नीति इससे जुड़ती है।

अनाज की पैदावार क्यों नहीं बढ़ पाती है? इसलिए कि खेती में मुनाफा नहीं है, खेती में घूंस नहीं है, खेती में चन्दा नहीं है। जितनी भी योजनायें बनाई गईं, उन सब में आप देखेंगे कि करोड़पति के मुनाफ़े तीस चालीस सैकड़े के हैं। कहां मिल रहे हैं? बड़े बड़े कारखानों में, या मकान बनाने में और या फिर वे ठाट के 400 करोड़ के रांची के कारखाने हैं, या 100 करोड़ के फ़ौलाद के कारखाने हैं, या 50 करोड़ के एलुमिनियम के कारखाने हैं, जिन में इधर-उधर कुछ अपनी पार्टी को चलाने के लिए चन्दा भी मिल जाया करता है और खुद के लिए, और अगर खुद के लिए नहीं तो कम से कम बेटे और दामाद के लिए पैसा मिल जाता है, धन इकट्ठा हो सकता है। आप गौर कीजिए कि मैंने किन बातों को कहा है। इन उद्योगों से नेताओं को राजनीति के लिए चन्दा मिलता है और नौकरशाहों को मौका मिलता है अपने सम्बन्धियों की अवस्था को सुधारने के लिए और करोड़पतियों को मुनाफ़ा दिलाने के लिए।

आज जहां ऐसी अवस्था है, वहां योजना का पैसा खेती में नहीं लग सकता है। जिन किसानों के पास तीन, चार, छः एकड़ जमीन है, उन को क्या मिलेगा? मैं देखता हूं कि हमारे कुछ कांग्रेस के दोस्त, जो किसानों के हिमायती हैं, अक्सर कर्ज़े का ज़िक्र किया करते हैं कि किसानों को कर्ज़ा मिले। कहां से कर्ज़ा मिलेगा? कर्ज़ा मिलेगा उद्योगपतियों को, उन कारखानों को, जिन से मंत्री और नौकरशाह जुड़े हुए हैं, जिन से नफ़ा उठाते हैं। इन छोटे किसानों को कर्ज़ा नहीं मिल सकता है। और अगर छुटपुट कुछ मिल भी गया, तो उस से कुछ आने-जाने वाला नहीं है।

व्यापार और उद्योग में लक्ष्मी है। खेती में लक्ष्मी नहीं है। है भी, तो उन के पास, जिन के पास पांच सौ, हजार एकड़ जमीन है। इसलिए एक बात मैं बिल्कुल जोर से कहना चाहता हूं कि इस सरकार के रहते हुए हम को बाहर से अनाज मंगाना पड़ेगा। जब से यह सरकार चालू है, मेरा ख्याल है कि हम कम से कम पंद्रह अरब रुपये का अनाज बाहर से मंगा चुके हैं। दस, बारह अरब रुपये का अनाज तो खाली अमरीका से आया है और बाकी दूसरे देशों से भी आया है... मैं

समझता हूं कि अगर कोई जिन्दा देश होता, तो इतनी बात से ही आग लग जाती कि पिछले पंद्रह वर्षों में पंद्रह अरब रुपये का अनाज मंगाया गया है।

इस पंद्रह अरब रुपये के साथ साथ योजना का बुरा ढंग है, जिस की बुनियादी बात मैं कह देता हूं कि अगर एक हजार रुपये महीने से ज्यादा खर्चा किसी मंत्री, किसी नौकरशाह और किसी उद्योगपति को न करने दिया जाये, तो बारह अरब रुपये—यह मैं कहता हूं सरकारी हिसाब से, मेरे हिसाब से तो पच्चीस अरब रुपया होगा—कि सालाना बचत खर्चे में हो सकती है। आप देखिये कि यह कितनी बड़ी पूंजी हो जाती है। इस पूंजी के बारे में मैं कहूंगा कि इस का पहला उद्देश्य होना चाहिए हिन्दुस्तान की खेती को सुधारने का। ये सब झूठे सवाल है कि कर्ज़ा मिले, या किस तरह खेती का संगठन हो, सहकारी खेती हो या राज्य के खेत हों, आदि। जरूरत इस बात की है कि खेती में पूंजी लगाई जाये, चाहे उस में चन्दा मिले या न मिले, चाहे उस में लक्ष्मी मिले या न मिले। खेती में पूंजी लगाना है और जब तक यह नीति का फैसला नहीं होगा तब तक मामला ठीक नहीं हो पायेगा।

इस का एक और नतीजा निकलता है। लोग कहते हैं कि दाम बढ़ाओ। अक्सर मैं ने यह आवाज इधर से सुनी कि दाम बढ़ाओ। किसी हद तक मैं उस को पसन्द भी करता हूं। लेकिन मैं एक बात बताना चाहता हूं। किसानों की उपज के दाम बढ़ाने का मतलब क्या होगा? उद्योगी दाम बढ़ाते रहो और किसानों के दाम बढ़ाते रहो। यहां पर मैं एक और खतरनाक बात कह देता हूं, जो कि होने वाली है और वह यह है कि हिन्दुस्तान के सामने सीधा सा सवाल यह है कि या तो उद्योगी दामों को घटाओ और या खेती के दाम बढ़ाओ। इसके अलावा और कोई रास्ता नहीं रह गया है, क्योंकि पिछले दस, पन्द्रह बरसों में कारखाने की बनी चीज़ों के दाम बढ़ते चले गए और खेती के दाम उस हिसाब से बढ़े नहीं। आज सन् 1964 में पहली दफा खेती की चीज़ों के दाम बढ़ने शुरू हो गए हैं। जो चीज़ अब हुई है, वह यहां आकर अटक गई है। हजार सर पटक लें, वह बदलने वाली नहीं है, क्योंकि यह सारे संसार का नियम है कि दाम आपस में जुड़े हुए रहते हैं, अलग से दाम नहीं चला करते हैं। आज मिट्टी के तेल की बोतल बेची जा रही है छः आने में। सिमेंट का हिसाब ही बड़ा गड़बड़ है। आठ रुपये, बारह आने बोरा कण्ट्रोल दाम है और जहां मिले—मिलता नहीं है सब जगह जिससे भी आप कुछ नतीजा निकाल सकते हैं वहां बारह और चौदह रुपये बोरा मिलता है। कहां आठ रुपये कण्ट्रोल और कहां चौदह रुपये असली दाम। कौन ले जाता है वे छः रुपये? मन्त्री? नौकरशाह? व्यापारी? इन तीनों के तिगड्डे को हमें कभी भूलना नहीं चाहिए। चौदह रुपये में सिमेंट का बोरा अगर किसान खरीदेगा—और वह भी बड़ा किसान, जो अपना गल्ला बाजार में बेचता है—तो वह लाज़िमी तौर पर यह कोशिश करेगा कि उसको भी अपनी चीज़ों के

अच्छे दाम मिलें। इसीलिए, काली घटा छाई ही रहेगी हिन्दुस्तान पर, ऐसा मेरा ख्याल है, क्योंकि पहली दफ़ा खेती के दाम कारखानों के दामों के साथ कुछ रेंगने शुरू किये हैं। और अगर इस घटा को छंटाना है, तो कारखाने के दाम गिराने ही पड़ेंगे, और कारखाने के दाम गिराने के लिए जो तरीका मैंने बताया है, उसके अलावा और कोई तरीका नहीं है कि कर घटाओ, सरकार की फ़िजूलखर्ची घटाओ, सरकार किसी दूसरे पैमाने पर ले जाओ। जिस ढंग से पिछले सत्रह बरस से और जिस ढंग से आज यह सरकार चल रही है, वह चल नहीं सकता है, सरकार को दूसरे ढंग पर ले जाओ, इसकी आत्मा को बदलो। या तो इस काम को करो, वर्ना कोई दूसरा रास्ता रह नहीं जाता है ।

मैं आपसे एक सिद्धन्त की बात और कह दूं कि दाम तो नहीं बांधे जा सकते, लेकिन दामों के रिश्तों को बांधना जरूरी हो गया है। मैं उन लोगों में नहीं हूं, जो कहा करते हैं कि गेहूं इस दाम पर बेचो और हमेशा इसी दाम पर बेचो, सिमेंट इसी दाम पर बेचो, लेकिन मैं चाहता हूं कि गेहूं, सिमेंट, मिट्टी का तेल, कपड़ा, इनके रिश्ते बांध दिये जायें, ताकि अगर एक घटे, तो दूसरा भी घटे, अगर एक बढ़े तो दूसरा भी बढ़े। इसमें किसान का भी फायदा है, शहर के उपभोक्ता का भी फायदा है, सारे देश का फायदा है। इसी आधार पर अच्छी योजना बन सकती है। दामों के रिश्तों को बांधना जरूरी है।

मुझे अफसोस के साथ कहना पड़ता है कि इन सब बातों पर हिन्दुस्तान के राजनीति करने वालों ने अच्छी तरह से ध्यान नहीं दिया है। मैं समझता हूं कि मामूली इन्सान या मामूली मजदूर तो मेरी बातों को समझ जायेगा, लेकिन जो फंस गए हैं चक्कर में, वे नहीं समझ पाते।

अब मैं थोड़ा सा समाजवादियों को कुछ कहना चाहता हूं। चाहे वे समाजवादी उस तरफ वाले हों और चाहे इस तरफ वाले—फ़र्क कुछ नहीं पड़ता है—वे रूप के बहुत ज्यादा मोहीत हो गए हैं और उन को प्राण से मतलब नहीं रह गया है। जब देखो यह बात कही जाती है कि राज्य व्यापार अनाज का हो या न हो, बैंकों का राष्ट्रीयकरण हो या न हो, क्षेत्रीय व्यापार हो या न हो। खाली रूप के सवाल ये लोग उठाया करते हैं। रूप में रखा क्या है, अगर प्राण नहीं रहता है? समाजवाद के शरीर की ढूंढ तो करने लग गए हो, समाजवाद के प्राण की ढूंढ बिल्कुल नहीं है। मैं कहना चाहता हूं कि चाहे वे अपने को वामपन्थी कहते हों और चाहें दक्षिणपन्थी, वे चाहे जो भी हों वे प्राण की भी फ़िक्र करें। इस वक्त पूरे हिन्दुस्तान भर में खास तौर से पढ़े लिखे लोगों में एक विचार फैला हुआ है कि हमें जरूरत है कि इन्तजाम को और संस्थाओं की तबदीली की और ऐसे संगठन बनाने की जिनसे समाजवाद आ सके। कहा जाता है कि राष्ट्रीय बैंक बनाओ, समाजवाद आ जाएगा, सहकारी समितियां बनाओ समाजवाद आ जायेगा, दूसरी चीजों का

राष्ट्रीयकरण करो समाजवाद आ जायेगा । केवल संस्थाओं को तबदीलियां कर देने से लोग समझते हैं कि समाजवाद आ जाएगा। यह उनकी बहुत जबर्दस्त भूल है। मैं सहकारी समितियों का एक कलंक आपको बता देना चाहता हूं। समाजवाद का रूप तो था लेकिन उस रूप का किस प्रकार से दुरुपयोग हुआ इसका अन्दाजा आपको चल जाएगा। क्या कुछ हो रहा है, इसको आप देखें। एक तरफ गांव के बड़े लोग हैं और दूसरी तरफ कस्बों और शहरों के व्यापारी, कम से कम बड़े न सही तो आढ़ती मिल करके सहकारी समितियां बना रहे हैं और हिन्दुस्तान की जनता को खूब मजे में लूट रहे हैं। यह सहकारी समितियों का हाल हो रहा है। केवल रूप की तरफ देखोगे और प्राणों की तरफ नहीं देखोगे तो नतीजा समाजवाद का यह होकर ही रहेगा। कांग्रेस वाले खास तौर से समाजवाद को कह देते हैं और इधर वाले भी उसका नारा तो लगा देते हैं लेकिन कम्युनिस्ट लोग किसी तरह से इस बात को समझ जाते तो बहुत अच्छा होता। लेकिन वे समझ नहीं पा रहे हैं। रूप के चक्कर में वे बहुत फंसे हुए हैं। यह भी अच्छा है। वैसे तो आपने देखा होगा बादल बरसते खूब हैं और गरजते भी खूब हैं और मेरे जैसा आदमी बहुत पसन्द करता है जब ऐसे बादल दिखाई देते हैं जो दिखने में और सुनने में भी बहुत अच्छे लगते हों। लेकिन रूप के चक्कर में फंसे रहने से काम नहीं चलेगा।

इस योजना का गांव में क्या नतीजा निकला है, इसको आप देखें। एक तरफ सहकारी समितियां, दूसरी तरफ ठंडे घर, तीसरी तरफ बीज वगैरह देने का इंतज़ाम और साधन, चौथी तरफ कर्ज़ और सिंचाई वगैरह ये सब गांवों में किये गये हैं। इन सब का फायदा किसी को मिलता है इस तरफ भी आपका ध्यान जाना चाहिये। गांवों में यों तो इनका फायदा मिलता है मुश्किल से पांच सैकड़ा को। सारी योजना के नाम पर देश का अरबों रुपया खर्च होने के बाद भी केवल पांच सैकड़ा और अगर ज्यादा हिसाब लगाया जाए तो दस सैकड़ा को फायदा मिल जाता है। इसका क्या नतीजा होता है? अगर गांव वाले उस संचित धन का गांव में इस्तेमाल करते हैं? खेती को सुधारने में उसको लगाते हैं तो मेरे जैसा आदमी ऐसी बात को माफ भी कर देता क्योंकि आज मेरा दिल इतना टूटा हुआ है कि मैं समाजवादी न्याय को नहीं चाहता इतना ज्यादा जितना कि मैं समाजवादी पैदावार को चाहता हूं। देश में पैदावार बढ़े यह मेरा मकसद है। अगर अन्याय करके भी कोई पैदावार बढ़ा सकता है तो मैं उसका हाथ चूमने के लिए तैयार हूं। बड़े लोगों को बढ़ाया जा रहा है। कांग्रेस सरकार बड़े लोगों पर आधारित है चाहे वे बड़े लोग शहरों के हों या देहातों के हों। उनको यह फायदा दिलाती है। उन से वोट लेती है। उनके हाथ में इतनी ताकत होती है कि सब लोगों को प्रभावित करके वे ले जाते हैं और इनको वोट दिला देते हैं। नतीजा यह हुआ है कि जितने गांव के बड़े लोग हैं वे आज तक नफा उठाते रहे हैं और उस नफे को वे गांवों और खेती में न लगा करके शहरों में, कारखानों में या

व्यवसायों में लगाया करते हैं। जो लोग गांव वाले हैं, वे इसको अच्छी अच्छी तरह से जानते होंगे। मैं उनको दोष नहीं देता हूं। यह संसार का नियम है, प्रकृति का नियम है जहां नफा दिखेगा वहां लोग दौड़ेंगे। परिणाम यह हो रहा है कि गांवों के बड़े लोग शहरों की तरफ दौड़ रहे हैं खाली शारीरिक हिसाब से नहीं, नफे के हिसाब से वहां पैसा लगा रहे हैं। जैसे और दिशाओं में वैसे इस दिशा में भी नतीजा यह हो रहा है कि चिल्लाते हम रहेंगे गांवों में बसो, शहरों में मत जाओ, चिल्लाते हम रहेंगे खेती में पूंजी लगाओ, खेती को सुधारो, लेकिन सब पूंजी उद्योग और व्यापार में लगती चली जाएगी और खेती का सुधार नहीं हो पाएगा। इसलिए मैं कहना चाहता हूं कि यह सदन और देश समाजवाद के प्राणों की तरफ देखना शुरू करे।

जितनी भी बहस हुई है, उस में मैंने सुना है, इस तरफ से भी और उस तरफ से भी ज्यादा जोर इसी बात पर दिया गया है कि जमाखोरी और मुनाफ़ाखोरी के कारण यह सब कुछ हुआ है। मन में मेरे भी लगा कि हां किसी हद तक यह बात भी सही है। लेकिन यह कितनी बड़ी नादानी है कि इतने बड़े सवाल को खाली जमाखोरी और मुनाफ़ाखोरी के ऊपर डाल दिया जाए। आखिर सवाल क्या है? यह सही है कि हिन्दुस्तान में हमेशा ही व्यापार के उतार चढ़ाव में अनाज में खास तौर से, काफी फर्क रहा करता है। कभी तो अनाज या गेहूं या चावल अब चार आने तो नहीं लेकिन 6-7 आने कहीं कहीं बिकता है और फिर उसी फसल का वह अनाज 11-12 आने तक चला जाता है। यह हमेशा का नियम रहा है। लेकिन अब की बार यह बात उठाना कि 1964 में जो दाम बढ़े हैं वे जमाखोरी और मुनाफाखोरी के कारण ही बढ़े हैं ठीक नहीं है क्योंकि उसका परिणाम यह होता है कि सारा देश समझने लगता है कि सरकार तो करीब करीब निर्दोष है वह तो कुछ नहीं कर रही है और दूसरों का ही सारा दोष है। सरकार का अगर दोष है तो खाली इतना कि वह चोरों को नहीं पकड़ रही है या चोरों के साथ जुड़ी हुई है। मैं कहना चाहता हूं कि आज अनाज की जो नीति है, चाहे अनाज बाहर भेजने की, चीनी बाहर भेजने की, चाहे बाहर से अनाज मंगाने की, चाहे खेती में पैसा लगाने की, यह सारी गलत है, इसका जमाखोरी या मुनाफाखोरी से कोई सम्बन्ध नहीं है। केवल सरकार से है, योजना से है, उद्योग और कृषि के रिश्तों से है। उनकी तरफ ध्यान दिया जाना चाहिये। अगर ऐसा नहीं किया गया तो नतीजा यह होगा कि किसी झूठे आदमी को पकड़ने की तलाश में हम असली को नहीं पकड़ पायेंगे। जो सचमुच में जमाखोर और मुनाफाखोर हैं, उनके बारे में मैं कुछ मिसालें देना चाहता हूं। जमाखोरी का क्या मतलब है? इसका मतलब यह लिया जाता है, कि अनाज जो जमा करके रखता है वह जमाखोर है। दो दिन भी अनाज कोई जमा करेगा तो वह जमाखोरी हो जाएगी। दिल्ली में हजरत लोगों ने छापे मारे थे व्यापारियों के घरों पर। बाद में इनको एलान करना पड़ा था कि हम कोई जमाखोरी के

लिए छापे मारने नहीं गये थे। हम तो खाली यह देखने गये थे कि क्या हमारा पुलिस का इंतज़ाम ऐसा है कि कभी जरूरत पड़े तो छापा मार सकता है। ऐसे तो ये लोग हैं। यह तो सरकार है। जमाखोरी वगैरह का मामला क्या है और कहां जा कर टिकता है, उसकी एक मिसाल मैं आपको देता हूं। कुछ दिन पहले उत्तर प्रदेश का गुड़ बाहर नहीं जाने दिया जाता था। वह गुप्त गुड़ था। गुप्त दोनों मानों में। गुप्त रूप से भी आ जाता था और उस वक्त गुप्त जी उतर प्रदेश के मुख्य मंत्री भी थे। इस सारी चीज को अगर आप ढूंढ लें तो आपको पता चलेगा यही तिगड्डा, चुनाव जीतने के लिए चन्दा, वही पुलिस वालों और नौकरशाही की घूस और वही बड़े व्यापारी और मुनाफा। यह पूरा तिगड्डा चलता जा रहा है।

.... जितने कांग्रेसी हैं सब के लिए कहे देता हूं खाली एक के लिए नहीं कहता हूं। जब वे मंत्री बन जाते हैं तो अपने बेटों, अपने रिश्तेदारों और अपने सब लोगों को पैसे दिलवाते रहते हैं और नतीजा यह होता है कि सिंचाई का फायदा हिन्दुस्तान की जनता और किसान को नहीं हो पाता है और अगर थोड़ी सी पैदावार बढ़ती भी है तो उससे कहीं ज्यादा घूस में, चन्दों में और टैक्स में पैसा खर्च हो जाता है।

उसी तरह से फर्रुखाबाद में अभी एक सीनियर मार्केटिंग इंस्पैक्टर पकड़ा गया है चार सौ रुपये घूस लेता हुआ। मुझे सिर्फ एक ही मिसाल नहीं देनी है। मैं यह कहना चाहता हूं कि आज जितने भी सरकारी नौकर हैं चाहे वे इंस्पैक्टर हों कर के, चाहे वे किसी जगह पर पूर्ति वगैरह का सामान बांटते हों और चाहे उनके ऊपर देखभाल करने वाले राजकीय लोग हों,—हर एक के लिए तो मैं नहीं कहता हूं, लेकिन प्रायः हर एक अपने दल को, अपने कुटुम्ब को चलाने के लिए सब तरह के काम करते रहते हैं। दल और कुटुम्ब दोनों मैं कहना चाहता हूं।

जब मैं दल का नाम लेता हूं तो एक बड़ी बुरी भ्रान्त धारणा हम सब लोगों के दिमाग में बन जाती है कि अगर कहीं हमारा दल जीत जाये और गद्दी पर बैठ जाये तो फिर वह संसार के लिए और देश के लिए कल्याणकारी होगा। जहां यह भ्रान्त धारणा दिमाग़ में घुस गई हो, वहां पर आदमी सब कुछ करने को तैयार रहता है हर पाप माफ हो जाया करता है। यह धारणा दिमाग़ में धंस गई है कि किसी तरह से इस सरकार को कायम रखो। अगर कांग्रेस सरकार खत्म हो गई तो देश टूट जायेगा। देश अगर टूट जायेगा तो इस से बढ़ कर नुकसान क्या हो सकता है। इसलिये देश को बचा कर रखो। देश को बचाने के लिये अगर मंत्री, नौकरशाह और व्यापारियों का तिगड्डा चला कर के, घूस, चन्दा, बड़े मुनाफे 40 प्रतिशत प्रति वर्ष भी करना पड़े तो चलाते रहो, और यह जो मैं ने सीनियर इन्सपैक्टर की मिसाल दी है, सारे देश में इसी तरह से चलाते रहो।

अब तक तो जो मैं बोला हूं वह बहुत ढूंढ ढांढ कर सारी चीजों को बोला हूं। अब मैं कलकत्ते की एक घटना बतलाना चाहता हूं। मैंने चाहा था कि नन्दाजी से इसकी तलाश कर लेता कि यह घटना कहां तक सही है लेकिन वह अभी तक इस का पता नहीं लगा पाये इसलिये मैं बतलाना चाहता हूं। नाम तो कांग्रेसियों का नहीं बतलाऊंगा जो इसमें शामिल है, लेकिन कलकत्ते में कुछ बड़े मिल मालिक मनमोहन खान, काशी नाथ पाल और ईश्वरदास जालान के दामाद आदि कुछ अर्से से गिरफ्तार हैं। इस को वहीं पर ढूंढने की जरूरत है, और मैं चाहूंगा कि श्री हीरेन मुकर्जी इसे ढूंढ ढांढ कर लायें। अगर अतुल्य घोष साहब वहां मौजूद थे तो वे बतला दें कि अगर वे पकड़े गये तो कैसे पकड़े गये, क्यों पकड़े गये। अगर मेरी इत्तला सही है तो जहां अब तक मैं ने नन्दा जी की थोड़ी बहुत निन्दा की है, इस मामले में थोड़ी तारीफ भी कबल-जवक्त कर देना चाहता हूं, बशर्ते उन्होंने इस मामले में कुछ काम किया हो। मगर इस को मैं टाल देता हूं क्योंकि मेरी इत्तला पक्की नहीं है।

एक चीज और है जो मैं आप के सामने रखना चाहता हूं। अभी मेरे पास एक तार आया है कि माणिकपुर के बुट्टा कोल बिना खाये मर गये। जब मैं सहसराम गया हुआ था तो पारसनाथ तिवारी ने मुझे एक किस्सा बतलाया कि ठीक दो घंटे पहले कोई अनामिका बिना खाये मर गई। इस सम्बन्ध में केशव शास्त्री का बड़ा भारी काम मैं आप को बतला देना चाहता हूं। उन्होंने एक आदमी को मरते देखा तो थानेदार को मजबूर किया कि उस आदमी की वह निगरानी करे। उन्होंने कहा कि इस आदमी का माल तो समाप्त हो गया, लेकिन इस की जान के लिये तुम जिम्मेदार हो। जान और माल को बचाने का कायदा है। अगर सारे देश में इस तरह की चीज चलती रहे तो अच्छा है।

अभी जब मैं आ रहा था तो मेरे पास हैदराबाद से यह गेहूं का बंडल आया है। जरा इस की तरफ आप गौर करें और उस के बाद आप इसे मंत्री महोदय को दे दें तो अच्छा होगा। यह एक सरकारी दूकान पर बंट रहा था। 400 दूकानें सस्ते अनाज की वहां हैं। जहां से यह लिया गया उस की क्रम संख्या 321(1) है। यह श्री बद्री विशालजी ने हैदराबाद से भेजा है। अगर कोई इस को अध्यक्ष महोदय को दे दे तो अच्छा है। मैं ऐसा नहीं कहता कि सब दूकानों पर इस तरह का गेहू बंटता है, लेकिन काफी दूकानों पर ऐसा गेहूं बंटता है। आप यह गेहू अच्छी तरह से देख लें।

***   ***   ***

व्यवधान[क]

***   ***   ***

[क]एक माननीय सदस्य: अमरीका में कैसा गेहू मिलता है?

मैं समझता हूं कि अमरीका में यह जानवरों को भी नहीं दिया जाता होगा।

अब मैं अपनी बात को खत्म करने के पहले कुछ भारतबन्द के बारे में भी कह देना चाहता हूं, क्योंकि यह बात तो बिल्कुल साफ हो चुकी है कि भारतबन्द का जो कार्यक्रम बनाया गया है उस कार्यक्रम के अलावा और कोई रास्ता रह नहीं गया है। इस सरकार को हटाने के लिये जनता के गुस्से और ताकत का संगठन जरूरी है। लेकिन इस भारतबन्द के बारे में जो शिकायत है, वह यह कि एक तो यह बहुत देर बाद हो रहा है, दूसरे खाली एक दिन का हो रहा है। मुझे तो अब ऐसा भारत बन्द चाहिये जो सिर्फ एक दिन की हड़ताल करके ही शान्त नहीं रह जायेगा। अब लगातार काम बन्द रखो। और इस सम्बन्ध में मैं जनसंघ से भी कहना चाहता हूं कि बहुत हो चुका। तुम कम्युनिस्टों को खराब कहते हो, इस को खराब कहते हो, मैं कम्युनिस्टों से भी कहना चाहूंगा कि जनसंघ को खराब कह कर कब तक देश की तकदीर से खिलवाड़ करते जाओगे। अब जरूरत हो गई है कि सारे मुल्क के लोगों को इकट्ठा कर के देश के सारे कामकाज को बन्द करो ताकि यह सरकार भी बन्द हो जाये। जिस तरह की नीतियां अभी तक इस सरकार ने चला रखी हैं, पैदावार की नीति, पूंजी की नीति, ब्याज की नीति, निर्यात की नीति, यह सारी नीतियां बदल जायें। मैं कहूंगा श्रीमती रेणु चक्रवर्ती से कि सिर्फ जमाखोरी करने वाले लोगों पर ही अपना गुस्सा वह न डाल दिया करें। वह पता लगायें कलकत्ते में कि क्यों यह लोग पकड़े गये थे। श्री अतुल्य घोष ने एक बयान निकाला है कि उन्होंने 25 लाख रुपया कोई कांग्रेस का अधिवेशन वहां होने वाला है उस के लिये इकट्ठा करना चाहा तो चावल मिलों से उस का कोई सम्बन्ध नहीं है। मैं खाली यह कह देना चाहता हूं कि जहां धुआं होता है वहां थोड़ी बहुत आग जरूर हुआ करती है।

48

सरकारी उपक्रम समिति सम्बन्धी प्रस्ताव*

उपाध्यक्ष महोदय, एक घंटे से कमेटी पर बहस चल रही है। उससे हम सभों को एक बात लगी होगी कि लोक सभा में रूप पर ज्यादा बहस होती है, सार पर कम। अगर हम लोग इस पर ध्यान रखें कि सार पर ज्यादा बहस किया करें तो उससे देश को ज्यादा अच्छा फल मिले।

मैंने कल श्री दाजी के भाषण को ध्यान से सुना यह समझने के लिए कि कम्युनिस्टों या उनके समर्थकों का क्या रुख है। उन्होंने लोक दायरे के कारखानों की आरती तो जरूर उतारी लेकिन अपने सभी तर्क से साबित किया कि जितनी जल्दी यह लोक दायरा खत्म हो जाए उतना अच्छा है। यह कैसे होता है, यह जानने की जब मैंने कोशिश की तो फिर मुझे एकाएक कानूनगो साहब के भी भाषण की याद पड़ी। उन्होंने अपने भाषण में जो कुछ उदाहरण दिये, इंग्लिस्तान के दिये और वहां की लोक सभा के दिये। जब कि बहस हो रही थी लोक दायरे पर, सरकारी कारखानों पर, तो उन्हें ज्यादा सोचना चाहिये था सोवियत रूस के उदाहरणों और बातों पर। लेकिन कुछ हम लोगों का तरीका ही ऐसा हो गया है कि हम बहुत ज्यादा लोक दायरा और निजी दायरा मिला जुला करके सोचा करते हैं और किसी परिणाम पर नहीं निकल पाते। यह भी हो सकता है कि रूस की बातें अगर ज्यादा यहां होतीं तो शायद रूस की और भी बातें सामने आतीं वहां अत्याचार जरूर है और मैं उनको कतई पसन्द नहीं करता हूं लेकिन जिस ढंग से सरकारी कारखाने यहां चलाये जा रहे हैं उस ढंग से अगर वहां चलाये गये होते तो क्या होता। इन मंत्रियों और इन मैनेजरों का, यह कहना बड़ा कठिन है। कुछ थोड़ा बहुत जो मैं प्रधान मंत्री के सुकर्मों या कुकर्मों के बारे में बोलूंगा तो बताने की कोशिश करूंगा कि उनका क्या भाग्य होता रूस में। अभी खाली मैं इतना बता देता हूं कि हमारी हमेशा की आदत के मुताबिक हमने लोक दायरे और निजी दायरे को एक दूसरे से बहुत सिखाया पढ़ाया है। दुनिया भर में निजी दायरा इन्तिजाम के मामले में ज्यादा अच्छा होता है, लेकिन लालच के मामले में ज्यादा खराब होता है, और सार्वजनिक दायरा, सरकारी कारखाने, बदइन्तजामी बहुत ज्यादा

* *लोक सभा वाद-विवाद*, 19 व 20 नवम्बर, 1963

करते हैं, लेकिन उनमें कर्तव्य की भावना ज्यादा होती है। यह दुनिया भर का फर्क है। लेकिन हम हिन्दुस्तानी तो समन्वय किया करते हैं। इसलिए हमारे यहां के निजी दायरे के कारखाने, करोड़-पतियों के कारखाने, इन्तिजाम में भी बिगड़ते चले जा रहे हैं, और नफ़ा और लूट तो करते ही हैं, और इसी तरह से सार्वजनिक दायरे के कारखाने, जहां एक तरफ इन्तिजाम में बहुत बिगड़े हुए हैं, वहां दूसरी तरफ करोड़ पतियों के कारखानों की लूट करने की आदत भी सीखते चले जा रहे हैं। यह एक बड़ा जबरदस्त समन्वय अपने देश में चल पड़ा है, और जब तक हम इस बुनियादी तथ्य को नहीं समझेंगे कि लोक दायरे के कारखाने तभी अच्छे चल सकते हैं जब लोक भावना हो और जो हमारे सभी जीवन के लक्ष्य हैं वे बदल जाते हैं, तब तक ये कारखाने कुछ फायदा नहीं पहुंचायेंगे।

अब मैं यह मान कर चलता हूं कि जो हमारी समन्वयी चीज है यहां सरकारी कारखानों के बारे में उसको छोड़कर के सरकार ध्यान देगी कि ये लोक कारखाने निजी कारखानों से अलाहिदा चलाए जाने चाहिए। अगर उसी ढंग पर चलाना है तो इनकी क्या जरूरत पड़ी हुई है। और मैंने इस बहस में यह भी देखा कि करीब करीब एक ही तरह की कसौटी रख कर दोनों को जांचा जाता है। लोक कारखानों के लिए कसौटियां भी अलाहिदा होनी चाहिए, और मैं कुछ बुनियादी कसौटियां आपके सामने रखता हूं।

पहली कसौटी यह है कि औद्योगीकरण के फैलाव में सरकारी कारखानों की ज्यादा मदद हो सकती है बनिस्बत करोड़पतियों के कारखानों के। हमारी उन्नति का दर बहुत नीचा है। पूंजी इकट्ठी नहीं हो पाती, सरकारी कारखानों में मुनाफे की गुंजाइश नहीं है—कम से कम करोड़पतियों के मुनाफे की—इसलिए जो कुछ सरकारी कारखानों का मुनाफा हो वह और ज्यादा कारखाने खोलने में इस्तेमाल हो सकता है, और इसलिए सरकारी कारखानों की पहली कसौटी है कि हिन्दुस्तान के औद्योगीकरण में वह कितनी ज्यादा मदद पहुंचाते हैं।

मैं इस बात को साफ कर देना चाहता हूं। मेरा मतलब व्यापार के फैलाव से नहीं है, जैसा कि जीवन बीमा निगम ने किया है। उसने अपने व्यापार का फैलाव कर लिया है; उससे मुझको मतलब नहीं है मेरा मतलब है कि जीवन बीमा निगम से सरकार के कारखानों को इतना ज्यादा फायदा होना चाहिए कि वह हिन्दुस्तान के औद्योगीकरण की गति को बढ़ा सके। यह पहली कसौटी है।

दूसरी कसौटी है कि लोक कारखानों के जरिए देश में समाजवाद के बढ़ाने का मौका होना चाहिए। बंटवारा ज्यादा बराबरी के आधार पर होना चाहिए। जिस तरह से करोड़पतियों के कारखानों में मजदूर और मालिक के बीच में या उपभोक्ता और मालिक

के बीच में फर्क लूट के कारण हो जाता है वह लोक कारखानों में न होना चाहिए और वहां जो बटवारे के इन्तिजाम किए जाते हैं वे ऐसे होने चाहिए कि जिससे बराबरी को प्रोत्साहन मिले। यह वह फर्क बता रहा हूं कसौटियों का कि जो दोनों कारखानों के सम्बन्ध में है।

इसी तरह से तीसरी कसौटी रखना चाहता हूं कि जो मजदूर और मालिक का रिश्ता है—वैसे खैर करोड़पतियों के कारखानों में भी अच्छा ही होना चाहिए—लोक कारखानों में ज्यादा लोकतन्त्री होना चाहिए और देश के पूरे लोकतन्त्र को भी इन कारखानों को मदद देनी चाहिए।

चौथी कसौटी में रख रहा हूं कि ये लोक कारखाने कितना ज्यादा लोक हित को बढ़ाते हैं। लोक हित में ऐसे प्रश्न आते हैं जैसे चीजों के दाम या किस ढंग से जनता को सुविधा मिलती है या नहीं मिलती या तरद्दुद होता है।

पांचवी कसौटी रखना चाहता हूं कि इन कारखानों का इन्तिजाम अच्छा होना चाहिए। योग्य आदमी होने चाहिए जोकि कानून को तोड़ें नहीं और दर असल व्यापार के फैलाव और औद्योगीकरण के फैलाव का ध्यान रखें न कि अपने पेट और धन की लिप्सा में पड़े ये पांच कसौटियां लोक कारखानों के सम्बन्ध में हैं....

*** ***

व्यवधान@

*** *** ***

ठीक है। वेतन का अन्तर नहीं होना चाहिए। मैंने कहा है कि बटवारे में बराबरी होनी चाहिए। स्वामी जी ने यह बहुत अच्छी बात कही है। इसलिए मैं दूसरी कसौटी को पहले ले लेता हूं और कुछ उदाहरण देता हूं, जिनके बारे में मैं कानूनगो साहब से अर्ज़ करूंगा कि वह अच्छी तरह से तहकीकात करके लोक सभा को बतायें कि क्या बात है।

अब साहब राउरकेला का इस्पात कारखाना है। उसके पूरे अंक तो मैं नहीं दे सकता। मैंने कुछ हिसाब लगाया था। कई घंटों की जांच के बाद मैं इस नतीजे पर पहुंचा कि एक हजार अफसर करीब बीस लाख रुपये महीने में नौकरी और सुविधा के रूप में पा जाते हैं और तीस हजार मजदूर महीने भर में तीस लाख रुपया पाते हैं। यह इतनी ज़बरदस्त विषमता है कि मैंने एक बार प्रश्न किया था कि क्या टाटा नगर में इससे ज्यादा विषमता है, और वहां के बारे में मैं केवल अन्दाजे से ही कह सकता हूं कि वहां भी इतनी ज्यादा विषमता नहीं होगी। गैर बराबरी सरकारी कारखानों में उतनी ही है, शायद ज्यादा है, क्योंकि देखने का ढंग अभी बिल्कुल बिगड़ा हुआ है। और जब मैं यह बात कहता हूं तो सिर्फ राउरकेला के इस्पात कारखाने के बारे में ही नहीं सभी कारखानों की। और इन अंकों के पीछे अनुपात पर आप ज्यादा ध्यान देना, अंकों पर नहीं। अनुपात यह है कि एक हजार अफसर 20 लाख रुपया महीना, और तीस हजार मजदूर 30 लाख रुपया महीना।

@श्री रामेश्वरानन्द (करनाल) वेतन का इतना अन्तर नहीं होना चाहिए, यह कसौटी भी होनी चाहिए।

इसी तरह से मैं आपको जीवन बीमा निगम के मकानों के किरायों के सम्बन्ध में कुछ कहना चाहता हूं। जो जीवन बीमा निगम अपने नौकरों या अर्ध नौकरों को मकानों के सम्बन्ध में सुविधा देता है। करीब दो हज़ार अफसर हैं। इन के किराये को अगर मैं जोड़ने लगूं तो कुछ अन्दाजा नहीं मिलेगा। हज़ारों रुपया, कहीं कोई जांच नहीं, कहीं कोई तहकीकात नहीं, बड़े बड़े मकान, क्या क्या उनके किराये रहते हैं इसका कोई पता नहीं। और 35 हज़ार जो स्टाफ के आदमी हैं उनको 15 रुपया महीना की किराये की सहायता मिलती है। और सात हज़ार फील्ड वर्कर हैं उनको कुछ नहीं मिलता और ढाई लाख एजेंट्स हैं उनको कुछ नहीं मिलता। ये 4 किस्म के लोग हैं जिनमें ढाई लाख एजेंट और 7 हज़ार और लोग, करीब पौने तीन लाख आदमी हैं

*** *** ***

....मैं तो एक उदाहरण दे रहा हूं कि किस तरह से आप गैर बराबरी के आधार पर इन्तिजाम चलाते हैं। बिड़ला और टाटा के कारखानों में अगर ऐसी गैर बराबरी होती है तो हम उसके ऊपर आपत्ति करते हैं, और यह सरकार जिन कारखानों को और जिन प्रकरणों को चलाती है वहां पर गैर बराबरी को देख कर तो बहुत तकलीफ और दुःख होता है।

*** ***

अध्यक्ष महोदय, निजी धंधों ने सरकारी धंधों से बदइन्तजामी सीखी है और सरकारी धंधों ने निजी धंधों से लूट सीखी है जिसका नतीजा हुआ है कि मुझे श्री बिड़ला के धंधों में और श्री नेहरू के धंधों में कोई अन्तर नहीं दिखाई पड़ता। निजी धंधों की आत्मा और उसका शरीर सरकारी धंधों के अन्दर है। खाली सरकारी धंधे एक ओढ़नी ओढ़ कर रहते हैं सार्वजनिकता की, लोकप्रियता की लेकिन इसका नतीजा बहुत खतरनाक हुआ है। मैं आपका ध्यान खींच रहा था उन उपायों की तरफ जिनसे सरकारी धंधों की आत्मा पवित्र बनाई जा सकती है।

एक उपाय मैंने समता के चित्र का बताया था और कुछ उदाहरण इसके बताये थे। मैं अर्ज़ करता हूं कि अंकों के अनुपात पर सोचा जाए, अंकों पर नहीं। उन अंकों को ज्यादा बढ़ाने के लिए अब मैं सुविधा की तरफ आपका ध्यान खींचता हूं। कुछ लोग केवल नौकरी पर ध्यान देते हैं, सुविधा पर नहीं। लेकिन मैं आपको बताऊं कि एक अफसर जो अढ़ाई हजार रुपये महीना कमाता है, सुविधा के रूप में साधारण तौर पर दस हजार रुपया राज्य का खर्च करता है। इसमें मैं बहुत ऊंचे जो लोग हैं, उनकी सुविधा को नहीं ले रहा हूं। वह लाखों में मामला जाता है। यह मैं एक औसत बात बता रहा हूं। मैं कहता हूं कि जब कभी गैरबराबरी की बात आप किया करें तो कम से कम हिन्दुस्तान में केवल वेतनों के फर्क की बात न किया करें। वेतनों को छोड़कर बड़े लोग अपने लिए चौगनी और छः गुनी सुविधायें ले लिया करते हैं और उन सुविधाओं के रहते बहुत कुछ

कानून भंग भी हुआ करता है।

अध्यक्ष महोदय, मैं उन लोगों के नाम नहीं लूंगा। खाली मैं इतना बताये देता हूं कि किस तरह से कानून भंग होता है। एक बहुत बड़ा सरकारी अफसर है इन सरकारी धंधों वाला जो दिल्ली में काम करने लग गया। अपने कुटुम्ब के लिए उसने बम्बई में सरकारी खर्चे से बंगला रखा। उसी तरह से एक बड़ा अफसर है जो हमेशा यहां बम्बई से दिल्ली टेलीफोन किया करता है व्यक्तिगत मामलों में और वह अफसर हर हफ्ते एक बार हवाई जहाज में यहां सफर भी किया करता है।

उसी तरह से रोमानिया और हिन्दुस्तान के मामले में जो समझौतों का तोड़ हुआ, उस पर मैं आपका ध्यान खींचता हूं। गोहाटी में जो तेल साफ होता है, वहां की केरोसीन इकाई जो है, वह बहुत दिनों से बन्द पड़ी है, कभी साल भर में 80 दिन काम करती है, कभी 50 दिन काम करती है। आजकल भी बिल्कुल बन्द है। मुझे इत्तिला मिली है कि रोमानिया और हिन्दुस्तान का जो समझौता हुआ था उस समझौते की शर्तों को तोड़ करके और जंग लगा माल ले कर यह सारा कारखाना कायम किया गया है। मैं नहीं कह सकता हूं कि कौन सी सुविधा हिन्दुस्तानी अफसरों को मिली और अगर मिली तो बड़ी खतरनाक सुविधा रही होगी। कानून बहुत ज्यादा टूट रहा है। मैं आपको और भी बहुत से उदाहरण दे सकता हूं लेकिन इसको बन्द करके खाली मैं इतना कहना चाहता हूं सरकारी धंधों के सम्बन्ध में कि यह त्रुटि सारी दुनिया में देखी गई है कि अब अफसर कानून तोड़ते हैं और एक दूसरे को बचाने की कोशिश करते हैं। रूस को भी इसका बहुत ज्यादा सामना करना पड़ा था। ये सुविधायें बन्द करना मुश्किल है क्योंकि सरकार की एक मंशा है कि वह भी अपने अफसरों को उसी तरह रखे जिस तरह से निजी धंधे वाले अपने अफसरों को रखते हैं। मैंने सुना है कि कई बार प्रधान मंत्री ने कहा है कि अगर टाटा, बिड़ला आदि अपने अफसरों को शान से रखते हैं तो हिन्दुस्तान का राज भी अपने अफसरों को शान से रखना चाहता है। मैं कहना चाहता हूं कि यही सब से बड़ी खराबी है कि शौकीनी और फिजूल खर्ची का मन बनता चला जा रहा है, समता का मन नहीं। इसका सब से बड़ा उदाहरण स्वयं प्रधान मंत्री देते हैं। वह हमारे सरकारी धंधों का उद्घाटन करते हैं और जब वह या उनके जैसा कोई मंत्री आता है तो वह देखें कि कितना खर्च होता है। एक बार सिर्फ उन्होंने कहा कि अब से मैं उद्घाटन नहीं किया करूंगा कोई मजदूर उद्घाटन करेगा और एक मजदूरनी ने उनके सामने उद्घाटन भी किया। वह ढोंग फिर बाद में कभी नहीं हुआ है। वह हमेशा उद्घाटन के लिए पहुंच जाते हैं और खर्च करते हैं।

मैं आपका ध्यान खींचू कि हीराकुंड और राउरकेला के इलाके में जो सिर्फ पचास

साठ मील का इलाका है, तीन हवाई अड्डे हैं। ये किस लिये हैं। सिर्फ इसलिये कि प्रधान मंत्री और दूसरे मंत्रियों की शान और शौकत में फर्क न आ जाए, उनकी शान और शौकत के लिए ये हवाई अड्डे बना दिये गये थे और अब उनसे कोई काम नहीं होता है, न माल ढोया जाता है और न कोई और जाता है। आप देखें कि यह शान शौकत की फिजूलखर्ची कितनी बढ़ गई है।

अब मैं दाजी जी से कहना चाहता हूं कि क्यों वह आरती उतारते हैं सार्वजनिक धंधों की, लेकिन उसके साथ साथ सब तर्क उसके खिलाफ देते हैं? इसका सबब यह है कि उन्होंने रूस के बारे में ज्यादा सोचा नहीं। रूस में बड़ा अत्याचार हुआ, बड़ा जुल्म हुआ। मैं उसको नापसन्द करता हूं, लेकिन मैं यह भी कहना चाहता हूं कि मैं हिन्दुस्तान की शौकीन गन्दगी को भी बहुत नापसन्द करता हूं और अगर यह काम रूस में हुआ होता जो कि हिन्दुस्तान में पिछले 15 वर्षों से चल रहा है, तो न जाने कितने नौकरशाह और न जाने कितने मंत्री दीवार के सामने मुंह करके उड़ा दिये गये होते....

*** ***

मैं सार्वजनिक धंधों पर बोल रहा हूं, और सार्वजनिक धंधे किस तरह से चलाए जाने चाहिएं इसका कमेटी को थोड़ा बहुत ज्ञान होना चाहिए।

*** *** ***

व्यवधान@

*** *** ***

जानता हूं अध्यक्ष महोदय, मैंने केवल एक बात कह दी कि मंत्रियों और नौकरशाहों को रूस में गोली से उड़ा दिया गया होता। यह एक ऐसी चीज नहीं है कि जिस पर कि उनको आपत्ति हो सकती है। मैं उसको पसन्द नहीं करता। मैं उसको अत्याचार समझता। लेकिन मैं यह भी कहना चाहता हूं कि यह शौकीनी बहुत खराब हो रही है और अब समता का मन कायम किए बिना हिन्दुस्तान में सार्वजनिक धंधों को चलाने से बहुत ज्यादा नुकसान होगा। यह पहली बात है जो मैंने आपसे कही।

उसके साथ साथ जहां तक लोकतंत्र का हिसाब है, मजदूर और मालिक के रिश्तों के बारे में भी इतना ही कहूंगा कि निजी धंधों में मजदूर इतना असन्तुष्ट नहीं है जितना कि सार्वजनिक धंधों में है।

और लोकतंत्र के बारे में एक विचित्र घटना आपको बताता हूं। टाटा नगर कम्पनी नगर, करोड़पतियों का नगर है, लेकिन चित्तरंजन तो ऐसा विचित्र नगर हो गया है कि उसके अन्दर घुसने के लिए परमिट लेनी पड़ती है। इस तरह का लोकतंत्र चालू है। मेरे पास उदाहरण तो सैकड़ों हैं।

*** *** ***

@अध्यक्ष महोदयः मुख्तसर में आप इसको कहें तो कह सकते हैं। लेकिन आपने तो एक बहस शुरू कर दी। यह नहीं होना चाहिए।

अध्यक्ष महोदय, जब कोई कमेटी बनेगी और उसके सामने ये बातें नहीं होंगी तो हम लोक सभा वाले करेंगे क्या?

*** *** ***

मैं एक ही वाक्य में जो सार्वजनिक धंधों की कमियां हैं व्यापारिक दृष्टि से उनको बताये देता हूं.....

*** ***

नई कमेटी कायम की जाए, लेकिन वह क्यों कायम की जाए, इसके बारे में तो मैं अपने तर्क दूंगा अब मैं बहुत जल्दी खत्म कर रहा हूं। मंत्री महोदय को चाहिए कि वह खुद मुझ से वे उदाहरण ले लें जिनसे कि सार्वजनिक धंधे बिगड़े हुए हैं।

*** ***

.....आज हिन्दुस्तान में जो फौलाद बिक रही है उसका दाम सस्ता होना चाहिए। क्योंकि लोहे और कोयले के मामले में हिन्दुस्तान स्वर्ग है। हम अपना कच्चा लोहा जापान को चार छः हजार मील दूर भेजते हैं और जापान अपना फौलाद यहां सस्ता बेचता है लेकिन हमारे फौलाद के दाम बहुत ज्यादा हैं। मैं समझता हूं कि निजी धंधे वाले इस बात को पसन्द करते हैं कि सरकारी धंधों के सबब से दाम ज्यादा रहें और वह भी मुनाफा उठा सकें।

ये सारी चीजें सार्वजनिक धंधों के मामले में हो रही हैं। अगर निजी धंधों में यह होता तो उनका दिवाला निकल गया होता लेकिन सार्वजनिक धंधों में दिवाले की बात नहीं रहती है। इसलिए मैं मंत्री महोदय को एक संकल्प दे रहा हूं कि वह अपने यहां लागत हिसाब जरूर जारी करें। लागत हिसाब में ये सब चीजें सामने आती रहेंगी कि कौन कहां कानून को भंग कर रहा है, कौन दोषी है। दोष के मामले में भी अच्छा हो कि सरकार ध्यान दे। जब कोई दोषी पकड़ा जाता है तो उसकी जगह दूसरा दोषी सामने आ जाता है। अब नए मंत्री आए हैं, उन्हें पता चल जाएगा। कभी वित्त मंत्री दोषी समझे जाते हैं, तो फिर पाटिल साहब दोषी समझे जाते हैं, फिर कामत साहब दोषी समझे जाते हैं और इस तरह से दोषी पकड़ा नहीं जाता। इसलिए दोषी पकड़ने के बजाए हिन्दुस्तान की सरकार का ध्यान जाना चाहिए इस तरफ कि दोष को कैसे दूर किया जाए।

अन्त में मैं एक ही वाक्य कहता हूं जितने मंत्री लगे हैं, ये सरकार में नहीं रहेंगे तो ये सारे के सारे निजी धंधों के उपासक और हिमायती बन जायेंगे। केवल मेरा जैसा आदमी सार्वजनिक धंधों का हिमायती रहेगा।

49

पंजाब राज्य का पुनर्गठन*

उपाध्यक्ष महोदय, मुझे कल और आज ऐसी इत्तिला मिली है, जो मैं इस माननीय सदन को देना चाहता हूं और जिस से हर भारत वासी को गुस्सा आयेगा और उस के रोंगटे खड़े हो जायेंगे। इस माननीय सदन ने कई बार तेलगू सूबे, पंजाबी सूबे, मराठी और गुजराती सूबे पर बहस की है, लेकिन भारत देश की कुल कितनी ज़मीन है, जिस में ये सारे सूबे बनते हैं, उस पर बहस नहीं हुई है। यह बात सही है कि पाकिस्तान और चीन को लेकर कुछ एकड़ या मील ज़मीन इधर-उधर हो गई, लेकिन अब वक्त आ गया है कि यह माननीय सदन भारत की कुल ज़मीन के बारे में सावधानी के साथ बातचीत करे। इसी संबंध में मैं आपको अध्यक्ष महोदय, संयुक्त राष्ट्र की 1950 की सालाना किताब से पढ़ कर सुनाता हूं यह यूनाइटेड नेशन्ज़ की 1950 की ईयर बुक है, जिसके सफा 1010 पर दिया है—

कि भारत का कुल क्षेत्रफल 31,62,454 वर्ग किलोमीटर है अब मैं उसी संयुक्त राष्ट्र की 1964 की सालाना किताब से पढ़कर सुनाता हूं, यानि 14 वर्ष बाद 1964 की किताब के सफा 579 पर भारत का क्षेत्रफल 30 लाख 46 हज़ार 232 किलोमीटर बताया गया है। अब ये दोनों उसी संस्था की किताबें हैं जो अन्तर्राष्ट्रीय है, जिसका सदस्य भारत है और अगर दोनों क्षेत्रफल की तुलना करके घटाया जाय तो 1 लाख 22 हजार 222 वर्ग किलोमीटर ज़मीन भारत की गायब हो गई है।

*** ***

व्यवधान*

*** *** ***

मुझे बड़ा अफसोस हो रहा है कि कोई माननीय सदस्य यह कह सकते हैं कि इससे क्या ताल्लुक है। पंजाबी सूबा इसी ज़मीन से बनता है और कहां से बनता है, बड़े शर्म की बात है। ***

*** ***

व्यवधान@

*** ***

.....लेकिन आप मेहरबानी कर के सोचें कि ये जितने आंकड़े यूनाइटेड नेशन्ज़ को दिये जाते हैं, ये कौन देता है। ये भारत सरकार दिया करती है और चूंकि भारत सरकार उसकी सदस्य है, अगर भारत के क्षेत्रफल के बारे में इतनी बड़ी गलती हुई है तो क्या सदस्य राष्ट्र को इसके बारे में कुछ कहना नहीं चाहिए? 1 लाख 22 हजार वर्ग किलोमीटर

* लोक सभा वाद-विवाद, 14 मई 1966

*एक माननीय सदस्य: इस मोशन से इसका क्या ताल्लुक है?

@श्री त्यागी: यह फिगर्स जो आपने दी है, ये यूनाइटिड नेशन्स की है । इंडिया ने इनको तसलीम नहीं किया है।

कम हो गया, कहां चला गया? अगर इस ज़मीन का चीन और पाकिस्तान से सम्बन्ध है तो मैं बताना चाहता हूं, अगर यह उनके कब्जे में चली गई है तो भी इस क्षेत्रफल को घटाया नहीं जा सकता।

इतना ही नहीं, यह तो संयुक्त राष्ट्र की किताब में दिया गया है, मैं आपको एक और खतरनाक बात बतलाना चाहता हूं, जो कि भारत सरकार की अपनी खुद की छपी हुई पुस्तक है और वह है सर्वे आफ इण्डिया। जिसमें सन् 1953 में 12 लाख 69 हजार 640 वर्ग मील हमारा क्षेत्रफल था। और 1964 में घट कर वह 12 लाख 61 हजार 597 वर्ग मील रह गया। भारत सरकार की तरफ से छपी हुई पुस्तक सर्वे आफ इण्डिया में 8,043 वर्गमील ज़मीन गायब हो गई। ज़मीन कहां चली गई?

अगर किसी देश में ऐसा काम हो, जहां की जनता शक्तिशाली हो, तो वह सरकार एक मिनट के लिए भी नहीं ठहर सकती। इतना बड़ा कुकर्म करने के बाद, इतनी बड़ी नालायकी करने के बाद कोई सरकार एक मिनट ठहर नहीं सकती। जब माननीय सदन पंजाबी सूबे वगैरह की बात करता है तो उसको ध्यान देना चाहिए कि भारत देश का क्या हाल यह सरकार करती चली जा रही है।

सूबों के हिसाब से देखते हैं तो पिछले 14-15 सालों में मराठी सूबा, गुजराती सूबा, पंजाबी सूबा, न जाने कितने सूबे बने, किस लिये? भाषा की उन्नति के लिए। तो मैं उन से साफ़ बात कहना चाहता हूं कि किसी भी सूबे में अंग्रज़ी की तुलना में सूबे की भाषा की तरक्की नहीं हुई है। मराठी अंग्रेज़ी की तुलना में कुछ भी आगे नहीं बढ़ी है। औरंगाबाद में मराठी थी, लेकिन आज अंग्रेज़ी हो गई है, और दूसरे सूबों की भी यही हालत है। इसी के साथ साथ अगर उन्नति की भी कसौटी पर आप रखना चाहते हैं तो इन सूबों में उन्नति के मामले में, खेती और कारखानों के मामले में कोई ऐसा फर्क नहीं पड़ा है कि ये भाषावार प्राप्त प्रान्त सचमुच भाषावार प्रान्त बने हैं, क्योंकि भाषावार प्रान्तों के नाम पर वहां अंग्रेजी अभी तक कायम है।

इस के साथ साथ मैं इस सरकार की एक और महान असफलता की तरफ ध्यान दिलाना चाहता हूं। ये सूबे अगर बनाने की बात थी तो एक चोट में जितने उचित सूबे थे, सब बना देने चाहिए थे। सन् 1948-49 में ही बना देने चाहिए थे, महाराष्ट्र बना देना चाहिए था, गुजरात, विदर्भ, जितने भी बनाने थे, सब बना देने चाहिए थे। लेकिन सन् 1948-49 में ये सूबे नहीं बनाये गये और मामले को टाल दिया गया। पिछले 15 साल में भारतीय जनता के दिमाग के अन्दर इस कीड़े को उकसाया गया है और मैं इस सरकार पर आरोप लगाता हूं कि इस ने उकसाया है, क्योंकि सरकार ने इस मसले को टाल कर इसी पर लोगों का ध्यान केन्द्रित रखा।

एक सवाल यह आता है कि हम जो विरोधी दल हैं, उनका ध्यान भी उचित प्रश्नों की तरफ उतना ठीक नहीं जा पाता, जितना गलत प्रश्नों की तरफ चला जाता है। ये गलत प्रश्न या तो सरकार खुद उठाती है या कुछ हालात ऐसे पैदा हो जाते हैं कि जिनको सरकार के अलावा दूसरे लोग उठा दिया करते हैं। विरोधी दलों का मुख्य लक्ष्य यह होना चाहिए कि सवाल अच्छे उठाये जायें, गलत सवाल उठा दिये जाते हैं, चाहे जितना अच्छा जवाब दिया जाय, लेकिन उस से उद्देश्य की पूर्ति नहीं होती। मैं अपने विरोधी दलों को दोष देना चाहता हूं कि वे हर सवाल का जवाब देने के लिए उतारू हो जाया करते हैं, इसकी कोई जरूरत नहीं है। हमें उन सवालों का जवाब देने के बजाय और बातों पर जाना चाहिये, जैसे अंग्रेजी भाषा खत्म हो, उसकी तरफ जाना चाहिए, जिससे खेती और कारखानों में सुधार हो, उनको उस तरफ जाना चाहिए। नतीजा क्या होता है कि विरोधी पहले तो कहते हैं कि महाराष्ट्र बनाओ, कांग्रेस सरकार कहती है कि नहीं बनायेंगे, 4-6 वर्ष लड़ाई चलती है, गोली भी चलती है, बहुत ज्यादा तकलीफ उठाते हैं, और फिर बाद में धीरे से कांग्रेस सरकार महाराष्ट्र बना देती है और लोग खुश हो जाते हैं और फिर इससे कांग्रेस सरकार को कोई फर्क नहीं पड़ता। इसलिये ज्यादा अच्छा यही है कि अब तक जो हो गया, वह हो गया, विरोधी दल आइन्दा अनुचित सवालों पर अपना वक्त न खराब करें और मैं समझता हूं कि उन्हें उचित सवालों की तरफ जाना चाहिए।

*** ***

.....अब जो मैंने बताया है, इस विषय को ऐसे ही नहीं छोड़ देना चाहिए, भारत के क्षेत्रफल के बारे में इस सत्र के खत्म होने से पहले तय करो, यह सत्र खत्म नहीं होना चाहिए जब तक कि यह जवाब न आजावे कि भारत की 1 लाख 22 हजार 222 वर्ग किलोमीटर ज़मीन कहां हड़प गई, कहां समुद्र में डुबो दी गई।

मैं जब विरोधी दलों से कह रहा था कि सही सवाल पूछो, जो सवाल सरकार की तरफ से या दूसरे जो अगड़म-बगड़म दलों की तरफ से पूछे जाते हैं, उनके जवाब देने की जरूरत नहीं है। अणु बम बने या न बने उसका जवाब हमें देने की क्या जरूरत पड़ी कोई सूबा बने या न बने इसका जवाब देने की हमें क्या जरूरत पड़ी? एक जगह मैं गया। दुर्ग रास्ते में पड़ता था। मुझ से वहां यह मांग की गई कि विदर्भ सूबा बने। फिर गांडवाना सूबा बने यह मांग की गई। झारखण्ड सूबा बने यह मांग की गई, हरियाणा बने यह मांग की गई। अगर इस तरह की सब मांगों पर विरोधी दल वाले उलझ जायें तो इस में दो चार पांच बरस का और वक्त बरबाद हो जायेगा और बरबाद होने पर हम फिर जहां थे वहां पहुंच जायेंगे। इस वास्ते यह जरूरी है कि विरोधी दल इस मामले पर सम्यक नीति बनायें। खास तौर पर जो मैंने सवाल उठाये हैं उन पर वे ध्यान दें। एक सवाल तो मैंने यह उठाया है कि सही सवाल पुछवायें। गलत सवाल पुछवाये जाते हैं तो

जवाब देने से इन्कार करो। दूसरी बात यह है कि भारत के कुल क्षेत्रफल के बारे में जरूर इस सरकार से कोई सफाई लेनी चाहिए। यह कोई बड़ा भारी रहस्य है। इतना बड़ा यह रहस्य है कि ये लोग अब इस लायक नहीं रह गये कि उस गद्दी पर बैठें। ऐसा न हो कि यू॰ एन॰ के मामले में कोई जबर्दस्ती करने की जरूरत पड़े और सर्वे आफ इंडिया के मामले में कोई जबर्दस्ती करने की जरूरत पड़े।

तृतीय पंचवर्षीय योजना के मध्यावधि मूल्यांकन सम्बन्धी प्रतिवेदन*

अध्यक्ष महोदय, इस योजना को देशहीन, दिशाहीन, मूर्ख विद्वानों ने बनाया है, और उस पर अमल करते हैं भ्रष्ट योगी।

*** *** ***

व्यवधान@

*** *** ***

विद्वान मूर्ख हैं इस का सबूत यह किताब है जो पौने दो सौ सफे की है और आसानी से चालिस, पचास सफहों में लिखी जा सकती थी, अगर इस में फुजूल और निरर्थक शब्द न होते, जो शायद इस कारण से हैं कि अंग्रेजी की नकल अभी आप लोग अच्छी तरह करना नहीं जानते....

*** *** ***

इस में एक अध्याय आर्थिक पृष्ठभूमि का ऐसा है जो कि दस सफे का है और आसानी से डेढ़ सफे में लिखा जा सकता था। निरर्थक कारण, निरर्थक नुस्खे, निरर्थक लफ्फाजी और दिशाहीन इसलिये है कि जैसे लट्टू चक्कर खाता रहता है और कहीं रास्ता नहीं निकाल पाता या जैसे भूल भुलैया होती है, यह कोई रास्ता नहीं निकाल पा रही है। दिशाहीन इसलिये कि रूस और अमरीका की पद्धतियों के चक्कर में यह लोग फंस जाते हैं और अपने देश की कम सोचते हैं तथा उन की ज्यादा सोचते हैं। इस के अलावा जो हमारे हिन्दुस्तान की पैदावार की नींव है उस के ऊपर यह लोग अमरीका और रूस की खपत की इमारत की रचना करना चाहते हैं। जहां तक भ्रष्ट योगी का सवाल है, अगर मंत्री जी महाराज सुनते जायें तो सरकारी पार्टी के सब से बड़े सदर साहब के घर में दो लाख रुपये की दरियां और कालीन बिछाये गये हैं, और वह भी हिन्दुस्तान का पैसा खर्च कर के। यह सब योजना में आता है क्योंकि वह दो लाख रुपये किसी कारखाने में लगाये गये होते। फिर खाली यही दो लाख नहीं, इस की नकल करते हुए न जाने कितने खर्च किये जाते हैं। दो अरब, दो खरब रुपयों का नुकसान इस तरह से होता है....

*** *** ***

मैं खपत के बारे में कह रहा था कि खपत की इमारत तो है रूस और अमरीका की और पैदावार की नींव है हिन्दुस्तान की। इस से बड़ा और कोई तर्क हो नहीं सकता है

---

* लोक सभा वाद-विवाद, 9 दिसम्बर, 1963

@ एक माननीय सदस्यः मूर्ख विद्वान कैसे हो सकता है।

जहां तक इस योजना का सम्बन्ध है।

फिर इस योजना की रपट के बारे में ईमानदारी का जिक्र किया गया है। मैं कहना चाहता हूं कि अगर आप इस में सिंचाई के अंक देखें तो पहले और दूसरे वर्ष के तो जो अंक हैं वे दे दिये गये हैं और तीसरे वर्ष के केवल उद्दिष्ट दे दिये गये हैं। नतीजा यह होता है कि बड़ी और मध्यम सिंचाई के बारे में पहले और दूसरे वर्ष में मुश्किल से आती हैं 12 लाख एकड़ जमीन जिस पर सिंचाई होती और जो तीसरा वर्ष के लिये उद्देश्य बतलाया है वह 25 लाख एकड़ है। नतीजा यह होता है कि सैकड़ा निकल आता है 35 लेकिन मेरे हिसाब से अगर उन्हीं को लिया जाय जो कि हो चुकी हैं इस योजना की अवधि में तो सैकड़ा मुश्किल से 27 आयेगा। इसी तरह से छोटी सिंचाई के बारे में भी आंकड़े कम हो जायेंगे। तो मेरा यह कहना है कि यह रपट ईमानदारी से नहीं लिखी गई है।

एक प्रमाण मैं और दिये देता हूं। मशीनी औजारों के मामले में कहीं भी पदार्थों के अंक नहीं हैं, खाली रुपयों के हैं। जैसे चीनी मिलें हैं इतने रुपयों की, मशीनी औजार हैं इतने रुपयों के। लेकिन उन की क्या क्षमता है, इस का कहीं भी जिक्र नहीं है। लेकिन इन सब चीजों को और आगे चलाने के पहले मैं कुछ सर्वमान्य चीजें कहना चाहता हूं, जिस पर सरकारी लोगों को भी कोई ऐतराज नहीं होना चाहिये। उन में से एक है सफाई के बारे में। मेरा ऐसा ख्याल है कि इस योजना के करने वाले लोग, लिखने वाले लोग, सारा इंतजाम चलाने वाले और सारे सरकार के दफ्तर के लोग आदी हो गये हैं कि वे अपने दोष की सफाई दे दिया करें, दोष को दूर करने का तरीका कोई नहीं निकालता। नतीजा यह होता है कि उन की जितनी भी फाइलें आप देख लें, उन के हाशिये में लिखा रहता है कि मेरा दोष नहीं था, और किसी और का दोष था। हमेशा लिखा रहता है कि दोष उस का था, मेरा नहीं था। इस का नमूना भी इस सदन में हम देख चुके हैं। जिस दिन गुड़ वाला मामला उठा तो ब्रह्म प्रकाश जी ने कह दिया कि मेरा दोष नहीं था, रेलवे मंत्रालय का दोष था, उन्होंने लोगों से घूस ले लिया। रेलवे मंत्रालय वाले चाहते तो कह सकते थे कि इस में हमारा दोष नहीं है जो प्रधान मंत्री हैं वह इतनी ज्यादा विलासिता और फैशन का युग चला रहे हैं कि हम क्या करें। तो दोष टाल देने का तरीका चलता रहता है। मैं सब से पहली सिफारिश करूंगा कि दोष को टालो मत, उस को ढूंढों, उस को दूर करो, और उस को दूर करने में अगर दोषी को सज़ा देनी पड़े तो दो, लेकिन वह दूसरे दर्जे की बात है।

इसी तरह से मैं लक्ष्य के बारे में कहना चाहता हूं। इस में सब से अव्वल चीज है ख़र्च, दूसरी चीज़ है चीज़ें और तीसरी चीज़ है मनुष्य। खर्च के बारे में मुझे यह कहना है

कि जब आप रकम देते हैं कि इतना खर्च होगा, फलां मद में होगा तो साल के आखिर में, मार्च या अप्रैल में जब वह समय नजदीक आने लगता है तो हर एक महकमा सोचने लगता है कि जल्दी से इस पैसे को खर्च करो, और फजूलखर्ची अपने आप हो जाती है। तो खर्चे का लक्ष्य न रख के चीजों का लक्ष्य ज्यादा रखना चाहिए, और सब से ज्यादा लक्ष्य रखना चाहिए मनुष्य का जिस को कि यह सरकार बिल्कुल भुला बैठी है। हिन्दुस्तान में मुनष्य की पसलियां पिघल चुकी हैं, यहाँ का मनुष्य मेहनत नहीं कर सकता, फावड़ा नहीं चला सकता, मिट्टी नहीं काट सकता, बन्दूक की बात तो छोड़ दीजिये। मुझे पता चला है कि बीस आदमियों में से खाली एक आदमी बन्दूक को यों तान सकता है, बाकी लोग ऐसा नहीं कर सकते। खैर मुझे बन्दूक से तो कोई ज्यादा मतलब नहीं है। वही बात फावड़े पर भी लागू होती है। तो हिन्दुस्तान का मनुष्य कमजोर होता जा रहा है। तो आप ऐसी योजना बनाइये कि जो उस मनुष्य को मेहनत के लायक बनाये।

अब में दिशा की बात कहना चाहता हूं। दिशा अगर इस योजना में लागू की गयी तो क्या करना होगा? मिसाल के लिए खेती है। बहुत लम्बा चौड़ा किस्सा है खेती का। यह ठीक है कि कोशिश करनी चाहिए खेती को सुधारने की। लेकिन उस सुधार में भी एक योजना में किसी एक चीज को पकड़ लेना चाहिए कि उस को तो हम हर हालत में हासिल कर ही लेंगे। जैसे खेती के मामले में लिखा है कि हम मिट्टी का संरक्षण करेंगे नदी से जो मिट्टी कटती है उस का, और जो जलमग्न जमीन है उसको खेती योग्य बनायेंगे। तो जहां तक सर्वांगीण सुधार करने की बात है, वह जरूर करो, लेकिन साथ में एक खास दिशा ले लो कि हिन्दुस्तान में जितनी भी जलमग्न जमीन है उसको हम ठीक करके खेती योग्य बनायेंगे चाहे वह तीन करोड़ एकड़ हो या चार करोड़ एकड़ हो। उसके लिए यह निश्चय कर लो कि उस को हम ठीक करके छोड़ेंगे।

इसी तरह से शिक्षा के बारे में दूसरी मिसाल देता हूं। शिक्षा को लेकर सर्वांगीण परिवर्तन इस में हैं। ठीक है उन को रखें। लेकिन एक योजना में एक चीज ले लो कि हम हिन्दुस्तान को इस योजना के अंदर पूरी तरह साक्षर बनायेंगे और ऐसा करके छोड़ेंगे कि इस योजना में हर आदमी साक्षर हो जाये। तो इस तरह से साक्षरता की दिशा ले लो।

इसी तरह से एक और दिशा ले सकते हो स्वास्थ्य के बारे में। स्वास्थ्य के बारे में सर्वांगीण सुधार करो। लेकिन एक चीज ले लो कि हम इस योजना में हिंदुस्तान के गांवों में और शहरों में भी पीने के साफ पानी की नल द्वारा व्यवस्था कर देंगे।

तो मैं ने कहा कि सर्वांगीण चीजों के अंतर्गत किसी एक चीज को पकड़ कर उसे

तो मैंने कहा कि सर्वांगीण चीजों के अंतर्गत किसी एक चीज को पकड़ कर उसे हासिल करने की कोशिश करो।

अब इस योजना में खर्च ज्यादा और आमदनी है कम। करीब-करीब हर महकमे में मैं यह बात कह पाता हूं। इस समय मैं केवल उद्योग और खान को लेता हूं। इस में निर्माण के लिए सन् 1960-61 में थोड़ा सा अंदाजा दिया गया था कि इस में निर्माण पर 4 अरब और 50 करोड़ रुपया खर्च होगा। लेकिन वह बढ़ कर 6 अरब 90 करोड़ हो गया। कोई पौने दो गुना बढ़ जाता है। इसी तरह से पूरी योजना में 18 अरब से 23 अरब हो जायेगा। तो खाली उद्योग और खान में 5 अरब का खर्चा निर्माण में बढ़ गया। क्यों बढ़ गया? मैं बतलाता हूं कि कैसे बढ़ गया। बरौनी में तेल शोधक कारखाना बनाया गया, उसके लिए जो जमीन ली गयी वह इतनी नीची थी कि उस में बरसात का पानी भर जाता था और इसके लिए कोशिश की गयी कि करोड़ों रुपये खर्च कर के उस को पाट दिया जाये।

इसी तरह से आप ट्राम्बे को लें। वहां उर्वरक कारखाना बनाया गया इसलिये कि वहां तेल शोधक कारखाने की गैस आसानी से मिल जायेगी, लेकिन वहां जमीन का दाम ज्यादा देना पड़ा। गैस तो सस्ती जमीन में भी पाइप द्वारा मिल सकती थी, लेकिन इस पर विचार नहीं किया क्योंकि सरकार का पैसा है इसलिए उसको बेरहमी से खर्च किया जाता है। उसको चाहे जितना खर्च करते चले जाओ।

इसी तरह से मैं आमदनी के बारे में कहना चाहता हूं। इस योजना में सरकारी धंधों से साढ़े चार अरब का मुनाफा दिखाया गया है। मैंने यह अंदाजा लगाने की कोशिश की कि सरकारी उद्योगों में कुल कितना पैसा लगा है । जब से यह सरकार आयी है उससे पहले भी कुछ सरकारी उद्योग थे। तो मैं कुछ अंदाजा लगाना चाहता था कि इन पर कुल कितना रुपया लगा है ताकि यह मालूम किया जा सके कि कितने रुपये पर इतना मुनाफा आता है। लेकिन मैं इसका पता नहीं लगा पाया। पता नहीं यह चीज इस में है भी या नहीं और होगी भी तो इस ढंग से जैसे जंगल में सुई, जिसको ढूंढा न जा सके। लेकिन इस मुनाफे को साढ़े चार अरब बताया गया है। मैं समझता हूं कि इस को आसानी से दस अरब तक पहुंचाया जा सकता है। जो खर्चा बताया जाता है उस में चार पांच अरब की बचत हो सकती है। और जहां मुनाफा बताया गया है वहां चार पांच अरब की बढ़ती हो सकती है। इस प्रकार केवल उद्योग धंधों और खान में इस योजना में दस अरब की मुनाफे से और बचत से बढ़ती हो सकती है।

और जहां तक पूरी योजना का सवाल है जो कि एक खरब रुपये वाली है, मैं ठीक अंदाजा तो नहीं लगा सकता, लेकिन मेरा अनुमान है कि 30 या 40 अरब रुपया इस

योजना में फिजूली और फिजूल खर्ची में चला जाता है। आप समझें कि एक तो फिजूली है और एक फिजूल खर्चा है। फिजूली तो वह जैसे मैंने बरौनी के तेल शोधक कारखाने के बारे में बतलाया और फिजूल खर्ची यह कि अय्याशी, ठाठ बाट, शान शौकत और यूरोप की नकल।

और इसी तरह आप पूरा खर्चा लें जो कि कुल खर्चा सरकार का है एक खरब इस योजना का होगा। ढाई खरब का खर्च है पांच साल में। मेरा ख्याल है कि इस ढाई खरब में से एक खरब रुपया फिजूली और फिजूल खर्ची में चला जाता है। इसलिए मैं चाहता हूं कि हम बड़ी दृष्टि रखें। छोटे-छोटे मामलों में न फंस जायें। अगर हम कोई छोटी मोटी चीज निकाल लेंगे तो उससे कोई फायदा नहीं होगा। हम को बड़ी दृष्टि लेनी चाहिए।

औरों से तो मैं क्या कहूं, मैं उन के सरदार से कहना चाहता हूं जो कि यहां बैठते नहीं हैं। मैं चाहता हूं कि उन तक मेरी यह बात पहुंचा दी जाये। वह औसत उम्र की डींग अक्सर मारते हैं कि हिन्दुस्तान की औसत आयु 40 या 42 साल हो गयी है। मैं कह देना चाहता हूं कि इस तरह के आंकड़े बिल्कुल गलत हुआ करते हैं क्योंकि हिन्दुस्तान में बच्चों की मौत में कुछ फर्क आया है इसलिए औसत उम्र में बढ़ाव हो गया है, यह नहीं है कि मालवीय जी की तरह लोगों की उम्र ज्यादा होने लगी हो।

इसी तरह से यहां जिक्र कर दिया जाता है बाईसाइकिलों का या रेडियो का। हम को अपने सामने योजना के मामले में तीन कसौटियां रखनी चाहिए। एक कसौटी तो यह हो कि हमने कितनी तरक्की की है भूत के मुकाबले में, दूसरी कि हमने अपने पड़ोसियों और दुनिया के दूसरे देशों के मुकाबले में कितनी तरक्की या तनज्जुली की है और तीसरी यह कि हमारी आशायें क्या हैं।

तो मैं कह देना चाहता हूं कि कोई भी पढ़ा लिखा आदमी — पढ़ा लिखा मैं विश्व विद्यालय के हिसाब से नहीं कहता उन लोगों की तुलना में कहता हूं जो कि बाइसिकिल या रेडियों का जिक्र कर दिया करते हैं — यह मान लेगा कि भूत की तुलना में हम थोड़ा सा आगे चाहे रेंगें होंगे, लेकिन पड़ोसियों और दुनिया के दूसरे मुल्कों की तुलना में हमारी तरक्की बहुत कम हुई है। और उस के साथ-साथ जो हमारी आशायें थीं उन को दखते हुए तो हम इन 15 बरसों में पीछे हो गये हैं आगे बढ़ने का तो कोई सवाल ही नहीं है। चीन जो था 15 बरस पहले उसकी तुलना में वह आज बहुत आगे बढ़ा है। और चीन को तो छोड़ दो। एक मामूली सा देश घाना बहुत आगे बढ़ा है। हम जरा सा रेंग कर आगे बढ़े जरूर हैं लेकिन और देशों के मुकाबले में हम पीछे हट गये हैं। इसलिए मैं कहता हूं कि हमें बड़ी दृष्टि रखनी होगी।

इसी बड़ी दृष्टि को मैं सदन के सामने रखना चाहता था कि जबकि मैंने कहा था कि 27 करोड़ आदमी इस देश में ऐसे हैं जो रोजाना तीन आना रोज़ पर जिन्दगी काटते हैं। यह अंक ऐसा है जिस पर किसी को बहस करने की गुंजाइश नहीं रह गयी है। उस समय नन्दा जी इस पर बहुत ताव से बोले थे, आज भी हम लोग उन का ताव से बोलना सुन चुके हैं। लेकिन उन्होंने एक बड़ी गलती की थी कि वह गैर खेतिहर धन्धों की आमदनी की गिनती दो बार कर गये। उन्होंने 1500 करोड़ का फर्क बताया था। तो इस तरह की गलती उन्होंने उस वक्त की थी, लेकिन इस समय मैं उस में नहीं जाना चाहता। मैंने जो कहा कि इस देश में 27 करोड़ आदमी रोजाना तीन आने पर जिन्दगी बसर करते हैं, उस में मेरा उद्देश्य सरकार का नंगा चित्र आप के और हिन्दुस्तान के सामने रखने का था। लेकिन मेरा खाली यही इरादा नहीं था। मैं चाहता था कि जहां मैं रोग को दिखाऊं वहीं रोग का इलाज भी दिखा दूं। रोग के दरस में इलाज का परस शामिल था। रोग क्या है? रोग यह है कि 27 करोड़ आदमी तीन आने रोज पर जिन्दगी काटते हैं, साढ़े 16 करोड़ आदमी एक रुपया रोज पर जिन्दगी काटते हैं। मैं यह औसत बता रहा हूं, और 50 लाख आदमी 33 रुपये रोज खर्च करते हैं। तो अब यह रोग है तो बिल्कुल साफ है कि इस का इलाज क्या हो सकता है। जो लोग 33 रुपया रोजना खर्च करते हैं उन को — मैं यह यह नहीं कहता कि उन को तीन आने रोज पर ले आया जाये — 15 या 16 रुपये रोज पर ले आया जाये, तो आसानी से आमदनी में 25 अरब रुपया और सरकार के करों के आंकड़ों के हिसाब से 15 अरब रुपया बच जायेगा, जो एक पंचवर्षीय योजना में 75 अरब से ले कर एक खरब तक पहुंच जायेगा और उस से योजना ठीक ठाक चल सकेगी।

यह रोग और इलाज मैंने पहले भी सदन के सामने रखा था और आज फिर रखा है। जब तक यह इलाज नहीं किया जायेगा समस्या हल नहीं हो सकती। हम ने जो हिन्दुस्तान में अमरीका, रूस और यूरोप के ढंग पर ढांचा बिठा रखा है, उस को जब तक हम नहीं बदलेंगे, तब तक योजना किसी तरह पूरी हो ही नही सकती। खाली यह कह देना कि यह सरकारी योजना है और सरकारी धन्धों और करोड़पतियों के धन्धों का जो झगड़ा है उस को बता देना काफी नहीं है, क्योंकि ये दोनों धन्धे एक ही ढंग पर चलते हैं। उनका एक सा उद्देश्य है, एक ही उन का ढंग है, एक से ही मैनेजर और तनख्वाहें हैं और एक सा ही रहन सहन का ढंग है। इसलिए उन की तुलना करने से कोई मतलब नहीं निकल सकता। हमें इस में फर्क करना चाहिए और यह तभी हो सकेगा जब हम इस बुनियादी बात को पकड़ेंगे कि जो पचास लाख आदमी 33 रुपया रोज खर्च करते हैं उन को 15 या 16 रुपये पर लाया जाये। इस बारे में मैं और कुछ नहीं कहना चाहता क्योंकि इससे

वे तिलमिला जायेंगे। मैं केवल इतना ही कहना चाहता हूं कि इन में भी बहुत ज्यादा सीढ़ियां हैं। इतनी सीढ़ियां हैं, एक दो सीढ़ी नहीं। दो तीन सीढ़ी होती तो अब तक मामला ठीक हो गया होता। गरीबी में भी लाखों सीढ़ियां हैं और अमीरी में भी लाखों सीढ़ियां हैं, अगर लाखों नहीं तो हजारों सीढ़ियां तो जरूर हैं। इन सीढ़ियों के सबब से किसी भी समाज की पुनर्रचना मुश्किल हो गई है। जो बुनियादी खराबी है हमारी आर्थिक व्यवस्था की है वह इस योजना में भी आ जाती है। और वह यह कि हमारी उपज, पैदावार तो है मध्य कालीन, हमारे किसान वही हल चलाते हैं जो कि 1500 वर्ष पहले चलाते थे। एक, आध जगह कहीं ट्रैक्टर्स आ गये हों तो मैं कहता नहीं लेकिन आम तौर पर हमारे वहीं पुराने साधन अभी तक चले आ रहे हैं। वही पुराने करघे चल रहे हैं जो कि दो हजार वर्ष पहले या हजार वर्ष पहले चलते थे। यह सही है कि कुछ मिलें भी आ गई हैं। लेकिन बुनियादी तौर पर हमारी उपज और पैदावार की नींव तो मध्यकालीन है और उसके ऊपर खपत की जो इमारत हमने खड़ी की है वह है आधुनिक, आधुनिक भी नहीं आधुनिकतम। अब बिल्कुल अमरीका और रूस की नकल करने वाली कब तक यह भारी इमारत जो कि अमरीका व रूस की खपत वाली है वह हमारी नींव पर रह सकेगी? यह पंचवर्षीय योजना जो अभी आपके सामने आई है यह साबित करती है कि यह मामला ज्यादा नहीं चल सकता है।

*** *** ***

जनता सरकार के अभिमुख है उसी तरीके से सरकारी अफसर अभिमुख है। मेरा यह कहना है कि हिन्दुस्तान के 5000 बड़े अफसरों के लिए ही एक लाख सरकारी नौकर रखे गये हैं। सरकारी नौकरों की कुल तादाद एक करोड़ है। अगर इस तरीके से देखा जाये तो बड़े लोगों की सिर्फ सेवा सुश्रुषा, ठाठ बाट और शानशौकत के लिए सरकार का एक बड़ा भारी अमला चलता रहता है। आखिर को उसका बोझा इस सरकार की खर्चे की योजना पर पड़ता है। फिर इस योजना के बनाने वालों के दिमाग़ में एक धारणा यह रही है कि अगर हम आर्थिक ढंग से देश को बदल देंगे तो बाकी सब चीजें अपने आप बदल जायेंगी, यह चीज बड़ी गलत है। इसका नतीजा यह हुआ है कि कोई भी समस्या पिछले 15 वर्ष में हल नहीं हो पाई।

एक और विचित्र तरह की कैंची हर समस्या पर चल गयी। उस को मैं कांग्रेस कैंची कहता हूं जिसकी कि मिसाल यह है कि राजा, महाराजाओं को जो पैसा दिया जाता है उसके बारे में एक तरफ तो कहा जाता है कि यह पैसा, प्रिवी पर्स बहुत खराब चीज है लेकिन दूसरी तरफ उन्हीं के द्वारा यह कह दिया जाता है कि हम क्या करें? हमें तो जो वचन उनको दिया गया है उसे निभाना पड़ रहा है और इसीलिए यह प्रिवी पर्स उनको देनी पड़ रही है। कैंची का एक फल है जो कि कहता है कि यह पैसा देना बहुत बुरा है

और दूसरे फल से कह दिया कि हम वचनबद्ध हैं और इस कारण देना ही पड़ता है। क्या मैं उनसे पूछ सकता हूं कि जिन्होंने यह वचन दे रखा है वह गद्दी से हट क्यों नहीं जाते? अपनी जगह दूसरे लोगों को आने दो जो कि यह पैसा देना बन्द कर दें। आखिर यह कोई तर्क है बात करने का? यह कैंची हर चीज पर चलती है, भाषा पर चलती है सम्पत्ति पर चलती है।

इसे तरीके से अखिल भारतीय सेवाओं के बारे में सरकारी नौकरियों के बारे में आपको जानना चाहिए कि इस देश में 5 रुपया महीने पर काम करने वाले गांवों के चौकीदार हैं। अब मैं सब से ऊंची तनख्वाहों का जिक्र नहीं करूंगा, फिर से लोग चिल्ला उठेंगे।

उसके बाद मेथौन डैम को देखिये जो कि एक सरकारी धंधा है। उसमें सरकारी नौकरों की तादाद बढ़ती चली गई क्योंकि एक तरफ तो बंगाली, बिहारी में होड़ चलती गई और दूसरी तरफ ब्राह्मण और कायस्थ में होड़ चली कि कौन अपने आदमियों को ज्यादा भरती करता है। वह चीज ऐसे है कि जब तक एक मंत्री जिनको कि कामराज योजना की लात जब तक नहीं लगी, श्री मोरारजी देसाई, उन्होंने मुझे कहा था कि तुम तो बहुत ज्यादा बातें करते हो, जो योग्य है वह तो आखिर जगह पायेगा ही। मैं आपसे यह नम्र निवेदन करना चाहता हूं कि अगर वह खुद प्रधान मंत्री हुए होते तो अब तक हिन्दुस्तान में सब से योग्य अनामिल ब्राह्मण ही समझे गये होते और दूसरे न समझे गये होते। यह देश ही इतना सड़ चुका है कि यहां पर जो आदमी बैठता है वह अपनी बिरादरी वालों को योग्य बना ही देता है।

इसी तरह योजना के बारे में एक बहुत गलत बात बतलाता हूं, दिखावा। दिखावा कैसे किया जाता है इसके बारे में मैं आपको बतलाऊं कि इलाहाबाद रेलवे स्टेशन जो कि अभी 50 वर्ष अच्छे तरीके से चल सकता था, एक करोड़ रुपये के खर्च से तोड़ कर नया बनाया गया, क्योंकि उसको अच्छा दिखाना है। इसके बरअक्स जो इलाका गरीब और अविकसित है, जहां गंगा और रामगंगा का पुल बन सकता है, जहां से पलटनी सामान उत्तर पिथौरागढ़ को जाता है चीन से सामना करने के लिए, वहां पर अगर पुल बना दिये जायें, 4, 5 करोड़ रुपये के खर्च से तो आज जो दस घंटे का सफर है वह तीन घंटे में तय हो जायेगा।

इसी तरीके से अगर इस योजना के बारे में कुछ जानना हो तो दिल्ली योजना के बारे में सोच लीजिये। दिल्ली के ऊपर तो 7 लाख रुपया खर्च करके योजना बनाई गई है और बाकी का क्या हाल है इसी तरीके से इस योजना का एक और नमूना लेना हो तो

खाली अहमदाबाद जाकर देख लें....

*** *** ***

....अहमदाबाद के बंगलों को देखने से पता चलता है कि कोई 10-15 हजार बंगले साहबों वाले अहमदाबाद में बने हैं। यह कोई जनता की योजना नहीं है, बल्कि योजना तो यह है कि किस तरीके से 50 लाख बड़े लोगों की तादाद धीरे-धीरे बढ़ाई जाये। हर साल हिन्दुस्तान में दो, तीन लाख साहबों का निर्माण होता है। अब यह तो समाजवाद के रास्ते में रुकावट है क्योंकि जब कभी हिन्दुस्तान समाजवादी क्रान्ति के लिये तैयार होगा तो इस योजना के द्वारा जो भी बंगलिये वाले नये-नये साहब लोग तैयार हुए हैं वह इसके खिलाफ जायेंगे।

मैंने सुना तिवारी महाराज ने एक बात कही। बढ़िया बात थी, बिहार के खिलाफ, पक्षपात हुआ लेकिन वह उसको ऐसी सीमित जगह पर ले गये कि वह सही चीज गलत हो गयी। असल में क्या हो रहा है? पक्षपात हो रहा है, किस के खिलाफ, जो गरीब हैं, उनके खिलाफ। मिसाल के लिए मैं आपको बतलाऊं कि उड़ीसा, आंध्र प्रदेश, उत्तर प्रदेश और बिहार आदि के इलाके, यह हिन्दुस्तान में फ़ी आदमी औसत आमदनी 200 रुपये साल वाले हैं और बाकी जो इलाका है, जिनमें अंग्रेजों ने अपने विदेशी व्यापार की जूठन छोड़ी थी, जैसे बम्बई और कलकत्ता आदि, वहां पर फ़ी आदमी औसत आमदनी जाकर 400 रुपये पड़ती है।

फिर जहां का एक बड़ा आदमी होता है वह अपने इलाके को खूबसूरत बना लेता है। अगर कोई मंत्री होता है तो वह अपने इलाके को ठीक ठाक कर लेता है बाकी इलाके का सत्यानाश कर देता है

*** *** ***

....2 लाख 40 हजार ऐकड़ ज़मीन पर सहकारी खेती हुई है। चुनावों के दिनों में इतना ज्यादा ढोल पीटा गया सहकारी खेती का लेकिन असलियत यह रही है कि 30 करोड़ एकड़ की खेती में से मुश्किल से 2 लाख 40 हजार एकड़ पर खेती हुई है। इसलिए मैं यह कहना चाहता हूं कि चुनाव के समय में ढोंगी वायदे और सरकार की असलियत दोनों बिलकुल अलग अलग है।

भ्रष्टाचार का तो कहना ही क्या? खादी और ग्रामोद्योग में 52 करोड़ रुपये योजना में खर्च किये गए हैं। नतीजा यह होता है कि गज 6 करोड़ 40 लाख से बढ़ कर 7 करोड़ 70 लाख तक पुहंच जाता है जबकि पूरी पैदावार अरबों गज पर जाती है । किस लिये है? मैं यह साफ कहना चाहता हूं कि हिन्दुस्तान के प्रधान मंत्री ने इस योजना को बनाया है। इस के कई तात्पर्य रहे होंगे। एक यह भी है कि किस तरीके से सच का मुंह सोने के बर्तन से ढक दिया जाये। हिन्दुस्तान में न जाने कितने समुदायों को, सेवकों को, साधुओं को, प्रचारकों को या विद्या वाले लोगों को केवल नौकरी के धंधे में, जब मंत्री बना नहीं

सकते या मंत्री बनना नहीं चाहते तो उनको इस तरह से फंसा रखा गया है। इस तरीके से सारी योजना भ्रष्ट हो गयी है। अब इसको बदलने का केवल एक ही उपाय रह जाता है कि कोई संगठन ऐसा बने। मैं सरकार से इसकी उम्मीद नहीं करता। इस सरकार के पास तो संगठन है नहीं, तैयार भी नहीं कर सकती, खेती और कारखानों को सुधारने वाला, लेकिन हमें अफसोस के साथ कहना पड़ता है कि हम भी वह संगठन तैयार नहीं कर पाते हैं जो इस प्रकार के कूड़े को उठा कर फेंक दे। आज देश इसी पेंच में पड़ गया है कि सरकार कोई संगठन नहीं बना पा रही है जो खेती और कारखानों को सुधारे, जनता वह संगठन बना नहीं पा रही जो इस सरकार को उखाड़ कर फेंक दे। उसका एक मात्र कारण है यह कि हर एक कि दृष्टि संकुचित हो गयी है, अपने समूह की हो गयी है अपने क्षेत्र की हो गयी है। आपसे मैं सही कहता हूं कि मेरा मन तड़पता है जब से यहां दिल्ली में आया हूं मैं सोचता हूं कि किस जहन्नुम में मैं आकर फंस गया हूं? रोज़ मेरे पास लोग दुखड़ा लेकर आते हैं, रेडियो वाले आते हैं, तार वाले आते हैं, खेत मज़दूर आते हैं, वह सब अपनी अलग-अलग टूटी हुई वृत्ति लेकर आते हैं लेकिन एक जम कर सारे देश की राष्ट्रीय तबियत पैदा हो, ऐसा हो नहीं पा रहा है। उसका सब से बड़ा कारण यह है कि इस योजना से सरकार ने देश के विश्वास का खात्मा कर दिया है। लोग कहते हैं कि आज जो कूड़ा गद्दी पर बैठा हुआ है, इस बात की क्या गारंटी है कि कल तुम भी उसी जगह जब बैठोगे तुम भी कूड़ा न हो जाओगे? मैं यह समझा नहीं पाया कि जिस तरीके से आज इस वर्तमान सरकार के कूड़े को हटा सकते हैं उसी तरह से कल उनकी जगह बैठने वाले भी यदि कूड़ा हो जायें तो जनता उनको भी हटा सकती है, जिस तरह से घर में रोजाना झाड़ू देकर कूड़ा घर के बाहर किया जाता है। लेकिन वैसा संगठन बन नहीं पा रहा है। इस योजना पर टीका करते हुए अपनी नालायकी कह देना चाहता हूं कि वह संगठन हम बना नहीं पर रहे हैं। फैलाव वाली वह मनोवृत्ति, आर्थिक जीवन में वह चौड़ाव वाली मनोवृत्ति कि तीसरे दर्ज में जो मुसाफिर घुसते हैं और जो उसमें पहले से बैठे हुए हैं, उनमें कुछ लोग ताकतवर हैं वह अपना फैल कर बैठ जाते हैं जबकि बाकी लोग सिकुड़ कर बैठ जाते हैं। मैं आपसे यह निवेदन करूंगा कि किस तरीके से मुल्क में, जीवन में यह फैलाव वाली मनोवृत्ति फैले तभी कहीं जाकर यह योजना वगैरह हो पायेगी।

51

लोहिया ने कहा*......

इतिहास

आखिर इतिहास है क्या? यह है अतीत का बोध। जो कुछ पहले हो चुका है उसको किस ढंग से समझते हैं—अधूरा, पूरा, गलत, सही, इतिहास है अतीत का बोध। और अतीत का बोध भविष्य और वर्तमान का निर्माता भी हुआ करता है।

***　　***　　***

...अगर हमने अपने भूत को ठीक से जाना और पहचाना नहीं और अपने बच्चों को ठीक से सिखाया नहीं, तो यह देश कभी भी अच्छा और सुखी नहीं हो सकता है।

(लोक सभा वाद-विवाद, 26 अप्रैल, 1966)

गुलाम भारत और आजाद भारत के बीच में धारावाहिकता नहीं रहनी चाहिए, वह टूटनी चाहिये।

(लोक सभा वाद-विवाद, 19 सितम्बर, 1963)

समाजवाद

समाजवाद हर किसी अन्य सिद्धान्त की तरह, एक होता है थोक, एक होता है फुटकर, एक होता है सगुण, एक होता है निर्गुण, एक होता है सिद्धान्त, एक होता है कार्यक्रम। .....समाजवाद से एक सीढ़ी नीचे उतरो, उस सीढ़ी का नाम है बराबरी। उस बराबरी से एक सीढ़ी और नीचे उतरो। आर्थिक बराबरी, सामाजिक बराबरी, राजकीय बराबरी, धार्मिक बराबरी, उससे एक सीढ़ी और नीचे उतरो। ...तब उसके बाद आएगी समता, सम्पूर्ण समता, संभव समता। ...तब एक सीढ़ी और नीचे उतरो और तब अधिकतम और न्यूनतम की सीमा लगाओ।...

(लोक सभा वाद-विवाद, 16 मार्च, 1965)

---

*लोक सभा में डा० लोहिया के भाषणों से लिये गये उद्धरण

सम्पत्ति का मोह और सम्पत्ति की संस्था, मैं समझता हूं कि संसार में अभी तक किसी व्यक्ति ने, किसी समाज में, किसी देश में एक साथ इन दोनों का हल नहीं निकाला है। मार्क्स साहब ने सम्पत्ति की संस्था का हल निकाला था। हमारे उपनिषदों ने सम्पत्ति के मोह का हल निकाला था। इसी तरह से हम कोई ऐसा रास्ता निकालें कि सम्पत्ति के मोह और सम्पत्ति की संस्था; इन दोनों का हल निकाल सकें, भोग की इच्छा और भोग की व्यवस्था, दोनों का हल निकाल सकें।

(लोक सभा वाद-विवाद, 4 अगस्त, 1967)

लोक सभा

....इस लोक सभा में मंत्री ही फैसलों के लिए जिम्मेदार हैं, सचिव नहीं। अगर फैसले अच्छे हैं तो उनका श्रेय मंत्री को मिलता है, अगर फैसले खराब हैं तो बदनामी मंत्री की होती है।

(लोक सभा वाद-विवाद, 5 मार्च, 1964)

....जब तक वह धारा (344) इस संविधान में है तब तक किसी भी आदमी का इस सदन में अंग्रेजी बोलना संविधान को तोड़ना है, उसे भंग करना है। इसलिए या तो वह धारा खत्म कर दी जाए वरना इस सदन में अंग्रेजी का इस्तेमाल बंद किया जाए। मैं यह नहीं कहता कि उसकी जगह हिन्दी आ जाए। बल्कि मेरा कहना है कि उसकी जगह हिन्दुस्तान की सभी मातृभाषायें आ जायें और लागू हो जायें और इनके तरजुमा का भी इंतजाम हो जाए।

(लोक सभा वाद-विवाद, 19 सितम्बर, 1963)

हम जो विरोधी दल हैं, उनका ध्यान भी उचित प्रश्नों की तरफ उतना ठीक नहीं जा पाता, जितना गलत प्रश्नों की तरफ चला जाता है। ..... विरोधी दलों का मुख्य लक्ष्य यह होना चाहिए कि सवाल अच्छे उठाए जायें। गलत सवाल उठा दिये जाते हैं, चाहे जितना अच्छा जवाब दिया जाए, लेकिन उससे उद्देश्य की पूर्ति नहीं होती।

(लोक सभा वाद-विवाद, 26 अप्रैल, 1966)

...... सदन की शोभा तभी सम्भव है, जबकि देश की शोभा बची रहती है। देश और

सदन को अलग करके देखने की परिपाटी और तरीका जब तक चलते रहेंगे, तब तक शोभा बिगड़ती चली जाएगी। इसलिए देश और सदन, दोनों की शोभा को बनाकर रखना है।

(लोक सभा वाद-विवाद, 26 जुलाई, 1966)

जनता और सरकार

हमारा देश-समाज सरकार अभिमुख है, और सरकार अफसर अभिमुख है; यानि जनता सरकार की नौकर है और सरकार अफसरों की नौकर है।

(लोक सभा वाद-विवाद, 4 अगस्त, 1967)

मैं हिंसा नापसन्द करता हूं। मैं अभी भी इस मत का नहीं बना हूं कि सरकारी हिंसा का जवाब जनता की हिंसा से दिया जाये।

(लोक सभा वाद-विवाद, 7 अप्रैल, 1966)

मैं अराजकतावाद पंसद कर सकता हूं—वह अलग बात है, कानून टूटे—मैं पसंद कर सकता हूं, आज कल के रिश्ते बदलें—मैं इसको पसन्द करता हूं, किसी तरह से अस्थिरता खत्म हो कर परिवर्तन आये—मैं पसंद करता हूं लेकिन हिंसा नहीं, मारकाट नहीं, किसी की जान लेना नहीं....

(लोक सभा वाद-विवाद, 24 मई, 1967)

सभ्यता का मतलब है कि अपने से सबल के सामने अड़ जाओ, डट जाओ, उसका मुकाबला करो, चाहे कुछ देर के लिए हार जाना पड़े, मार खानी पड़े, और जो अपने से दुर्बल हो उसके सामने झुक जाओ। यह सभ्यता अगर हिन्दुस्तान का सूचना और प्रसारण मंत्रालय आगे के लिए सिखाए यो ज्यादा अच्छा होगा।

(लोक सभा वाद-विवाद, 17 मार्च, 1964)

अगर कोई असत्य बोलने वाला आदमी जोर से कहे कि मैं असत्य नहीं बोलता हूं तो वह क्या सत्य हो जाता है।

(लोक सभा वाद-विवाद, 22 अगस्त, 1966)

जिस तरह सितार के ढीले तार कसने से वह अच्छा बजा करता है, उसी तरह से यह सरकार नजरबन्दी कानून खत्म कर देने से अच्छा बजने लगेगी।

(लोक सभा वाद-विवाद, 18 दिसम्बर, 1963)

नागरिक अधिकारों और कानून का लगातार कटान हिन्दुस्तान में होता जा रहा है। जिस

तरह से बाढ़ का पानी, नदियों का पानी मिट्टी को काटता चला जाता है, उसी तरह से ये सब कानून* हिन्दुस्तान के लोगों के नागरिक अधिकारों को लगातार काटते चले जाते हैं।

(लोक सभा वाद-विवाद, 18 दिसम्बर, 1963)

योजना

योजना पैदावार अभिमुख हो, गांव अथवा शहर, भारी मशीनें अथवा छोटे उद्योग धंधे और खेती, ये सब बहसें फिजूल हैं, जब तक योजना ईमान अभिमुख नहीं होती। अगर योजना में ईमानदारी नहीं है, तो फिर कोई भी नतीजा निकल नहीं पायेगा।

(लोक सभा वाद-विवाद, 2 सितम्बर, 1966)

ज़मीन नीति

जहां तक ज़मीन का सवाल है ज़मीन के बारे में हमारी नीति बिल्कुल साफ है कि एक खेतिहर खानदान बिना मशीन लगाये जितनी जमीन पर खेती कर सके, उसकी तीन गुनी तक जमीन उसके पास रहनी चाहिए।

(लोक सभा वाद-विवाद, 19 सितम्बर, 1963)

औद्योगिक नीति

...जब तक आदमी की खपत की ओर उसकी आमदनी या खर्च की कोई सीमा हिन्दुस्तान में नहीं बांधी जाती, तब तक औद्योगीकरण बिल्कुल नामुम्किन है।

(लोक सभा वाद-विवाद, 4 अप्रैल 1964)

राष्ट्रीयकरण

...जितना अधिक हो सके राष्ट्रीयकरण होना चाहिए और जितनी जल्दी हो सके होना चाहिए। लेकिन फिलहाल मैं कहना चाहता हूं कि खपत को लेकर सीमा बांध दी जाए, जो बड़े धंधे हैं उनका राष्ट्रीयकरण एकदम हो जाए और जो छोटे धंधे हैं उन सब का नियंत्रण खत्म कर 'दिया जाए।

(लोक सभा वाद-विवाद, 4 अप्रैल, 1964)

अन्न नीति

....मुझे ऐसा लगता है कि सरकार भुखमरी को केवल उपवास के द्वारा देह त्याग

---

*निवारक नजरबन्दी कानून

समझती है। .... मैं भुखमरी का अर्थ बिल्कुल साफ रखना चाहता हूं कि अगर दिन भर खाने को बिल्कुल न मिले और फिर छंटाक या दो छंटाक मिल जाये, दूसरे दिन भी खाने को न मिले और फिर छंटाक या दो छंटाक मिल जाये और यह सिलसिला दो, तीन, चार महीने रहे तो इसको भुखमरी में गिनना चाहिये, चाहे अंग्रेजी भाषा के अनुसार, चाहे हिन्दी भाषा के अनुसार।

(लोक सभा वाद-विवाद, 9 सितम्बर, 1963)

हिन्दुस्तान में भुखमरी से इंकार करने की इचछा ही हिन्दुस्तान की अन्न नीति को बिगाड़ देती है। जिस दिन आप में इतनी हिम्मत आ जाएगी कि आप यह स्वीकार कर लोगे कि हिन्दुस्तान में भुखमरी है उस दिन आपको इस भूख को मिटाने वाला रास्ता भी मिल जायेगा।

(लोक सभा वाद-विवाद, 9 सितम्बर, 1963)

जब कोई सरकार, देश सम्पत्ति संचय और असत्य वादन के रास्ते पर चल जाता है तब भूख को वह मिटा नहीं सकता। भूख को वही मिटा सकता है जो सत्यवादी बने और सम्पत्ति संचय को छोड़ दे।

(लोक सभा वाद-विवाद, 8 अप्रैल, 1967)

कीमतों में वृद्धि

कानून बनाने वाले चीजों के दामों को घटायें, न कि अपनी तन्खवाहों को बढ़ायें... अपनी ताकत अपनी तनख्वाहें बढ़ाने के बजाय चीजों के दाम घटाने के लिए, क्यों नहीं लगाते हो?

(लोक सभा वाद-विवाद, 10 अप्रैल, 1964)

....दाम तो बांधे नहीं जा सकते, लेकिन दामों के रिश्तों का बांधना जरूरी हो गया है। ....मैं चाहता हूं कि गेहूं, सीमेंट, मिट्टी का तेल, कपड़ा, इनके रिश्ते बांध दिये जायें, ताकि अगर एक घटे, तो दूसरा भी घटे, अगर एक बढ़े तो दूसरा भी बढ़े। इसमें किसान का भी फायदा है, शहर के उपभोक्ता का भी फायदा है, देश का भी फायदा है। इसी आधार पर अच्छी योजना बन सकती है। दामों के रिश्तों को बांधना जरूरी है।

(लोक सभा वाद-विवाद, 9 सितम्बर, 1964)

मैं अगर मजदूर नेता होता तो मैं मंहगाई भत्ते की बात नहीं करता, मैं यह मांग करता कि बड़े लोगों के खर्चे घटाये जायें, ताकि चीजों के दाम घट सकें और हमारा समाज अच्छी तरह से चल सके।

(लोक सभा वाद-विवाद, 4 अगस्त, 1967)

शिक्षा नीति

...पांच वर्ष से लेकर 11 वर्ष तक के जितने बच्चे हैं, चाहे राष्ट्रपति का बच्चा हो चाहे भंगी का बच्चा हो, सब को एक ढंग के स्कूल में जाना चाहिए। अगर हम इस तरह के कुछ कदम उठायेंगे तब हम अपने देश को बना पायेंगे...

(लोक सभा वाद-विवाद, 10 मार्च, 1964)

पठन, पाठन का स्वातन्त्रय एक तरफ इसका अर्थ है कि अध्यापक स्वतंत्र होने चाहिए अपनी विद्या की खोज करने के लिए। स्वतंत्रता सही मायने में वहीं होती है जहां प्रतिभा और योग्यता होती है। दूसरी तरफ इसका अर्थ यह भी है कि विद्यार्थी स्वतंत्र होने चाहिए, पठन, पाठन में।

(लोक सभा वाद-विवाद, 15 दिसम्बर, 1964)

विश्वविद्यालय क्या है? एक राष्ट्र के अन्दर विश्व है। उसको अपना इन्तजाम खुद करना चाहिए। उसमें इतनी स्वतंत्रता होनी चाहिए कि वह नई विद्या की खोज करे, नया ज्ञान हासिल करे और जो पुरानी विद्या है, उसको अच्छी तरह से उपलब्ध करे।

(लोक सभा वाद-विवाद, 15 दिसम्बर, 1964)

भ्रष्टाचार

...कानून का राज्य हिन्दुस्तान में नहीं रह गया है, मनमानी का राज्य हो रहा है। नियम अच्छे नहीं हैं, या उनका पालन नहीं हो रहा है। नतीजा यह होता है कि सरकार के कामों में पक्षपात भरा हुआ है। उस पक्षपात में लोगों को पैसे का फायदा होता है या नहीं, यह दूसरे नम्बर का सवाल है। पक्षपात, मनमानी, घूसखोरी और नियमों की अवहेलना, ये सब भ्रष्टाचार में समझे जाने चाहिए।

(लोक सभा वाद-विवाद, 21 दिसम्बर, 1963)

सिंहासन और व्यापार के संबंध की तरफ भी मैं आप का ध्यान खींचूंगा। यह संबंध जितना हिन्दूस्तान में दूषित, भ्रष्ट, बेईमान हो गया है, उतना दुनिया के इतिहास में कभी नहीं हुआ है। ...हमें केवल यह देखना है कि क्या किसी बेटे या बेटी या रिश्तेदार ने तथा मेरी तो यह राय है कि दो पीढ़ी तक के रिश्तेदारों ने, उनके संबंधी के सिंहासन पर बैठने के कारण कोई लाभ उठाया है या नहीं। आज हिन्दुस्तान में यही कसौटी रहनी चाहिए कि सिंहासन पर बैठे हुए लोगों की मदद लेकर के क्या किसी ने लाभ उठाया है व्यापार में।

*** *** ***

.:.ऐसा कोई व्यापार जहां पर कि मंत्री को कोई कोटा या परमिट या लाइसेंस देना पड़ता हो, उसमें मंत्री के दो पीढ़ी तक के रिश्तेदारों को बिल्कुल नहीं आना चाहिए। जब तक यह सिद्धांत आप नहीं अपनाते हैं, तब तक सिंहासन और व्यापार का संबंध बिगड़ा हुआ ही रहेगा।

(लोक सभा वाद-विवाद, 21 दिसम्बर, 1963)

...इस सरकार ने सत्य का मुंह हिरण्य के पात्र से ढक कर रक्खा है। .....सत्य का मुंह सोने के बरतन से ढक कर रखा गया है। आप देखेंगे कि जीवन की हर एक दिशा में चाहे वह सेवक हो, चाहे साधु हो, चाहे वह सुधारक हो और चाहे एकेडेमी वाले हों, चाहे और किसी पढ़ाई लिखाई के दायरे में हों, जो लोग मंत्री नहीं बन सकते या बनना नहीं चाहते, उन लोगों का मुंह आधा या पूरा बन्द रखने के लिए सरकार बहुत ज्यादा रुपया खर्च किया करती है।

(लोक सभा वाद-विवाद, 21 दिसम्बर, 1963)

सन् 1947 के बाद से अब तक का युग "खाओ और बटोरो" का रहा है।

(लोक सभा वाद-विवाद, 3 अप्रैल, 1967)

सामाजिक क्रांति

... विकास जितना ज्यादा देश में होता चला जाएगा, अगर हमने जाति के आधार को नहीं बदला तो गैर बराबरी की प्रथा चलती जायेगी। विकास का मतलब, भारत में जाति प्रथा के रहते हुए गैर बराबरी का बढ़ना होगा।

(लोक सभा वाद-विवाद, 3 सितम्बर, 1963)

...या तो हम अपने संविधान में से संरक्षण वाली बात को बिल्कुल खत्म कर दें और ईमानदारी के साथ कहें कि हम हरिजनों, आदिवासियों और दूसरी पिछड़ी जातियों को कोई अवसर नहीं देना चाहते और अगर उसको रखते हैं, तो फिर इमानदारी के साथ उतनी जगहें उनको देनी चाहिएं, चाहे वे योग्य हों और चाहे वे अयोग्य हों।...

(लोक सभा वाद-विवाद, 3 सितम्बर, 1963)

...हिंदुस्तान की रेलगाड़ियों में तीसरे दर्जे के अलावा सभी दर्जों को खत्म करो, ताकि इस टूटे हुए देश में, गरीबी और अमीरी के इतने बड़े फर्क के देश में, कहीं कोई इलाज तो आ सके।

(लोक सभा वाद-विवाद, 10 मार्च, 1964)

आखिर यह जो भंगी, चमार और छोटी जाति के कहलाते हैं मुझमें और उनमें कोई फर्क नहीं है, आपमें और उनमें कोई फर्क नहीं है क्योंकि खाली एक पुराने और सड़े हुए शास्त्र ने उन्हें नीचा बनाया हुआ है और उस शास्त्र को ठोकर मारना आवश्यक हो गया है।

(लोक सभा वाद-विवाद, 12 अप्रैल, 1966)

विदेश नीति

पिछले पन्द्रह वर्ष की हिन्दुस्तान की विदेश नीति के लिए अगर मुझको कोई भी नारा देना पड़े तो मैं कहूंगा कि विश्व शान्ति की थोथी पैगम्बरी और चालाकी की कूटनीति। इसमें सिद्धात नहीं। इसमें सोच नहीं। इसमें सपना नहीं और इसका नतीजा हमारे देश हित के लिए खतरनाक हुआ है।

(लोक सभा वाद-विवाद। 17 सितम्बर, 1963)

...हम अंग्रेजी में अपनी विदेश नीति चला रहे हैं जिस के सबब से हिन्दुस्तान और दुनिया का कोई हित नहीं कर पाता। अगर हिन्दुस्तान की विदेश नीति को बदलना चाहते हो तो सबसे पहले उसका माध्यम बदलना पड़ेगा।

(लोक सभा वाद-विवाद, 17 सितम्बर, 1963)

...जहां एक हाथ में दण्ड हो वहां दूसरे हाथ में अभयदान रहना चाहिए। पाकिस्तान की जनता और हिन्दुस्तान की जनता भाई थे, अब भी भाई हैं, चाहे एक दूसरे का

गला काटें। ये हमेशा भाई रहेंगे। एक देश बनकर रहेगा। इसलिए अभयदान की मुद्रा कभी हिन्दुस्तान को नहीं छोड़नी चाहिए चाहे जितना दण्ड हाथ में उठाना पड़ें।

(लोक सभा वाद-विवाद, 28 अप्रैल, 1965)

अगर आप मेरी सलाह मानते हैं तो चाहे जितनी लड़ाई करें, चाहे जितनी बरबादी करे, लेकिन एक और समझौते* का न्यौता दें और वह है दो देशों के महासंघ का समझौता*। उसके लिए आप किसी भी प्रकार का त्याग उठाने के लिए तैयार रहें।

(लोक सभा वाद-विवाद, 28 अप्रैल, 1965)

मैं भी तीसरे खेमे की नीति वाला हूं, लेकिन जिस तरह से तीसरे खेमे या तीसरी शक्ति की नीति को इस विदेश मंत्रालय ने बिगाड़ा है उसे देखकर मुझे यहां कहना पड़ता है कि यह निरपेक्ष नीति नहीं है, यह एक हरजाई नीति है कि कभी इस की गोद में बैठे, कभी उसकी गोद में बैठे। इस नीति को छोड़कर एक आदर्शवादिता को लेकर काम चलाना पड़ेगा।

(लोक सभा वाद-विवाद, 11 अप्रैल, 1964)

सिद्धान्त** इस संबंध में एक है कि जब कोई सरकार जहां कहीं किसी राज्य में देर से हो और वह ताकतवर हो, उसको न सिर्फ मान्यता देनी चाहिए बल्कि उसके साथ राष्ट्रों को राजनीति और कूटनीतिक संबंध भी कायम रखने चाहियें और करने चाहिए।

(लोक सभा वाद-विवाद, 16 नवम्बर, 1965)

एक कहावत है, वहां अवध जहां राम निवासु। मैं कहना चाहता हूं कि जहां दलाई लामा है वहां उनकी सरकार मानी जानी चाहिए और उसको भारत की सरकार मान्यता दे।

(लोक सभा वाद-विवाद, 16 नवम्बर, 1965)

अगर क्रांतिकारी बनना है देशी मामलों में और परदेशी मामलों में, तो मैं कहना चाहता हूं कि हमें घर के अन्दर रूसी बनना पड़ेगा और बाहर अमरीकी बनना पड़ेगा। हम अपने खेती, कारखानों के ढांचे को बदलें और जो खर्च बड़े लोगों की विलासिता और ऐयाशी में हो जाता है उस पर रोक लगाकर पूंजी जमा करें और अपने कारखानों को चलायें

*भारत और पाकिस्तान
**सरकारों को मान्यता के बारे में

औद्योगीकरण को चलायें। ...विदेशी मामलों में हमको ज्यादातर अमरीका के साथ जाना पड़ेगा।

(लोक सभा वाद-विवाद, 23 सितम्बर, 1964)

....जैसे दो नदियों के मिलने पर संगम होता है और उससे रोमांच होता है और वह तीर्थ स्थान बनता है। ...जहां दो देशों की सीमायें मिलती हैं वहां उसी तरह का या तो तीर्थ स्थान बनता है या युद्ध स्थल ही बना करता है...।

(लोक सभा वाद-विवाद, 1 दिसम्बर, 1965)

...हिन्दुस्तान और पाकिस्तान दोनों जगहों की जनता के सामने एक महान् आदर्श रक्खें* कि किस तरह से जीने का अधिकार शायद दुनिया का सबसे बड़ा अधिकार है। जीने का अधिकार। हिन्दुस्तान का मुसलमान जिए और पाकिस्तान का हिन्दू जिये। मैं इस बात को बिल्कुल ठुकराता हूं कि पाकिस्तान के हिन्दू पाकिस्तान के नागरिक हैं इसलिए हमें उनकी परवाह नहीं करनी है। पाकिस्तान का हिन्दू चाहे जहां का नागरिक हो, लेकिन उसकी रक्षा करना हमारा उतना ही कर्त्तव्य है जितना हिन्दुस्तान के हिन्दू या मुसलमान की। तो यह तर्क दे देना कि कौन कहां का नागरिक है यह व्यर्थ हो जाता है। वह मामले को बिगाड़ देता है। जीवन का अधिकार, जीवन की सुरक्षा हमें सबको देनी है।

(लोक सभा वाद-विवाद, 3 अप्रैल, 1964)

मैं इस बेलगाव की नीति के बारे में साफ-साफ कहना चाहता हुं कि उसका आज कोई मतलब ही नहीं रह जाता। इसको सही अर्थों में समझो। वह यह है कि हम उन सब लोगों से लगाव रखेंगे जो हमारे रास्ते और दुनिया की भलाई के रास्ते पर चलने को तैयार होंगे।...हम उन सब से लगाव रखते हैं जो हमारे साथ हैं गरीबी की मिटाने में, हिन्दुस्तान और पाकिस्तान को एक करने में और विश्व व्यवस्था को कायम रखने में।

(लोक सभा वाद-विवाद, 16 नवम्बर, 1965)

स्त्री पुरुष में समानता

...मैं कहना चाहता हूं कि श्रीमती कहना बंद करो। और श्री सब के लिए रक्खों मर्द हो चाहे औरत हो, चाहे लड़का हो या लड़की हो। सब के लिए श्री रक्खो।

(लोक सभा वाद-विवाद, 16 नवम्बर, 1965)

---

*सरकार को भारत-पाक संबंधों पर श्वेत पत्र निकालने का आग्रह करते हुए

चापलूसी

यह जो चापलूसी है उससे लोभवृत्ति होती है और फिर उससे अविवेक होता है, फिर सच और झूठ के फर्क का खात्मा होता है और देश का सत्यानाश होता है।

(लोक सभा वाद-विवाद, 16 सितम्बर, 1964)

भाग चार

श्रद्धांजलियां

52

डा० लोहिया के देहान्त पर लोक सभा व राज्य सभा में किए गए निधन संबंधी उल्लेख

लोक सभा*

मुझे इस सदन को अपने नौ साथियों के दुःखद निधन की सूचना देनी है...........

डा० राममनोहर लोहिया उत्तर प्रदेश के कन्नौज निर्वाचन क्षेत्र के वर्तमान सदस्य थे। उनका निधन नई दिल्ली में 12 अक्तूबर 1967 को हुआ। उनका निधन असामयिक था।

हम सब को पता है कि डा० लोहिया देश के स्वतंत्रता संग्राम में एक उत्साही कार्यकर्ता के रूप में शामिल हुए। उन्होंने 1942 के "भारत छोड़ो" आन्दोलन में सक्रिय भाग लिया। भारत की स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् डा० लोहिया ने गोआ के स्वतंत्रता संग्राम में सक्रिय भाग लिया। वह लगभग 18 बार भारत, गोआ तथा नेपाल के आन्दोलनों में जेल गये। वह धर्म-निरपेक्ष ढंग के समाजवाद में विश्वास करते थे। वह सामाजिक अत्याचार के विरुद्ध तन और मन से निरन्तर कार्य करते रहे।

डा० लोहिया संसद में 1963 में उत्तर प्रदेश के फर्रुखाबाद क्षेत्र से एक उपचुनाव में जीतकर तीसरी लोक सभा में आये। इस सदन के सदस्य के नाते उन्होंने इस सदन में कई ऐसे विषयों पर चर्चा की, जिनके बारे में न केवल यहां अपितु बाहर भी जनता ने

---

* (i) **लोक सभा वाद-विवाद,** 13 नवम्बर, 1967

(ii) 13 नवम्बर, 1967 को डा० राम मनोहर लोहिया और आठ अन्य वर्तमान / निवृत्तमान संसद सदस्यों के निधन के सम्बन्ध में उल्लेख किया गया।

दिलचस्पी ली। वह एक ओजस्वी वक्ता थे। कोई नहीं कह सकता था कि मृत्यु उन्हें हमसे इतनी जल्दी छीन लेगी। उनकी मृत्यु ने भारत की राजनीति तथा इस सदन से एक महान नेता को जुदा कर दिया।

* * * * * *

हमें इन मित्रों के निधन पर अत्यधिक दुःख है और मुझे पूरा विश्वास है कि उनके संतप्त परिवारों को संवेदना संदेश भेजने में सदन हमारे साथ है :

—अध्यक्ष, नीलम संजीव रेड्डी

अध्यक्ष महोदय, आज हम अपने कई सहयोगियों और साथियों के निधन के पश्चात् मिल रहे हैं। पिछले सत्र की समाप्ति के बाद अब तक बहुत से सदस्यों का निधन हो गया है।

इस सदन को डा॰ राममनोहर लोहिया के निधन से क्षति हुई है। वह एक महान संसदविज्ञ थे। उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन पददलितों की सेवा में और उन कार्यों में बिताया जो उन्हें प्यारे थे। उन्होंने हमारे स्वतंत्रता संग्राम में, विशेष रूप से "भारत छोड़ो" आन्दोलन में स्मरणीय भाग लिया वह देश में समाजवाद के प्रवर्तकों में से एक थे। उनके असामयिक निधन के कारण हमारे बीच से एक बहुत बुद्धिमान तथा चरित्रवान व्यक्ति उठ गया है। उनके बिना सदन वैसा नहीं रहेगा जैसा पहले था।

* * * *

इसलिये हम इन मित्रों को दुःख भरे मन से याद करते हैं, जिन्होंने अपने तरीकों से देश की सेवा की। हम उन्हें अपनी श्रद्धांजली भेंट करते हैं तथा उनके संतप्त परिवारों के प्रति संवेदना व्यक्त करते हैं।

—प्रधान मंत्री, श्रीमती इन्दिरा गांधी

मेरे दल* के सदस्य तथा मैं प्रधानमंत्री द्वारा अपने दिवंगत सहयोगियों के निधन पर व्यक्त की गई भावनाओं से सहमति प्रकट करते हैं, जो इस लोक सभा तथा पहले की सभाओं के सदस्य थे।

डा० लोहिया हमारे राष्ट्रीय नेताओं में से थे। गत तीन दशकों में जो बहुत बड़ा आन्दोलन उनमें उन्होंने भाग लिया। मुझे उनके साथ कार्य करने का सौभाग्य उस समय से प्राप्त हुआ जब मैं पश्चिमी बंगाल में किसान आन्दोलन की इकाई स्थापित कर रहा था। यद्यपि उनका जन्म राजस्थान में हुआ था तथा उनका कार्य क्षेत्र उत्तर प्रदेश में था, परन्तु 1935 में भी उनका बंगाल में प्रभाव था। फिर गोआ, नेपाल तथा नेफा में जहां भी वह यह महसूस करते थे कि उनके नेतृत्व की आवश्यकता है, वह बिना झिझक उसमें जुट जाते तथा स्वतंत्रता के संग्राम में जनता के हितों की सेवा करते।

हममें से बहुत लोगों की भांति उन्हें भी महात्मा गांधी के नेतृत्व में कार्य करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उनमें अनुशासन की भावना इतनी थी कि जब उन्होंने दक्षिण अफ्रीका के बारे में एक सुझाव जो गांधी जी को स्वीकृत नहीं था, दिया, जो अखिल भारतीय कांग्रेस समिति चाहती थी और गांधी जी चाहते थे कि समिति उस बात से पीछे हट जाये तो एक वफादार सिपाही की भांति उन्होंने महात्मा गांधी की बात को मान लिया। यह मैं इसलिए कह रहा हूं कि उन्हें सदा विद्रोही कहा जाता है परन्तु उनमें आत्म अनुशासन भी था। इस सदन में तथा सदन से बाहर पूरे देश में उन्होंने अनेकों स्मरणीय कार्य किये। जब वह किसी कार्य को अपने हाथ में लेते और उसे नया मोड़ देते तो वह भिन्न दिखाई देने लगता। इसी कारण उन्होंने जब वह इस सभा में आये तो उन्होंने सदन का ध्यान देश की भुखमरी की ओर दिलाया और उसे एक नई परिभाषा दी और उसका अर्थ इस सदन में तथा विधान सभाओं में एक नये रूप में समझा जाने लगा। उन्होंने विशेषकर उत्तर प्रदेश, बिहार और उड़ीसा के अकाल की ओर ध्यान आकर्षित किया।

महोदय, डा० लोहिया का अल्प आयु में ही निधन हो गया था और प्रधान मंत्री, जैसा कि हम भी कहना चाहते थे, ने ठीक ही कहा है कि यह सदन वैसा नहीं रहेगा जैसा उनके जीवित रहते थे। हम तथा सारा देश उनके निधन पर संवेदना प्रकट करता है।

* * * * *

अपने दल की ओर से मैं आप से निवेदन करता हूं कि संतप्त परिवारों को हमारी संवेदनाएं भेज दी जा।

—प्रो० एन० जी० रंगा

---

*स्वतन्त्र पार्टी

अध्यक्ष महोदय, एक-एक कर पुरानी पीढ़ी के प्रकाश स्तम्भ ढहते जा रहे हैं, एक-एक कर हमारे मार्गदर्शक हम से मुंह मोड़ते जा रहे हैं, एक-एक कर हमारे कर्णधार राष्ट्र की नौका को मंझधार में छोड़ कर अनन्त में अदृश्य होते जा रहे हैं। जो जीवन भर आजादी के लिए जूझे, जिनकी जवानी जेल में जली और कष्टों के कांटों में खिली, स्वतन्त्रता की गंगा को लाने के लिए जिन्होंने भगीरथ प्रयत्न किया और स्वाधीन भारत के नव निर्माण में जिन्होंने अपनी शक्ति के अनुसार योगदान दिया उन सब की स्मृति में—आपने उनका नामोल्लेख किया है—हमारे सिर श्रद्धा से नत हैं, हम हृदय से उनके प्रति कृतज्ञ हैं।

डा० लोहिया के निधन का समाचार मुझे बैंकांक में मिला। मेरे साथ स्वतन्त्र पार्टी के श्री सोलंकी और कांग्रेस के चौ० राम सेवक जी भी थे। एक क्षण के लिए हम स्तब्ध हो गए, जड़ से रह गए, अपनी सुध बुध भूल गए, मानों वज्रपात हो गया हो। हर मोर्चे पर संघर्ष लेने वाला योद्धा, हर अन्याय और अभाव के विरुद्ध सबको लड़ने के लिए ललकारने वाला सेनानी, हर परिस्थिति को अपने अदम्य आत्म-विश्वास और अपनी कर्तृत्व शक्ति से अनुकूल मोड़ देने वाला नेता इतनी जल्दी जीवन की बाजी हार जाएगा ऐसा हमने कभी नहीं सोचा था। शायद उनकी चिकित्सा में कोई चूक हो गई, सम्भवतः क्रूर काल ने अपनी क्रूरता में कोई कमी नहीं छोड़ी।

डा० लोहिया एक महान देशभक्त, स्वतन्त्रता संग्राम के अग्रगण्य नेता, मौलिक विचारक और क्रान्तिदर्शी व्यक्ति थे। उनका व्यक्तित्व अनूठा, विविधताओं से परिपूर्ण और बहुमुखी प्रतिभाओं से सम्पन्न था। वे स्वयं विवाद का विषय रहते थे और नए नए विवाद खड़े करने में रस लेते थे। वे जीवन से बागी थे और बगावत जैसे उनके स्वभाव का अंग बन गई थी। उन्होंने राष्ट्र के जीवन को एक नई दिशा देने का यत्न किया, वह एक नए राज और एक नए शासन के संदेशवाहक और संयोजक थे। उनके विचारों से किसी को मतभेद हो सकता है किन्तु दलितों के लिए, पीड़ितों के लिए उनके हृदय में जो अग्नि जलती थी वह उनके निकट आने वाले को बिना झुलसाए, बिना आलोकित किए नहीं रहती थी।

अध्यक्ष महोदय, डा० लोहिया अब नहीं रहे, उनका स्थान शायद रिक्त ही रह जाएगा। राष्ट्र के जीवन में उनकी कमी शायद पूरी नहीं हो सकेगी। समाजवादी होते हुए सरकारीकरण का विरोध करने वाले, परम्परागत सेठों के साथ-साथ सरकारी सेठों पर भी प्रहार करने वाले, पुराने राजा महाराजाओं के साथ-साथ नए राजा महाराजाओं के विरुद्ध तर्क के तेज़ तीर और व्यंग के बाण छोड़ने वाले, अंग्रेजी को हटाओ का नारा देने वाले और भारतीय भाषाओं की अवहेलना करने वालों को भारत माता की जीभ काटने का अभियुक्त बताने वाले, एवरेस्ट को सगरमाथा, नेफा को उर्वसीअं कहने पर जोर देने वाले

डाक्टर लोहिया संसार से उठ गए। सबको खरी-खोटी सुनाने वाले अपने संगी साथियों को भी किसी तरह की माफी न देने वाले लेकिन सबके गले में बांह डाल कर उन्हें हृदय से लगाने वाले, उन्हें साथ लेकर चलने का प्रयत्न करने वाले डा० लोहिया हम से रूठ गए। काल ने उनका शरीर नष्ट कर दिया लेकिन उनकी कीर्ति अमर है और अमर है उनका सपना, महान और शक्तिशाली भारत का सपना, भारत और पाकिस्तान के एकीकरण का—दोनों का महासंघ बनाने का सपना, तिब्बत की मुक्ति का सपना, स्वतन्त्र पख्तूनिस्तान का सपना, जन्म, वंश और कुल के आधार पर होने वाले सभी भेदभावों की समाप्ति का सपना; भारतीय भाषाओं की प्रतिष्ठा का सपना उनके यह सपने हमें उत्तराधिकार में मिले हैं। ये सपने आज हमारी थाती हैं। यदि हम उन्हें सत्य सृष्टि में परिणित करने का प्रयत्न कर सकें तो यह उनके प्रति हमारी सच्ची श्रद्धांजलि होगी।

—अटल बिहारी वाजपेयी

अध्यक्ष महोदय, अपने दल द्रविड मुनेत्र कषगम की ओर से मैं डा० लोहिया तथा दिवंगत सदस्यों के बारे में जो विचार सदन के नेता, ने व्यक्त किये. उनसे सहमति प्रकट करता हूं।

यह दुःख की बात है कि यह देश अपने महान सपूतों को लगातार खोता जा रहा है। यद्यपि यह प्राकृतिक नियम है परन्तु जो स्थान रिक्त होते हैं उनकी पूर्ति कठिन है।

देश के महान राष्ट्रीय नेता डा० लोहिया, जिन्होंने देश के स्वतंत्रता संग्राम में एक ऐतिहासिक भूमिका निभायी, आज हमारे बीच नहीं है।

डा० लोहिया एक विचारधारा तथा एक दर्शन का प्रतिनिधित्व करते थे। वह अन्तोगत्वा एक संस्था बन गये। वे ओजस्वी, दृढ़ संकल्प साहसी निर्भीक आलोचक एवं स्पष्ट वक्ता थे परन्तु फिर भी एक अच्छे इंसान थे।

वे सिद्धान्त के बारे में कोई समझौता नहीं करते थे। कई बार ऐसा दिखाई देता था कि उनसे निबटना कठिन है। वे जनसाधारण के नेता थे परन्तु वैभवशाली व्यक्तियों से कोई सम्बन्ध नहीं रखते थे। उनके शब्द कड़वे प्रतीत होते होंगे, उनकी आलोचना व्यक्तिगत प्रतीत होती होगी परन्तु उनकी नीयत साफ थी और उनका कार्य देश के लोगों की भलाई में व्यतीत हुआ। जो तरीके उन्होंने अपनाये उनकी आलोचना हो सकती है तथा क्रोध भी उत्पन्न होता होगा परन्तु उन्होंने जो अन्तिम रास्ता अपनाया उसमें कोई विवाद नहीं।

सरकार ने पूरा प्रयास किया तथा अनुभवी डाक्टरों से चिकित्सा कराई परन्तु हम डा० लोहिया को नहीं बचा सके। हमें डा० लोहिया के सिद्धान्तों को नया जीवन देना तथा ठोस शक्ल देनी चाहिये।

अपने दल की ओर से मैं अपने इन सभी सहयोगियों के परिवारों को संवेदना व्यक्त करता हूं।

— के० मनोहरन

अध्यक्ष महोदय, सदन के नेता ने डाक्टर राम मनोहर लोहिया, तथा दूसरी दिवंगत आत्माओं के प्रति संमवेदना और श्रद्धा के जो विचार प्रकट किए हैं उनके साथ हमारी पार्टी* और हमारी पार्टी के सदस्य शामिल हैं। डा० राम मनोहर लोहिया जो भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के एक असाधारण और निर्भीक योद्धा थे और जो भारत के समाजवादी विचार के आन्दोलन के एक ऐसे प्रतीक थे जो देश की शोषित पीड़ित जनता के आशा-दीप बन गए थे, उनके निधन, असामयिक निधन की खबर सुन कर विश्वास नहीं होता था कि वे हम लोगों के बीच से चले गए हैं। डा० राम मनोहर लोहिया से मेरा व्यक्तिगत संपर्क उन दिनों से है जब कि वे भारत के तरुण समुदाय को अंग्रेजी शासन के खिलाफ समझौताविहीन संघर्ष के निमित्त कांग्रेस-सोशलिस्ट पार्टी के अन्दर संगठित कर रहे थे। मुझे याद है 1936 में कांग्रेस-सोशलिस्ट पार्टी के तत्वाधान में समाजवादी अध्ययन-मंडल में मैं एक विद्यार्थी की हैसियत से शामिल होता था तो डाक्टर राम मनोहर लोहिया हमारे प्रोफेसर होते थे और तब से लेकर मृत्युपर्यंत उनका जो जीवन संघर्ष है वह इस देश के भीतर राष्ट्रीय स्वतंत्रता का संघर्ष, इस देश के भीतर देश को, सुदृढ़ करने, देश के भीतर सादगी, स्वदेशी और समता के प्रदीप को उज्ज्वल करने का संघर्ष था और इसी संघर्ष के दौरान में उन्होंने भारत छोड़ो आन्दोलन में जो शानदार अग्रणी भूमिका अदा की, उसने भारत के लाखों नवयुवकों को राष्ट्रीय आन्दोलन में सम्मिलित होने की प्रेरणा दी और लाखों-लाखों नवजवान सर्वस्व न्यौछावर कर इस संग्राम में शामिल हुए। राष्ट्रीय स्वतंत्रता के बाद जब हमारे देश ने एक नई परिस्थिति का सामना किया और जिस नई परिस्थिति का सामना आज तक कर रहा है उस नई परिस्थिति में उन्होंने अभाव, अभियोग और अन्याय के लिखाफ शोषित पीड़ित जनता के संघर्षों का शंखनाद किया। वह शंखनाद किया जिस शंखनाद ने निर्बल जनता को यह विश्वास दिया कि वह संगठित हो कर अन्याय को निर्मूल कर सकते हैं, अभाव को दूर कर सकते हैं, अभियोगों को दूर कर सकते हैं और इस शंखनाद ने इस देश के भीतर शोषित पीड़ित जनता को एक खास विचार, एक खास आदर्श को लेकर आगे बढ़ने में जो सहायता की है, उसके लिए भारत की शोषित पीड़ित जनता डा० राम मनोहर लोहिया के प्रति हमेशा कृतज्ञ रहेगी।

.....पिछले आम चुनावों के अवसर पर जब देश की वास्तविक परिस्थिति मांग कर

---

*भारतीय कम्यूनिस्ट पार्टी।

रही थी परिवर्तन की तो डा० राम मनोहर लोहिया जो प्रगति और परिवर्तन के महान सारथी थे, उन्होंने परिवर्तन-और प्रगति का रास्ता रोशन किया और उस रास्ते पर बहुत हद तक सफलता हासिल की। अपनी मृत्यु के समय तक वह बैचेन थे। उनकी बेचैनी इस बात की थी कि कैसे इस देश के आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक जीवन में परिवर्तन प्रगतिपूर्ण परिवर्तन लाया जाए। इस प्रगतिपूर्ण परिवर्तन के लिए बेचैन भारत के वह महान रत्न आखिरी घड़ी तक न केवल अपने साथियों बल्कि तमाम दूसरों से बात करते रहे, समझाते रहे। मतभेदों के बावजूद उनसे विचारों का संगम स्थापित करने की कोशिश करते रहे। हमें याद है कि इस सभा का पिछला सत्र जब खत्म हो रहा था तो उसके दो चार दिन पहले उन्होंने मुझ को बुला कर कहा था कि अब तो हमारी पीढ़ी के लोग अपनी जिन्दगी की आखीरी मंज़िल में हैं तो हम अपने देश का जो सपना पाल कर के रख रहे हैं, मैं चाहता हूं कि वह सपने पूरे हों। क्या समाजवादी भारत, सुखी भारत और सुदृढ़ भारत के निर्माण का हमारा सपना पूरा नहीं होगा? उस सपने को पूरा करने के लिए यह आवश्यकता है कि देश में—और इस संसद में—प्रगतिशील विचारों के लोग एक न्यूनतम कार्यक्रम के आधार पर एकताबद्ध हों और देश में न केवल राजनीतिक परिवर्तन, बल्कि आर्थिक और सामाजिक परिवर्तन का भी एक नया अध्याय आरम्भ करें।

डा० राम मनोहर लोहिया चले गए लेकिन आज जब हम उनको श्रद्धांजलि अर्पित कर रहे हैं, तो हम समझते हैं कि हमारी सबसे बड़ी श्रद्धांजलि यही होगी कि उन्होंने विरासत के रूप में जो कार्यक्रम हमें दिया है, हम उसको पूरा करें और जो आदर्श हमारे सामने रखा है, हम उसका पालन करें। मुझे याद आता है कि अपनी आखिरी मुलाकात में उन्होंने अन्य बातों के अलावा यह कहा था कि यदि समान कार्यक्रम के आधार पर तमाम प्रगतिशील शक्तियों का एक संयुक्त मोर्चा नहीं बन सकता, तो कम-से-कम संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी और भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी का तो एका होना ही चाहिए, क्योंकि यदि यह एका हो जाता है, तो देश में परिवर्तन और प्रगति की शक्तियों में बड़ी ताकत आ जाती है। डा० लोहिया द्वारा विरासत के रूप में दिये गए इस विचार को हम पूरा करें, यही हमारी सबसे बड़ी श्रद्धांजलि होगी।

— योगेन्द्र शर्मा

अध्यक्ष महोदय, अब हम लोगों के बीच डा० राम मनोहर लोहिया नहीं रहे हैं। उनकी असामयिक मृत्यु से हमारा सार्वजनिक जीवन चैतन्यविहीन हो गया है, इस सभा की रौनक चली गई है और हम जैसे लोगों के जीवन में एक रिक्तता उत्पन्न हुई है, जिस की पूर्ति करना, मुझे नहीं लगता, सम्भव होगा।

डा० राम मनोहर लोहिया ने हमारे स्वतंत्रता-संग्राम में एक बहुत बड़ा काम किया।

हमारी पीढ़ी के लोग जानते हैं कि 1942 में महात्मा जी और वर्किंग कमेटी के सदस्यों की गिरफ्तारी के बाद अंग्रेजी दमनचक्र का विरोध कर के प्रतिकार की ज्योति प्रज्वलित करने का काम जिन इने-गिने नेताओं ने किया, उनमें डा० लोहिया ही अग्रसर रहे। मुल्क का जो बंटवारा हुआ, उसके वह घोर विरोधी थे। आज मुझे याद आता है कि माउंटबेटन योजना पर वर्किंग कमेटी में जो प्रस्ताव पास किया गया, उसमें गांधीजी के और उनके कहने पर एक यह जुमला डाला गया कि बंटवारा तो हो रहा है, लेकिन हम इस बात को नहीं मान रहे हैं कि हिन्दु और मुस्लिम अलग-अलग राष्ट्र हैं और पहाड़ों, नदियों और समुद्र की वजह से हिन्दुस्थान का जो रूप बना है, हिन्दुस्थान की एकता का जो चित्र है, वह हमेशा हृदयंगम रहेगा।

डा० लोहिया मानते थे कि जब तक गोआ आजाद नहीं होगा, जब तक पुदुचेरी आजाद नहीं होगा और हिमालय के इलाके में स्थित नेपाल, तिब्बत, सिक्किम और भूटान के राज्यों में जब तक लोकतंत्र के आधार पर नया समाज कायम नहीं होगा, तब तक भारतीय स्वतंत्रता का कार्य अधूरा ही रह जायेगा। नेपाल में लोकतांत्रिक क्रान्ति लाने के लिए और गोआ को आजाद करने के लिए सब से पहले डा. लोहिया ने पहल की। अध्यक्ष महोदय, आप जानते हैं कि गोआ में वह दो दफ़ा गिरफ्तार हुए थे और अगर महात्मा जी न होते, तो मेरा ख्याल है कि उनको बरसों तक गोआ की कैद में बन्द रहना पड़ता। उसी तरह हमारे देश के ही एक भाग में उर्वसीअं, जिसे आप अब भी नेफा कहते हैं, और बाकी हिन्दुस्तान में जो अलगाव है, उसको खत्म करने के लिए उनको सिविल नाफरमानी करनी पड़ी थी।

इस देश की गरीब जनता की मांगों को ले कर उनको नित्य संघर्ष करना पड़ा और स्वतंत्रता के बाद भी अठारह दफ़ा उनको जेल जाना पड़ा। उनमें न केवल राष्ट्रीय भावना थी, बल्कि उन के सामने मानव-जाति के कल्याण का भी सपना था। उन्होंने यह कहा है कि मेरी यह इच्छा है कि एक ऐसी दुनिया का सपना साकार हो, जिसमें आदमी को बिना पासपोर्ट लिये हुए कहीं भी जाने की इजाज़त मिलेगी और जहां पर भी वह रहना चाहेगा या मरना चाहेगा, उसकी उसको छूट होगी। यही वजह है कि जब वह अमरीका में गये थे, तो वहां पर वंशवाद को ले कर नीग्रो जनता पर जो अन्याय हो रहा है, उस के विरुद्ध किये जा रहे आन्दोलन के प्रति उन्होंने केवल शाब्दिक हमदर्दी ही व्यक्त नहीं की, बल्कि एक जगह उन्होंने खुद सिविल नाफ़रमानी की और वहां की पुलिस ने उनको गिरफ्तार किया, लेकिन अमरीका की सरकार तत्काल जागी, प्रेज़िडेंट जानसन ने माफ़ी मांगी और उनको छोड़ दिया गया। डा० लोहिया उन लोगों में से थे, जिनमें क्षेत्रीयता और संकीर्णता का अंश भी नहीं था। एक ओर वह मानते थे कि हमारी राजनीति का आधार राष्ट्रीयता होनी चाहिए। उनका कहना था कि जब तक दुनिया में सार्वभौम राष्ट्र रहें और सीमायें रहें,

तब तक हमको भारत की भूमि के किसी भी हिस्से पर विदेशियों का कब्जा नहीं होने देना चाहिए। लेकिन साथ-साथ वह यह मानते थे कि अन्ततोगत्वा हमको विश्व सरकार की ओर जाना है और ऐसी विश्व सभा का निर्माण करना है, जिसमें संयुक्त राष्ट्र संघ की तरह सार्वभौम सरकारों के प्रतिनिधि नहीं, बल्कि इस लोक सभा की तरह मानव-जाति के द्वारा सीधे चुने हुए प्रतिनिधि जा कर बैठेंगे।

समाजवादी आन्दोलन के तो वह प्रतिष्ठापक रहे हैं, लेकिन उनकी यह विशेषता रही कि वह सृजनशील प्रतिभा के व्यक्ति थे और उन्होंने समाजवादी आन्दोलन को नये-नये विचार दिये। जैसे, हम समाजवादी लोग हमेशा मानते थे कि वर्ग-व्यवस्था को खत्म करने के लिए वर्ग-संघर्ष करना पड़ेगा लेकिन वह पहले समाजवादी नेता थे, जिन्होंने कहा कि यदि हम वर्ग-संघर्ष करने के साथ-साथ जाति-व्यवस्था का उन्मूलन करने के लिए संघर्ष नहीं करेंगे, तो हमारी क्रान्ति अधूरी रह जायेगी। उन्होंने कहा कि मार्क्स का वर्ग-संघर्ष और वर्ग-विहीन समाज का जो विचार है, हिन्दुस्तान की स्थिति में उस को और विकसित करने के लिए यहां की पिछड़ी जनता को आगे बढ़ाने के लिए विशेष अवसर का सिद्धान्त लागू करना चाहिए। वह हमेशा कहते थे कि फ्रेंच राज्य-क्रान्ति ने विचार दिया समान अवसर का, कानून के सामने समानता का, लेकिन हमको विशेष अवसर के सिद्धान्त को अपना कर हिन्दुस्तान में आर्थिक समानता के साथ-साथ सामाजिक बराबरी भी कायम करनी चाहिए। इसलिए जब विभिन्न प्रदेशों में ग़ैर-कांग्रेसी मंत्रि-मंडलों का निमार्ण हुआ, तो उन्होंने हमको यह हिदायत दी कि मंत्रि-मड़लों में हम जो अपने प्रतिनिधि भेजें, उनमें साठ प्रतिशत पिछड़े वर्ग के हों।

अध्यक्ष महोदय, आज अगर मेरे जैसे व्यक्ति इस लोक सभा में जो एक भारतीय भाषा बोल रहे हैं, तो उसका कारण—एक तो मैं महात्मा जी जिनको धन्यवाद देता हूं और, स्वतंत्रता के बाद, दूसरे व्यक्ति डा० राममनोहर लोहिया जिनका यह आग्रह था कि हमारे सार्वजनिक व्यवहार में, सरकारी काम-काज में, अदालतों और विश्वविद्यालयों में माध्यम के तौर पर अंग्रेजी का नहीं, लोक भाषा का इस्तेमाल होना चाहिये। डा० राम मनोहर लोहिया को बदनाम करने की कोशिश की गई कि वह गैर-हिन्दी इलाकों पर हिन्दी को लादना चाहते थे, लेकिन, अध्यक्ष महोदय, वह किसी के ऊपर हिन्दी को नहीं लादना चाहते थे। वह इस देश की पचास करोड़ जनता पर अंग्रेज़ी लादने के दुश्मन थे और वह चाहते थे कि सभी क्षेत्रों में लोक-भाषा का प्रयोग हो। इसलिए कभी-कभी अपनी भावना को व्यक्त करने के लिये कहते थे कि हिन्दी जहन्नुम में जाये, उससे मुझे कोई मतलब नहीं है, लेकिन अंग्रेज़ी जाये। इसका मतलब यह नहीं कि वह अंग्रेज़ी का द्वेष करते थे, वह अंग्रेज़ गवर्नर-जनरलों की मूर्तियों के हटाने के हक में थे, लेकिन मेरा ख्याल है कि अगर शैक्सपीयर के नाम से या आइज़क न्यूटन के नाम पर यदि किसी सड़क का

नामकरण किया जाता तो वह उसका विरोध नहीं करते। वह क्लाइव स्ट्रीट के विरोधी थे, वह डलहौज़ी स्कवायर के विरोधी थे, लेकिन शेक्सपीयर और बर्नार्ड शॉ के विरोधी नहीं थे। इसलिये, अध्यक्ष महोदय, राष्ट्रीयता के साथ-साथ विश्वबन्धुत्व को जोड़ने का व्यापक दृष्टिकोण वह रखते थे और वह चाहते थे कि दोनों में हम लोग समन्वय स्थापित करें।

अध्यक्ष महोदय, स्वतंत्रता के बाद उनको ऐसा लगा कि पुराना जो त्याग का ज़माना था, वह नष्ट होकर भोग-युग शुरू हुआ है। इसलिए वह इस बात के लिये प्रयत्नशील थे कि शौकीनी, विलासिता और फिजूलखर्ची का भोग-युग समाप्त हो और उसकी जगह पर सादगी, बराबरी, उद्यमशीलता और त्याग का युग शुरू हो जाये। उसके बिना, वह कहते थे, हमारे राष्ट्र की पुनर्रचना नहीं हो सकती। उनके अन्तिम दिनों में, अध्यक्ष महोदय, तीन बातों पर वह जोर देते थे—एक तो समाजवादी शक्तियों का एकीकरण। आज हमारी राजनीति में बड़ा बिखराव आ रहा है और वह चाहते थे कि सत्तारुढ़ दल बिखरे, क्योंकि वह महात्मा जी की राय को मानते थे—स्वतंत्रता के बाद कांग्रेस पार्टी को नहीं रहना चाहिये था। लेकिन साथ ही साथ वह चाहते थे कि केवल बिखराव की ही प्रवृत्ति न बढ़े, एकत्रीकरण की प्रवृत्ति भी हमारे देश में बढ़े, वर्ना हमारे देश की एकता और स्वाधीनता रह नहीं पायेगी। इसलिये वह चाहते थे कि समाजवादी शक्तियों का एकत्रीकरण हो। साथ ही साथ वह चाहते थे कि विरोधी दलों में संयुक्त मोर्चा कायम हो। लेकिन जब वैकल्पिक सरकारों के बनाने का सवाल आया, तो उन्होंने हम लोगों को यह सीख दी कि सत्ता अभिमुख वैकल्पिक सरकारें मत बनाओ, कार्यक्रम अभिमुख सरकारें बनाओ। अगर यह सरकारें निश्चित कार्यक्रम को निश्चित समय के अन्दर पूरा करने का प्रयास नहीं करती हैं तो ऐसी सरकारों में रहना, केवल स्वार्थवाद को लेकर, कुर्सी के लाभ को लेकर, वह अच्छा नहीं समझते थे और इसी लिये उन्होंने हमको कहा था कि उत्तर प्रदेश हो, बिहार हो या दूसरे राज्य, जहां-जहां हमारे दल के लोग मंत्री हैं, वहां हम लोगों को इन सरकारों को कार्यक्रम अभिमुख बनाना चाहिये।

उनकी ज़िन्दगी में उनके ऊपर यह आरोप किया गया कि उनकी राजनीति विध्वंसात्मक थी। मैं मानता हूं कि उनकी राजनीति में विध्वंस का अंश था—बुराइयों का विध्वंस, अच्छाइयों का निर्माण—यह उन के जीवन का मुख्य सूत्र था और इसी लिये जब वैकल्पिक गैर-कांग्रेसी सरकारें बनीं, तो वह उनके कामों से सन्तुष्ट नहीं थे और वह चाहते थे कि ये सरकारें कार्यक्रम अभिमुख बनें।

अध्यक्ष महोदय, उनके चले जाने से जो रिक्तता आई, वह तो पूरी नहीं होगी, लेकिन उन्होंने अपने त्यागमय जीवन का एक ऐसा आदर्श, एक ऐसी नज़ीर हमारे सामने प्रस्तुत की है कि उससे हमको हमेशा प्रेरणा मिलती रहेगी।

—

हमारे दूसरे जो साथी गुजर गये हैं, उन के प्रति भी मैं डा० राममनोहर लोहिया के साथ श्रद्धांजलि अर्पित करता हूं और उनके परिवार के जो सदस्य हैं उनके प्रति संवेदना पेश करता हूं।

—मधु लिमये

अपने दल की ओर से मैं उन सभी सदस्यों की भावनाओं में शामिल होना चाहता हूं जो आज सदन में बोले हैं।...........

डा० लोहिया का निधन देश के लिए भारी क्षति है और उससे भी बढ़कर संसद की क्षति है। राष्ट्रीय आंदोलन के आरम्भ से ही डा० लोहिया तथा मैं भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस तथा कांग्रेस समाजवादी पार्टी में इकट्ठे रहे हैं। बाद में यद्यपि हम अलग को गए परन्तु जन-साधारण तथा देश की भलाई के लिए हम सदैव मिलकर कार्य करते रहे। डा० लोहिया की मृत्यु मेरे लिए व्यक्तिगत क्षति है, क्योंकि संसद सदस्य के रूप में जब भी उनके सामने कोई विवादास्पद मुद्दा आता, वह मुझे बुलाकर मुझसे चर्चा किया करते थे और वह इतने स्नेही थे कि न केवल मैं, बल्कि विपक्ष के अन्य सदस्य भी उन्हें सुनते थे। यद्यपि उनके प्रहार बहुत तीखे होते थे, जो लोग उन्हें नहीं समझते थे वे इस बात से अनभिज्ञ थे कि दलितों के प्रति अपने अनुराग तथा मानव जाति के कष्टों के प्रति संवेदनशील होने के कारण ही वह तीक्ष्ण वाणी का प्रयोग करते थे। जहां तक विपक्ष का संबंध है, उसे एक करने में वह एक प्रेरक शक्ति थे। जैसा कि मेरे माननीय मित्र लिमये जी ने अभी कहा, जहां तक राष्ट्रीय आंदोलन का संबंध है, मुझे उनकी व्यक्तिगत मित्रता, उनके अच्छे चरित्र, स्नेह तथा नवीन विचारों का भी अनुभव प्राप्त हुआ है।

*** *** ***

अपने दल की ओर से मैं उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित करता हूं तथा अन्य साथियों ने जो भावनाएं प्रकट की हैं उनमें स्वयं को शामिल करते हुए उन सभी के निधन पर शोक प्रकट करता हूं जिन नामों का यहां उल्लेख किया गया है।

—ए०के० गोपालन

मैं स्वयं तथा प्रजा सोशलिस्ट पार्टी सदन में प्रकट की गई भावनाओं से सहमत हूं बड़े दुख की बात है कि संसद की बैठकें अपने कई साथियों के निधन पर शोक प्रकट करने के लिए उदासी भरे वातावरण में शुरू हो रही है और ऐसे समय में हमारे लिए यह

उचित होगा कि सभा की बैठक आज के लिए स्थगित कर दें और इन साथियों के निधन पर शोक प्रकट करें।

डा० लोहिया न केवल सच्चे साथी व समाजवादी योद्धा थे, बल्कि सच्चे अर्थों में महान विचारक तथा ओजस्वी व्यक्तित्व के स्वामी थे। यह मेरा सौभाग्य है कि मैं उन्हें उस समय से जानता हूं जब उन्होंने एक समाजवादी के रूप में भारतीय राजनीति में प्रवेश किया था। कई वर्षों तक हमने एक साथ काम किया और विचार विनिमय भी किया। उनकी दृष्टि में एक ऐसे समाजवादी समाज की कल्पना थी जो देखने में तो रूढ़ि-विरुद्ध लगता है, लेकिन उनका सारा जीवन-दर्शन हर प्रकर की दासता के विरोध पर आधारित था। उनके विचार तथा कार्य इसी भावना से प्रेरित थे। वह सामाजिक और आर्थिक असमानताओं और देश में राजनीतिक अस्थिरता के कारण चिंतित रहा करते थे। अतः वह अपनी आलोचना और कार्यक्षेत्र में निर्भीक रहते थे। वह अपने सहयोगियों में भी अधीर रहते थे। हमारे देश में उनके जैसी भावना अब नहीं मिलती। उनके निधन से जो एक स्थान रिक्त हो गया है वह कभी नहीं भरा जा सकेगा। मुझे आशा है और यह विश्वास है कि इस देश की युवा पीढ़ी पददलित लोगों को उठाने के लिये मिलकर कार्य करेगी ताकि क्रांति के लिये मार्ग प्रशस्त किया जा सके।

***　　　***　　　***

इन शब्दों के साथ मैं यहां व्यक्त किये गए उद्‌गारों का पुनः समर्थन करता हूँ। सदस्यों का प्रश्न है मुझे आशा है कि आप हम सब के संवेदना संदेश शोक संतप्त परिवारों तक पहुंचायेंगे। परन्तु जहां तक डा० लोहिया का संबंध है, उनके दाह संस्कार और उनके व्यक्तिगत जीवन से यह बोध होता है कि वह भिन्न मतावलम्बी थे। आज जब हम उनकी मृत्यु पर शोक प्रकट कर रहे हैं तो उनके परिवार के किसी सदस्य को कोई संदेश भेजने का अवसर नहीं है क्योंकि वह देश के सपूत थे और उनकी मृत्यु पर सभी को शोक प्रकट करना चाहिये।

—सुरेन्द्र नाथ द्विवेदी

अध्यक्ष महोदय, हमारे अनेक महान सहयोगियों के निधन पर जो भावनाएं व्यक्त की गई हैं, उनसे इन्डिपेंडेंट पार्लियामेंटरी ग्रुप सहमत है।

मैं डा० लोहिया के संबंध में विशेष रूप से कुछ शब्द कहना चाहूंगा। मैं उनको इतनी अच्छी तरह से जानता था कि उन्हें राममनोहर कहकर सम्बोधित करता था। मैं उनके कुछ विचारों और कार्यों से सहमत नहीं था। चाहे कोई भी उनके विचारों और कार्यों से सहमत न हो परन्तु उनके व्यक्तिगत स्वभाव की प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकता। डा० लोहिया का जो रूप हमें उनके सार्वजनिक जीवन में देखने को मिला, वह निस्संदेह एक

विद्रोही का रूप था। जैसा कि मेरे मित्र श्री सुरेन्द्र नाथ द्विवेदी ने कहा कि वह पक्के मित्र मतावलम्बी थी।

डा० राममनोहर लोहिया पर चाहे जो भी आरोप लगाया जाये, पर कोई भी यह आरोप नहीं लगा सकता कि उनके विचारों और कार्यों में मौलिकता नहीं थी।

कुछ समय पहले जब मेरी मुलाकात उनसे एक पार्टी में हुई तो उन्होंने मुझसे पूछा कि जब भी वह मुझसे मिलते हैं तो मैं मुस्कराता क्यों रहता हूं। मैंने उनसे कहा "क्या कभी आपने अपने चेहरे की ओर देखा है?" उन्होंने पूछा, "क्यों"? मैंने कहा "आपके चेहरे पर शरारत झलकती रहती है। आप बचपन में भी नटखट रहे होंगे, जिसका प्रतिबिम्ब आपके सार्वजनिक जीवन में देखने को मिलता है।" जब भी वह चुभती भाषा या चिढ़ाने वाली भाषा का उपयोग करते तो अथवा आलोचना करते थे, तो उनके पीछे नटखटपन का यह गुण ही था, हमने उन्हें सदैव मुस्कराता पाया।उनके दिल में किसी के प्रति द्वेष नहीं था। कम से कम मैं ऐसा मानता हूं। अन्य गुणों के अतिरिक्त यह भी एक गुण था जिसके कारण उनके अनुयायियों की संख्या बहुत अधिक थी क्योंकि निष्ठावान और स्नेही लोगों को आकर्षित करना उनकी विशेषता थी।

अध्यक्ष महोदय, मैं आपसे अनुरोध करूंगा कि हमारी संवेदनाएं शोक संतप्त परिवारों तक पहुंचा दें।

—फ्रैंक एन्थनी

अध्यक्ष महोदय, मैं अपनी ओर से तथा अपने प्रोग्रेसिव ग्रुप की ओर से दिवंगत सदस्यों को श्रद्धांजलि अर्पित करता हूं। संसद की आज की बैठक राष्ट्रीय विपत्ति के उदासी भरे वातावरण में हो रही है। डा० लोहिया हमारे बीच में नहीं रहे हैं। यह एक अपूरणीय क्षति है। वह न केवल हमारे स्वतंत्रता संग्राम के सेनानी थे बल्कि हमारे देश के शोषितों तथा दलितों के शुभचिंतक थे। मेरे पूर्ववक्ताओं ने सही कहा कि वह हिन्दी के महान समर्थक थे। यद्यपि इसके कारण मेरे प्रदेश बंगाल में उनका विरोध हुआ लेकिन बंगाल के युवक उन्हें अपना नायक मानते थे। वह चुनाव के समय मेरे क्षेत्र बर्दवान में अपनी इच्छा से आये थे और उन्होंने मेरे समर्थन में बहुत से स्थानों पर बंगला भाषा में मार्मिक भाषण दिये थे। उन्होंने अपने जीवन का बहुत सा भाग बंगाल में बिताया था और वस्तुतः हम उन्हें बंगाली ही मानते थे। संकट की हर घड़ी में उन्होंने हमारी सहायता की। हम उनकी सेवाओं को कभी नहीं भूल सकते। उनकी कमी हमेशा अखरती रहेगी।

*** *** ***

मैं अन्य दिवंगत माननीय सदस्यों के प्रति भी अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता हूं।

—एन०सी० चटर्जी

महोदय, संसद के भूतपूर्व सदस्यों और वर्तमान संसद के चार सदस्यों की नामावली जो अभी आपने पढ़ कर सुनाई है मैं अपने और अपने सहयोगियों की ओर से उन सबके प्रति अपनी श्रद्धांजलि प्रस्तुत करना चाहता हूं।

जहां तक संसद के वर्तमान चार सदस्यों का सम्बन्ध है, अध्यक्ष महोदय, ऐसे प्रसंग कम आए हैं कि जब संसद के चार-चार सदस्यों को एक साथ श्रद्धांजलि देने के लिए संसद में नाम आए हों। यह दुख भरा प्रसंग आज हमें अपने कानों से सुनना पड़ा। इस प्रकार के अपने प्रिय साथियों का वियोग हम सबके लिए कष्टदायक है।

डा० राममनोहर लोहिया न केवल समाजवादी आन्दोलन के एक अग्रगामी नेता थे, न केवल संसद् के एक प्रमुख अभिवक्ता थे बल्कि वह जनतंत्र के एक सजग प्रहरी भी थे। कभी-कभी डा० लोहिया के भाषणों से और उनके निर्णयों से ऐसा लगता था कि सरकारी निर्णयों के लिए वह एक मजबूत अंकुश का भी काम करते थे। डा० राममनोहर लोहिया के देहावसान से संसद् की एक बहुत बड़ी क्षति हुई है।

डा० राममनोहर लोहिया के मन में बार-बार इस बात की एक तड़प रहती थी कि इस देश का विभाजन होने से, हिन्दुस्तान और पाकिस्तान दोनों को अरबों रुपया अपने देश की सुरक्षा पर व्यय करना पड़ रहा है। काश कि यह स्थिति न बनी होती तो यह अरबों रुपया इस महान देश के विकास के ऊपर व्यय किया जाता।

अपने जीवन के अन्तिम भाग में डा० राममनोहर लोहिया के मुख से कई बार जहां इन बातों की चर्चा सुनने को मिली वहां विशेष रूप से डा० लोहिया के मुख से खान अब्दुल गफ्फार खां की तड़प भी कभी-कभी सदन में और संसद के बाहर भी सुनने को मिली। अपने जीवन के अंतिम भाग में विशेष रूप से वह इस बात की चर्चा करते थे कि खां अब्दुल गफ्फार खां की आत्मा की पुकार को भारत सरकार और भारतवासी बड़े ध्यान से सुनें और किस प्रकार से हम उनके विचारों को कार्यरूप में परिणत कर सकते हैं, इस बात पर भी विचार करें।

भारत के दलित लोगों के सम्बन्ध में भी डा० लोहिया के मन में एक बहुत बड़ी तड़प थी। डा० लोहिया के रूप एक सब से बड़ा आरोप कहीं-कहीं से यह लगाया जाने लगा था कि डा० लोहिया जो अंग्रेजी को हिन्दुस्तान से हटाने के इतने पक्षपाती थे वह शायद उतने ही हिन्दी को भारत में लाने के कट्टर पक्षपाती थे। वस्तुतः लोहिया साहब केवल हिन्दी के नहीं बल्कि समस्त भारतीय भाषाओं के समर्थक थे। यह बात अवश्य है कि संविधान ने जब हिन्दी को राज भाषा के रूप में स्वीकार किया है तो डा० लोहिया की यह हार्दिक अभिलाषा थी कि सरकार अपने निर्णयों पर जल्दी से जल्दी अमल करे।

डा० लोहिया को बचाने के लिए उनके सहयोगियों ने और सरकार ने जितना भरसक

यत्न हो सकता था, किया। लेकिन फिर भी डा० लोहिया के दुखद देहावसान के पश्चात् एक विवाद उनकी मृत्यु की जांच के सम्बन्ध में चला। अध्यक्ष महोदय, मैं उसकी चर्चा यहां नहीं करना चाहता और न इस विवादास्पद विषय में जाना चाहता हूं। लेकिन इतना मैं अवश्य कहना चाहता हूं कि बम्बई, मद्रास और कलकत्ता के अस्पतालों की व्यवस्था को देखते हुए दिल्ली जो कि भारत की राजधानी है, उसके अस्पतालों की व्यवस्था का एक बार सरकार को फिर से निरीक्षण करना चाहिये और उनकी उचित व्यवस्था करनी चाहिये।

*** *** ***

इन शब्दों के साथ इन दिवंगत नेताओं के प्रति जहां श्रद्धांजलि अर्पित करता हूं वहां संसद् के उन चार वर्तमान सदस्यों के प्रति भी जिन के विचारों से संसद् को अब वंचित होना पड़ेगा, जिनके विचार भविष्य में सुनने को नहीं मिलेंगे। अपने और अपने निर्दलीय सदस्यों की ओर से मैं श्रद्धांजलि अर्पित करता हूं।

—प्रकाशवीर शास्त्री

अध्यक्ष महोदय, ग्यारह और बारह अक्तूबर की रात भारत के इतिहास में सबसे काली रात होगी क्योंकि इसी रात को डा० साहब हम लोगों से छीन लिए गए। डा० राममनोहर लोहिया की जब इस वक्त हिन्दुस्तान को सबसे ज्यादा जरूरत थी तब वह हम से छीने गए। ऐसा लगता है भारत अभागा है। स्वतंत्रता के बाद गांधी जी की जितनी जरूरत थी पिछले बीस वर्षों में इस देश की जनता ने इस को अनुभव किया है। बीस साल के कठिन परिश्रम के बाद और निरंतर जूझने के बाद एक जो नया वातावरण बना और जगह-जगह गैर-कांग्रेसी सरकारों की स्थापना हुई जिनको सम्भालने के लिए और जिनके मार्गदर्शन के लिए डा० लोहिया जैसे व्यक्ति के चाबुक की आवश्यकता थी अब वह चाबुक हम से छिन गया।

डा० लोहिया के प्रति आज सभी ओर से शुभ कामनायें और श्रद्धांजलियां आती हैं। उनके विचारों की कद्र हो रही है, उनके सुझावों के बारे में आज सब एक मन हैं, एक मत हैं। पर मुझे एक डर लगता है और उस डर को मैं व्यक्त करना चाहता हूं। डर यह है कि जैसे इस देश की एक बीमारी है और वह यह है कि जब कोई आदमी अपने मौलिक विचारों से अपने जीवन में देश को सुधारना चाहे तब वह देश उसको ठुकराता है, उसका आदर नहीं करता है लेकिन जब वह व्यक्ति बीच में से उठ जाता है तब श्रद्धांजलियां अर्पित की जाने लगती हैं और उसकी स्तुति का ज्ञान होता है। नतीजा यह होता है उन लोगों का बताया हुआ जो रास्ता होता है, जो उनके विचार होते हैं, जो उनकी नीतियां होती हैं वे समाप्त कर दी जाती हैं। जैसे गांधीजी की आत्मा की आज पूजा होती

है लेकिन गांधीवाद क्या था, उनकी सादगी और सच्चाई क्या थी, उससे हम बड़ी दूर होते चले जा रहे हैं। उसी तरह से अब उसकी पुनरावृत्ति न हो, उसके लिए हमें सजग रहना है, इस संसद् को और संसद् के सभी माननीय सदस्यों और नेताओं को सजग रहना है। डा० राममनोहर लोहिया ने जो विचार दिये, जो नीतियां दीं, जो सुझाव दिये जिनकी भूरि-भूरि प्रशंसा हम इस समय कर रहे हैं उस रास्ते पर अगर हम चलें तभी मानवता का कल्याण होगा और यही उनके प्रति सच्ची श्रद्धांजलि भी हो सकती है।

उन्होंने जिन्दगी भर अन्याय के विरुद्ध लड़ाई की और लोगों से और हम सब से भी यही कहा कि जब तक अन्याय रहे, उससे लड़ते रहो। उनके जीवन की एक छोटी-सी घटना मुझे याद आ रही है। यह तब की है जब वह एक छोटे-से बालक थे और पढ़ने जाते थे। तब वह कुछ कर नहीं सकते थे। उन्होंने देखा कि एक नौजवान आदमी एक बालक को पीट रहा है। वह उसको सह न सके। कुछ कर तो वह नहीं सकते थे। लेकिन जा कर उस आदमी से वह लिपट गए और उसको मारने लगे और उसको एक तरह से बताने लगे कि तुम अन्याय कर रहे हो।

इसी के साथ-साथ जहां तक सम्पत्ति का सवाल है, उससे तो उनको कोई लगाव ही नहीं था, सम्पत्ति से प्रेम तो था ही नहीं। यहां तक कि एक बार जब मैंने उनसे कहा कि डा० साहब अकबरपुर में जो आपका मकान है, पूर्वजों का घर है वह गिर गया है या पड़ा हुआ है और अगर वह पड़ा हुआ है तो उसमें हम पार्टी का कोई कार्यालय वगैरह बना सकते हैं। मेरी बात को सुन कर वह मुझ पर बिगड़ गए और बिगड़ कर कहने लगे कि अब तुम मुझे इस उम्र में सम्पत्ति का मोह सिखा रहे हो।

मैंने कहा, "नहीं डा० साहब, हम चाहते हैं कि समाज को लाभ पहुंचे, आपका सब कुछ देश का ही तो है"। वह ऐसे व्यक्ति थे जिनका अपना कुछ नहीं था, जो कुछ था सारे देश का था।

इसी तरह से वह गरीबों के लिए लड़ते रहे। अन्त में जब मरे तो बिजली के घर में अन्य गरीबों की तरह से जला दिये गये जिन के लिए वह जिन्दगी भर लड़ते रहे थे। जो रास्ता उन्होंने पिछड़े और दलित वर्गों के लिए बताया है, विशेष अवसरों की बात कही है, भाषा का जो सवाल उठाया गया है, जो कुछ गरीबों के लिए करने के लिए कहा है उस सब पर अमल होगा तो यही उनके प्रति सच्ची श्रद्धांजलि होगी।

इसके साथ-साथ जो अन्य संसद सदस्यों के बारे में कहा गया उनके प्रति भी मैं श्रद्धांजलि अर्पित करता हूं और उनके शोक संतप्त परिवार वालों के प्रति संवेदना प्रकट करता हूं।

—राम सेवक यादव

राज्य सभा*

हमारे एक अन्य साथी के निधन का भी मुझे उल्लेख करना है। वह इस सभा के सदस्य नहीं थे, परन्तु राष्ट्र के एक महान सपूत के रूप में उन्होंने हम सभी के हृदय में स्नेह का स्थान प्राप्त कर लिया था। मैं डा० राममनोहर लोहिया का उल्लेख कर रहा हूं। अपने लम्बे सार्वजनिक जीवन के दौरान मुझे जवानी के उस जोश को निकट से देखने का अवसर प्राप्त हुआ। जिसका प्रतिनिधित्व डा० राममनोहर लोहिया करते थे। परिश्रम करना उनके जीवन का लक्ष्य रहा—चाहे हमारे स्वाधीनता संग्राम के अथवा गोआ के मुक्ति आन्दोलन के दौरान एक अनुशासित सेनानी की भूमिका हो, चाहे शोषितों और पद-दलितों के हित के लिए लड़ना हो, हर क्षेत्र में उनका एक ही लक्ष्य रहा और वह था कड़ा और अथक परिश्रम। लोक सभा के सदस्य के रूप में उन्होंने एक ओजस्वी वक्ता और उत्कृष्ट संसदविज्ञ के रूप में अनुकरणीय प्रतिष्ठा अर्जित की। देश में समाजवादी आन्दोलन के संस्थापकों में से एक के रूप में उन्हें ठीक ही मान्यता दी गई है। यद्यपि उन्होंने प्रायः सरकारी नीतियों पर जोरदार प्रहार किया लेकिन उनके मन्तव्य और निष्ठा पर कभी संदेह व्यक्त नहीं किया गया। वह सदैव जन कल्याण की बात सोचते थे। हमारे देश के राजनैतिक जीवन में विश्वसनीय और समर्पित नेताओं की संख्या कम हो रही है। अपेक्षाकृत कम आयु में डा० राममनोहर लोहिया के निधन से न केवल उनको व्यक्तिगत रूप से जानने वाले हम लोगों का अपितु उन करोड़ों व्यक्तियों को भी गहरा आघात लगा है जिनके हित में कार्य करने के लिए उन्होंने स्वयं को समर्पित कर दिया था।

—सभापति, वी०वी० गिरि

सभापति महोदय, आपने जो भावनाएं व्यक्त की हैं और जिन मर्मस्पर्शी शब्दों में डा०

---

* (i) राज्य सभा वाद विवाद, 20 नवम्बर, 1967।

(ii) 20 नवम्बर, 1967 को एक वर्तमान सदस्य तथा दो भूतपूर्व सदस्यों और डा० राममनोहर लोहिया के निधन के संबंध में निधन संबंधी उल्लेख किए गए।

राममनोहर लोहिया को श्रद्धांजलि अर्पित की है, इस संबंध में मेरी भावनाएं भी बिल्कुल उसके अनुरूप हैं। यहां डा० लोहिया के जीवन के विभिन्न चरणों अथवा स्वाधीनता की प्राप्ति के राष्ट्रीय संघर्ष में उनके द्वारा निभाई गई भूमिका का वर्णन नहीं करना चाहूंगा। डा० लोहिया का जीवन कमजोर और शोषित व्यक्तियों के लिए समर्पित था और वह इन लोगों और ऐसे व्यक्तियों के लिए जीये व मरे जो सत्ता में बैठे लोगों या अन्य किसी रूप में ताकतवर लोगों के विरुद्ध अपना सिर नहीं उठा सकते थे। दूसरों के दुख देखकर उनका दिल पसीज जाता था। उन्होंने आदमी-आदमी के बीच कोई फर्क नहीं किया और जहां भी उन्होंने अन्याय होता देखा उसके विरुद्ध उन्होंने लड़ाई लड़ी। वह एक महान राष्ट्रीय नेता थे। वह कमजोर लोगों के हिमायती थे और आज एक राष्ट्रीय नेता के रूप में उनके निधन पर हम शोक व्यक्त करते हैं। यद्यपि आज वह हमारे मध्य नहीं हैं लेकिन वह हमेशा हमारे साथ रहेंगे और जिस संघर्ष और उद्देश्य के लिए उन्होंने जीवन समर्पित कर दिया उसके लिए हम उन्हें याद करेंगे। श्रीमान, इन शब्दों के साथ मैं डा० राममनोहर लोहिया को अपनी तथा सम्पूर्ण सभा की ओर से विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित करता हूं।

—सदन के नेता, जयसुख लाल हाथी

महोदय, यह एक विषाद का विषय है जिस पर मुझे बोलना पड़ रहा है और इसके संबंध में आपने और पूर्व वक्ताओं ने जो कुछ कहा है, मेरे विचार उससे भिन्न नहीं है। स्वाधीनता के हमारे संघर्ष के दौरान भी डा० राममनोहर लोहिया एक विद्रोही युवा का प्रतिरूप थे। वह अत्यधिक बेचैन थे और चाहते थे कि देश को जल्दी ही स्वतंत्रता प्राप्त हो। कभी-कभी तो उन्होंने ऐसा भी अनुभव किया कि वरिष्ठ नेता अपेक्षित तेजी के साथ कार्य नहीं कर रहे हैं। इसलिए वह विद्रोही हो गये थे और सदैव अधीर रहते थे। संसद में आने पर भी उनकी वह भावना बनी रही। वह अनवरत कठिन परिश्रम करने वाले व्यक्ति थे। दूसरों को दुःखी और परेशान देखकर वह स्वयं दुःखी और परेशान हो जाते थे। वह जनता का और खासतौर से समाज के कमजोर वर्गों के लोगों का भाग्य संवारने के लिए बेचैन थे और इसलिए उन लोगों के लिए उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन, सारा समय समर्पित कर दिया।

ऐसे अथक कार्यकर्ता के न रहने से देश निर्धन हो गया है। इस संबंध में मेरी भावनाएं भी इस सभा में व्यक्त की गई भावनाओं के अनुरूप हैं।

—दह्याभाई वी० पटेल

महोदय, डा० राममनोहर लोहिया के दुखद और असामयिक निधन पर सभा में व्यक्त किए गए उद्गारों और भावनाओं से मैं और मेरा दल* पूरी तरह सहमत है। उनके निधन से देश ने न केवल एक निर्भीक संसदविद्, स्वतंत्रता, लोकतंत्र और समाजवाद का एक कट्टर योद्धा ही नहीं खोया अपितु एक स्वतंत्र चिंतक, दबंग आलोचक, एक अच्छा लेखक और एक मानवतावादी भी खो दिया है। डा० राममनोहर लोहिया ने न केवल शोषितों और पददलितों के हित की अगुवाई की और उनके शोषकों के विरुद्ध संघर्ष किया, अपितु उन्होंने देश की सभी वामपंथी और समाजवादी ताकतों को संगठित करने और उन्हें आगे बढ़ाने का प्रयास भी किया। मेरा विश्वास है कि अपने कठिन लेकिन प्रेरक जीवन में डा० लोहिया द्वारा जो लड़ाई लड़ी गई वह व्यर्थ नहीं जाएगी।

—के० दामोदरन

महोदय, आप और हम सभा के अन्य सदस्यों द्वारा दिवंगत नेता डा० राममनोहर लोहिया को जो श्रद्धांजलि अर्पित की गई और उनके बारे में जो भावनाएं व्यक्त की गई हैं, वही भावनाएं मेरी और मेरे दल प्रजा सोशलिस्ट पार्टी की भी है। वह एक अग्रणी स्वतंत्रता सेनानी थे। उन्होंने हर प्रकार के अन्याय के विरुद्ध हमेशा लड़ने वाले एक कर्मठ योद्धा के रूप में ख्याति अर्जित की। मुझे उनके साथ कार्य करने का सौभाग्य मिला। उनकी मृत्यु से देश ने एक साहसी योद्धा खो दिया है और उनकी मृत्यु से समाजवादी आंदोलन को गहरा धक्का लगा है। उनका प्रेरक नेतृत्व और उनके विचारोत्तेजक कार्य इस देश की नियति का मार्गदर्शन करते रहेंगे। खासतौर पर समाजवादी आंदोलन उनके विचारों से लाभान्वित होगा। अन्त में मैं यही कहूंगा कि मेरी भावनाएं इस सभा में व्यक्त भावनाओं से अलग नहीं हैं।

—मुलका गोविन्द रेड्डी

सभापति महोदय, देश के राष्ट्रीय नेताओं में जिनकी गिनती की जा सकती है, उसमें डा० राममनोहर लोहिया का स्थान रहा है और इसी कारण उनके असामयिक निधन पर सारे देश को दुःख हुआ है और हम सब लोग यह अनुभव करते हैं कि उनकी अनुपस्थिति हमें बहुत अखरेगी। देश की एकता के संबंध में उनके बड़े स्पष्ट विचार थे और जब कभी भौगोलिक एकता के प्रश्न पर कहीं पर भी चोट पड़ती थी, डा० राममनोहर लोहिया ने उस प्रश्न को देश की जनता के सामने और संसद् के सामने रखने में कभी भी संकोच नहीं किया। केवल भौगोलिक एकता ही नहीं देश की अखंडता और राष्ट्रीय एकता के प्रश्न पर भी उन्होंने जो भी टीकाएं कीं और उनको जो भी चिन्ता रहती थी, वह बहुत

*भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी।

ही स्पष्ट रहती थी और कोई भी ऐसे प्रयत्न जो इन चीजों को रोकने के लिए या उसमें विघटन पैदा करने के लिए उपस्थिति होती थी, उसके लिए डा० राममनोहर लोहिया किसी को भी नहीं बख्शते थे और इसी चीज़ में उनकी महानता रहती थी।

उन्होंने देश के स्वाभिमान की हमेशा चिन्ता की और इसीलिए विदेशी शासन की समाप्ति के बाद हमको विदेशी भाषा पर निर्भर नहीं रहना चाहिये और अपनी ही राष्ट्रीय भाषा में तथा एक भाषा को चुनकर अपने देश के स्वाभिमान का परिचय देना चाहिये, इस बात के भी वे प्रणेता रहे और उसके लिए वे हमेशा लड़े।

सार्वजनिक जीवन में भ्रष्टाचार के वे कट्टर शत्रु थे, फिर वह भ्रष्टाचार देश के किसी भी व्यक्ति द्वारा किया जाये, चाहे वह बड़े से बड़ा राजनीतिक नेता ही क्यों न हो, या सार्वजनिक जीवन का छोटे से छोटा व्यक्ति हो उस भ्रष्टाचार को उन्होंने कभी भी सहन नहीं किया। संसद् में भी ऐसे भ्रष्टाचारों के संबंध में सभी उदाहरण चाहे वे बड़े-बड़े व्यक्तियों के विरुद्ध हो, उन्होंने यहां पर रखे और देश के लोगों की आंखें खोलने का प्रयत्न किया। मैं समझता हूं कि सबसे बड़ी बात जो डा० राममनोहर लोहिया ने परिपाटी के रूप में हमारे सामने रखी वह यह है कि जिन बातों पर उन्होंने विश्वास किया उनके प्रति उन्होंने ईमानदारी के साथ बर्ताव किया। एक बात में विश्वास करना और पूरी ईमानदारी से उसका पालन करना, यह एक बड़ा गुण है जिसकी आज देश को बड़ी आवश्यकता है। हम सब लोग डा० राममनोहर लोहिया के उनकी मान्यताओं के प्रति ईमानदारी से इस एक गुण को परिणत कर सकें, तो इससे देश बहुत से मामलों में बहुत बड़ी तरक्की कर जायेगा।

डा० राममनोहर लोहिया ने राष्ट्रीय जीवन स्तर की जो परिपाटी कायम की है, उनके लिए हम सब लोग उनके ऋणी हैं और इसी कारण उनकी असामयिक अनुपस्थिति से हम सब लोग दुखी हैं और उनका अभाव हम सब को खटक रहा है। मैं अपनी ओर से, अपने दल* की ओर से उनके प्रति श्रंद्धाजलि अर्पित करता हूं।

—सुन्दर सिंह भंडारी

सभापति महोदय, डा० राममनोहर लोहिया के बारे में मैं अपनी ओर से तथा अपनी पार्टी की ओर से क्या कहूं, मुझे कुछ समझ में नहीं आता है क्योंकि हमारी पीढ़ी में कई लोगों के लिए डा० लोहिया गांधी जी के बाद सबसे बड़े महान व्यक्ति के रूप में थे। हम उन्हें इसी रूप में मानते थे और अब भी मानते हैं। हर इतिहास में बड़े आदमियों की पहचान उनके जीवनकाल में नहीं होती है। कोई भी बड़ा आदमी हो, जब वह चला जाता

---

*जनसंघ

है इस दुनिया से, फिर उसकी बातों को लेकर, या उसकी जो नीतियां हैं, उनको लेकर लोग उसको मानने लगते हैं कि यह व्यक्ति जो कुछ भी चिन्तन दुनिया को दे सकता था, दे रहा था। तो ऐसा ही एक व्यक्ति आज हमारे बीच से चला गया और उसकी पूर्ति कभी नहीं हो पायेगी, खासकर समाजवाद के लिए। मैं समझता हूं कि हिन्दुस्तान की राजनीति के लिए भी एक बड़ा नुकसान हुआ है और जिसकी कभी भी पूर्ति नहीं हो सकती है।

डा० लोहिया ने इस देश के लिए ही देन नहीं दी बल्कि दुनिया में जहाँ भी स्वतंत्रता के लिए युद्ध हुआ, उसमें उन्होंने अपना योग दिया। उन्होंने हमारे स्वराज्य के संग्राम में ही योग नहीं दिया बल्कि दुनिया को हर तरह से सहायता की। अगर एक-एक मिसाल लेकर मैं यहां पर बोलने लगूंगा तो काफी समय लग जायेगा।

मैं तो सिर्फ इतना ही कहना चाहूंगा कि दुनिया में जहां कहीं भी स्वतंत्रता की बात उठी, चाहे साउथ अफ्रीका में हो, हिन्दुस्तान में हो, चाहे वह इन्डोनेशिया में हो या कहीं और जगह हो, उनसे जो कुछ भी बन पड़ा उसके लिए उन्होंने अपना योग दिया। हमारे देश के चारों तरफ जो छोटे-छोटे राज्य हैं उनमें भी जनतांत्रिक ढंग से सरकारें कायम हों, इसके लिये भी उन्होंने प्रयास किया।

ग्रामीण क्षेत्रों की बात तो मैं कहना नहीं चाहूंगा क्योंकि उसका यहां पर विस्तार से जिक्र हो चुका है।

हिन्दुस्तान के जो मसले हैं उन पर उन्होंने कुछ ऐसा चिंतन किया था जो आगे चल कर भी हिन्दुस्तान के लिये हम को लगता है कि उनके रास्ते पर जाना पड़ेगा। चाहे भाषा का मामला हो, चाहे जाति का मामला हो, चाहे फिजूलखर्ची का मामला हो, चाहे समता का मामला हो, हिन्दुस्तान में इन सब मामलों पर उनकी जो देन है उसको हिन्दुस्तान को कभी न कभी अपनाना पड़ेगा इसमें कोई सन्देह नहीं है।

मैं जानता हूं कि आज अगर किसी को सब से बड़ा नुकसान हुआ है तो वह पिछड़े वर्ग के लोगों को, दलित वर्ग के लोगों को हुआ है जिन के वे सबसे बड़े नेता थे, क्योंकि उन्होंने हिन्दुस्तान में इस बात के बारे में सब से बड़ा चिंतन किया था कि सिर्फ समाजवाद की बात करना या सिर्फ समता की बात करना काफी नहीं है, हिन्दुस्तान में यह जातिपांति का एक ऐसा मसला है कि जिस को निर्मूल कर के हिन्दुस्तान में कोई समाजवाद कायम हो सकता है और यह पहली बार उन्होंने हम को सिखाया।

भाषा के मसले में उन्होंने यह चाहा कि हिन्दुस्तान की जो आम जनता है उसकी भाषा में कामकाज हो। उन्होंने यह चाहा कि हिन्दुस्तान के जो शासक हैं, जो सत्ताधारी लोग हैं

उन मुट्ठी भर लोगों के पास यह सारा कामकाज न चला जाये बल्कि हिन्दुस्तान की जो आम जनता है उसकी भाषा में उसके लिये कामकाज हो।

इसी तरह से जो साधारण लोग थे उनके लिये उन्होंने अपने जीवन को अर्पित किया। कभी उन्होंने राजनीति में यह नहीं सोचा कि मुझे क्या फायदा होगा। शायद वे एकमात्र ऐसे व्यक्ति थे। मैं उनको बहुत नजदीक से जानता था जिस के आधार पर मैं यह कह सकता हूं कि चाहे कहीं भी उन्होंने कटु वाक्य किसी के बारे में कहा हो, उनके मन में तो सिर्फ हिन्दुस्तान की भलाई, जनता की भलाई और सारा जो मानव समाज है उसकी भलाई थी। इसी लिये अगर किसी के भ्रष्टाचार के बारे में उन्होंने कभी कुछ कहा या और मसले के बारे में उन्होंने कभी कोई कड़ा वाक्य कहा तो उनका यह विचार था कि इसको इस तरह से रखने से यह सारी बातें जनता के पास पहुंचेगी और एक चिंतन इससे पैदा होगा जिससे लोगों के मन में इसके बारे में एक सोच पैदा हो सकता है। इसलिये उन्होंने हर चीज़ को एक तीखे ढंग से रखने का रास्ता अपनाया।

मैं ज्यादा उनके बारे में यहा पर कहना नहीं चाहूंगा। यह इतिहास ही बतायेगा आगे जा कर के उनके बारे में कि उनका जो चिंतन है वह किस ढंग से हर मसले का हल निकालेगा।

मैं अपनी पार्टी* की ओर से उनको श्रद्धांजलि अर्पित करते हुये इतना ही कहूंगा कि चाहे कोई दल सरकार में आ जाय, आप लोगों से यही प्रार्थना करूंगा कि डा० लोहिया के जो विचार हैं उनको समझने की कोशिश कीजिये क्योंकि हिन्दुस्तान की भलाई आगे चल कर के उनके विचारों पर चल कर के होने वाली है।

—गोरे मुराहरि

स्वर्गीय डा० राममनोहर लोहिया के बारे में मेरी व मेरे दल**की वहीं भावनाएं हैं जो यहां व्यक्त की गई हैं, सभापति महोदय, किसी भी व्यक्ति के बारे में आपके मस्तिष्क में एक छवि बनती है और डा० लोहिया का नाम आते ही हमारे सामने एक ओजस्वी व्यक्ति की छवि ऊभरती है। बल्कि मैं तो इससे भी आगे बढ़कर यह कहना चाहूंगा कि उनकी भारत के राजनैतिक क्षेत्र में परम्पराएं तोड़ने वाले व्यक्ति के रूप में छवि उभरती है। उन्होंने रूढ़िवादिता को कभी सहन नहीं किया। उन्होंने रूढ़ियों, लज्जाजनक चीजों और झूठी शान को कभी बर्दास्त नहीं किया।

हम जानते हैं कि हमारे राजनैतिक जीवन में वह किस कदर व्यक्तिपूजा के खिलाफ

---

*संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी

**भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी)

थे। सभापति महोदय, हमारे राजनैतिक जीवन में ऐसे व्यक्ति की आवश्यकता थी और अभी भी है। महोदय, हम भारतीयों में एक कमी है और वह यह है कि हम महान व्यक्तियों को अवतार बना देते हैं। हमने अपने देश में हर किसी को उसके जीवन काल के दौरान ही अवतार बना देने की यह प्रवृत्ति देखी है। डा॰ राममनोहर लोहिया उन राजनैतिक व्यक्तियों में से एक थे। जिन्होंने व्यक्ति-पूजा को, व्यक्ति को ईश्वर का अवतार मनाए जाने को कभी सहन नहीं किया और इसीलिए हम देखते हैं कि डा॰ राममनोहर लोहिया राजनैतिक जीवन में उन विशिष्ट व्यक्तियों से अक्सर दो-दो हाथ कर लिया करते थे जिनके सामने लोग नत मस्तक होते थे। इसीलिए जब डा॰ राममनोहर लोहिया हमारे बीच रहे उस समय राजनैतिक जीवन में उनका बड़ा योगदान रहा क्योंकि उन्होंने भारतीय राजनीतिक जीवन को उन महान व्यक्तियों को नायक बनाने और उनकी व्यक्ति पूजा करने की प्रवृत्ति से मुक्त करने का प्रयास किया जो कुछ कारणों से उच्च शिखर पर और उच्च औदे पर पहुंचे और महान बन गए।

सभापति महोदय, केवल इतनी ही बात नहीं मैं उन्हें एक महान निर्माता और एक महान संगठनकर्ता के रूप में देखता हूं। हम जानते हैं कि उन्होंने किस तरह संयुक्त समाजवादी ताकतों को परस्पर मिलाया और एक किया। जिसे इन्होंने संयुक्त सोसलिस्ट पार्टी का नाम दिया। जब मैं इसके बारे में सोचता हूं तो मैं एक संयुक्त समाजवादी अभियान अर्थात् भारत के संकटों और परेशानियों को दूर करने की लड़ाई के उनके विचार पर उनको श्रद्धांजलि दिए बिना नहीं रह सकता और यही कारण है कि वह भारतीय राजनीतिक क्षेत्र में संयुक्त वामपंथी आन्दोलन के बड़े प्रशंसक थे। भारत के विभिन्न राज्यों विशेषकर पश्चिम बंगाल और केरल में मंत्रिमंडलों के गठन के संबंध में उनके योगदान के हमें अनेक उदाहरण मिलते हैं। हम देखते हैं कि इन राज्यों को उन परेशानियों से बाहर निकालने के लिए, जिनमें इन्हें स्वतंत्रता के बाद पिछले 20 वर्षों से धकेल दिया गया था, एक संगठित वामपंथी आन्दोलन चल रहा है। इस संयुक्त वामपंथी आन्दोलन की संरचना में डा॰ राम मनोहर लोहिया का भारी योगदान था। सभापति महोदय, इसलिए हम वामपंथी विशेषकर हमारा ग्रुप मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी उनकी स्मृति का आभारी है कि उन्होंने भारत के विभिन्न भागो में मिले-जुले संयुक्त समाजवादी अभियान का मार्ग प्रशस्त किया और हम आशा करते हैं कि राजनीतिक क्षेत्र में उनके उत्तराधिकारी उनके विचारों और संदेश को आगे बढ़ायेंगे।

—ए॰ पी॰ चटर्जी

माननीय सभापति महोदय, मैं आपका आभारी हूं कि आपने इस अवसर पर मुझे कुछ निवेदन करने का मौका दिया। हमारे लिये डा॰ लोहिया के सम्बन्ध में विशेष कुछ कह

सकना, इस अवसर पर, संभव नहीं है। खासकर किसी ऐसे साथी के बारे में जो उम्र में पांच छः वर्ष छोटा हो उसके निधन पर बोलते समय बहुत सी पुरानी बातें याद आती हैं और कुछ इस तरह का दर्द महसूस होता है कि बहुत बोल नहीं सकता, बहुत कह नहीं सकता।

20 वर्षों तक डा० लोहिया और मुझे आपस में बहुत नज़दीक सम्बन्ध रखकर काम करने का मौका मिला, 1934 से 1954 तक। उसके बाद भी मिले, लेकिन इन बीस वर्षों के भले दिनों की, बुरे दिनों की, अच्छे दिनों की खराब दिनों की, याद उन के निधन के बाद बराबर सताती रहती है। जब उनकी चर्चा होती है, जब उनकी याद आती है तो याद आते हैं वे 20 वर्ष जो भले और बुरे, साथ गुजरे। यह दर्द और भी बढ़ जाता है जब ख्याल आता है उस दिन का जब अपनी मृत्यु से कुछ दिन पहले ठीक 13 सितम्बर को वे पटना गए थे, जयप्रकाश नारायण जी से मिलने और बातें करने को। डा० लोहिया ने इस बात पर जोर दिया कि उस बातचीत में मैं भी अवश्य रहूं और पटना स्टेशन पर उतरते ही जब उन्हें यह मालूम हुआ कि मैंने जाने से इनकार कर दिया है तो उन्होंने सन्देशा भिजवाया कि मैं अवश्य आऊं नहीं तो वह स्वयं आएंगे और मुझे लिवा ले जाएंगे। उसके बाद इतने वर्षों के बाद हम तीनों मिले और चार साढ़े-चार घंटे तक साथ रहे। अलग होते समय मैं यह आशा करता था कि इतने समय बाद यह मिलना पहला मिलना नहीं है, हम फिर भी मिलेंगे। मुझे लगता है कि इस तरह का मिलना और हुआ होता और डा० लोहिया बचे होते तो हिन्दुस्तान की राजनीति के लिए भला हुआ होता। वह एक अलग दर्द है।

डा० लोहिया का हमारी राजनीति में एक विशेष स्थान रहा है। जो लोग उनसे सहमत नहीं हों वे भी इस बात से इनकार नहीं कर सकते कि उनके अन्दर कुछ खूबिया ऐसी थीं जो उनकी अपनी थीं। साधारणतः राजनीतिज्ञ एक राजनीतिक क्षितिज में बंध जाते हैं। डा० लोहिया की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि वे उस सीमित क्षितिज से दूर देख सकने की शक्ति रखते थे, उनकी नजर इतनी पैनी थी कि वे तत्काल से ऊपर उठ कर समय और स्थान दोनों से ऊपर उठकर, देख सकने की क्षमता रखते थे। इसलिए बहुत से मामलों में डा० लोहिया ने ऐसी जगह पर अपनी नजर दौड़ाई, ऐसी जगह पर अपनी बुद्धि की रोशनी फैंकी जिसके बारे में साधारणतः राजनीति में दिलचस्पी लेने वाले लोग उदासीन रहते हैं। उन कई मामलों में मुझे उनके साथ काम करने का मौका मिला जिनमें एक है हिमालय के सम्बन्ध का। मुझे नहीं स्मरण है कि हिन्दुस्तान की राजनीति में कोई दूसरा राजनीतिज्ञ था जिसने हिमालय को उस समय उतना महत्व दिया जिस समय डा० लोहिया के कहने पर हम लोगों ने लखनऊ में हिमालयन कांन्फ्रेस बुलाई थी। इसी तरह से और बहुत से मामले थे, गोआ का प्रश्न था, नेपाल का प्रश्न था, दूसरे देशों का प्रश्न

था, जिनकी ओर से हम उदासीन थे लेकिन अपनी राजनीतिक लड़ाई के जमाने में भी डा० लोहिया की दृष्टि अपनी राजनीतिक स्वाधीनता तक ही सीमित नहीं थी और इन प्रश्नों के ऊपर भी—जिनका हमारी उस समय की राजनीति से सीधा सम्बन्ध नहीं था लेकिन भविष्य में हो सकता था—वे नजर दौड़ाते थे, उनकी तरफ ध्यान दिलाते थे।

दूसरी खूबी उनकी रही है उनका दबंगपना। उनकी मौलिकता और स्पष्टवादिता ऐसी चीजें रही हैं जिनको उनके विरोधी लोग भी मानेंगे, इंनकार नहीं करेंगे। यह ठीक है कि बहुत से मामलों में काम करने के तरीकों में हमारा उनसे मतभेद रहा है, लेकिन इस मतभेद के बावजूद जो उनकी खूबियां थीं, हिन्दुस्तान की राजनीति में जो उनका स्थान था उससे न हम इनकार कर सकते हैं, न कोई कर सकता है। इसलिए आज डा० लोहिया के न रहने से पार्लियामेंट का वह कोना ही सूना नहीं हुआ, रकाबगंज का वह मकान ही सूना नहीं हो गया जहां वह रहते थे बल्कि देश की राजनीति का वह स्थान सूना है जो डा० लोहिया के लिए सुरक्षित था और जहां डा० लोहिया थे। सच पूछिए तो जिस आदमी ने देश के लोगों के दिलों में और देश की राजनीति में ऐसा स्थान बनाया, भौतिक दृष्टि से आज उसके लिए कोई स्थान नहीं है, न उसका कोई घर है, न निकट का परिवार है, न उसका कोई उत्तराधिकारी है, न रुपया-पैसा है और न कोई और चीज है। डा० लोहिया के बारे में यह सच बैठता है—

'नास्ति येषां यशःकाये जरामरणजंमयम्। जिनकी यश-काया में जरामरण का भय नहीं है डा० लोहिया उन लोगों में थे और मुझे विश्वास है कि उनका दबंगपना, उनकी मौलिकता, उनकी राष्ट्रीयता और दूसरे गुण हमारे देश में अधिक व्यापक होंगे और उनसे हमारे देश के राजनीतिक कार्यकर्ता लाभ उठायेंगे।

बहुतों को शायद यह पता न हो कि 1942 के आन्दोलन में डा० लोहिया ने काम ही नहीं किया बल्कि उस आन्दोलन के दर्शन को, उसकी पालिसी को रूप देने में बड़ा योग दिया। अहिंसा की जो व्याख्या डा० लोहिया ने की, मेरा ख्याल है, उसका अपना स्थान है राजनीतिक भाषा में, राजनीतिक परिभाषा में, राजनीतिक इतिहास और साहित्य में। ये उनकी विशेषताएं थीं।

मैं यह समझता था कि डा० लोहिया और अधिक दिनों तक बचेंगे और देश की और अधिक सेवा कर सकेंगे, लेकिन यह दुर्भाग्य का विषय है कि मैं उनसे पांच वर्ष बड़ा होकर उनके बारे में, उनके निधन पर शोक प्रगट करने के लिए खड़ा हूं और जो मुझसे पांच वर्ष छोटे थे वे मुझसे पहले जा चुके हैं।

सभापति महोदय, आज इसके लिए मैं आपको धन्यवाद देना चाहता हूं कि आपने इस परम्परा को सुदृढ़ किया कि जो व्यक्ति सदन के सदस्य न हों उनके निधन पर भी सदन

में चर्चा हो। यह परम्परा पहले एक बार कायम हुई थी, पर फिर नजरों से ओझल हो गई थी। आज आपने उसे सुदृढ़ किया, ताजा किया कि जो मान्य व्यक्ति हो— सदन के सदस्य वे न भी हों तो भी उनके निधन के बारे में सदन में चर्चा हो। इसके लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूं।

*** *** ***

... एक साथ अपने इतने साथियों के बारे में शोक मनाने का मौका मेरे रहते राज्यसभा में पहले नहीं आया है, इसलिए राज्यसभा के लिए यह शोक और विशेष दुख का दिन है। इन शब्दों के साथ इन साथियों के प्रति जो आज हमारे बीच में नहीं है, मैं अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता हूं।

—गंगा शरण सिंह

महोदय, मैं डा० लोहिया के प्रति इस सदन के सदस्यों ने जो संवेदनायें और भावनायें अभिव्यक्त की हैं उनमें मैं और मेरा दल भी शरीक है। डा० लोहिया अनेक दिनों तक मृत्यु से लड़ते रहे। उससे यह सिद्ध हो जाता है कि वह एक महान योद्धा थे। वह एक महान स्वतंत्रता सेनानी भी थे। अंग्रेजी शासन के दौरान उन्होंने ब्रिटिश साम्राज्यवादियों के विरुद्ध डटकर संघर्ष किया और 1942 के आन्दोलन में भी उन्होंने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई उस समय उन्होंने युवकों को संगठित किया ताकि हम अपने देश से ब्रिटिश शासन का अंत कर सकें।....उन्होंने देखा कि देश में आर्थिक और सामाजिक विषमता बनी हुई है। वह न केवल आर्थिक बल्कि सामाजिक विषमता को भी समाप्त करना चाहते थे। वह समाज में समानता को बहुत महत्व देते थे। उन्होंने कहा था कि जब तक समाज में असमानता बनी हुई है तब तक आर्थिक और राजनैतिक समानता लाना संभव नहीं है। मैं समझता हूं कि उन्होंने इस बात पर हमेशा जोर दिया कि पददलित लोगों के लिए पददलित लोगों के उन राजनैतिक दलों के अलावा जो उनके लिए संघर्ष कर रही है, उनका ही एक ऐसा दल है जो कि समाज में समानता लाने के लिए संघर्ष कर रहा है और जिसने अपने कार्यक्रमों में समाजिक समानता के आधार पर एक सामाजिक व्यवस्था कायम करने के कार्य को शामिल किया है। यही नहीं, वह जाति प्रथा को भी समाप्त करना चाहते थे। डा० लोहिया ने समानता के आधार पर एक नई सामाजिक व्यवस्था स्थापित करने के लिए हमेशा संघर्ष किया, इसलिए वह इस देश के पददलितों के संरक्षक और मित्र थे। महोदय, वह एक स्पष्ट वक्ता थे और हमेशा सिद्धान्तों के पूजक थे। उन्होंने प्रतिमाओं की कभी पूजा नहीं की और सिद्धान्तों में उनकी गहरी आस्था थी और उन सिद्धान्तों का पालन करते हुए वह यह कभी नहीं सोचते थे कि उन्हें अपनी नीतियों के लिए किसी के क्रोध का भाजन बनना पड़ेगा। इसलिए वह इस देश के बड़े से बड़े नेताओं की आलोचना करने अथवा उन पर प्रहार करने से कभी नहीं घबराते थे। उनको

अनेक बार क्रोध का भाजन बनना पड़ा था। वह इस देश के एक महान सपूत थे और इसलिए मैं अपनी ओर तथा रिपब्लिकन पार्टी ऑफ इंडिया की ओर से उनके प्रति श्रद्धांजली अर्पित करता हूं।

—बी० डी० खोबरागड़े

सभापति महोदय, मैं अपने सहयोगियों की भांति डा० लोहिया के प्रति अपनी विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित करता हूं। डा० लोहिया का व्यक्तित्व एवं कृतित्व हमारे राष्ट्रीय इतिहास और क्रांति का एक हिस्सा था। वह एक अत्यंत साहसी व्यक्ति थे और अपने जीवनकाल के दौरान 18 बार जेल गये। उन्होंने देश में एक सशक्त समाजवादी विचारधारा बनाने में महान योगदान दिया और उनके दृढ़ निश्चय के कारण ही समूचे देश में एक सशक्त समाजवादी विपक्ष उभर सका। महोदय, डा० लोहिया का संसदीय लोकतंत्र में भी महान योगदान रहा और उन्हीं के सक्रिय प्रयासों से देश में एक सक्रिय और सशक्त जनमत बन पाया जोकि लोकतांत्रिक व्यवस्था का एक सारतत्व होता है। उनके निधन से जो स्थान खाली हुआ है उसे भरना मुश्किल है और यह देश हर तरह से उनके एक परिवार की भांति था क्योंकि उनका अपना कोई परिवार नहीं था। यद्यपि वह हमसे बिछुड़ गये हैं उनकी जीवन की ज्योति और उपलब्धियां हमारा तथा भावी पीढ़ियों का हमेशा मार्गदर्शन करती रहेंगी।

—ए० डी० मनी

महोदय, मैं अपने दल फारवर्ड ब्लाक की ओर से डा० राममनोहर लोहिया को श्रद्धांजलि अर्पित करता हूं। डा० लोहिया एक महान देशभक्त और स्वतंत्रता सेनानी थे और हमें 1942 के उस घटनापूर्ण दिनों की याद आती है जब सम्पूर्ण देश अंग्रेजी साम्राज्यवाद को समाप्त करने के लिए उठ खड़ा हुआ था और उस समय डा० राममनोहर लोहिया के नेतृत्व और प्रेरणा से ही देश के युवकों ने संघर्ष किया था क्योंकि उस समय उन्हें संघर्ष के रास्ते पर ले जाने के लिए कांग्रेस का नेतृत्व उपलब्ध नहीं था। वह महान नेता , नेताजी सुभाष चन्द्र बोस की नीतियों और कार्यक्रमों के बड़े प्रशंसक थे। महोदय, वह हमारे देश के एक महान समाजवादी नेता थे। वह समाजवाद की केवल सीख ही नहीं देते थे बल्कि उसे जीवन में उतारना भी चाहते थे। उन्होंने समूचे विश्व में समाजवादी, विचारधारा को नये आयाम दिये और इस देश में उन्होंने समाजवादी लोकतांत्रिक ,

देशभक्त और धर्मनिरपेक्ष ताकतों को एक करने का प्रयास किया और इस देश में एक नयी राजनीतिक व्यवस्था का सूत्रपात करने का प्रयास किया। महोदय, वह एक ऐसे समाजवादी नहीं थे जिनकी गतिविधियां एवं कार्यक्रम केवल इसी देश के लिए हों बल्कि वह एक महान मानवतावादी थे और उन्होंने मानव जाति के लिए नये मूल्यों की स्थापना के लिए चिन्तन किया और इस तरह से उन्होंने मानवीय संस्कृति को समृद्ध किया। उनका इस देश में समाजवादी कार्यक्रमों के संदर्भ में मौलिक चिन्तन रहा है। यह एक महान राष्ट्रवादी, देशभक्त और समाजवादी थे। हमारा देश और इस देश की युवा पीढ़ी यदि उनके बताये रास्ते का अनुसरण करेगी तो बहुत अच्छा रहेगा।

इन शब्दों के साथ में डा० राममनोहर लोहिया को अपनी विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित करता हूं।

—चित्त बसु

चेयरमेन साहब, डाक्टर राममनोहर लोहिया की बे वक्त मौत से मुझे और मेरी अकाली पार्टी को इन्तहाई दुःख हुआ है। उनका इस वक्त हम को छोड़ जाना बाइसे अफसोस है। वह हमारी अपोजीशन के रहबर थे। जहां वह शेर-दिल लीडर थे वह हर बेइंसाफी से टक्कर लिया करते थे, गरीबों की खातिर और किसी पर हुई बेइन्साफी की खातिर टक्कर लेते थे। वहां अपोजीशन को लीड भी दिया करते थे। इसलिए हम एक बहुत अच्छे दोस्त से महरूम हो गए हैं।

मुझे उनकी एक बात याद है। जब वह बिस्तरे-मर्ग पर पड़े थे तो उन्होंने यह लफ्ज कहे थे कि काश-जितनी मेरी तवज्जो डाक्टर्स कर रहे हैं आखिरी दिनों में इतनी हर गरीब की हिन्दुस्तान में हो तो मैं समझूंगा असली खुशी उस वक्त मुझ को होगी। इन अल्फ़ाज के पीछे उन का अक़ीदा था, उन के जज़बात थे, उनकी सचाई थी, जो कि गरीबों के लिए थी कि आखिरी दिनों में अपने बिस्तरे-मर्ग पर पड़े हुए जब उनको तकलीफ थी, बेचैनी थी, उस वक्त भी वह उनको नहीं भूले। यह उन्होंने अपनी एक मिसाल छोड़ी है कि जिन्दा रहते हुए भी और आखिरी दिनों तक उनके दिल में यह ख्याल था।

मैं ज्यादा तफ़सील में न जाते हुए उनके दोस्तों से और सब से, गहरी हमदर्दी का इज़हार करता हूं और अपनी तरफ़ से और अकाली पार्टी की तरफ से उन्हें श्रद्धांजलि पेश करता हूं।

—नरेन्दर सिंह बरार

श्रीमन् आज डाक्टर लोहिया के निधन पर इस सदन में जो भाव व्यक्त किये गये हैं मैं उनके साथ हूं।

24 सितम्बर को उन्होंने खान अब्दुल गफ्फार खां को एक तार दिया। उसके कुछ दिन पहले से ही कहा करते थे कि ऐसा लगता है कि हमारे देश पर चीन और पाकिस्तान का मिलाजुला हमला होगा, खान अब्दुल गफ्फार खां से मिलो। 24 तारीख को उन्होंने अपने हाथ से तार लिखा कि राजनारायण 30 तारीख को हमारी मुहब्बत को साथ ले कर आपसे मिलने जा रहा है, पूरी बात करें। मैं जानता नहीं था कि 30 तारीख हमारे लिये ऐसी होगी। 30 तारीख को मैं अस्पताल में जिस कमरे में वह थे सुबह नौ बजे गया, हमने कहा कि डाक्टर साहब आपका आपरेशन होने वाला है और आप हमको अफगानिस्तान भेज रहे हैं। उन्होंने कहा तुम जाओ, दो चार दिन में हम चले आयेंगे घर, एक काम करना कि अपने दिमाग पर सेंस रखना, जो बादशाह खां से बात हो सब को अखबारों में दे मत देना, और जो लोग वहां थे उनसे कहा कि इसको निकालो जल्दी नहीं तो नहीं जायेगा। जाते समय डाक्टर लाल हम से मिले, हमने कहा कि डाक्टर साहब हम तो जा रहे हैं लेकिन हमको खबर देना। 30 तारीख को हमारे पास तार गया कि आपरेशन बहुत ही कुशलता के साथ सम्पन्न हुआ। फिर पहली अक्टूबर को तार किया कि उतनी संतोषजनक नहीं है। 2 अक्टूबर को जब मैं बादशाह खान से मिलने के लिये जाने ही वाला था, क्योंकि वे काबूल में नहीं थे, वे कहीं बाहर दौरे पर चले गये थे, मगर उनका टेलीफोन आ चुका था कि राजनारायण आने वाले हैं, फलां जगह उनको भिजवाने की व्यवस्था होनी चाहिये। तब तक जनरल थापर का जो वहां पर इस समय अम्बेसेडर हैं, टेलीफोन आया बृजकुमार के पास जो डिपुटी अम्बेसेडर हैं कि दिल्ली से अभी-अभी टेलीफोन मिला है कि डा० लोहिया की हालत बहुत ही खराब हो रही है और राजनारायण को लोग दिल्ली बुला रहे हैं। हमने कहा: अब मैं कैसे जाऊं? खैर एरियाना का जहाज़ आ रहा था, एक आधा घंटा लेट हुआ और मैं 2 तारीख को यहां पहुंच गया। काबुल से ही हमने प्रधान मंत्री को टेलीफोन किया, ट्रंककाल किया, नहीं मिल पायीं; राष्ट्रपति को भी किया,। फिर हमने ब्रिगेडियर लाल को किया, ब्रिगेडियर लाल मिल गये। उन्होंने हमको जरूर कहा: हां, हालत अब खराब हो चुकी है, कल तक ठीक थी, मगर आज न जाने हालत कैसे एकाएक बिगड़ गई। 2 ता० को जब मैं आया सीधे वहीं गया। ऐसा लगता है डाक्टर साहब को कुछ चेतना थी क्योंकि हमारी बात सुनकर उन्होंने कहा: तुम आ गए। हमने कहा : जी आ गए। "सब काम पूरा करके आये हो" "जी हां पूरा करके आया हूं" हमने कहा जब आपकी तबीयत ठीक हो जायेगी तो बताऊंगा। वह जो 2 तारीख से लेकर 12 तारीख तक, जब लोहिया जी बीमार थे, उनके पास रात दिन चौबीस घंटे रहने का समय हमको मिला। हमको तो नींद नहीं आती थी। हमको लगता है जैसे

वे पड़े हैं और मैं उनके मस्तक पर यूं हाथ रख कर पड़ा हूं: ऐसा लगता है कि जैसे कोई खजाना, निधि, हमारे सामने पड़ी हो और कोई उस निधि को उठा लेना चाहता हो, हम सतत प्रयत्न कर रहे हों कि रोके और अंततोगत्वा रोक न पाए हों। 11 तारीख की रात में एकाएक, करीब 10½, 11 बजे रात चला आता था, स्नान करके फिर जाता था, क्योंकि रात भर फिर जागना पड़ता था जैसे ही गए 95 साउथ एवेन्यू में एकाएक टेलीफोन आया "चले आईये"। हमने कहा, अभी तो हम बहुत अच्छे छोड़ कर आए हैं। काशी विश्वविद्यालय के डा॰ उडप्पा ने कहा आप आइये। "ठीक है, अभी तो मैं आया हूं, अभी इतनी जल्दी बुला रहे हो, नहाया नहीं।" फिर कहा गया "जल्दी चले आइये"। हम जल्दी चले गये। जब मैं वहां जाता हूं, स्थिति विचित्र थी, दो आदमी "जर्क" कर रहे थे सीने पर , फिर बिजली का शाक दिया गया, फिर कार्डियोग्राम हुआ, करीब आप समझ लीजिए 20 मिनट तक हम लोहिया जी के मस्तक पर हाथ रख कर, खड़े थे ब्रिगेडियर लाल हमारे कंधे पर हाथ रख कर कहते हैं: "राजनारायण जी, लोहिया को हम बचा नहीं पाये"। हमने कहा: "क्या कहा? चले गए"। "सही है?" "हां सही है"। फिर रो पड़े। हमारा तो विश्वास उठ गया है डाक्टरों पर से। उस प्रसंग में तो मैं बाद में जाऊंगा । मगर मैं आपका बहुत ही अनुगृहीत हूं कि आपने इस अवसर पर मुझ को भी बोलने का मौका दिया कि मैं भी अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करूं।

मैं ऐसा समझता हूं कि डा॰ लोहिया को उनके जीवन काल में ठीक से समझा नहीं गया और वह कहा भी करते थे। एक मर्तबा मुझसे बातचीत करते करते कहे कि देखो मानसिंह की इज्जत उसके जीवन काल तक थी मगर राणा प्रताप की इज्जत उनके मरने के बाद भी रही। मैं समझ नहीं पाता था कि ऐसा होने वाला है। दो महीने पहले वे वाराणसी गये थे, तीन चार दिन वहां थे। और जब वाराणसी जाते थे तो सारनाथ भी जाते थे। सारनाथ से जब समय बचता तो बजरे पर गंगा के बीच में होकर जाते थे और वह बजरा मणिकर्णिका घाट के समीप खड़ा होता था। 9 बजे हम लोग चले गये बजरे पर। मणिकर्णिका काशी में वह स्थान है जहां पर मुर्दे जलाये जाते हैं। मुर्दा आता था, जलाया जाता था। एक मुर्दा ऐसा था जो कि अच्छी तरह से जला नही था, उसको यूं ही बहाया गया। लोहिया जी ने कहा ऐसा लगता है कि बहुत गरीब घर का मुर्दा है, लकड़ी तक उसको जलाने के लिये नहीं मिली। तो कहा जब विज्ञान इतनी विकसित हो चुका है और बिजली से जलाने की व्यवस्था है तो वह क्यों नहीं इस्तेमाल करते, इसका क्यों नहीं प्रचार करते हैं, क्यों ऐसे मुर्दे आते हैं। फिर एक मुर्दा ऐसा आया जिसके ऊपर कनिस्तर से घी छोड़ा जा रहा था। "देखो देखो, वह धनी घर का है, इस पर तो घी भी डाला जा रहा है, ऐसा लगता है चंदन की लकड़ी भी चिता पर

।

लगी होगी।" फिर कई सवाल तुम्हारे घरों के मुर्दे कहा जलाये जाते है फ़िर जब साढ़े 3 बजे, भोर हुई, तो हमने कहा डाक्टर साहब जरा सोइये भी नहीं तो आपकी तबीयत खराब हो जायेगी।

डा० लोहिया एक महान दार्शनिक थे। मैं चाहूंगा कि हमारा देश डा० लोहिया के दर्शन को भी थोड़ा पढ़े। हम साधारण तौर से दर्शन के विद्यार्थी भी है। सांख्य ने श्रीमन, केवल दो की कल्पना की है : पुरुष और प्रकृति। सांख्य दर्शन जो भारत वर्ष का सबसे विकसित दर्शन माना जाता है कहता है कि पुरुष तो केवल दृष्टा है प्रकृति नटी न्नटय करती है, सब कार्य करती है प्रकृति, मगर पुरुष दृष्टा मात्र है, देखा करता है, करता कुछ नहीं है। कार्ल मार्क्स ने सारे दर्शन को डाएलेक्टिक्स में लिया द्वंद्व वाद में लिया इवोल्यूशन रिवाल्यूशन विकास और गुण। गुणात्मक परिवर्तन को उन्होंने क्रांति कहा और मात्रा भेद को विकास कहा। मात्रा भेद और गुण भेद। मात्रा भेद को बढ़ाती जाओ, बढ़ाते जाओ एकाएक गुणभेद हो जाता है। विकास और क्रांति के रूप में मार्क्स ने विश्व मानव समाज को देखा। गांधी साहित्य को भी जो लोग पढ़े होंगे, हृदयंगम किये होंगे, उन्होंने समझा होगा कि समाज के दो ही अटल सिद्धांत गांधी जी मानते थे : विकास और मृत्यु। विकास होता है, मृत्यु होती है, वही अटल सिंद्धांत है। डा० लोहिया ने अपने दर्शन को अनंत और प्रवाह का रूप दिया। डा० लोहिया ने कहा दो ही सत्य हैं : एक अनंत है, एक प्रवाह है। तो हमने देखा कि शब्दों के भेद से, युग के भेद से और विज्ञान के विकास के भेद से इन महापुरुषों ने करीब करीब एक प्रकार के दर्शन को रचा।

श्रीमन् डा० लोहिया के "व्हील आफ हिस्ट्री" को मैं चाहूंगा कि आज हमारा देश अच्छी तरह से पढ़े। डा० लोहिया ने उसमें क्लास और कास्ट, वर्ग और वर्ण, का बड़ा सुन्दर निरुपण किया है। उन्होंने कहा है ये स्थितियां हैं : एक स्थिति में क्लास यानी वर्ग वर्ण हो जाता है "कास्ट" हो जाता है और एक स्थिति में कास्ट ही वर्ण ही, क्लास हो जाता है, यानी वर्ग हो जाता है। यानी उनका, कहना है कि जब तक मोबाइल कास्ट है, यानी गतिशील गतिमान जाति जो है, गतिमान वर्ण जो है, वही वर्ग है और गति विहीन जो वर्ग है वह वर्ण है, यानी मोबाइल कास्ट क्लास है और इम्मोबाइल क्लास कास्ट है क्या ही सुन्दर विवेचन है जो कि हमने देखा। कितना बड़ा दार्शनिक था जिसने इतनी बड़ी खूबी के साथ कार्ल मार्क्स और भारतीय समाजवाद को एक विश्व समाजवाद की संज्ञा दी, एक विश्व समाजवाद की मूर्ति खड़ी कर दी। इसलिये जब कि शेरघाटी सम्मेलन में या वाराणसी सम्मेलन में संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी से, उस समय यह समाजवादी पार्टी सोशलिस्ट पार्टी थी, डा० लोहिया ने आग्रह किया कि तुमको अपने विधान में पिछड़े लोगों को साठ प्रतिशत स्थान की व्यवस्था करनी

होगी क्योंकि जब तुम कहते हो वर्गविहीन हो तो वर्ग विहीन वर्णविहीन हुए बिना कैसे हो सकते हैं, इसलिये वर्ग विहीन और वर्ण विहीन "क्लासलेस एन्ड कास्टलेस" जब तक कि इन दोनों समाजों की रचना नहीं होती है तब तक सच्चा समाजवाद नहीं होता। क्यों कि वर्ग ही वर्ण हो जाता है और वर्ण ही वर्ग हो जाता है। इसके माने अंग्रेजी में लेने चाहिए। "मोबाइल कास्ट इज़ क्लास, मोबाइल क्लास इज़ कास्ट"। इसी तरह से श्रीमन्, आप देखेंगे कि पूरा विवेचन हुआ। हमारे दिमाग में एक गुत्थी थी जब गांधी जी को अच्छी तरह से अध्ययन करने की कोशिश की एक विद्यार्थी की हैसियत से क्योंकि अपने को एक होबी रही है। गांधी जी ने भी धर्म और राजनीति में वैसा अलगाव नहीं किया जैसा कि तमाम लोग मानते हैं। अगर गांधी साहित्य को पढ़ा जाय तो स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद जब गांधी जी से लोगों ने पूछा कि बापू अब आप को राजनीति से संन्यास ले लेना चाहिये। तो गांधी जी ने कहा कि अभी तो मौका है राजनीति में काम करने का। अब तो हमको जमकर काम करना है, देश को बनाना है और अलग होने की बात तो व्यर्थ है। और जब मैं यह समझ लूं कि राजनीति तो लफंगों का पेशा है, जैसा कि कुछ लोग कहा करते हैं कि पोलिटिक्स तो वैगावाउन्डों का गेम है, तो मैं राजनीति में क्यों रहूंगा। लोहिया जी कहा करते थे कि राजनीति और धर्म का समन्वय है। तात्कालिक धर्म राजनीति है और दीर्घकालीन राजनीति धर्म है। जो लम्बी उड़ान ज्यादा बड़े पैमाने की राजनीति होगी, वह धर्म है और जो अल्पकालीन धर्म है वह राजनीति है। आपने मुझे यहां पर बोलने की आज्ञा दी है और मैं खड़े होकर बोल रहा हूं और इस तरह से अपने धर्म का पालन कर रहा हूं और यह राजनीति है कि आज मैं राज्यसभा में बोल रहा हूं। इस तरह से वह अल्पकालीन और दीर्घकालीन की बात कहा करते थे।

इसी तरह से वे कहा करते थे पालिसी और प्रोग्राम के बारे में। वे कहा करते थे कि 'लौंग रेंज प्रोग्राम इज़ दी पालिसी, शार्ट रेंज पालिसी इज़ प्रोग्राम।" जो लोग अक्सर यह कहा करते थे कि पालिसी और प्रोग्राम में बड़ा फर्क है, तो यह तो कहने के लिए है। डा० लोहिया बराबर यह कहा करते थे कि कथनी और करनी में एकता होनी चाहिये। जब तक कथनी और करनी में एकता नहीं होगी तब तक न तो देश बन सकता है, न व्यक्ति बन सकता है, न समाज बन सकता है और न ही विश्व बन सकता है। इसलिए कथनी और करनी में एकता करो।

इसी तरह से श्रीमन्, मैं कहना चाहता हूं कि जहां मैं डा० लोहिया को एक दार्शनिक पाता हूं वहां डा० लोहिया को एक उच्चकोटि का अर्थशास्त्री भी पाता हूं। "इकोनौमिक्स आफ्टर मार्क्स" यह डा० लोहिया की एक छोटी सी किताब है जिसको 1942 की क्रान्ति में डा० लोहिया ने तूफानी समय में लिखा था। इस किताब को युसुफ मेहरअली ने बाद में प्रकाशित किया था और इधर उधर की तमाम चीजों को उसमें जुटा दिया था और उन्होंने बड़ी खूबी के साथ उसमें सरपलस वैल्यू की परिभाषा की थी। कितनी खूबी के साथ डा० लोहिया ने कहा कि अमेरिका के तीन मिनट, रूस के 6 मिनट, चीन के 40

मिनट और भारत के 60 मिनट समान उत्पादन कर रहे है। वर्कर्स आफ दि वर्ल्ड युनाइट क्या भारतवर्ष के मजदूर मजदूर नहीं है क्या रूस के मजदूर भारतवर्ष के मजदूरों से भिन्न है? क्या उसको ज्यादा चाहिये और यहाँ के लोगों को कम चाहिये। क्या अमेरिका और ब्रिटेन के मजदूरों में कोई खास खासियत है कि उनको ज्यादा चाहिये और भारत के मजदूरों को नहीं चाहिये। लैनिन ने लिखा "इम्पीरियलिज्म इज़ दी लास्ट फेज आफ कैपटिलिज्म"। साम्राज्यवाद पूंजीवाद का अंतिम चरण है। डा० लोहिया ने लिखा है नहीं है। साम्राज्यवाद और पूंजीवाद दोनों ट्विन हैं, दोनों जुड़वा बच्चे हैं। अगर भारतवर्ष ब्रिटेन का उपनिवेश न हुआ होता, तो ब्रिटेन में पूंजीवाद उस चरमसीमा तक विकसित न हुआ होता। भारतवर्ष के मजदूरों के शोषण से ब्रिटेन का पूंजीवाद विकसित हुआ। इसीलिए सरपलस वेल्यू थ्योरी के बारे में फिर से सोचना पड़ेगा। सरप्लस लेबर क्रिएटस् सरप्लस वैल्यू। अतिरिक्त श्रम ही अतिरिक्त अर्घ्य पैदा करता है। इसलिए डा० लोहिया जी ने कहा था कि इसके बारे में विश्व का पूंजी लो, विश्व का श्रमिक लो और फिर दोनों को बांटो। एक पर जितना पड़ता है और उससे ज्यादा जो लेता है वह उतना ही बड़ा शोषक है। अगर सारे विश्व को एक यूनिट मानोगे तो काम चलेगा। मानवता का बंटवारा मत करो। इस तरह से उन्होंने एक शुद्ध विश्व बन्धुत्व का पाठ पढ़ाया था और इस तरह से एक अन्तर्राष्ट्रीय बन्धुत्व का पाठ डा० लोहिया जी ने पढ़ाया था।

श्रीमन्, मैं डा० लोहिया जी को एक प्रगतिशील, शुद्ध और सच्चा राष्ट्रभक्त मानता हूं। अगर उन्हें गहराई से देखा जाये और उनकी बातों का मान किया जाये, तो आपको मालूम होगा कि जिन सात तथ्यों को लन्दन के पत्रकार सम्मेलन में 1949 में उन्होंने कहा था, गंगाबाबू ने बहुत सही बात कही है कि जब तिब्बत का मसला उठा था, तो उन्होंने कैलाश, मानसरोवर और मेकमोहम रेखा की बात भी कही थी। डा० लोहिया जी ने कहा था कि एक मुल्क दूसरे मुल्क के नजदीक है, इन शर्तों पर उसे आंका जाये। उसकी शर्त है भाषा, उसकी शर्त है लिपि, उसकी शर्त है रहन-सहन, उसकी शर्त है धर्म, संस्कृति, जनता की इच्छा और पानी का ढलाव। इन सात शर्तों को डा० लोहिया ने दुनिया के सभ्य जगत के सामने रखा था और कहा था कि ऐसी स्थिति पैदा की जानी चाहिये, जिससे यह मालूम हो सके कि भारत की सीमा कहां पर हों, क्योंकि भारत का हक छीना जा रहा है।

इसी तरह से, श्रीमन्, आप यह देखेंगे कि डा० लोहिया जी जहां इस प्रकार एक दार्शनिक थे, उसी तरह से उन्होंने अपने दर्शन को किस सुन्दर तरीके से बढ़ाया और एक अच्छे नारे में बांध दिया था। जब देश में चारों तरफ हड़ताल की धमकी दी जा रही है, मंहगाई भत्ता तथा तनख्वाह बढ़ाने की बात की जा रही थी, तब डा० लोहिया जी ने कहा कि मंहगाई भत्ता और तनख्वाह बढ़ाने की बात तो सब करते हैं, लेकिन जब तक दाम के संबंध में कोई बांधने की योजना नहीं होगी, तब तक कोई काम नहीं चल सकता है। इसीलिए उन्होंने एक फार्मूला पेश किया कि दाम बांध दिये जायें प्राइस फिक्स कर दी जाये। जीवन की जो जरूरी चीजें हैं, उनके पैदा होने में जितनी लागत लगती है

उद्योगधन्धों में उनकी डरोठी के अन्दर बिक्री की व्यवस्था हो। 50 प्रतिशत से ज्यादा टैक्स और मुनाफ़ा सरकार न ले। अगर इस तरह की व्यवस्था की जायेगी तब जाकर मंहगाई, तनख्वाह और सैलरी के संबंध में जो रोज़ाना संघर्ष चलता है, उससे बचा जायेगा। जब तक दाम नहीं बांधे जायेंगे, तब तक यह सवाल उठता ही रहेगा।

इसी तरह से श्रीमन्, आप देखेंगे कि उन्होंने जात के बन्धन को तोड़ा। 17 तारीख के दिन मोरारजी भाई सारनाथ गये थे, जहां बौद्ध विश्वविद्यालय खोलने की चर्चा चली थी। डा० लोहिया जी ने खोजा और खोज कर निकाला कि हमारा दर्शन समान प्रसवात्मिका जाति की व्यवस्था करता है। प्राचीनकाल से जिनकी जननक्रिया समान है, जिनकी उपज समान है, जो अपने समान को पैदा करे, उनकी जात एक है। मनुष्य मनुष्य को पैदा करता है, इसलिए मनुष्य की जात एक है। इसलिए कहां हरिजन है और कहां शूद्र है?

डा० लोहिया जी कहा करते थे और श्री जगजीवनराम जी अच्छी तरह से जानते हैं कि समाज की रेखा पड़ी रखो। समाज की रेखा खड़ी नहीं रहनी चाहिये, अगर खड़ी रहेगी, तो उसमें ऊंच नीच रहेगा। अगर वह रेखा पड़ी रहेगी, तो समाज रहेगा, इसीलिए समाज की रेखा पड़ी रहनी चाहिये, खड़ी नहीं रहनी चाहिए। इसलिए चमार अपना चमारपन छोड़ेगा, ब्राह्मण अपना ब्राह्मणपन छोड़ेगा और ठाकुर अपनी ठकुराई छोड़ेगा। इस तरह से हमारे देश में एक सुन्दर मानव समाज बनेगा और इस तरह से काम बनेगा। आज भारतवर्ष के समाजवाद या जनतंत्र में सबसे बड़ी बाधा जात की है। जो जितना ही पिछड़ा हुआ है, उतना ही उसको विशेष अवसर मिलना चाहिए। मानव समाज के बारे में बारीकी से डा० लोहिया जी ने अध्ययन किया। उन्होंने भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति के बारे में इन पिछले वर्षों में बहुत गहराई से अध्ययन किया था। उन्होंने कहा था चलो बद्रीनाथ चलें और देखें कि वहां पर क्या होता है क्योंकि लोग दर्शन करने जाते हैं और दर्शन करके लौट आते हैं और इससे कुछ पता नहीं चलता है। बद्रीनाथ की मूर्ति देखनी हो तो जब फूल माला और कपड़ा उतार दिया जाये तब बद्रीनाथ के दर्शन होने चाहिए। तो वहां के रावल से हमने व्यवस्था कराई। रात के जब 12 बजते हैं, तो उनके फूल उतारते हैं, उनके कपड़े उतारते हैं। जब कपड़े उतारे तो सारी की सारी जो उनकी मूर्ति थी वह स्पष्ट हुई। डा० लोहिया ने कहा कि देखो, उनकी मूर्ति में, शिव की मूर्ति में और विष्णु की मूर्ति में कौन कौन और क्या क्या फर्क है। वे इस गहराई से हर बात में जाते थे।

सन् 1952 का चुनाव बीत गया, तो डा० लोहिया ने कहा कि इस कारण को ढूंढो, 15 दिन तक कैम्प चला कि क्या कारण है कि कांग्रेस के बाद राम के प्रभाव क्षेत्र में सोशलिस्ट पार्टी आई, शिव के प्रभारित क्षेत्र में कम्युनिस्ट पार्टी आई और कृष्ण के प्रभावित क्षेत्र में रामराज्य परिषद्, हिन्दू महासभा और जनसंघ आई। उन्होंने एक समस्या छोड़ दी कि इसका कारण क्या है।

*** *** ***

.....डा० लोहिया के निधन होने पर उनको जलाया जाये या उनकी लाश को जैसे एक आध बार उन्होंने कहा था कि लखनऊ मेडिकल कालेज को दे दिया जाये या जैसा अन्त में उन्होंने कहा था कि जब बिजली से जलाने की व्यवस्था हो गई है, तो बिजली से जलाया जाये या क्या हो, इस पर काफी विवाद चल गया और अन्त में इसका फैसला लेना ही पड़ा कि ठीक है, जब डा० लोहिया ने बिजली से जलाने की बात कही थी, तो उनको बिजली से जलाया जाना चाहिये जिसमें कम से कम खर्च हो। ये सब चीजें हैं, जिनको हमको अपने आचरण में बरतना पड़ेगा। यह बुद्ध ने कहा है कि बुद्धि और आचरण का मेल हो, जहां बुद्धि और आचरण का मेल नहीं होगा, वहां आचरण भ्रष्ट होगा और बुद्धि छलनी हो जायेगी।........

*** *** ***

एकाएक डा० लोहिया ने अंग्रेजी हटाओ आन्दोलन नहीं प्रारम्भ कर दिया। डा० लोहिया वैज्ञानिक दृष्टि से समझते थे कि लोकतंत्र की स्थापना के लिये लोक भाषाओं की आवश्यकता है, इसलिये लोक भाषा होनी चाहिये। जो भी लोक भाषा हो, उसमें बहस करो। अंग्रेजी लोकभाषा नहीं है। डा० लोहिया ने हिमाचल बचाओ, डा० लोहिया ने भारत पाक एक करो, डा० लोहिया ने एक घंटा देश को दो, ये तमाम आन्दोलन चलाये। कौन सा ऐसा आन्दोलन है, जो राष्ट्रीय हित से, मानव हित से, विश्व के हित से, जो डा० लोहिया के द्वारा चलाया गया है, आवश्यक नहीं है।

इसलिये श्रीमन् पूरी बात कहने के पहले गांधी जी की कुछ भावनाओं को मैं कह देना चाहता हूं। 1940 में जब डा० लोहिया सुल्तानपुर में गिरफ्तार हुये और तीन साल की डा० लोहिया को सज़ा हुई, तो महात्मा गांधी ने अपना भाव व्यक्त किया था कि डा० लोहिया से बढ़ कर सीधा चलने वाला और बहादुर आदमी आज तक मैंने किसी दूसरे को जाना नहीं। दूसरा वाक्य उन्होंने यह जोड़ा कि जब तक डा० लोहिया जेल में है, मैं बाहर शांति से नहीं बैठूंगा। उन्होंने अंग्रेजी में "हरिजन" में यह लिखा था :

"I cannot sit still while I see Dr. Lohia in prison."

डा० लोहिया जब गोवा में गिरफ्तार हुये, तब गांधी जी ने कहा था कि अगर डा० लोहिया की गिरफ्तारी के विरोध में भारत की सरकार चुप है, तो मुझे अकेले कदम उठाना पड़ेगा। यह 19 जून, 1946 की बात है। इसी तरह से गांधी जी ने एक चिट्ठी लिखी, जिसमें उन्होंने लिखा है कि डा० लोहिया बहादुर हैं, मगर बहादुर तो शेर भी होता है डा० लोहिया विद्वान हैं, मगर विद्वान तो वकील भी होता है, इन सबसे परे जो गुण डा० लोहिया का है, वह है उनकी कांसिस्टेंसी (शालीनता)।

श्रीमन् मैं आज यहां आने के पूर्व 1938 की लिखी हुई उनकी तीन किताबें पढ़ रहा था, जिसमें जवाहरलाल जी की भूमिका लिखी हुई है "भारत की विदेश नीति" "भारत और चीन का सम्बन्ध" और "भारत की विदेश नीति क्या हो" और उनको पढ़ कर मुझे कितनी खुशी हुई, मैं कह नहीं सकता। जवाहरलाल जी ने लिखा है कि डा० राममनोहर

लोहिया द्वारा जो लिखी हुई पुस्तक है विदेशी नीति के सम्बन्ध में, यह हमारे देश के लोगों के लिये बहुत ही उपयोगी सिद्ध होगी, बहुत से लोग इस राय के होंगे और लोगों को इसका अध्ययन करना चाहिये।

मैं जानता हूं कि डा० लोहिया जहां दर्शन के मुताबिक सिद्धांत का कार्यक्रम बनाते थे, जहां उनकी एक आंख में शोषित पीड़ित मानवता के लिये दया के आंसू थे, वहां उनकी दूसरी आंख में अन्यायी और ज़ालिम के लिये क्रोध भी था। जो अन्यायी होता था, ज़ालिम होता था, शोषक होता था, उसके प्रति उनकी आंख क्रोध से लाल हो उठती थी, इसलिये उन्होंने कहा था कि तेजस्विता को, समाज के उठाने वालों को कभी छोड़ना नहीं चाहिये, तेजस्विता को लेकर के चलना चाहिये।

हमें बड़ी खुशी हुई जब 12 तारीख को वाराणसी में गांधी स्मारक निधि के एक प्रवक्ता बोलने लगे कि डा० लोहिया ने अपने जीवन के अंतिम दिनों में गांधी जी के बारे में एक लेख लिखा है, जिसमें उन्होंने गांधी जी के कुछ दोष गिनाये हैं। वे उनके अंतिम लेख हैं। उन्होंने कहा कि उन्हें बताया गया कि विनोबा जी ने कहा है कि गांधी जी के बारे में डा० लोहिया ने जो लिखा है, उससे मैं शत प्रतिशत सहमत हूं। गांधी जी ने भारत के बटवारे के समय सत्य निष्ठा के ऊपर व्यक्ति निष्ठा को ला दिया, ये विनोबा जी के शब्द हैं।

मैं सदन का ज्यादा समय नहीं लेना चाहता। आपकी जो व्यवस्था हुई है, सदन के सभी दल के नेताओं के लिये उस व्यवस्था को हमने नतमस्तक हो कर के माना है। इसलिये मैं आपसे जरूर चाहूंगा कि आप हम लोगों की यह भावना अपने पास रखें, देश के पास भेजें, दुनियां के पास भेजें। डा० लोहिया का कोई अपना परिवार नहीं है। जब हमारे राष्ट्रपति डा० ज़ाकिर हुसैन अंतिम दिनों में उनको देखने गये, तो बाहर निकल कर के उन्होंने पूछा कि डा० लोहिया के रिश्तेदारों को क्या खबर दे दी गई है। उनके सम्बन्धियों को जानकारी दे दी गई है, उस पर मैं अपने आंसू नहीं रोक पाया। हमने कहा कि डा० लोहिया के रिश्तेदार कौन हैं, हमीं लोग तो हैं लायक हों, नालायक हों, चाहे जो हों, हमीं लोग हैं। आप जानते हैं कि डा० लोहिया का सीधा न तो इस समय उनका कोई भाई है, न तो उनकी कोई बहन है, औरत और बच्चे का तो कोई प्रश्न ही नहीं उठता। उनके पिता हीरा लाल जी थे और उनका पहले ही निधन हो चुका था।

तो डा० लोहिया ने भारतीय दर्शन का अध्ययन किया, पश्चिमी दर्शनों का अध्ययन किया, अर्थशास्त्र का अध्ययन किया, मनुष्य और मनुष्यता और मानव और मानवता का उन्होंने विभेद किया। उन्होंने कहा कि केवल मानवता का प्रेमी जो है, वह मानव का प्रेमी नहीं भी हो सकता, मगर मानव का प्रेमी जो होगा वह मानवता का प्रेमी होगा ही, ऐसा हम लोगों से उन्होंने कहा, "राजनारायण, केवल मानवता का प्रेमी मत बनना। मानवता कराह रही है। मानवता कांप रही है, रूदन कर रही है, यह कहने वाले तो मिलेंगे मगर

उन्हीं की नाक और आंख के नीचे मनुष्य मरता भी रहेगा, लेकिन वे बोलेंगे नहीं।" इसलिये मानव और मानवता, मनुष्य और मनुष्यता का क्या भेद है, इस सबको डा० लोहिया ने समझाया और अपने आचरण में उतारा।......

इन शब्दों के साथ मैं अपनी श्रद्धांजलि आपके द्वारा सारे विश्व की शोषित पीड़ित जनता को भेजना चाहता हूं। आज डा० लोहिया नहीं रहे, मगर इतना ज़रूर कह देना चाहता हूं कि डा० लोहिया ने विचार का, कार्यक्रमों का जो खज़ाना हम लोगों के सामने छोड़ रखा है, वह बहुत वर्षों तक हमारे लिये काफी है। यह सही है कि संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी सीधे सीधे चोटिल हुई है, डा० लोहिया के निधन से। यह भी सही है कि डा० लोहिया ने जो कार्यक्रमों का खज़ाना छोड़ा है, वह संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी के लिए इतना प्रकाश और मार्ग दर्शन देता रहेगा कि उससे हमारे लिए कोई बड़ी पेचीदगी नहीं पैदा होगी। हम सशरीर डा० लोहिया को नहीं पा रहे हैं, मगर डा० लोहिया के विचारों को, उनके कार्यक्रमों को बराबर अपने सामने देख रहे हैं और उनको लेकर चलते रहेंगे चाहे पूंजीवादी अखबार हमारे में फूट, हमारे में द्रोह, हमारे में कुढ़न पैदा करने की कितनी ही कोशिश करें। संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी एक प्रगतिशील, क्रान्तिकारी, परिवर्तनवादी, प्रखर राष्ट्रीयता को लेकर समाजवाद को लेकर, जनतंत्र को लेकर चलती रहेगी, डा० लोहिया ने जो मशाल जलाई है हम उसको बुझने नहीं देंगे अन्त तक, हम सच्ची मानवता को प्रतिष्ठित करके, समाजवाद को प्रतिष्ठित करके दम लेंगे। इन्हीं शब्दों के साथ, मैं आपके प्रति आभार प्रगट करता हूं कि आपने मौका दिया। मैं डा० लोहिया को फिर श्रद्धांजलि अर्पित करता हूं।

— राजनारायण

डा० राममनोहर लोहिया के जन्मदिवस, 23 मार्च, 1990 को भारतीय संसदीय दल के तत्वावधान में आयोजित समारोह में दिये गये भाषण

53
लोहिया-मेरे पथप्रदर्शक और गुरू

—रवि राय

सुविख्यात समाजवादी नेता, डा० राममनोहर लोहिया की हम आज 80वीं जयन्ती मना रहे हैं। आज के दिन उनको अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करना मेरे लिए सम्मान और सौभाग्य की बात है।

अध्यक्ष के पद पर चुने जाने के शीघ्र बाद मैंने यह अनुभव किया कि जहां संसद कई महत्वपूर्ण राष्ट्रीय नेताओं की जन्म शताब्दियां या जयन्तियां मनाती रही है, वहां कई और भी ऐसी महान विभूतियां हैं, जिन्हें याद नहीं किया जाता रहा है। इसलिए मैंने ऐसे प्रतिष्ठित नेताओं और संसदविदों की एक सूची तैयार करवाई ताकि हम स्वतंत्रता संग्राम और राष्ट्रीय पुनर्निर्माण में उनके योगदान की याद ताजा कर सकें और उन्हें अपनी विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित कर सकें। मुझे प्रसन्नता है कि भारतीय संसदीय ग्रुप ने मेरा सुझाव स्वीकार किया है। यह एक सुखद संयोग है कि इस नई श्रृंखला के अन्तर्गत पहला समारोह आज भारत के महान सपूत डा० राममनोहर लोहिया का स्मरण करने और उन्हें अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिए आयोजित किया जा रहा है। डा० लोहिया एक महान स्वतंत्रता सेनानी ही नहीं थे बल्कि स्वतंत्रता के बाद एक असाधारण संसदविद भी सिद्ध हुए।

जैसाकि आप सभी जानते हैं, मेरा डा० लोहिया के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध था क्योंकि वही मेरे पथप्रदर्शक और गुरु थे, जिनसे मैंने समाजवाद की दीक्षा ली।

मित्रों; डा० लोहिया कर्म में विश्वास रखते थे। उनकी निरन्तर कठोर परिश्रम करते रहने में आस्था थी। वे एक उत्कृष्ट वक्ता थे और वे जब भी बोलते थे, तब वह उनके दिल की आवाज होती थी। उन्होंने सामाजिक, आर्थिक या राजनीतिक हर प्रकार के अन्याय के विरुद्ध, सदैव अपनी आवाज उठाई। इसीलिए

वह आम जनता, जिसके वह निर्विवाद नेता थे, में अति लोकप्रिय थे। उनके व्यक्तित्व में नेकनीयती, प्रेम, शालीनता, रोष और पीड़ा का मिश्रण था।

डा० लोहिया ने हमारे स्वतंत्रता संग्राम में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। जब वह केवल 10 वर्ष के ही थे, जब उन्होंने छात्रों की एक हड़ताल आयोजित कराई थी। वे प्रबल समाजवादी होने के साथ-साथ गांधीवादी भी थे। श्री जयप्रकाश नारायण, श्रीमती अरूणा आसफ अली और अन्य लोगों के साथ-साथ उन्होंने 1942 के "भारत छोड़ो" आन्दोलन का नेतृत्व किया और वास्तव में वे ही इसके अग्रणी नेता थे।

यह जानते हुए कि भारत गांवों का देश है और इसमें 60 से 70 प्रतिशत जनसंख्या गरीबी की रेखा के नीचे रहती है, वे ग्रामीण जनता, अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों तथा समाज के अन्य कमजोर वर्गों और महिलाओं के उत्थान के लिए आगे आये। भारत के विभाजन से उनकी राष्ट्रवादी भावना को गहरा आघात लगा। लोहियाजी ने देश के विभिन्न भागों में एकता और साम्प्रदायिक सद्भाव बनाये रखने के लिए निर्भीक होकर काम किया। वे हिन्दू-मुस्लिम एकता के प्रति पूर्णतः समर्पित थे।

देश में समाजवादी आन्दोलन के एक सूत्रधार के रूप में लोहियाजी ने देश में समाजवादी आन्दोलन को एक नई दिशा दी। सामाजिक बराबरी में दृढ़ विश्वास रखने वाले लोहियाजी ने जाति प्रथा और जन्म पर आधारित वंश परम्परा की निन्दा की और समाज के सामाजिक रूप से दलित-वर्गों को विशेष अवसर प्रदान करने की वकालत की। इस लक्ष्य की प्राप्ति हेतु उन्होंने 'जाति प्रथा समाप्त करो' आन्दोलन भी प्रारम्भ किया। वे गरीब किसानों, भूमि हीनों और खेतिहर मजदूरों की आकांक्षाओं के प्रतीक बन गए थे और उन्होंने किसान आन्दोलन भी प्रारम्भ किये।

लोहियाजी विकेन्द्रीकृत अर्थव्यवस्था में विश्वास रखते थे और उनका विचार था कि भारत को छोटी मशीनों की आवश्यकता है ताकि अधिकतम जनशक्ति का उपयोग किया जा सके। एक मौलिक विचारक के रूप में लोहियाजी ने 'सप्त क्रान्ति' का सिद्धान्त प्रतिपादित किया, जिसने हमारी राजनैतिक और आर्थिक प्रणाली में क्रांतिकारी परिवर्तन लाने के लिए वैचारिक आधार प्रदान किया। उन्होंने साम्राज्यवाद विरोधी और उपनिवेशवाद विरोधी क्रांति का समर्थन किया और नीग्रो लोगों के समान अधिकार के आन्दोलनों में भाग लेने के कारण उन्हें 1964 में अमरीका में कारावास में डाल दिया गया।

लोहियाजी एक सच्चे लोकतांत्रिक थे और उन्होंने सदैव संसदीय तरीकों से जनता के निर्वाचित प्रतिनिधियों को शक्ति दिये जाने का समर्थन किया। वे इस मत के विरुद्ध थे। कि राज्य को अप्रतिबन्धित शक्तियां दी जानी चाहिये। वे चाहते थे कि राज्य की शक्ति जनता की शक्ति द्वारा नियंत्रित हो। इसी सन्दर्भ में उन्होंने 'लोक शक्ति' की बात की।

मित्रो, लोहियाजी का संसदीय जीवन बहुत अल्पकालिक था। वे 1963 से 1967 तक लगभग चार वर्षों तक लोक सभा के सदस्य रहे। किन्तु उस अल्प अवधि के दौरान भी न केवल संसद में बल्कि संसद के बाहर भी उनकी उपस्थिति अंकुश का काम करती थी। निस्सन्देह वे एक प्रभावशाली वक्ता थे। समर्पित और जागरूक संसद्‌विद् लोहियाजी संसद में अपनी जिम्मेदारी गम्भीरता से लेते थे और अपने तर्कों की पुष्टि के लिए सदैव तथ्यों और आंकड़ों से लैस रहते थे। न दबने वाले लोहियाजी ने ठोस आंकड़े देकर यह सिद्ध कर दिया था कि उस समय हमारे देश में प्रति व्यक्ति औसत आय मात्र साढ़े तीन आना या चार आना प्रतिदिन थी न कि पन्द्रह आना, जैसाकि तत्कालीन सरकार ने दावा किया था। आज लोहियाजी जैसे व्यक्तियों को खोज पाना मुश्किल है।

जाति, धर्म और क्षेत्रीयता के बंधनों से मुक्त लोहियाजी का दृष्टिकोण सर्वव्यापी था। वे एक ऐसे राष्ट्र के हिमायती थे, जिसमें लोग मन से और आदर्शों से एक हों। वे लोगों को राष्ट्रीयता अथवा जातीयता की सीमाओं से बांधने के विरुद्ध थे। उन्होंने एक ऐसे विश्व की कल्पना की थी, जिसमें लोग बिना पासपोर्ट अथवा वीसा के किसी भी देश में आ जा सकें। उन्होंने एक विश्व सरकार, जिसकी एक विश्व संसद हो, की स्थापना पर बल दिया था, जिसमें प्रभुसत्ता,सम्पन्न देश अपने-अपने राज्य की प्रभुसत्ता का एक भाग स्वेच्छा से उसे हस्तांतरित करें।

आज के दिन -लोहियाजी की स्मृति में उन्हें सर्वोत्तम श्रद्धांजलि यह होगी कि हम उनके द्वारा आरम्भ किये गये कामों को पूरा करें, उनके आदर्शों और दर्शन को अपनायें और कथनी और करनी की खाई को पाटें।

मैं पुनः लोहियाजी की स्मृति, उनके आदर्शों और देश के गरीबों, उपेक्षितों और शोषितों की भलाई के लिये उनकी अमूल्य सेवाओं के लिए उन्हें अपने श्रद्धासुमन सादर अर्पित करता हूँ।

मुझे प्रसन्नता हो रही है कि लोक सभा सचिवालय द्वारा सुविख्यात सांसदों के बारे में नई मोनोग्राफ सीरीज शुरू की जा रही है। इस श्रृंखला का पहला मोनोग्राफ डा० राम-मनोहर लोहिया के बारे में है। उनकी स्मृति में मेरी यह विनम्र श्रद्धांजलि है। इस अवसर पर इस मोनोग्राफ का विमोचन करना मेरे लिए सौभाग्य की बात है।

54

लोहिया—एक सन्त

—हुक्मदेव नारायण यादव

डा० राम मनोहर लोहिया हम लोगों के लिए पथप्रदर्शक और गुरु सभी कुछ थे। अधिकांश लोग उनको एक राजनेता के रूप में ही जान पाए। उनके एक अन्तरंग मित्र पं० राम नन्दन मिश्र थे जिनके यहां कुछ सन्त और आध्यात्म पर बात करने वाले लोग जुटते थे। उनके यहां एक बार चर्चा चली थी कि लोहिया के राजनीतिक पक्ष को तो सबने देखा, लेकिन लोहिया कितने बड़े आध्यात्मवादी और सन्त थे इस ओर लोगों की दृष्टि नहीं गई। वे तो सन्तों की परम्परा के मुताबिक सन्त थे। जब उन्हीं में से एक ने कहा कि यदि लोहिया सन्त थे तो उनकी वेशभूषा राजनीतिज्ञों वाली क्यों थी, तो उस सन्त ने कबीर की पंक्ति के साथ कहा कि:—

भेष देख मत भूलिए, बूझ लीजिए ज्ञान
बिना कसौटी होत नहीं, कंचन की पहचान।

सन्त की वेशभूषा से मत पहचानो, उसको ज्ञान से पहचानों और लोहिया का ज्ञान सन्त वाला ज्ञान था।

दूसरी बात लोग कहते हैं कि लोहिया की दृष्टि कितनी दूर तक थी। इस बारे में जब हम चिन्तन करते हैं कि लोहिया जी कहां तक जा पाए थे तो हमें इसकी थाह नहीं मिलती है। कहते हैं कि वह कोई महामानव, कोई अतिमानव थे। जो भी कहिए, लेकिन वे उससे भी परे थे। कबीर की पंक्ति में ही कहा जा सकता है:—

हद चले सो मानवा, बेहद चलहिं सुसाधु,
हद, बेहद दोऊ तजै, ताक मता अगाध

डा० लोहिया, न हद में थे, न बेहद में, वे हद और बेहद, दोनों सीमाओं को पार कर गए। वह इस ब्रहमाण्ड के सूक्ष्म से सूक्ष्म पदार्थों को भी भेदने की दृष्टि रखते थे। इसलिए वे बहुत दूर तक देखते थे। राजनीति में या आध्यात्म में अधिकांश लोग 'शून्य' पर पहुंचकर रुक जाते हैं परन्तु डा० राम मनोहर लोहिया उससे भी आगे जाकर देखने

वाले सन्त थेः—

शून्य शहर तक सब गया, आगे के गम नाहीं
जो आगे के गम करे, सो मंद-मंद मुस्काए।

डा० लोहिया एक महापुरुष, सन्त और आध्यात्मिक होने के साथ-साथ राजनीतिज्ञ भी थे।

लोहिया जी ने "सम" और "समता" इन दो शब्दों का सबसे अधिक प्रयोग किया है। उनकी पुस्तकें हैं— समदृष्टि, समलक्ष्य, समबोध, समभाव। वास्तव में, बिना आध्यात्मिक दृष्टि के "सम" और "समता" शब्दों का यथार्थ बोध हो ही नहीं सकता। इसलिए उन्होंने "सम" और "समता" पर ज्यादा जोर दिया। लोहिया जी ने कहा था कि सम और समभाव का बोध मुझे जेल में गीता के इस श्लोक से मिला थाः—

योगस्थः कुरू कर्माणि संगत्यक्त्वा धनंजय।
सिद्धिः असिद्धियोः समो भूत्वा समुत्वम् योगः उच्यते।।

[अध्याय—2, श्लोक 48]

लोहिया जी कहा करते थे कि समता और समानता के भाव से, समत्व भाव से जो कर्म करता है, वही सबसे बड़ा योगी है। "योगः कर्मशु कौशलम्"—जो कर्म करने की कला लोहिया के अन्दर थी, वह विरले पुरुष में होती है। इसलिए मैं अपने उस गुरु और पथप्रदर्शक को केवल राजनीतिक पुरुष के रूप में ही नहीं, बल्कि एक महात्मा और सन्त के रूप में भी अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता हूं।

55

लोहिया जी को श्रद्धांजलि

—डा० (श्रीमती) नजमा हेपतुल्ला

मुझे लगता है कि अगर आज की इस सभा में कोई महिला नहीं बोलती है तो सही मायने में हम लोहिया जी को वह श्रद्धांजलि नहीं दे सकते जिसके लिये उन्होंने पूरी जिन्दगी काम किया। मैं अपनी श्रद्धांजलि की इन्तहा इकबाल के शेर से करुंगी जो मुझे लगता है कि शायद लोहिया जी जैसे सपूतों के लिये ही उन्होंने कहा होगाः

"यकीम मोहकम अमल पैहम मोहब्बत फातहे आलम,
जिहादे जिन्दगानी में ये है मर्दों की शमशीरें"।

लोहिया जी ने पूरी जिन्दगी हिम्मत और बहादुरी के साथ अपने उसूलों पर चलते हुए गुजारी और मोहब्बत का पैगाम भारत के उन तमाम लोगों को दिया जो अपनी आजादी के लिये लड़ रहे थे। उन्होंने पूरी जिन्दगी उन पिछड़े हुए लोगों के लिये काम किया जो सदियों से हालात की वजह से दबे हुए और पिसे हुए थे और उनमें सबसे ज्यादा पिछड़ी हुई और दबी हुई महिलायें ही थीं। इनको उन्होंने बराबरी का दर्जा देने की बात कही।

लोहिया जी ने गांधी जी के सिद्धांतों को मानते हुए देश में एक नये समाजवाद की बुनियाद डाली और पूरी जिन्दगी उस पर चलते रहे। उन्होंने यह नहीं सोचा कि कुछ लोग उन पर एतराज कर रहे हैं या कुछ लोग उनकी बात नहीं सुन रहे हैं। उसी इकबाल के शेर के मुताबिक वह बार-बार लोगों को अपनी बात बताते रहे और उन्हें इस बात पर यकीन था कि अगर उनकी जिन्दगी में नहीं तो यकीनन उनके मरने के बाद लोग उनकी बात को समझेंगे, पढ़ेंगे और मेरा भी इस बात पर यकीन है कि हम अगर उनको सही तौर पर श्रद्धांजलि देना चाहते हैं तो उनके बताये हुए रास्ते पर अमल करेंगे।

आज देश के अन्दर जो भेदभाव, असमानता, ऊंच-नीच, जाति-पाति और एक अजीब सा माहौल बना हुआ है नफरत का, मुझे यकीन है कि आज हमें लोहिया, गांधीजी और

अबुल कलाम जैसे लोगों की जरूरत है, वे आज हमारे बीच नहीं हैं लेकिन वे अपनी कलम से, अपनी जबान से जो कुछ छोड़ गये हैं, हम उस खजाने में से जितना भी कुछ लेते जायेंगे, वह कभी कम नहीं होगा। लोहिया जी ने हमारे देश के लाखों किसानों के आन्दोलन में जो हिस्सा लिया, उसके लिए मुझे फिर इकबाल के दो शेर याद आते हैं:—

"उठो मेरी दुनिया के गरीबों को जगा दो,
काखे उमरा के दरो दीवार गिरा दो।
जिस खेत से मिलती नहीं दहकात को रोटी।
उस खेत से हर बोशए गंदुम को जला दो।।"

लोहिया जी इस बात में विश्वास रखते थे कि जब तक हमारे देश के गरीब किसानों को, जो दिन रात मेहनत करके दूसरों को रोटी देते हैं, अपने ही खेत से रोटी नहीं मिले तो उस खेत से बेहतर है कि उसमें आग लगा दो, उन महलों, उन दीवारों को तोड़ दो, जो उनको इस हालत में पहुंचाए हुए हैं।

अपनी तरफ से और यहां बैठी हुई सब बहनों की तरफ से मैं लोहिया जी को श्रद्धांजलि देती हूं।

लोहिया जी के लिए दिमाग में फिर एक शेर आता है:—

"हजारों साल नरगिस अपनी बेनूरी पे रोती है,
बड़ी मुश्किल से होता है, चमन में दीदावर पैदा।"

ऐसे लोग मुश्किल से पैदा होते हैं, मगर हमारी यह खुशकिस्मती है कि वह हमारे देश में पैदा हुए और आज हम उनके बताए हुए रास्ते पर चल कर ही सफलता हासिल कर सकते हैं।

•

56

कथनी करनी में भेद न करने वाले लोहिया

— जार्ज फर्नान्डीज

हमारे लिए कल्पना करना मुश्किल होता है कि आज अगर डाक्टर साहब होते तो 80 साल के होते और कैसे दिखाई देते। क्योंकि 23 साल पहले उनका देहान्त हो गया और उस समय वह अपनी उम्र से अधिक दिखाई देते थे। मगर उनकी सोच, उनका व्यवहार, उनका सारा जीवन एक ऐसी जवानी से भरा रहता था, जिसकी कल्पना करना या जिसका वर्णन करना सम्भव नहीं है। जिन्होंने व्यक्तिगत रूप से उनको देखा है वही उनको समझ सकते हैं।

हमने डा० लोहिया से कई बार एक बात कही थी कि आपकी जो सोच है वह बहुत आगे की सोच है। आप 20 साल आगे की सोचते हैं, इसलिए यह देश आपकी बातों को समझने की स्थिति में नहीं है। यहां तक कि आपकी पार्टी के ही आपके साथ ही काम करने वाले लोग भी आपके साथ चलने में असमर्थ हैं। जब 1977 में मैं सरकार में था और सरकारी काम से पश्चिम-जर्मनी की राजधानी बौन गया था तब वहां समाजवादी सरकार के साईंस एण्ड टैक्नालॉजी के मंत्री, श्री हैंस, ने डा० लोहिया की याद करते हुए मुझे कहा कि 1950 में सोशलिस्ट इंटरनेशनल के पुनर्निर्माण के अवसर पर फ्रैंकफर्ट में कैसे शाम की बैठक समाप्त होने के बाद रात को 8.00 बजे से दूसरे दिन सुबह 4.00 बजे तक वह हमारे साथ चर्चा करते रहे जिसमें एक नये विश्व की, युद्ध मिटाने की, दोनों जर्मनियों की एकता की बिखरी हुई दुनिया को एक साथ चलाने की बातें होती रहीं और उनकी कई कल्पनाएं सामने आईं। हैंस मुझे बोले कि तब हम लोग जवान लड़के थे, युद्ध के अनुभव से अभी-अभी निकले थे, दुनिया को देखने की हमारी अपनी दृष्टि थी। लेकिन अब उसके 25-30 साल के बाद हम अनुभव कर रहे हैं कि लोहिया जी सही थे और हम गलत थे। आठ घण्टे तक जब वे बातें करते रहे तो हमने समझा कि यह

आदमी इस दुनिया का नहीं है और ऐसी बातें कर रहा है जो जमीन पर अमल के लायक नहीं हैं। मैंने हैंस साहब से कहा कि आप अकेले ही नहीं हैं ऐसा सोचने वाले बल्कि लोहिया के साथ सारी जिन्दगी बिताए हुए लोग भी ऐसा ही समझते हैं। अपने बारे में लोगों की ऐसी धारणा जानने के बाद वह अक्सर कहा करते थे "लोग मेरी बातों को सुनेंगे शायद मेरे मरने के बाद"। इसलिए जब हम देश की समस्याओं या विश्व की समस्याओं के बारे में सोचते हैं और उनका इलाज खोजने का प्रयास करते हैं तब डा० लोहिया जी और उनका वही वाक्य याद आता है।

जिस 'सप्त क्रांति' को, जिन सिद्धान्तों को, जिन कार्यक्रमों को उन्होंने सोचा, आज वे सारी कल्पनाएं कहीं न कहीं व्यवहार में उतरती हुई देखने को मिल रही हैं और कामयाबी भी मिल रही है। 'सप्त क्रांति' में सबसे पहले उन्होंने जो बात रखी थी वह नर-नारी समानता की बात थी। अपने देश में चाहे जितने हम लोग इस नर-नारी समानता पर अपने विश्वास को व्यक्त करें, लेकिन व्यवहार में हम लोग यह बात उतारने में कामयाब नहीं हुए हैं। नर-नारी समानता की बात को व्यवहार में उतारने का जब वक्त आता है तो वह नर की ही दुनिया है, जिसमें नारी का कोई स्थान नहीं है। डा० लोहिया की बात यहां भी आती है, क्योंकि वे कहा करते थे कि कथनी और करनी में कभी अन्तर नहीं होना चाहिए। हिन्दुस्तान की राजनीति और सामाजिक इतिहास में अगर और किसी का नाम इस नर-नारी की समानता के संघर्ष के लिए लेना हो तो महात्मा गांधी का नाम लिया जा सकता है।

इस सप्त क्रांति में चमड़ी के आधार पर राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और आध्यात्मिक विषमता के विरुद्ध चलने वाली क्रांति की डा० लोहिया न केवल चर्चा करते थे, बल्कि उसका वास्तव में विरोध भी करते थे। अमेरिका में चमड़ी के आधार पर भेदभाव का जो सिलसिला चल रहा था, उसके विरोध में 1964 में डा० लोहिया ने सत्याग्रह किया, उनकी गिरफ्तारी हुई और उस गिरफ्तारी के बाद अमेरिका के राष्ट्रपति लैंडल जानसन ने तार लिखकर क्षमा मांगी कि गलती हो गयी, ऐसा नहीं होना चाहिए था। लोहिया साहब ने तार देकर जवाब दिया कि माफी मुझसे न मांगिएगा, माफी स्टैच्यू आफ लिबर्टी से मांगिए जिसको न्यूयार्क में आप लोगों ने खड़ा किया है, मगर जिसको आदर्शों में उतारने का काम आप लोग नहीं कर पाए हैं। रंगभेद की नीति के विरुद्ध संघर्ष आज भी जारी है। दक्षिण अफ्रीका में नेलसन मंडेला जेल से बाहर आए हैं, नामीबिया आजाद हो गया है। इस संघर्ष में न केवल लोहिया जी ने अपने आप को बल्कि तमाम समाजवादियों को जोड़ने का काम किया और दुनिया के लोगों को किसी न किसी तरह से प्रेरित करने का काम किया था। वह संघर्ष आज भी चल रहा है, कामयाबी से चल रहा है, आगे बढ़ रहा है।

लोहिया जी की "सप्त क्रांति" के अन्तर्गत तीसरी क्रांति पुरानी परम्परा के आधार पर पिछड़े और अगड़े समूहों की जातियों की गैर-बराबरी के विरुद्ध थी। पिछड़े लोगों को विशेष अवसर देने के लिए जब लोहिया जी ने कहा तब कोई अपशब्द ऐसा नहीं था जो डा० लोहिया के बारे में, उनके मुंह पर और लिखकर नहीं कहा गया हो। मुझे याद है बनारस में समाजवादी दल का सम्मेलन हो रहा था जहां यह प्रस्ताव पेश किया गया था तब बिहार के एक बहुत पुराने साथी मंच पर आए, माईक को अपने हाथ में खींच लिया और जमीन पर पटक दिया और बोले कि मैं 30 साल से समाजवादी था, परन्तु आज मैं ब्राह्मण! हूं और यह कह कर वे सम्मेलन से निकल गए, हालांकि 5 साल बाद वह पार्टी में वापिस आ गए थे। दल के भीतर, दल के बाहर, देश में, संसद में, कहीं भी जहां कहीं भी समाज के शोषित तबकों को न्याय दिलाने की बात हो, बराबरी पर लाने की बात हो, मदद करने की बात हो, विशेष अवसर देने की बात हो, लोहिया जी हमेशा आगे रहे। वे कहते थे कि 5000 साल जिनको दबाया गया है और जो 5000 साल तक दबाते रहे हैं, उनमें बराबरी करने की बात जब की जाती है तो उसमें ईमानदारी नहीं है। 5000 साल से जो दबा हुआ आदमी है और 5000 साल से जो दबा रहा है, इन दोनों में बराबरी नहीं आ सकती। जो दबा हुआ आदमी है, उसको मदद देकर उठाने का काम जब तक आप नहीं करेंगे तब तक बराबरी की बात नहीं हो सकती।

यह मुल्क भी बड़ा अजीब मुल्क है। पं० जवाहरलाल नेहरू ने मार्टिन लूथर किंग को बड़ा मान दिया, क्योंकि अमरीका में उसने अश्वेत लोगों से जो गैर बराबरी का व्यवहार होता था, उसके खिलाफ संघर्ष छेड़ा और लड़ाई में उसका देहांत हो गया था। उसको नोबेल पीस प्राइज मिला और हमारे मुल्क ने उसकी मौत के बाद उसको जवाहरलाल नेहरू प्राइज दिया। हमने उसका सम्मान किया क्योंकि उन्होंने अपने "पोजीटिव डिसक्रीमिनेशन" के सिद्धान्त के आधार पर विशेष अवसर की बात कही थी। लेकिन हमारे देश में जब इस सिद्धांत को डा० लोहिया ने अपने दल के माध्यम से समूचे राष्ट्र के पैमाने पर चलाने की कोशिश की तो कोई अपमान नहीं बचा जो उनको बुद्धिजीवियों और अन्यों से न मिला हो। मगर हमें खुशी है कि आज स्थिति बदल रही है।

'सप्त क्रांति' में एक क्रांति थी विदेशी दासता के विरुद्ध लड़ाई। लोहिया जी ने विदेशी दासता की लड़ाई लड़ी। हमारे मुल्क ने वह लड़ाई जीती। मगर अंग्रेजी अभी भी हमारे देश में बनी है। तर्क दिया जाता है कि देश की एकता के लिए अंग्रेजी को रखना जरूरी है और अंग्रेजी देश को एक साथ जोड़ने वाली कड़ी है और अगर भाषा का विवाद खड़ा किया जाएगा तो देश को वह बांटने का काम करेगा। यह तर्क नहीं माना जा सकता। क्या इसका मतलब यह है कि अगर अंग्रेज नहीं आते तो देश एक नहीं होता। अंग्रेजी के विरुद्ध लड़ाई बराबरी की लड़ाई नहीं है बल्कि विदेशी दासता को संपूर्ण रूप से मिटाने

का संकल्प है। हम लोग गांधी जी की पूजा तो करते हैं, किन्तु उनके सिद्धांतों को नहीं समझते। महात्मा गांधी जी ने स्पष्ट रूप से यह कहा था कि अगर सही मायने में आजादी लानी हो तो अंग्रेजी को मिटाने का काम करना होगा और लोक भाषाओं में काम करना होगा। वह संघर्ष आज भी जारी है।

लोहिया जी ने अपनी 'सप्त क्रांति' में निजी संपदा एकत्र करना, आर्थिक समता और नियोजित उत्पादन के बारे में भी उल्लेख किया है। लोहिया जी ने इसके लिए देश के भीतर संघर्ष करने की मांग की थी और यही नहीं, राष्ट्र और राष्ट्र के बीच जो शोषण पल रहा है उसके लिए संघर्ष की जरूरत उन्होंने बताई थी। ऐसा संघर्ष बहुत ही जरूरी है। हमारे देश में सरकारें बनती हैं बदलती हैं, मगर आर्थिक विषमता वाले संघर्ष में हम अपेक्षित गति से आगे नहीं बढ़ पाये हैं।

निजी जीवन में अन्यायपूर्ण हस्तक्षेप के विरुद्ध और लोकतांत्रिक उपायों के लिए डा० लोहिया ने एक क्रांति का प्रयास किया और आज हम लोग यह लड़ाई जीत रहे हैं। हालांकि अपने देश में हम लोग इस मामले में अन्य देशों के मुकाबले पीछे हैं। समूचे पूर्वी यूरोप में और विशेष रूप से रूस में और उसके साथ सटे हुए पूर्वी यूरोप के राष्ट्रों में पिछले 3-4 सालों में जिस प्रकार परिवर्तन की हवा चली है, उससे एक नए विश्व का निर्माण होने की परिस्थिति बनी है। निजी जीवन में अन्यायपूर्ण हस्तक्षेप और लोकतांत्रिक उपायों के लिए जो लड़ाई है, दुनिया ने इसको कबूल किया है। श्री गोर्बाचोव इस बदलाव को लाने में सबसे अधिक सहायक रहे हैं। अपने देश के भीतर इस लड़ाई को मजबूती से चलाना जरूरी है।

हमें, जहां भी हथियारों का इस्तेमाल किसी भी प्रकार से होता है, उसको दूर करके शांतिमय तरीकों से, सत्याग्रहों से समस्याओं का समाधान करना है। अपनी "सप्त क्रांति" के अन्त में लोहिया जी ने शस्त्रों के विरुद्ध और सत्याग्रह के पक्ष में बात कही है। यद्यपि बड़ी शक्तियों ने शस्त्रों को मिटाने की दिशा में कदम बढ़ाने का काम किया है। किन्तु हिन्दुस्तान और पाकिस्तान, जो दक्षिण एशिया भूखण्ड में दरिद्रता में सबसे नीचे हैं, शस्त्रों की खींचातानी में पड़े हैं कि उनके पास जो है वह हमारे पास हो और हमारे पास जो है वह उनके पास हो। यह दोनों के लिए ही अच्छी बात नहीं है। जब देश के बंटवारे का फैसला हुआ था तब लोहिया जी ने कहा था—"कि देश को फिर जोड़ना होगा।" हिन्दुस्तान और पाकिस्तान को महासंघ के आधार पर जोड़ना होगा और हिन्दुस्तान और पाकिस्तान के महासंघ में कश्मीर का सवाल नहीं बनेगा और अन्य सवाल भी इस भूखण्ड से मिट जाएंगे।

'सप्त क्रांति' का जो अग्रदूत रहा उस व्यक्ति को याद करने के लिए हम यहां बैठे हैं। इस मंच पर बैठे हुए हम लोग अनेक दलों से जुड़े हुए लोग हैं मगर कहीं न कहीं लोहिया जी के साथ हम लोगों का सम्पर्क रहा है। हमने रंगा जी को इसलिए हाथ पकड़ कर बहुत आग्रह करके यहां लाकर बिठाया है, क्योंकि डा॰ साहब और इनके बीच जो रिश्ते थे, जिस प्यार और समझ के रिश्ते थे, ऐसे बहुत कम लोगों के बीच होते हैं। यहां शायद ही कोई हो जो डा॰ साहब से एक बार मिला हो, उनके सम्पर्क में आया हो और उनके विचारों से किसी न किसी रूप में प्रभावित न हुआ हो। लोहिया जी ने 3 आने बनाम 15 आने की चर्चा छेड़ कर सारी दुनिया में गरीबी की मुखालफत करने के लिए लड़ाई लड़नी जरूरी समझी। आज राजनीति के विषय ये नहीं रहे हैं। आज राजनीति ऐसे विषयों के इर्द-गिर्द घूमती है जिनका लोगों के पेट के साथ, राष्ट्र निर्माण के साथ कोई रिश्ता ही नहीं है। ऐसी परिस्थिति में सिद्धांततः चाहे हम किसी भी खेमे में क्यों न बैठे हों, हम आपस में बैठकर संवाद को जोड़ने का काम करें। मेरा विश्वास है कि डा॰ लोहिया ने जो स्वप्न देखा था, वह पूरा होना बाकी है। मैं पुनः लोहिया जी के वाक्य को कहकर अपनी बात समाप्त करता हूं: "लोग मेरी बातें सुनेंगे शायद मेरे मरने के बाद मगर सुनेंगे तो जरूर" अब वह सुनने का वक्त आया है। उसमें हम सब योगदान देने के लिए आगे बढ़ें।

57

मैंने डा० लोहिया से सीखा है

—राम विलास पासवान

मैं उन अभागे लोगों में से हूं, जिन्होंने डा० लोहिया को नजदीक से नहीं देखा था, सुना नहीं था उनके भाषण को। जह मैं कालेज से निकला और जब मैंने राजनीति में प्रवेश किया तो मेरे समाने अहम सवाल था कि मैं किस दल को चुनूं। तो मेरे समाने टार्च नहीं थी, रोशनी नहीं थी। केवल एक विचारधारा की रोशनी थी और यह विचारधारा की रोशनी डा० लोहिया की रोशनी थी।

लोहिया जी के साथ हमारा संबंध विचार का संबंध है। मैं समझता हूं कि यह हमारे खून के संबंध से ज्यादा गाढ़ा होता है और जिस पर विचार का संबंध हो जाता है, वह टूटता भी नहीं है। मैंने डा० लोहिया से सीखा है, उनके विचारों से सीखा है और मैं अब भी सीखने की कोशिश कर रहा हूं वैसे महापुरुषों से, चाहे लोहिया जी हों या अम्बेडकर जी हों, जिन्होंने देश में एक नई रोशनी दी है, जिसके कारण बुनियादी परिवर्तन हुआ या होने वाला है। मैं हमेशा एक बात कहता हूं कि नीति अलग होती है, नीयत अलग होती है। जब तक हमारी नीयत साफ नहीं होगी तब तक बदलाव होने वाला नहीं है। यदि हमें माला पहनने का शौक हो तो जूता पहनने का शौक भी होना चाहिए। यह डा० लोहिया ने सिखाया है। हमें खुशी है कि हम समाजवादी सभा में पढ़ते थे और लोहिया जी की सारी चीजों को हम गवाते थे। भाषा में मामले में उनका कहना था—

"राष्ट्रपति का बेटा हो या चपड़ासी की हो सन्तान।
ब्राह्मण या भंगी का बेटा, सबकी शिक्षा एक-समान।।
अंग्रेज यहां से चले गए, अंग्रेजी को भी जाना है।
अंग्रेजी में काम न होगा, फिर से देश गुलाम न होगा।।
राज-पीठ है किसके हाथ, अंग्रेज और ऊंची जात।
ऊंची जात की क्या पहचान, गिट-पिट बोले करे न काम।।

छोटी जात की क्या पहचान, करे काम और सहे अपमान।
वे कहते थे, नारा लगाते थे, जातिवाद पर कहते थे—
संसोपा ने बांधी गांठ पिछड़ा पावे 100 में 60
यानि पिछड़ों को 100 में से 60 स्थान हों। कहते थे।
कर खनिया दामों की कीमत, आने घड़ी में डयोड़ा हो।
अन्न की धान की घटती-बढ़ती आने सेर के भीतर हो।।

प्रत्येक चीज पर वे कहते थे कि सच्चा हिन्दुस्तानी वही है जो आधा मुसलमान हो और आधा हिन्दू हो। आज क्या कारण है कि मुसलमान की बात आती है तो मुसलमान के लिए आन्दोलन होता है, दलित आन्दोलन करेगा, दलित के लिए, यदि पिछड़े की बात होगी तो पिछड़ा आन्दोलन करेगा, ब्रांह्मण का मामला आएगा तो ब्राह्मण आन्दोलन करेगा, क्योंकि हम कोई हिन्दुस्तानी रह नहीं गए हैं। हम टी० वी० पर देखेंगे तो हमारे दिमाग में आएगा कि मरने वाला कौन है—हिन्दू मरता है तो सिख को कोई गम नहीं है, सिख मरता है तो मुझे खुशी होती है। जब तक हमारा देखने का नजरिया, समझने का नज़रिया जो है इसमें मौलिक परिवर्तन नहीं आएगा, तब तक कुछ भी होने वाला नहीं है। जैसा मैंने कहा कि आज हम मशीन के समान होते जा रहे हैं। भीख मांगने वाला आ जाता है, पैसे दे देते हैं। कभी हमने नहीं सोचा कि भीख मांगने वाला बच्चा है कौन, इसके मां-बाप कौन है। यदि रामविलास पासवान का बच्चा होता, आपका बच्चा होता तो क्या गुजरती आपके ऊपर? तब तो तुरन्त कहते कि क्रांतिकारी परिवर्तन करो। क्योंकि मेरा बच्चा नहीं है इसलिए हम दो पैसे देकर, भीख देकर अपने दायित्व को पूरा कर लेते हैं।

इसलिए मैंने कहा कि सबसे बड़ी चीज है कमिटमेंट। जब तक हमारे समाज के बदलाव की कमिटमेंट नहीं आएगी तब तक समाज में बदलाव नहीं आएगा। इसलिए मैंने डा० लोहिया को भी पढ़ा। जितने बड़े-बड़े महापुरुष हुए हैं हिन्दुस्तान में, उन्होंने सबसे पहले रखा है इस देश में सांस्कृतिक परिवर्तन, सांस्कृतिक क्रांति को। दूसरे नम्बर पर उन्होंने सामाजिक क्रांति की बात कही है। और तीसरे पर आर्थिक बदलाव। जब तक इस देश में सांस्कृतिक क्रांति नहीं होगी तब तक सामाजिक क्रांति आ नहीं सकती है। जब तक सामाजिक क्रांति नहीं आएगी तब तक आर्थिक क्रांति नहीं आ सकती, क्योंकि समाज का रिश्ता और अर्थ का रिश्ता है, दोनों एक साथ चल रहे हैं और वे हमेशा कहते थे कि इस देश में कानून का मालिक ब्राह्मण, जेब का मालिक बनिया, दोनों का ललित संबंध पीढ़ी दर पीढ़ी चला आ रहा है। वे यह भी कहते थे कि ब्राह्मणवाद का मतलब यह नहीं है, ब्राह्मण ब्राह्मणवाद का विरोधी नहीं हो सकता और दलित ब्राह्मणवाद का पुजारी नहीं बन सकता है। ब्राह्मण भी मंदिर का बहिष्कार करता है और एक दलित भी

दिन-रात जाकर मंदिर में नाक रगड़ता है। दोनों में यह राह की लड़ाई है। उस राह की लड़ाई में दलित का सबसे बड़ा मित्र ब्राह्मण है, उस स्थान पर दलित का सबसे बड़ा दुश्मन दलित आकर खड़ा होता है।

इसलिए मैंने कहा कि जो विचार का रास्ता होता है वह सबसे बड़ा रास्ता होता है। यदि आज हम लोहिया जी को उनके विचार के दृष्टिकोण से देखते हैं, यदि हम उनके विचारों को ज़हन में उतार सकें, न सिर्फ वाणी और नीति में, बल्कि उन पर चलने का इरादा बना लें तो उनके प्रति सच्ची श्रद्धांजलि होगी।

यहां देश के चुने हुए प्रतिनिधि हैं, देश के कर्णधार हैं, निश्चित रूप से हमें अपने भीतर तक सम्पूर्ण बदलाव लाना है और अपने भीतर तक बदलाव लाने में हम तभी सक्षम हो सकेंगे जब उनके विचारों को ज़हन में उतारेंगे।

इन शब्दों के साथ मैं डा० लोहिया जी को श्रद्धांजलि अर्पित करता हूं।

58

प्रेरणा स्रोत लोहिया

—वसंत साठे

आज हमारे लिए यह सौभाग्य की बात है कि हम यहां पर डा॰ राम मनोहर लोहिया जी की स्मृति में उन्हें अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिए इकट्ठा हुए हैं। हम लोग 1942 के आन्दोलन में बिल्कुल 17-18 साल के नौजवान थे। गांधी जी और जवाहरलाल नेहरू तो उस समय राष्ट्र के नेता थे लेकिन युवा पीढ़ी के असली प्रेरणा स्रोत डा॰ लोहिया थे। आचार्य नरेन्द्र देव, डा॰ राम मनोहर लोहिया, जय प्रकाश नारायण, युसूफ मेहरअली, अरुणा आसफ अली और अच्युत पटवर्द्धन कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी में उस वक्त के नेता थे। वे हम लोगों के लिए प्रेरणा स्रोत रहे हैं। हम नौजवान उनकी प्रेरणा पाकर ही उस आन्दोलन में कूदे। युवावस्था में समाजवाद की शिक्षा, समाजवाद की सीख, समाजवाद की प्रेरणा यदि हमने किसी से ली तो सदा इन्हीं नेताओं के लेखों और उनके बयानों से ली। इसलिए जब समाजवादी पार्टी की स्थापना का सवाल उठा तो मुझे अच्छी तरह याद है कि हम लोग आचार्य नरेन्द्र देव जी के साथ थे। कुछ ऐसा सोचने वाले लोग भी थे जो कहते थे कि भाई हम कांग्रेस से बाहर क्यों आयें या अलग समाजवादी कांग्रेस, क्यों बनायें, कांग्रेस को ही समाजवादी पार्टी में परिवर्तित किया जा सकता है। उस वक्त जो विवाद हुआ, मुझे याद है डा॰ साहब और उन लोगों ने जोर देकर कहा था कि तुम खाली जवाहरलाल की तरफ मत देखो। उनके रहते हुए कांग्रेस समाजवाद की तरफ नहीं जा सकेगी। हमें इस देश में लोकतंत्र को बनाये रखने के लिए एक विकल्प की आवश्यकता है जो समाजवादी लोकतंत्र में लोगों का विश्वास बनाये रखे। उन्होंने उदाहरण दिया, जैसे इंग्लैंड में लेबर पार्टी बना, उसी तरह अपने देश में अलग से एक पार्टी बनानी पड़ेगी और वह होगी समाजवादी पार्टी। हम सब नौजवान उस आह्वान पर समाजवादी पार्टी में शामिल हो गये, हालांकि हमारा लगाव, हमारा खिंचाव फिर भी जवाहरलाल जी की तरफ और महात्मा गांधी जी के नेतृत्व में लगातार बना रहा, हम उनसे प्रेरणा लेते रहे। डा॰ लोहिया की सबसे बड़ी देन थी बुद्धिवादी विचार,

रेशनलिस्ट विचार को मानते हुए, बुद्धि प्रामाण्य को मानते हुए, हर चीज को उस कसौटी पर कसा जाये और यदि वह परख कर सही उतरे तो अपनी बात पर अड़ा जाये, परन्तु कथनी और करनी में किसी तरह का समझौता न किया जाये। समाजवादी पार्टी की पहली सरकार इस देश के केरल राज्य में बनी। उस समय वहां पर बस एक जगह फायरिंग हुआ। डा॰ लोहिया ने कहा कि उस सरकार को इस्तीफा देना चाहिये। उसी वक्त, इस बात पर वहां की पार्टी टूट गयी परन्तु उन्होंने इसकी कोई परवाह नहीं की। उन्होंने कहा कोई समझौता नहीं होगा, हमारी कथनी और करनी एक ही होनी चाहिए।

डा॰ लोहिया के 7 विचार जो विश्व क्रांति के बुनियादी विचार थे, विश्व मानवता के विचार थे, उनके क्रियान्वयन के लिये हमें राष्ट्रीयता की कल्पना से भी ऊपर उठने की आवश्यकता है। उनका कहना था कि मानवता के अतिरिक्त कोई समझौता नहीं होगा, जात-पात पर आधारित कोई समझौता मंजूर नहीं। यदि आज इन सारी बातों को हम अन्तर्मुखी होकर देखें तो पायेंगे कि जीवन में, अपनी पार्टियों में हम हर जगह समझौता कर रहे हैं। फिर हमारी कथनी और करनी में समानता कहां रह गयी। आज यदि हम डा॰ साहब की उन बातों को लेकर चलें तो देश में बहुत बड़ी क्रांति आ जायेगी। वैसे तो हम बार-बार उनके विचारों को याद करते हैं, उनके समाजवादी समाज की, साम्यवाद की, विश्व-मानवता की बातें करते हैं, लेकिन करनी करते समय बिल्कुल उसके विपरीत काम करते हैं। हम लोग व्यवहारवाद के नाम पर आज ढोंगी होते जा रहे हैं। उसी ढोंग के खिलाफ डा॰ लोहिया ने एक बार अपने प्रगाढ़ मित्र से भी अनबन कर ली थी। उन्होंने साफ कहा था कि यह एक ढोंगी है और मैं कोई ढोंग नहीं करना चाहता। इसलिये आज हम यदि सचमुच में डा॰ लोहिया को श्रद्धांजलि देना चाहते हैं तो हमें उनके विचारों पर विचार करना चाहिए और अमल करना चाहिए। उनके प्रति यही सच्ची श्रद्धांजलि होगी।

59

लोहिया—एक सामाजिक और आर्थिक सुधारक

—पी० शिवशंकर

डा० राम मनोहर लोहिया इस देश के उन अग्रणी नेताओं में से हैं जिन्होंने स्वतंत्रता संग्राम में अपना सर्वस्व न्योछावर कर दिया। डा० राम मनोहर लोहिया का जीवन बड़ा विचित्र रहा है। उन्होंने इस बात का दृढ़ निश्चय किया था कि वे किसी भी पदवी को लालसा के बिना अपने आपको लोगों के लिए अर्पित करेंगे। उनको बहुत से ऐसे अवसर मिले जब उनको पदवी मिल सकती थी, लेकिन उनका लक्ष्य यह था कि जब हम गरीब लोगों के लिए अपने आपको अर्पित करते हैं और ऐसे देश में जहां पर करोड़ों लोगों का बहुमत गरीबी की रेखा से नीचे है, ऐसी सूरत में पदवी पर जाकर बैठ जाना उचित नहीं है। इस देश की आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक व्यवस्था को देखते हुए वे न तो सिर्फ एक राजनीतिक नेता थे, बल्कि सामाजिक और आर्थिक सुधार के लिए उन्होंने अपने आपको समर्पित किया। जब उन्होंने यह देखा कि इस देश में समाज में बड़ी असमानताएं हैं, जातिवाद है तो उन्होंने नारा लगाया कि मैं जाति-विहीन और वर्गविहीन समाज के लिए अपना सारा संघर्ष आगे बढ़ाऊंगा और उन्होंने सारा जीवन जाति-विहीन और वर्ग-विहीन समाज के लिए अर्पित किया।

डा० लोहिया उन महान नेताओं में से हैं जिन्होंने जहां गांधीवाद को अपनाया, वहां मार्क्सवाद का भी उसमें मिश्रण किया। गांधी जी के जो मूल सिद्धांत थे उन आदर्शों को सामने रखते हुए समाजवाद के सिद्धांत, मार्क्सवाद के सिद्धांत अपनाते हुए उन्होंने यह सोचा कि यदि हम इस समाज में परिवर्तन लाना चाहते हैं आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक परिवर्तन लाना चाहते हैं तो हम उस वक्त ला सकते हैं जबकि हम गांधीवाद का और मार्क्सवाद का मिश्रण करें और इसके लिए उन्होंने समाजवाद की बात कही।

उन्होंने कहा कि इस देश को ऐसा समाज चाहिए, समाज की बेहतरी के लिए, इस समाज को उठाने के लिए ऐसा समाजवाद चाहिए जो गांधी जी के सिद्धांतों को सामने रख कर हो।

डा० लोहिया चिंतन और मंथन के बड़े स्वामी रहे हैं। जहां उन्होंने पुस्तकें लिखी हैं वहीं पर उन्होंने बहुत चीजों पर बहुत कठोर ढंग से बातें भी कहीं हैं। उनमें बड़ी स्पष्टता की बात यह रही है कि बड़े निर्भीक रहकर जो कुछ भी उन्होंने कहा, जो कुछ भी किया, कभी उससे वे पीछे नहीं हटे। मुझे याद आता है 1961 की बात है। हैदराबाद में एक बड़े पुराने सोशलिस्ट नेता श्री बद्री प्रसाद जी रहा करते थे, उन्होंने उनको आमंत्रित किया था और हैदराबाद में एक मोहल्ला है जिसका नाम बेगम बाजार है, वहां पर मारवाड़ी समाज के लोग ज्यादा रहते हैं मारवाड़ी समाज के लोगों को वे एड्रेस कर रहे थे, भाषण दे रहे थे और बड़े कठोर शब्दों में टीका-टिप्पणी कर रहे थे। जब उन्होंने अपना भाषण खत्म किया तो मैंने उनसे प्रश्न किया, लोहिया जी आपने जिस कठोरता से बातचीत की है, जहां के समाज की आलोचना की है, उससे आप क्या सोचते हैं कि यो लोग कैसा इंप्रेशन आपके बारे में लेकर जाएंगे तो उन्होंने जवाब दिया कि मुझे इससे कोई मतलब नहीं है। मैंने जो कहना था कह दिया, मैंने जो मुनासिब समझा, जो अच्छा समझा यह कह दिया, इसको मैंने किसी से छिपाया नहीं है। चाहे किसी का दिल उससे दुखता हो, उसकी मुझे कोई परवाह नहीं है। एक बात यह है कि उनकी निष्ठा जो होती थी अपने सिद्धांतों पर, उस निष्ठा के साथ ही वे बात करते थे। वह ऐसे महान व्यक्ति थे। जहां महात्मा जी यह कहते थे कि मैं भरसक प्रयत्न करूंगा राम राज्य की स्थापना के लिए, वहां उनकी निष्ठा इस देश की महिलाओं के उत्थान में इतनी अधिक थी कि वे अक्सर यह कहा करते थे कि मैं सीता-राम राज्य की बात करूंगा। मैं राम राज्य की नहीं बल्कि सीता-राम राज्य की बात करूंगा।

सारे धर्मों के प्रति उनकी निष्ठा थी कि और जब हम स्वतंत्र हुए तो उन्होंने अपने आपको अर्पित किया और महात्मा जी से कहा कि मैं हिन्दू-मुसलमान एकता के लिए अपनी सेवाएं आपको अर्पित करता हूं ताकि आप मेरी सेवाओं का लाभ उठाते हुए मुझे मौका दें कि मैं आपकी सेवा कर सकूं। ऐसे महान व्यक्ति का गुण-गान करने के लिए हम आज एकत्रित हुए हैं। जैसे अध्यक्ष जी ने अभी बात कही कि गुणगान करने से कुछ होता नहीं है, उनके आदर्शों पर, विचारों पर चलने से ही एक अच्छी श्रद्धांजलि होती है। ऐसे महान व्यक्ति जिन्होंने सर्वस्व बलिदान करके, त्याग करके अपने लिए कुछ नहीं पाया. ऐसे महान व्यक्ति के जो सिद्धान्त रहे हैं उनके आदर्श रहे हैं उन पर चलकर हम न सिर्फ एक अच्छी श्रद्धांजलि पेश कर सकते हैं बल्कि देश की सोच में परिवर्तन करके हम अपने आपको उसका एक हिस्सा समझे उसके प्रति स्वयं को अर्पित कर सकते हैं।

इन चन्द शब्दों के साथ मैं श्रद्धांजलि पेश करता हूं।

60

लोहियाः एक गतिशील व्यक्तित्व

—डा० जी० विजय मोहन रेड्डी

......"भारत छोड़ो आन्दोलन" में हम सबने भाग लिया था। हमें क्रांतिकारियों से प्रेरणा मिलती थी। डा० लोहिया एक क्रान्तिकारी थे। युद्धोपरान्त नौसैनिकों का जो विद्रोह हुआ था उससे लोखों लोग सड़क पर आ गये थे। डा० लोहिया ने लोगों का साथ दिया। उस विद्रोह का समर्थन करने वाले वह पहले व्यक्ति थे। यदि समूचे राष्ट्र ने उस विद्रोह का समर्थन किया होता तो विभाजन की नौबत ही न आती और अंग्रेजों को भारत से तभी निकाल दिया गया होता। मैं उस युद्धोपरान्त विद्रोह के बारे में प्रायः सोचता रहता हूं।

"आन्दोलन" का प्रयोजन लोगों को नेतृत्व प्रदान करना था। यदि ऐसा हो गया होता, तो हमारे देश का इतिहास ही बदल गया होता तथा देश विभाजित होने से बच जाता। हम तभी ऐसा शासन स्थापित करने की स्थिति में पहुंच गये थे जिसमें सभी को सभी प्रकार का न्याय प्राप्त होता।

यह सर्वविदित है कि डा० लोहिया जाति-भेद के विरुद्ध संघर्ष को संयुक्त राज्य अमरीका में भी ले गये थे। इससे उनके गतिशील व्यक्तित्व का और मानवतावादी महान विचारों के प्रसार के लिए उनके द्वारा किये गये संघर्ष का पता चलता है। उनका समाजवादी लोकतन्त्र लोकतन्त्र से अभिन्न था परन्तु उसे ठीक से समझा नहीं गया। लेकिन आज विश्व में हो रही घटनाओं से यह सिद्ध होता जा रहा है कि समाजवाद और लोकतंत्र अलग-अलग नहीं हैं और लोकतंत्रीय समाज में ही मनुष्य का सर्वांगीण विकास संभव है।

हमारे दल (तेलुगु देशम) ने डा० लोहिया के विचारों से अत्यधिक प्रेरणा ली है। शक्ति के विकेन्द्रीकरण के रूप में हमारे राज्य ने ग्रामीण जनता में शक्ति अन्तरित कर दी है। डा० लोहिया न केवल भारत के, बल्कि विश्व के महानतम क्रान्तिकारियों में से एक थे। आपने मुझे और मेरे दल को उन्हें श्रद्धांजलि देने का अवसर प्रदान किया है इसके लिए मैं आभार व्यक्त करता हूं।

61

लोहियाः एक मौलिक चिन्तक

—डा० नगेन सैकिया

वस्तुतः वर्ष 1979 में असमिया भाषा के एक समाचार पत्र के सम्पादक ने मुझसे एक लेख लिखने का अनुरोध किया था और मैंने "गणतांत्रिक समाजवादी जातीय मोर्चा" शीर्षक से एक लेख लिखा था। उस समय मुझे डा० राम मनोहर लोहिया की रचनाओं तथा अन्य अनेक लेखों का अध्ययन करना पड़ा था। तब मुझे पता चला कि उस लेख में मैं जिन बातों का उल्लेख करना चाहता था उनका उल्लेख डा० राम मनोहर लोहिया ने बहुत पहले कर दिया था। मैंने अपने आपको बहुत छोटा महसूस किया था।

लोहिया जी में बुद्ध की करूणा थी, मोहम्मद का प्यार था, और शंकर की उग्रता थी। लोहिया जी शासकों और सत्ता लोलुपों के लिए एक आतंक थे। वे गरीबों और दलितों के लिए सबसे बड़ी आशा और आकांक्षा के प्रतीक थे; उनके उद्धारक और प्रेरणा-स्रोत थे तथा कमजोर वर्गों की शक्ति और बेजुबानों की जुबान थे।

उनके जीवनी लेखक श्री ओंकार शरद ने डा० राम मनोहर लोहिया को आधुनिक भारत के मौलिक चिन्तन के इसी रूप का वर्णन किया है। उनकी दृष्टि एक मसीहा और कवि जैसी थी। भारतीय संस्कृति के लम्बे इतिहास के परिप्रेक्ष्य में लोहिया जी स्वयं एक अदम्य मानवतावादी व्यक्तित्व थे और उन्होंने देश के सुखद भविष्य का सपना देखा था जहां मेहनतकश दलित, प्रत्यक्ष और परोक्ष, सभी प्रकार की दासताओं से मुक्त होंगे और उन्हें सब लोगों के साथ समान रूप से रहने का अधिकार प्राप्त होगा। मेहनती और अत्यधिक अध्ययन करने वाले छात्र के रूप में श्री लोहिया ने महान दार्शनिकों, विचारकों और रचनात्मक लेखकों की रचनाओं और विचारों का गहन अध्ययन किया था। श्री लोहिया सच्चे अर्थों में मानवतावादी थे और अपनी बाल्यावस्था से ही भारत की जनता की राजनीतिक स्वतंत्रता और सामाजिक सुधार के पक्षधर थे। उनका अदम्य मानवतावादी व्यक्तित्व जीवन के अंतिम क्षणों तक सक्रिय रहा।

शुरू में उन्होंने अपने आप को एक मार्क्सवादी और समाजवादी के रूप में ढाला, परन्तु उन्होंने अपने आपको मार्क्सवादी अथवा मार्क्स-विरोधी कभी नहीं कहा। उनका यह मानना था कि सच्चे अर्थों में समाजवाद की स्थापना के पश्चात् ही, उसी वर्ग से प्रतिभा का विकास होगा, जिसे अन्य वर्गों की तुलना में पिछड़ा और तुच्छ समझा जाता है। उसी अवस्था में ही भारत भौतिक रूप से समृद्ध हो पाएगा तथा कला, साहित्य, विज्ञान, दर्शन आदि का सर्वांगीण विकास होगा। डा० लोहिया का भारत विविधता लिए हुए पूर्णतया संगठित होगा और इस विभिन्नता में, भौगोलिक, सांस्कृतिक, भाषाई जीविकोपार्जन के साधनों की विभिन्नता होगी और साथ ही सभी देशवासियों में एकता की सशक्त भावना विद्यमान होगी।

भारत में विद्यमान वर्तमान परिस्थितियों के संदर्भ में लोहिया, गांधी जी, आचार्य नरेन्द्र देव और जय प्रकाश नारायण और अधिक प्रांसगिक बनते जा रहे हैं। लोहिया का मुख्य कार्य भारत में समाजवादी दल को नेतृत्व प्रदान करना और भारतीय परिप्रेक्ष्य में इसे स्वतंत्र आधार दिलाना था। यहां तक कि उन्होंने समाजवाद की भावना और इसके सिद्धांतों को फैलाने के लिए प्रशिक्षण देने हेतु आश्रम स्थापित करने की आवश्यकता भी व्यक्त की थी। उन्होंने कहा था, "संघर्ष के बिना कभी भी कोई नई चीज प्राप्त नहीं होती।" वे भारत के लोगों को अन्य देशों के लोगों के बराबर आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक समानता प्रदान करने के वास्ते राष्ट्रवाद के पक्षधर थे। "अंग्रेजी हटाओ" आंदोलन उन्होंने केवल इस विचार से आरंभ किया था कि भारत के लोगों का स्वाभिमान बना रहे। लेकिन कई मर्तबा इसे गलत समझा गया। उन्होंने कहा था, "राष्ट्रवाद की भावना अर्थात् भारतीयता की भावना को तब तक बढ़ावा दिया जाना चाहिए, जब तक कि हमारा राष्ट्र अन्य राष्ट्रों के समान शक्तिशाली नहीं हो जाता और एक विश्व व्यवस्था कायम न हो जाए।..."

डा० लोहिया का मानना था कि एक सुसंगत, उपयुक्त सामाजिक या आर्थिक सिद्धान्त वही है जिससे भारत की अर्थव्यवस्था जैसी पिछड़ी अर्थव्यवस्था की समस्याओं का सामना किया जा सके। वह मौलिक और सृजनात्मक विचारक विश्व के लिए तीन संदेश छोड़ गयाः (1) अहिंसा; (2) समानता; और (3) सबके लिए स्वतंत्रता।

दूसरी बात जिसका मैं जिक्र करना चाहता हूं वह यह है कि ज्यादातर लोगों ने उन्हें एक अदम्य और दृढ़ राजनीतिज्ञ के रूप में देखा था। लेकिन इस कठोर राजनीतिज्ञ के

पीछे एक कवि छिपा था। वे कविता नहीं लिखते थे, लेकिन उनके भाषणों और लेखों में भी जीवन के बेहतरीन भावों के प्रति अनुराग और बोध दृष्टिगोचर होते हैं। सुन्दरता के प्रति लोहिया के विचार काव्यमय थे। उन्होंने लिखा था, "दिन की चकाचौंध से सुन्दरता में कोई बढ़ोतरी नहीं होती। अपितु संध्या का धुंधला प्रकाश ही इसमें आभा लाता है। सुन्दरता चांदनी में मुखरित होती है और पूर्ण चन्द्र तो इसकी पराकाष्ठा है। चन्द्रमा जो प्रत्येक को सुन्दरता के आगोश में लेकर सुन्दरता उड़ेलता रहता है फिर भी स्वयं भोर की निर्मलता को सहेजने में असमर्थ है, जो कि धीमे-धीमे कदमों से आती है और वह भी बिल्कुल एक नई नवेली दुल्हन की भांति लजाती हुई सी, जिसका हमेशा बहुत इज्जत से स्वागत किया जाता है और मैंने इस निर्मल सुन्दरता को अपने दिल में किसी प्रकार की धड़कन के बगैर संजोकर रखा है।"

डा० लोहिया एक अन्तर्राष्ट्रीयतावादी थे और उन्होंने विश्व संसद् की वकालत की थी। वह एक दूरदर्शी थे। काफी पहले ही उन्होंने एक "तीसरे शिविर" की आवश्यकता महसूस की थी। अब इसने गुटनिरपेक्ष आंदोलन का रूप ग्रहण कर लिया है। मैं भारत के इस महान नेता की याद में उन्हें अपनी हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करता हूं।

62

लोहियाः भेदभाव के कट्टर विरोधी

—जी॰ स्वामीनाथन

डा॰ राम मनोहर लोहिया ने जाति, धर्म और लिंग के आधार पर भेदभाव का सदा विरोध किया तथा वे सदा महिलाओं के साथ बराबरी का व्यवहार करने की बात कहते थे।

आज सुबह जब मैं राज्य सभा के सूचना कार्यालय में था तो एक अजीब घटना हुई जिससे मेरे मन में डा॰ राम मनोहर लोहिया की याद ताजा हो आई। एक सदस्य एक महिला के लिए, जो सूचना कार्यालय में उस सदस्य के साथ ही खड़ी थे, "पास" बनवाना चाहते थे। फार्म भरते समय सदस्य ने उस महिला से उसके पति का नाम जानना चाहा। इस पर वह महिला यकायक भड़क उठी और कहाः "आप मेरे पति का नाम क्यों जानना चाहतें हैं?" जब उस महिला को यह बताया गया कि फार्म भरने के लिए उसके पति का नाम लिखना आवश्यक है तो उसने पूछाः "क्या पुरूष के लिए फार्म भरते समय पत्नी का नाम लिखने की भी आवश्यकता होती है? यह भेदभाव क्यों?" डा॰ राम मनोहर लोहिया के निधन के 23 वर्ष बाद भी ऐसा भेदभाव हो रहा है। मैं समझता हूं कि डा॰ राम मनोहर लोहिया की स्मृति में इस फार्म में कल से ही संशोधन कर दिया जाए ताकि यह भेदभाव समाप्त हो।

*** *** ***

जब मुझे इस सभा में बोलने के लिए कहा गया तो मैंने संदर्भ शाखा से उनके भाषणों की संदर्भ-सूची मांगी, ताकि मैं उनके कुछ भाषण पढ़कर उनके व्यक्तित्व से परिचित हो सकूं। मुझे लगभग पांच पृष्ठों की संदर्भ-सूची प्राप्त हुई, जिससे मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि उन्होंने लगभग 1450 विषयों पर भाषण दिए थे। मुझे यह नहीं मालूम कि उन्होंने ये भाषण 2 वर्षों में दिए थे या 4 वर्षों में अथवा 3-1/2 वर्षों के अन्दर ही। सचमुच उनकी प्रतिभा असाधारण थी।

मैं 24 वर्ष तक विधान सभा तथा विधान परिषद् का सदस्य रहा हूं किन्तु मैंने शायद

ही इतने लम्बे समय में 300 या 400 से अधिक विषयों पर भाषण दिए हों। वास्तव में, वह विलक्षण प्रतिभा के धनी थे। ऐसे व्यक्ति को हम अपनी श्रद्धांजलि अर्पित कर रहे हैं। यह एक अच्छा शकुन है।

63

लोहियाः एक सच्चे देश भक्त

—सोमनाथ चटर्जी

डा० राम मनोहर लोहिया भारत के एक महान सपूत, सच्चे देशभक्त एवं हमारे सबसे अधिक प्रभावी सांसदों में से एक थे। एक राजनेता तथा सांसद के रूप में उन्होंने जो प्रयास किए उनमें निर्धनों और दलितों के लिए गहरा दुख तथा एक ऐसे समृद्ध भारत के भविष्य का सपना झलकता था, जो किसी भी प्रकार के विदेशी प्रभुत्व और आर्थिक शोषण से मुक्त हो। उनकी विचारधारा मौलिक थी तथा देश के राजनैतिक विकास में उनका योगदान बहुमूल्या माना जाएगा।

डा० लोहिया की सदैव यह मान्यता रही कि राजनैतिक, आर्थिक और सामाजिक समानता लाकर ही भारत में समाजवादी विचारकों द्वारा परिकल्पित वर्गविहीन समाज की स्थापना की जा सकती है। भारत की गरीबी और जनसंख्या को ध्यान में रखते हुए उन्होंने ऐसी अर्थव्यवस्था पर जोर दिया जिसमें प्रति श्रमिक आय में पर्याप्त वृद्धि हो, ताकि हम भारतीय अच्छा जीवन व्यतीत कर सकें। उन्होंने सदैव इस बात पर जोर दिया कि आत्म-निर्भर होकर ही भारत अपनी समस्याएं सुलझा सकता है। वह आत्मनिर्भरता के कट्टर पक्षधर थे। उन्होंने लोगों के रहन-सहन का स्तर बढ़ते रहने की अपेक्षा अच्छे रहन-सहन पर बल दिया।

डा० लोहिया राजनैतिक शक्ति जनता को हस्तांतरित किए जाने के पक्षधर थे तथा उन्होंने शासन की चार स्तरीय व्यवस्था अपनाने की बात कही थी। उन्होंने राष्ट्रीय समस्याओं के समाधान हेतु केन्द्रीय सरकार, प्रान्तीय और क्षेत्रीय समस्याओं हेतु प्रान्तीय सरकार, कानून और व्यवस्था की आम समस्याओं हेतु जिला प्रशासन एवं लघु उद्योगों तथा कृषि सहित शेष समस्याओं हेतु ग्राम प्रशासन की व्यवस्था

की परिकल्पना की थी, जिसमें शक्तियों के इस प्रकार व्यापक वितरण से प्रशासन के विकेन्द्रीकरण में मदद मिलेगी। सत्ता के केन्द्रीयकरण के लिए हाल ही में किए गए प्रयासों को ध्यान में रखते हुए उनके विचार और अधिक प्रासंगिक हो गए हैं।

उद्योग के क्षेत्र में, डा० लोहिया ने अपने पूरे राजनैतिक जीवन में बड़े उद्योगों के राष्ट्रीयकरण की पैरवी के साथ-साथ कई बार देश के तमाम उद्योगों के राष्ट्रीयकरण की भी पैरवी की, ताकि अच्छे औद्योगिक संबंध स्थापित हो सकें तथा पूंजीपतियों के शोषण से बचा जा सके। डा० लोहिया के विचारों में लघु उद्योगों की महत्वपूर्ण भूमिका थी। उन्होंने जीवन भर इन्हें प्रोत्साहित किया। वे मशीनों के विरुद्ध नहीं थे, किन्तु उनके अनुसार मशीन को मनुष्य का दास होना चाहिए न कि मनुष्य को मशीन का।

वे एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था चाहते थे जिसमें कोई व्यक्ति किसी का शोषण न कर सके। वे जन्म, सम्पत्ति तथा पेशे के आधार पर भारतीय समाज के विभाजन के विरुद्ध थे और उनका विश्वास था कि एक वर्गहीन समाज ही हमारे समाज में विद्यमान अवरोधों, जो विभिन्न समुदायों को पृथक रखे हुए हैं, को कुशलतापूर्वक तोड़ सकता है और जन आंदोलन के लिए राष्ट्र को प्रेरक शक्ति प्रदान कर सकता है।

वे हमेशा हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए संघर्ष करते रहे और भारत की स्वतंत्रता प्राप्ति और विभाजन के पश्चात उन्होंने देश के विभिन्न भागों में प्रमुख समुदायों के बीच संबंध सुधारने के लिए लगातार अनथक कार्य किया।

डा० लोहिया ने सामंतवाद, सभी प्रकार के दमन और समाज तथा लोगों को बांटने वाले विचारों का विरोध किया। हमें उनके जीवन तथा कार्यों ने लोगों की बेहतर ढंग से सेवा करने की प्रेरणा दी। अतः संसद में अपने कर्तव्यों और कार्यों के निर्वहन में उनकी शिक्षाओं का पालन करना हमारे लिए उचित होगा।

मैं इस महान भारतीय को अपनी भाव-भीनी श्रद्धांजलि अर्पित करता हूं।

64

लोहिया : क्रांतिकारियों में सिरमौर

—प्रो॰ एन॰ जी॰ रंगा

महान देशभक्त, क्रांतिकारी और सांसद राम मनोहर लोहिया जी को श्रद्धांजलि अर्पित करना हम सभी के लिए गौरव की बात है।

मुझे दुख है कि वह इतनी जल्दी चले गए किन्तु अपने जीवन के थोड़े से वर्षों में वह इतनी जीवन्त जिन्दगी जिए कि अपने पीछे बलिदान, मौलिक विचार और नयेपन एवं मौलिक संगठनात्मक तरीकों की महान गाथा छोड़ गए। उनकी मैत्री मेरे जीवन का सुखद अनुभव था। वर्षों पहले, शायद 1936 में जब मुझे समर्थन देने वाले वरिष्ठ कांग्रेसी बहुत कम थे, उस समय वह मेरी मदद को आगे आए और उन्होंने देश में किसान आन्दोलन को विकसित करने के मेरे प्रयत्नों को बल दिया। उस समय वह सोशलिस्ट पार्टी के सोशलिस्ट समाचारपत्र के सम्पादक थे। हमारी मुलाकात कलकत्ता में हुई। वह मुझसे गले मिले और उस राज्य में किसानों के नेताओं, विशेषकर सोशलिस्टों से मरी मुलाकत करवाई और इस प्रकार मेरे लिए अखिल भारतीय किसान कांग्रेस की एक शाखा विकसित करना सम्भव हुआ। बाद में इसमें कम्युनिस्ट, उनके अपने मित्र तथा सोशलिस्ट भी आ गए और इस प्रकार उन्होंने बंगाल में अखिल भारतीय किसान आन्दोलन के मामले में महत्वपुर्ण भूमिका अदा की। उनके बारे में यहां बहुत सी बातें कही गई हैं किन्तु किसान आन्दोलन को सक्रिय बनाने में उनकी भूमिका के बारे में कुछ भी नहीं कहा गया।

संसद में उनके आगमन से एक नए युग की शुरू आत हुई। तब तक संसद में मेरी ही तरह विभिन्न दलों के अधिकांश सदस्य केवल अंग्रेजी में ही बोला करते थे। जो सदस्य बहुत अच्छी तरह अंग्रेजी में बोल नहीं पाते थे वे भी अध्यक्ष और सदस्यों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित रखने के लिए प्रयास करके अंग्रेजी में ही बोलते थे। डा॰ लोहिया ने तथा अन्य नेताओं ने अपने उद्गार हिन्दी में व्यक्त किए और इस तरह हिन्दी में स्वयं को अभिव्यक्त करने का युग आरम्भ हुआ। उन्होंने केवल हिन्दी में बोलना शुरू किया और सभी अवसरों पर हिन्दी में बोलने पर जोर देते थे, सिवाय उस समय के जब

उन्हें अंग्रेजी में कुछ उद्धृत करना पड़ता था। मैं यह नहीं कहना चाहता कि हिन्दी में बोलना सबसे महत्वपूर्ण क्रांतिपूर्ण सफलता थी, किन्तु यह एक क्रांतिकारी कदम अवश्य था। हम में से अनेक जो हिन्दी नहीं बोल सकते थे आश्चर्य से यह सोचने लगे कि इस पर गैर-हिन्दी भाषा लोगों की क्या प्रतिक्रिया होगी। सौभाग्य से, इतिहास ने यह सिद्ध कर दिया कि गैर-हिन्दी भाषी लोगों ने भी उनके द्वारा की गई पहल की प्रशंसा की। चूंकि राष्ट्र नेहरू जी के "त्रिभाषा" सूत्र के प्रति प्रतिबद्ध था और गैर-हिन्दी भाषा लोगों को यह छूट मिल गई थी कि वे जब तक चाहें अंग्रजी में बोल सकते है। उस के बाद तो प्रधानमंत्री सहित हमारे प्रमुख मंत्रियों ने भी हिन्दी में बोलना शुरू कर दिया था।

वह क्रांतिकारियों के सिरमोर थे। हम समझते थे कि भारत के लिए अहिंसा से स्वतंत्रता प्राप्त करने में हमने एक अत्यंत महान, अनूठी और क्रांतिकारी भूमिका अदा की है और हमने भारत के लिए स्वतंत्रता प्राप्त की और उससे हम संतुष्ट भी हो गए थे। किन्तु वास्तव में स्वतंत्र भारत वैसा अखंठ भारत नहीं था जिसके लिए भगत सिंह और अनेक अन्य स्वतंत्रता सेनानी तथा महात्मा गांधी स्वतंत्रता संग्राम में कूदे थे। इस प्रकार विभाजित हुए भारत में दिल्ली में सरकार चलाने में अधिकांश लोग संतुष्ट थे लेकिन लोहिया जी संतुष्ट न थे। उन्होंने महाराष्ट्र के तत्कालीन मुख्यमंत्री और दिल्ली में अनेक मंत्रियो की सलाह के बावजूद गोवा की स्वतंत्रता के लिए संघर्ष जारी रखने पर बल दिया और गोआ पर विदेशी शासन समाप्त हो गया । उनके सभी अनुयायियों में अदम्य साहस था और वह इनके नेता थे। यह एक अनुठी सफलता है। भारत को शक्तिशाली एवं अपने स्वप्नों के अनुरूप बनाने के लिए ऐसा संघर्ष आज भी अनिवार्य है। हम नही जानते कि अगला लोहिया कौन होना, लेकिन जो कुछ अभी तक अर्जित नहीं किया जा सका है उसे अर्जित करने के लिए इतिहास निश्चित रूप से किसी व्यक्ति का आह्वान करेगा और यह जरूरी नहीं कि वह भारत में हो लोहिया एक अद्भुत व्यक्तित्व वाले इन्सान थे तथा वह दूसरों के लिए प्रायः परेशानी पैदा कर दिया करते थे। जवाहर लाल नेहरू तथा जयप्रकाश नारायण के लिए वह परेशानी पैदा करते रहते थे। जैसाकि मैंने कहा है कि वह विद्रोहियों में सिरमौडर विद्रोही थे और अन्ततः वह एक विद्रोही के रूप में ही मरे।

इस समारोह के लिए उचित समय पर इस पुस्तक को प्रकाशित करने के लिए पहल करने पर मैं अपने संसदीय ग्रुप को बधाई देता हूं। जीवन वृत्त के अंतिम वाक्य में उन्होंने कहा है कि डा० लोहिया अविवाहित थे, उनके पीछे कोई परिवार नहीं रहा, उन्होंने अपने पीछे कोई सम्पत्ति भी नहीं छोड़ी। उन्होंने अपने पीछे जो छोड़ा, वे थे केवल उनके महान विचार। इसके अतिरिक्त, उन्होंने अनेक अच्छे अनुयायी भी छोड़े। उनमें से एक है हमारे अध्यक्ष महोदय तथा दूसरे हैं श्री जार्ज फर्नान्डीज। बहुत से अन्य अनुयायी भी हैं जो हैं।

हमारे राष्ट्रीय जीवन और विशेषकर हमारे संसदीय जीवन में अत्यंत महत्वपूर्ण स्थानों पर मैं आशा करता हूं और मुझे विश्वास है कि ने सिर्फ उनके अनुयायी बल्कि हमारे अनेक युवा राजनीतिज्ञ तथा संसदविद् भी देश और देशवासियों के हितार्थ डा० लोहिया द्वारा दर्शाये गये मार्ग का अनुसरण करेंगे।

मैं अपने पुराने साथी एवं घनिष्ठ मित्र तथा महात्मा गांधी एवं श्री जवाहरलाल नेहरू के साथी डा० लोहिया के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता हूं।

65

लोहिया—हिन्दुस्तान के महान सपूत

—इब्राहिम सुलेमान सेट

मैं इस बात को अपने लिए बड़ी असादत समझता हूं कि आज मुझे हिन्दुस्तान के महान सपूत अजीमफरजंद को खराजेअकीदत पेश करने का मौका मिल रहा है। मुझे एक शेर याद आ रहा है, जो मैं समझता हूं इस मौके के लिए ज्यादा मुनासिब रहेगा। शेर में कहा है:—

"मत सहल इसे समझ, फिरता है फलक बरसों,
तब खाक के पर्दे से इन्सान निकलता है।।"

ऐसे महान इन्सान और इजीम इन्सान थे लोहिया जी। उन्होंने जिन्दगी भर मुल्क की खिदमत की और मुल्क की खिदमत करते-करते दुनिया से रुखसत हो गए। मुझे कहने की जरूरत नहीं कि लोहिया जी हिन्दुस्तान की आजादी के सबसे बड़े मुजाहिद थे, कमाण्डर थे, फाईटर थे और उन्होंने जंगे-आजादी में बढ़-चढ़ कर हिस्सा लिया था। जहां तक उनकी क्वालिटी का ताल्लुक है, दिमाग की खास सलाहियतें शख्सियत में मौजूद थीं; जहां तक उनकी मुकर्रिर का ताल्लुक है वे जादूबयां मुकर्रिर थे, जो दिलों को जीत लेते थे और वे समाज की ऊंच-नीच के खिलाफ थे और इन्सानी बिरादरी पर यकीन रखते थे। वे ऐसे अजीम सपूत थे। आज वे नहीं हैं, लेकिन उनके काम बाकी हैं; उसूल जिन्दा हैं, वे कभी मरने वाले नहीं हैं। जरूरत इस बात की है कि आज जो हालत हैं उनके तहत हम उन उसूलों पर कायम हो जाएं, उन्होंने जो नक्शेकदम छोड़े हैं उन पर अमल करने की जरूरत है ताकि हिन्दुस्तान हम सबके लिए एक बेहतर मुल्क बन सके। आज सबसे बड़ी जरूरत हिन्दू-मुस्लिम इत्तेहाद की है, वे जिन्दगीभर इत्तेहाद के लिए कोशिश करते रहे। मैं कहूंगा कि उनके उसूलों पर काम करना चाहिए ताकि हम कामयाब हो सकें और आगे बढ़ सकें। एक शेर है—

"हयात लेके चलो, कायनात लेके चलो।
चलो तो सारे जमाने को साथ लेके चलो।।"

हम चाहते हैं और हमें चाहिए कि आज उन उसूलों पर कारबंद हों ताकि हम कह सकें कि हम सही तौर पर लोहिया जी से मुहब्बत रखते हैं और अकीदत रखते हैं।

66

लोहिया—एक महान समाजवादी चिन्तक

—डा० राम सजीवन

डा० राम मनोहर लोहिया एक महान समाजवादी चिन्तक थे। वह जातिहीन समाज की स्थापना करने के लिए संघर्ष करते रहे। उन्होंने सामाजिक, आर्थिक समानता लाने के लिए बहुत कठोर परिश्रम किया। उत्तर प्रदेश में बांदा जिले में चित्रकूट नामक एक स्थान है, यह बहुत धार्मिक स्थान माना जाता है, तुलसीदास जी ने वहीं बैठकर रामायण लिखी थी। डा० लोहिया ने अपने नए विचारों के अनुकूल रामचरित मानस की व्याख्या करने की कोशिश की थी। डा० लोहिया ने उस चौपाई को बिल्कुल नया रूप देने की कोशिश की थी जिसकी बहुत ही गलत व्याख्या की जाती है। वह चौपाई थी "ढोल, गंवार, शूद्र, पशु, नारी, सकल ताड़ना के अधिकारी।" उन्होंने इस चौपाई से ये प्रेरणा ली कि समाज के लिए यह व्याख्या उचित नहीं है। यह समाज में सामाजिक न्याय और आर्थिक न्याय देने के विपरीत हैं। इस प्रकार इस चौपाई और इस तरह की अन्य चौपाइयों का नया विश्लेषण करके उन्होंने नई सोच और नये चिन्तन की शुरूआत करने की कोशिश की। उनके विचारों से हम लोगों को काफी प्रेरणा मिली और उनके अनुसार कुछ ठोस कार्य भी किये गये। डा० लोहिया ने जिस समाजवादी चिन्तन की धारा की शुरूआत की थी, वही समाजवादी चिन्तन की धारा आज कमजोर होती नजर आ रही है। इस समाजवाद की धारा को थोड़ा तेज होना चाहिए था।

आपने डा० लोहिया को याद करने का प्रयास किया है और यह बैठक बुलाकर हम लोगों को उन्हें याद करने का अवसर दिया है। यह निश्चित रूप से एक बड़ा काम किया गया है। हम इस क्षण पर गर्व महसूस कर रहे हैं। समाजवादी, समानतावादी चिन्तन को आगे बढ़ाने के लिए डा० लोहिया ने जो काम किया है, उसको, उनसे प्रेरणा लेकर आगे बढ़ाया जाये। मैं डा० लोहिया को अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता हूं।

67

लोहिया — एक महापुरुष

—यादवेन्द्र दत्त

लोहिया जी से मिलने का सौभाग्य मुझे जुलाई, 1957 में प्राप्त हुआ, थोड़ी देर बात करने का अवसर भी मिला। उस महापुरुष की बात से स्पष्ट हो गया कि वह मानव नहीं, महा मानव हैं और महा-मानव का सबसे बड़ा लक्ष्य है बहुमुखी समाज का आमूल-चूल परिवर्तन और परिवर्तन का आधार है मानव विचार और उस परिवर्तन की आधारशिला है समन्वय। इस प्रकार के समाज की रचना उस महामानव ने करने का प्रयास किया। भले ही लोगों ने उनके जीवनकाल में उनकी बातों पर कम विश्वास किया, लेकिन आज लोग उनकी बातों पर विश्वास कर रहे हैं। उन विचारों के आधार पर पाश्चात्य देश भी अपने-अपने ढंग से परिवर्तन करने का प्रयास कर रहे हैं।

इस देश की ऐतिहासिक परंपरा रही है विकेन्द्रित राज्य की रचना, जिसको उन्होंने चौखंभा राज्य कहा है। उन्होंने इसकी कल्पना की है और उन्होंने ही पहले-पहल यह विचार रखा। देश में बदलाव लाने के लिए वह महा-मानव पहला व्यक्ति है जिसने इस देश में सारे विरोध पक्ष को इकट्ठा करके खड़ा किया, जिसका पहला प्रयोग उत्तरप्रदेश में संविद सरकार के रूप में हुआ। ऐसे महापुरुष के जीवन काल में व्यवस्था में परिवर्तन लाना स्वाभाविक है, परन्तु हम लोगों की कमजोरी भी है देश के अंदर कि हम धीरे-धीरे महा-मानव को भगवान बना देते हैं और उसकी पूजा अर्चना तो जरूर कर लेते हैं, परन्तु उसके कथनों के अनुसार चलते नहीं हैं। मैं समझता हूं कि सही श्रद्धांजलि उस महा-मानव के लिए यह होगी कि सारे लोग समन्वयवाद और मानव वाद के आधार पर, जिसकी घोषणा दीनदयाल जी ने की थी, चलने का प्रयास करें। और उस आधार पर देश में वह परिवर्तन लाया जाए, जिस परिवर्तन का कदम देश में उठ रहा है, तभी हम समझेंगे कि हम लोगों ने सच्ची श्रद्धांजलि उस महामानव को अर्पित की है।

इन शब्दों के साथ, मैं भारतीय जनता पार्टी की ओर से और अपनी ओर से उस बहुमुखी महा-मानव के प्रति अपने श्रद्धांजलि पुष्प अर्पित करता हूं।

अनुक्रमणिका

अ

अंग्रेजी हटाओ 33, 47, 440
अकबरपुर (फैजाबाद) 3, 36, 52
अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी 5, 69
अखिल भारतीय कांग्रेस समिति 95, 96
अखिल भारतीय देशी राज्य लोक परिषद 117
अखिल भारतीय सोशलिस्ट पार्टी 37
अगस्त क्रांति 75, 112
अच्युतपटवर्धन 105, 111
अटल बिहारी वाजपेयी 383
अटलांटिक कैम्प 244
अणु हथियार 224
अतुल्य घोष, श्री 143, 150
अनंगपाल 221

अनुदान की मांगें

रक्षा मंत्रालय 220-28
विदेश मंत्रालय 235-42
विधि मंत्रालय 229-34
सूचना व प्रसारण मंत्रालय 212-24
अनुपूरक अनुदान की मांगें (रेलवे) 212-14
अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों का उत्थान 152
अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति 243-254
अफगानिस्तान, 249
अफ्रीका 131, 245, 246, 248
अफ्रेशियाई 241
अब्दुल फ़ज़ल 197
अमर भारत 117
अमरीका 132, 134, 160, 167, 176, 179, 182, 183, 190, 230, 235, 238, 239, 240, 241, 248, 249, 303, 420

अमरीकन इंस्टिट्यूट आफ पैसिफिक रिलेशंस 97
अमृत बाजार पत्रिका 119
अरब देश 244
अरुणा, आसफ अली 105
अल-अमीन 220
अल्जीरिया 244
अल्पसंख्यक 35
अल्मोड़ा 104
अविश्वास प्रस्ताव 132
अशोक मेहता, श्री 164
अशोक सेन, श्री 141, 143, 149, 210
अन्तर्राष्ट्रीय आयोग 192
अन्तर्राष्ट्रीय इतिहास आयोग 192
अन्तर्राष्ट्रीय जमींदारी 245
अन्तर्राष्ट्रीय नीति 44

आ

आचार्य कृपलानी 97, 110
आचार्य नरेन्द्र देव 40, 109, 111, 114, 116
आचार्य विनोबा 79
आणविक परीक्षण 247
आदिवासी 137, 152, 159, 185,
आन्ध्र प्रदेश 157, 183
"आधा घोड़ा आधा इंसान" 40
"आधी खोपड़ी की सरकार" 31
आनुपातिक न्याय 22
आय वितरण समिति 158

आर इलिन प्रो० डीयकनाफ 193
आरक्षण 70, 89, 93
आर्थिक जांच की राष्ट्रीय कौंसिल 159
आर्थिक निर्यातवाद 17
आस्ट्रेलिया 226, 236, 239, 245, 246

इ

इंगलिस्तान, 176, 229, 230, 238, 247
इंटरनेशनल आसपेक्टस आफ कम्यूनिज्म 76
"इंटरवल ड्यूरिंग पालिटिक्स" 9
"इंडियंस आउट साइट इंडिया" 9
इंदिरा गांधी, श्रीमती 380
इकबाल 424
"इकोनेमिक्स आफ्टर मार्क्स" 5, 16, 17, 76
इजराइल 244
इटली 239
"इनर लाइन" प्रतिबंध 43
इन्दु लाल याजनिक, श्री 210
इलाहाबाद 96, 119, 187, 190, 204

उ

"उग्रवादी सृजनशीलता" 15
उड़ीसा 141, 144, 146, 157, 158, 182, 183
उत्तर प्रदेश 113, 157, 182, 230
उद्धरण, डा० लोहिया के भाषणों से:
अन्न नीति 368-69
इतिहास 365
औद्योगिक नीति 368
कीमतों में वृद्धि 369-70
चापलूसी 375
जनता और सरकार 367-68
जमीन नीति 368
भ्रष्टाचार 370-71
योजना 368
राष्ट्रीयकरण 368
लोक सभा 366-67
विदेश नीति 372-74
शिक्षा नीति 370
समाजवाद 365
सामाजिक क्रांति 371-72
स्त्री पुरुष में समानता 374
उपनिषद 168
उपभोक्तावाद 88
उपेन्द्र, श्री पी० 26

ए

ए० के० गोपालन 389
"एक घंटा देश को, बाकी अपने पेट को" 34
एडोल्फ हिटलर 292, 293, 294
एन० जी० रंगा, प्रो० 381
एन० संजीव रेड्डी 10
एन० सी० चटर्जी 391
एन्थनी, श्री फ्रैंक 391
एशिया 131, 132, 245

क

कबीर, 212, 215, 422
कफील अहमद कैफी, 310
कठैत, श्री नन्दराम 118
कर्पूरी ठाकुर, 113
कमला देवी, 96
कम्पनी (संशोधन) विधेयक, 291
कम्युनिस्ट, 170, 172, 295
कम्युनिस्ट चीन, 132
कम्युनिस्ट पार्टी, 149
"कम्युनिस्ट मैनिफैस्टो", 84
कराची प्रस्ताव, 166
कलकत्ता क्रांति, 49
"कल्याणकारी राज्य", 22
कश्मीर 144, 197
कांग्रेस, 150, 172

"कांग्रेस एंड वार", 9
कांग्रेस समाजवाद, 114
कांग्रेस सोशलिस्ट, 27
कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी, 4, 6, 16, 27, 43, 69, 75, 77
कानूनी चंदा, 299, 300
कामराज, 330
कार्ल मार्क्स, 21, 409
काशी विश्वविद्यालय, 4, 183
किंग्सले मार्टिन साहब, 238
किदवई, श्री रफी अहमद, 119
किसान, आंदोलन, 381
किसान मजदूर प्रजा पार्टी, 114
कृष्ण मेनन, 238,
कृष्णमाचारी, श्री 147, 150, 154, 297, 298, 299, 330
के० मनोहरन, 384
केन्द्रीय निगरानी कमीशन, 181
कैलिफोर्निया, 236, 245
कैशियस क्ले, 205
कोलम्बो, 132
कोशाम्बी, 195
क्रांति 147, 148
क्रांति में समानता की अवधारणा 23
क्रिप्स योजना, 83, 104

ख

खां, श्री शाहनवाज, 190
खाद्य स्थिति 334, 343
खान अब्दुल गफ्फार खां, 269, 392
खेतिहर मजदूर, 158
"खोज परिषद", 49
खोबरागड़े, श्री बी० डी०, 405

ग

गंगाशरण सिंह, श्री 404
गांधी, श्रीमती इन्दिरा 380
गांधी जी, 3, 4, 5, 8, 14, 18, 23, 25, 27, 28, 30, 31, 38, 70, 74, 75, 85, 90, 93, 97, 98, 99, 104, 108, 109, 111, 112, 393, 398
'गांधीज्म एंड सोशलिज्म', 9, 76
गांधीवाद, 394, 436
गिरी, श्री वी० वी०, 395
"गुट निरपेक्षता", 34
गुरु नानक, 212
गुहा, प्रो० समर 74
गैर-कांग्रेसी सरकार, 393
गैर-कांग्रेसवाद की नई रणनीति, 25
गोपालन, श्री ए० के० 389
गोरे मुरारि, श्री 400
गोवा, 87, 113
गोविन्द मेनन, 329

च

चक्रवर्ती, श्रीमती रेणु, 182
चटर्जी, श्री ए० पी० 401
चटर्जी, श्री एन० सी०, 391
चटर्जी, श्री सोमनाथ 444
चतुर्वेदी, श्री जगदीश प्रसाद 109
चांदीवाला, श्री बृजकृष्ण, 115
"चाइना एंड नार्दन फ्रंटियर्स", 9
चाणक्य, 136
चिंतामणि पाणिग्रही, 49
चिरंजी लाल बाजूरिया, 202
"चीन में विस्तारवाद के दो हजार वर्ष", 120
चीनी कैम्प, 249
चौधरी चरण सिंह, 113

छ

छपरा, 159
छात्र आंदोलन, 182
छोटी मशीनों वाली इकाइयां, 9

ज

जगजीवन राम, श्री, 190
जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी, 109
जनगणना, 157
"जनता पत्र", 115
जनरल कौल, 221
'जनवाणी दिवस', 10
जयप्रकाश नारायण, श्री 75, 79, 80, 82, 88, 114, 447
जर्मनी, 94, 113 132 176, 291, 292, 294
जवाहर लाल नेहरू, 314, 413, 447, 448
जाकिर हुसैन, डा० 414
"जाति उन्मूलन", 54
जाति और भाषा, 148
जाति प्रथा, 136
"जाति प्रथा समाप्त करो", 89
जातिवाद, 60, 88, 152, 153
जार्ज फर्नांडीज, 19, 131, 310, 447
जीवन दर्शन, 46
जीवन बीमा निगम, 347
ज्योतीशचन्द राय, 142

ट

टंडन पाठशाला, 3
टैम्स, 155

ड

"डाउन विद आर्मामिंट्स", 5
डालर, 243
डिमाल, 238
डेवेलपिंग इकानोमी, 175

त

तमिलनाडु, 159
ताशकंद, 167
तिब्बत, 134, 135, 244, 245
"तीन आने बनाम पन्द्रह आने", 90
"तीसरा कैम्प", 9
तीसरी लोक सभा, 9
तैमूर, 222
त्रिपाठी, श्री सत्यदेव 182

थ

"थर्ड कैम्प इन वर्ल्ड अफेयर्स" 9

द

दंडवते, प्रो० मधु 14
दक्षिण कोरिया, 236
दक्षिण वियतनाम, 236
दयानंद 212
दामोदरन, श्री के०, 397
"दि कास्ट सिस्टम", 9
दि गिल्टी मैन आफ इण्डियाज पार्टीशन, 9, 76
दिवे, श्री मधुकर, 37
दिल्ली, 136, 159, 177, 185, 233
दिल्ली विश्वविद्यालय, 182
"द्वितीय विश्वयुद्ध", 16
द्विवेदी, श्री सुरेन्द्रनाथ 43, 390
देसाई, श्री मोरारजी 113
दैनिक "आज" 120
दैनिक नवभारत 117
दैनिक "हिन्दु" 114
द्रविड़ 197
द्रविड़ मुनेत्र कड़गम 127

ध

धर्म निरपेक्षता 57

न

नंदा, श्री गुलजारी लाल 120, 161, 165
नई प्रौद्योगिकी, 17
नकली संस्कृति 206
नजमा हेपतुल्ला, 424
"नमक और सत्याग्रह" 113
नागा, 132, 197
"नासा", 90
निरंतर सिविल नाफरमानी 9
निर्धनों एवं दलितों के प्रतिनिधि 28
निवारक नजरबंदी अधिनियम 50
निःशस्त्रीकरण 247
नीलम संजीव रेड्डी 380
नेपाल 249
नेपाली कांग्रेस 37
नेशनल हेरल्ड 119
नेहरू 60, 64, 66, 67, 75, 77, 79, 82, 95, 96, 97, 98, 99, 101, 103, 104, 105, 106, 107, 108, 109, 110, 114
"नेहरू के बाद, कौन"? 20
"नोट्स एंड कमेंट्स" 9
नौकरशाही 208
नौगांव 117
न्यायपालिका 230

प

पंचमढ़ी सम्मेलन 85
पंचवर्षीय योजना 152, 179, 181, 243
पंचवर्षीय योजना (तृतीय) 355-364
पंजाब 176
पटना 67
पटनायक, श्री किशन 130
पट्टम थाणु पिल्लै, श्री 64
पटेल, श्री दह्याभाई 396
पत्रिका "जन" 120
पद्मिनी 221
पन्द्रह आने बनाम तीन आने 29
पर्यावरण 22
परिवार नियोजन 183
पांडिचेरी 185
पांडेय, श्री विश्वनाथ 185
पाठलिंग, श्री 165
पाकिस्तान 56, 57, 134, 163, 181, 194, 223, 225, 240, 242, 243, 244, 246, 250, 251, 253, 257, 262, 264, 270, 271, 276, 281, 327, 331, 332, 352, 372, 374
पाणिग्रही, श्री चिन्तामणि 49
पासवान, श्री राम विलास 431
पी॰ उपेन्द्र 26
पी॰ सी॰ घोष, डा॰ 78
पीपल्स प्रेस ऑफ इंडिया 117
पुरूषोत्तम दास टंडन, श्री 65
पूंजीवाद 131, 144, 190, 207, 297, 298, 300
पूंजीवाद अथवा साम्यवाद 22
पूर्वी अफ्रीका 223
पूर्वी पाकिस्तान 39
पूर्वी बंगाल 224
प्रकाशवीर शास्त्री 281
प्रजा समाजवादी दल 115
प्रजा सोशलिस्ट पार्टी 6, 50, 79, 80
प्रदेश कांग्रेस कमेटी 118
प्रस्ताव
अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति संबंधी प्रस्ताव 243-54
देश में खाद्य स्थिति संबंधी प्रस्ताव 334-43
पाकिस्तानी सेनाओं द्वारा कच्छ सीमा पर आक्रमण संबंधी प्रस्ताव 255-61
मंत्रिपरिषद् में अविश्वास का प्रस्ताव 123-40, 141-51

व्यक्तिगत मासिक आय की सीमा निर्धारित करने हेतु समिति की नियुक्ति करने के बारे में प्रस्ताव 162-72
सरकारी उपक्रम संबंधी प्रस्ताव 344-50
प्रो॰ आई॰ एम॰ डाएकोनेफ 196

फ

फर्नांडीज, श्री जार्ज 19, 426
फर्रुखाबाद 9
फार्मोसा 246
"फारिन पालिसी" 9
"फावड़ा, जेल और वोट" 15
फासिज्म 100, 102, 103
फासीवाद 99, 101, 102, 104, 107
फूलपुर, 140
फ्रांस, 132, 137, 238
"फ्रेगमेंट्स आफ ए वर्ल्ड माइंड" 9
फ्रैंक एन्थनी 391
फैजाबाद 114

ब

बंगला देश में उग्र आन्दोलन 39
बंगाल 155, 182
बद्रीनाथ 412
बनारस 159, 187
बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय 3
बम्बई 113, 131, 190
बर्मा 168, 241
बर्लिन विश्वविद्यालय 4, 21, 113
बरार, श्री नरेन्द्र सिंह 406
बसु, श्री चित्त 406
"बागी रेडियो" 75
बाजपेयी, श्री अटल बिहारी 383
बिहार 113, 157, 158
बी॰ सत्यनारायण रेड्डी 52
बुद्ध 46
बुन्देलखण्ड 117
बोमडीला 132, 137
ब्रिटिश इंडिया कारपोरेशन 202
ब्रिटिश राष्ट्रमंडल 241
ब्लैक मैरिया 95

भ

भंडारी, श्री सुन्दर सिंह 398
भंडारे, श्री मुरलीधर सी॰ 69
भारत के प्रचार माध्यम 20
भारत, गोवा और नेपाल स्वतंत्रता आंदोलन 6
भारत छोड़ो आन्दोलन 5, 49, 69, 83, 379, 380, 438
भारत पाकिस्तान का फेडरेशन 38, 57, 250-51, 257, 258, 259, 273, 282, 284
भारत में समाजवाद 33
भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस 4, 5, 69, 82
भारतीय समाजवादी आन्दोलन 76, 80
भारतीय समाजवादी दर्शन 33
भाषण-विषय, डा॰ लोहिया के

अनुपूरक अनुदान मांगें (रेलवे) 212
अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों का उत्थान 152
अंतर्राष्ट्रीय स्थिति 243
कच्छ सीमा पर आक्रमण 255
कंपनी (संशोधन) विधेयक 297
केरल में राष्ट्रपति शासन की उद्घोषणा 323
चीन व पाकिस्तान द्वारा भारतीय भूमि पर अवैध कब्जा 271
छात्र आन्दोलन 182
तृतीय पंचवर्षीय योजना का मध्यावधि मूल्यांकन 355
देश में खाद्य स्थिति 334
निवारक नजरबंदी (जारी रखना) विधेयक, 305
पंजाब राज्य का पुनर्गठन 351
पेटेन्ट्स विधेयक 317
प्रेस परिषद् विधेयक 311
बजट सामान्य बहस 198
भारत द्वारा राष्ट्रमंडल त्याग 262

भारत पाकिस्तान में युद्ध विराम 262
भारतीय इतिहास की आलोचना 192
भ्रष्टाचार 173
मंत्रिपरिषद् में अविश्वास 123, 141
रक्षा मंत्रालय के लिये अनुदान मांगें 220
राष्ट्रीय आय का विवरण 155
रिक्शा चालन 182
विदेश मंत्रालय के लिये अनुदान मांगें 235
विधि मंत्रालय के लिये अनुदान मांगें 229
व्यक्तिगत मासिक आय की सीमा का निर्धारण 162
शिक्षा मंत्री के भारत के क्षेत्रफल संबंधी वक्तव्य 271
संविधान (संशोधन) विधेयक 278, 281, 285, 290
सरकारी उपक्रम समिति 344
सूचना व परसारण मंत्रालय के लिये अनुदान मांगें 215
"भूमिगत अखिल भारतीय कांग्रेस समिति" 70
भूमिगत रेडियो स्टेशन 5
भीमराव अम्बेडकर 66, 70
भूदान आन्दोलन 79

म

मंगोल 197
मंडल आयोग रिपोर्ट, 78
मंडल, श्री धनिक लाल 46
मंत्रिपरिषद् में अविश्वास का प्रस्ताव 123
मजदूर पार्टी, 238
मजदूर संगठन 38
मणिपुर सत्याग्रही समिति 50
मध्यकालीन युग 192
मध्यप्रदेश 117, 157, 158
मधुकर दिघे 37
मधु लिमये 81, 94, 389
मनी, श्री ए० डी० 405
मनोहरन, श्री के० 384
मसानी, श्री एम० आर० 117
मलेरिया, के० डी० 318, 319
महात्मा गांधी 114, 175
महावीर, 212
महासंघ 251
महिलाओं के लिये आरक्षण की वकालत 35
माउंटबेटन योजना 386
"मार्क्स" 9, 75, 77, 84, 168
मार्क्स और गांधी 16
मार्क्सिज्म एंड सोशलिज्म 76
मार्क्सवाद 4, 16, 75, 76, 77, 183, 236, 436, 440
मार्क्सवाद तथा साम्यवादी एकतंत्रवाद 44
"मार्बल हाउस" 79
मास्को 86
मिजो 197
"मिस्ट्री ऑफिसर स्टेफार्ड क्रिप्स" 9
"मीसा" 90
मुक्ति आन्दोलन 395
मुरलीधर सी० भंडारे 69
मुलायम सिंह यादव 33
मुस्लिम लीग 133
मेघना 202
मेनन, श्री वी० पी० 118
मेहता, श्री अशोक, 119
मैकमोहन रेखा 66
मोरारजी देसाई, श्री 164, 170, 171, 172

य

यंग इंडिया, 58
यज्ञ दत्त शर्मा, 60
यादव श्री मुलायम सिंह, 33
यादव, श्री रामसेवक, 394
यादव, श्री हुकमदेव नारायण 422
यादवेन्द्र दत्त, 451
यूगोस्लाविया, 244, 245
यूनाइटेड नेशन्स, 197
यूनेस्को, 192
यूरोप, 131, 160, 167, 179, 226

योगेन्द्र शर्मा, 385

र

रंगा, प्रो० 323, 326, 333, 381, 446
रंगून, 65
रंगून में एशियाई समाजवादी सम्मेलन, 44
रविराय, 419
राउरकेला इस्पात कारखाना, 346
राजनारायण, 415
राजनैतिक लोकतंत्र, 22
राजस्थान, 123, 157, 158
राजा जी, 104, 166
राजा राममोहन राय, 197
राजेन्द्र प्रसाद डा०, 109, 510
राज्य सभा, 395, 404
"राम कृष्ण और शिव", 9
राम जन्मभूमि बाबरी मस्जिद, 35
राममूर्ति, जी०, 169
राम सजीवन, 450
रामानुज, 212
राव वीरेन्द्र सिंह, 113
राष्ट्र पंचायत, 223
राष्ट्रपति, 150, 167, 191, 213
राष्ट्र संघ, 246
राष्ट्रीय आमदनी, 156, 160, 165
राष्ट्रवाद, 440
राहत कोष, 180
रिक्शा चालक, 187, 188
"रिवेन्स मस्ट एडवांस", 9
रीवां महाराज, 118
रूस 132, 137, 160, 183, 235, 238, 240, 241, 243, 244, 245, 248, 303
रूसी साम्यवाद, 33
रेडियो कारवन, 195
रेड्डी, डा० जी० विजय मोहन, 438
रेड्डी, श्री नीलम संजीव, 380
रेड्डी, श्री वी० सत्यनारायण, 52
रेड्डी, श्री मुलका गोविन्दा, 397

ल

लंका, 233, 249
लद्दाख, 223
लांगजू घाटी, 134
लाइसेंस, 187
लाल टोपी, 38
लालू प्रसाद, श्री 29
लाल बहादुर शास्त्री, 150, 281, 284
लिमये, श्री मधु, 81, 94, 389

लेख/भाषण, डा० लोहिया की स्मृति में:

उग्र समाजवादी 74—80
उसूलों से समझौता नहीं करने वाला व्यक्ति 63—68
कथनी करनी में भेद न करने वाले लोहिया 426—30
क्रांतिकारी दूरदर्शी—डा० राममनोहर लोहिया 33—36
डा० राममनोहर लोहिया 69—73
डा० राममनोहर लोहिया—एक क्रांतिकारी 109—20
डा० राममनोहर लोहिया—एक महान समाजवाद 43—45
डा० राममनोहर लोहिया और समाजवादी 52—59
डा० राममनोहर लोहिया की स्मृति में 49—51
डा० राममनोहर लोहियाः रूढ़ि भंजक 19—25
डा० लोहिया—एक अमर व्यक्तित्व 37—42
डा० लोहिया को श्रद्धांजलि 424—25
प्रेरणा-स्रोत लोहिया 434—35
मैंने डा० लोहिया से सीखा है 431—33
राममनोहर लोहियाः एक बहुमुखी प्रतिभा 81—93
लोहिया आज के संदर्भ में 26—28
लोहिया—एक गतिशील व्यक्तित्व 438

लोहिया: एक महान समाजवादी चिंतक 450
लोहिया: एक महापुरुष 451
लोहिया: एक मौलिक चिंतक 439-41
लोहिया—एक संत 422-23
लोहिया: एक सच्चे देशभक्त 444-45
लोहिया: एक सामाजिक और आर्थिक सुधारक 436-37
लोहिया: क्रांतिकारियों में सिरमौर 446-48
लोहिया की एक नये आयाम की तलाश 14-18
लोहिया दर्शन में करुणा का महत्व 46-48
लोहिया: नेहरू के अनुयायी के रूप में 94-108
लोहिया: भेदभाव के कट्टर विरोधी 442-43
लोहिया—मेरे पथप्रदर्शक और गुरु 419-21
लोहिया—हिन्दुस्तान के महान सपूत 449
सही समाज सुधारक डा० लोहिया 60-62
सूक्ष्म विवेचक: डा० राममनोहर लोहिया 29-32

लेखकगण, डा० लोहिया के बारे में लेख

उपेन्द्र, श्री पी०, 26-28
गुहा, प्रो० समर, 74-80
चतुर्वेदी, श्री जगदीश प्रसाद, 109-122
जार्ज फर्नांडीज, श्री 19-25
दंडवते, प्रो० मधु, 14-18
दिघे, श्री मधुकर, 37-42
द्विवेदी, श्री सुरेन्द्रनाथ, 43-45
पाणिग्रही, श्री चिन्तामणि 49-51
भंडारे, श्री मुरलीधर, 69-73
मंडल, श्री धनिक लाल, 46-48
मधु लिमये, श्री 81-93, 94-108
यादव, श्री मुलायम सिंह 33-36
रेड्डी, श्री वी० सत्यनारायण 52-59
लालू प्रसाद, श्री 29-32
वर्मा, श्री उपेन्द्र नाथ 63-68
शर्मा, श्री यज्ञदत्त 60-62
लेनर्ड वूली, 193
लेनिन, 411
लोक भावनाओं की वकालत, 32
लोकतांत्रिक सिद्धांत का मूल तत्व, 20
लोक सभा, 395

लोहिया, डा० राममनोहर:

गिरफ्तारी और कैद 5, 6, 7, 19, 28, 32, 43, 50-51, 52, 64, 65-66, 67, 70, 75, 82, 87, 88, 104, 112-13, 135, 379
जन्म 3, 26, 52
पुस्तकें एवं लेख 5, 9, 16, 17, 34, 76, 82, 85, 86, 111, 113, 115
निधन 10, 25, 28, 59, 67, 80, 92
प्रारम्भिक जीवन 3-4, 27-28, 52, 69, 81, 94
शिक्षा 3-4, 27, 52, 69, 81-82, 94, 113
नए सिद्धांतों के प्रतिपादक 9-10, 14-18
स्वतंत्रता सेनानी 4-6, 27, 49, 52, 65-66, 70, 75-76, 82, 83, 109, 111-113, 382, 386, 396-397, 449
नेता 7-8, 31
कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के सदस्य 4-6, 27, 75, 82
सांसद 9-11, 50, 379
दर्शन 6-8, 8-9, 14-18, 22-25, 29-30, 60, 410
समाजवादी 6-8, 14-18, 19, 22-26, 27-28, 37, 38-39, 43-45, 52-56, 61-62, 64-65, 74-80, 82-91, 95-108, 149-151, 365-66, 380, 386, 389, 396-97, 404-06, 420, 435, 450

विचार निम्नलिखित पर:

कृषि 123-24
नौकरशाही 163-64, 200, 208, 367
जाति प्रथा 7, 18, 24, 54, 70-71, 135-136, 372
विकेन्द्रीकृत अर्थव्यवस्था 7, 8, 17-18, 28, 86, 88
हिन्दू मुस्लिम एकता 9, 35-36, 55-58, 83, 91-92
भूमि नीति 123, 134-135, 150-51, 368
भाषाएं, हिन्दी एवं अन्य भाषाएं 9, 25, 31, 33, 55, 61-62, 67-68, 90-91, 217, 242, 366
पिछड़ी जाति/वर्गों को अवसरों के मामले में प्राथमिकता 6-8, 18, 23, 30, 64, 77-78, 135-136

HHL5—

मूल्य नीति 124-125, 128-129, 163-164, 369
धर्म और राजनीति 48-49, 57-58
सामाजिक समानता 6, 7, 8, 18, 23, 30, 32, 53-55, 70-72, 88-89, 136-137
सामाजिक क्रांति 7, 8, 17-18, 19, 22, 53-54, 60, 77, 86-87, 88, 89
तिब्बत 134
लोहिया ट्रस्ट, 35
लोहिया जी के भाषण, 123-355
लोहिया जी के भाषणों से उद्धरण, 365-75
ल्योनार्ड शिफ, 110

व

वकरो का टापू, 112
वकील अहमद कैफी, 131
वर्मा, श्री उपेन्द्रनाथ, 63
वर्मा, श्री रामआसरे, 182
वर्ल्ड-गवर्नमेंट, 39
वाइमार संविधान, 292
वामपंथ, 144, 238
वाराणसी, 414
वार्ष्णेय, श्री लक्ष्मी भूषण, 187
वाल्मीकि और वशिष्ट, 9
वालोंग, 132
वाशिंगटन, 180
विंस्टन चर्चिल, 325
विकेन्द्रीकृत अर्थव्यवस्था, 17
विकेन्द्रीकृत प्रौद्योगिकी, 22
विदेश नीति, 69, 95, 235, 237, 238, 239, 240, 241, 245, 253, 372, 413

विधेयक

कम्पनी (संशोधन) विधेयक, 297-304
निवारक नजरबंदी (जारी करना) विधेयक, 305-10
पेटेन्ट्स विधेयक, 317-22
प्रेस परिषद् विधेयक, 311-16
संविधान संशोधन विधेयक (अनुच्छेद 124 और 217), 278-80
संविधान संशोधन विधेयक (अनुच्छेद 352), 285-89
संविधान (संशोधन) विधेयक (अनुच्छेद 368), 290-96
संविधान संशोधन विधेयक (अनुच्छेद 370 का लोप), 281-84
विद्यार्थी आन्दोलन, 186
विनोबा जी, 414
व्हील ऑफ हिस्ट्री, 76

श

शंकराचार्य, 185
शर्मा, श्री यज्ञदत्त, 60
शर्मा, श्री योगेन्द्र, 385
शराबबंदी, 129, 130
शास्त्री, श्री प्रकाशवीर, 393
शाहनवाज साहब, 191
शिवशंकर, श्री पी०, 436

श्रद्धांजलियां, डा० लोहिया को

जन्म दिवस, 23 मार्च, 1990 को आयोजित समारोह में, 419-51
राज्य सभा में, 395-415
लोक सभा में, 379-94

श्रद्धांजलियां, डा० लोहिया को विभिन्न नेताओं द्वारा

एन्थनी, श्री फ्रेंक, 390-91
खोबरागड़े, श्री बी० डी०, 404-405
गंगा शरण सिंह, श्री 401-404
गांधी, श्रीमती इन्दिरा, 380
गिरि, श्री वी० वी०, 395
गोपालन, श्री ए० के०, 89
गोरे मुराहरि, श्री 398-400

चटर्जी, श्री ए० पी० 400-401
चटर्जी, श्री एन० सी० 391
चटर्जी, श्री सोमनाथ 444-45
चित्त बसु श्री 405-406
दामोदरन, श्री के० 397
द्विवेदी, श्री सुरेन्द्रनाथ 389-90
पटेल, श्री दह्याभाई वी० 396
पासवान, श्री राम बिलास 431-33
फर्नांडीज, श्री जार्ज 426-30
बराड़, श्री नरेन्द्र सिंह 406
वाजपेयी, श्री अटल बिहारी 382-83
भंडारी, श्री सुन्दर सिंह 397-398
मनी, श्री ए० डी० 405-406
मनोहरन, श्री के० 383-84
यादव, श्री राम सेवक 393-94
यादव, श्री हुक्मदेव नारायण 422-23
यादवेन्द्र दत्त, श्री 451
रंगा, श्री एन० जी० 381
रंगा, प्रो० एन० जी० 446-48
रवि राय, श्री 419-21
राज नारायण, श्री 407-15
राम संजीवन, डा० 450
रेड्डी, डा० जी० विजयमोहन 438
रेड्डी, श्री नीलम संजीव 379-80
रेड्डी, श्री मुलका गोविन्द 397
लिमये, श्री मधु 385-89
वसन्त साठे, श्री 434-35
शर्मा, श्री योगेन्द्र 384-85
शास्त्री, श्री प्रकाशवीर 392-93
शिव शंकर, श्री पी० 436-37
सेट, श्री इब्राहिम सुलेमान 449
सैकिया, डा० नगेन 439-41
स्वामीनाथन, श्री जी० 442-43
हाथी, श्री जयसुखलाल 395-96
हेपतुल्ला, डा० (श्रीमती) नजमा 424-25

स

संकल्प
केरल में राष्ट्रपति शासन की उद्घोषणा संबंधी संकल्प 323-33
भारत द्वारा राष्ट्रमंडल त्याग संबंधी संकल्प 262-70
सुरक्षा परिषद् के भारत व पाकिस्तान में युद्धविराम संबंधी संकल्प 262-70
संजीव रेड्डी, श्री 150
संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी 326
संविधान 291, 292, 293, 305
संविधान (संशोधन) 276, 281, 285, 290
सत्यदेव विद्यालंकार 111
सत्यनारायण सिंह 217
सप्त क्रांति 9, 77, 87, 88, 90, 420, 427, 428, 429, 430
समन्वयवाद 451
समन्वित हिमालय नीति 34
समर गुहा, प्रो० 74
समाजवाद 52, 53, 58, 59, 113, 144, 147, 149, 150, 207, 210, 324, 326, 333, 338, 363, 365, 379, 380, 397, 399, 401, 405, 406, 409, 410, 424, 434, 436, 440
समाजवादी 97, 98, 99, 100, 102, 190, 444, 450
समाजवादी आन्दोलन 9, 16, 45, 395
समाजवादी दल 114, 428, 434, 435
समाजवादी विश्वबंधुत्व 21
समाजवादी सरकार 426
समानतावादी 450
सर लैनर्डवूली 196
सरकारी उपक्रम समिति 344
सरदार पटेल 117
सर्राफ, श्री 221

साइबेरिया 245
साठे, श्री वसन्त 434
सातवां बेड़ा 240, 241
सामन्तवाद 131, 445
सामाजिक क्रांति 60, 87, 371
साम्यवाद 324, 325
साम्यवादी दल 117
साम्राज्यवाद 4
सार्वभौमिक क्रांतियां 71
सुप्रीम कोर्ट 230
सुभाष बोस 97, 98, 99, 112
सुरक्षा परिषद् 215, 262, 263
सुरेन्द्रनाथ द्विवेदी 43, 390
सुशील नय्यर, डा० 171, 510
सेंट्रल हाल 110
सेट, श्री इब्राहिम सुलेमान 449
सैकिया, डा० नगेन 439
सोक्रेटीज 230
सोवियत कैम्प 249
सोशलिस्ट पार्टी 53, 94, 389
सोशलिस्ट पार्टी आफ इंडिया 6
स्कूल फार सिविल लिबर्टीज 9
स्टैफोर्ड क्रिप्स 239
स्वतंत्र पार्टी 34, 333, 381
स्वतंत्रता संग्राम 379, 380
स्वराज भवन 114
स्वामीनाथन, श्री वी० 442
स्वेज नहर 244

ह

हरदोई सम्मेलन 38
हरिजन 137, 152, 153, 184
हांगकांग 246
हाउस आफ रिप्रेजेंटेटिव 230
हाउस आफ लार्डस 230
हाथी, श्री जयसुखलाल 396
हिटलरवाद 114
हिन्दुस्तान 131, 134, 148, 153, 165, 172, 173, 175, 181, 188 209, 212, 213, 216, 217, 219, 220, 221, 222, 225, 226, 230, 231, 232, 233, 235, 236, 237, 238, 239, 240, 241, 242, 243, 244, 246, 248, 250, 251, 252, 253, 256, 257, 264, 266, 282, 311, 314, 315, 317, 320, 369, 370, 371, 372, 373, 449
हिमालय बचाओ 29, 33, 47
'हिमालयन पालिसी फार इंडिया' 9
हिन्दी राष्ट्रीय भाषा 8
हिन्दू मुस्लिम एकता 9
हिन्देशिया 168
हीरा लाल 69, 74, 81
हीरा लाल लोहिया 3
हीरेन मुखर्जी 133, 138, 149
हुकमदेव नारायण यादव 422
हेपतुल्ला, डा० नजमा 424
हेरल्ड लास्की 112
हैदराबाद 64, 187

लोक सभा सचिवालय के कुछ नवीनतम प्रकाशन

पुस्तकें

दादा साहेब मावलंकर: लोक सभा के जनक: भारत के संसदीय प्रजातंत्र के एक प्रमुख निर्माता और लोक सभा के प्रथम अध्यक्ष दादा साहेब मावलंकर के अनुकरणीय जीवन के विषय में ख्याति प्राप्त महानुभावों के लेख। (100 रुपये)

मौलाना अबुल कलाम आज़ाद: भारत की स्वतंत्रता और प्रजातंत्र के मुख्य निर्माताओं में से एक मौलाना अबुल कलाम आज़ाद के अनुकरणीय जीवन और उपलब्धियों का विश्लेषण; विशिष्ट व्यक्तियों के लेख सम्मिलित किए गए हैं। (100 रुपये)

जवाहरलाल नेहरू: जीवन, कृति एवं कृतित्व: यह पुस्तक सार्वजनिक जीवन में पंडित जी के कुछ समकालीन विद्वानों तथा प्रतिष्ठित व्यक्तियों द्वारा लिखे गये लेखों का संग्रह है। (200 रुपये)

सुविख्यात सांसद मोनोग्राफ सीरिज़:

डा॰ राममनोहर लोहिया	30.00 रुपये
डा॰ लंकासुन्दरम	30.00 रुपये
डा॰ श्यामा प्रसाद मुखर्जी	30.00 रुपये
पं॰ नीलकंठ दास	30.00 रुपये
पनमपिल्ली गोविन्द मेनन	30.00 रुपये
भूपेश गुप्त	30.00 रुपये
डा॰ राजेन्द्र प्रसाद	30.00 रुपये
शेख मोहम्मद अब्दुल्ला	30.00 रुपये